शिवासौहार्दम्

श्रीमर्वतन्त्रस्वतन्त्राणा कविताकिंकचक्रवर्तिना काशी-
हिन्दूविश्वविद्यालयसंस्कृतसाहित्यप्रधानाना
श्रीमहादेवशास्त्रिमहोदयानाम्—

यह संस्कृत भाषा के प्रसार का शुभ-लक्षण है कि अधिकारी विद्वानो के द्वारा एक एक पुस्तक पर अनेक टीकाये लिखी जायँ। लघुसिद्धान्त-कौमुदी जिसका प्रचार प्रथमारम्भी छात्रो मे व्यापक रूप से है उसपर शिवा नाम की संस्कृत और हिन्दी मे निबद्धा व्याख्या योग्य लेखक तथा परिश्रमी व्याकरणाचार्य प० गोमती प्रसाद ने की है। इसमे सूत्रो के अर्थ विषम प्रयोगो के साधन विशदता के साथ किये गये है। समर्थ लेखक ने कतिपय सूत्रो की वृत्तिया स्वय लिखी है जो मूलकार ने छोड दी गयी थी। इस व्याख्या मे एक स्वर्ण सौरभ-संयोग हुआ है कि प्रत्येक उदाहरण के प्रामाणिक अर्थ भी उपस्थापित हुए है। प्रत्येक दृष्टि से यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। मैं विश्वेश्वर से कामना करता हूँ कि इस निर्माण का आदर बडे और विज्ञ जन करें, समाज पूर्ण-रूपेण इसको अपनावे।

तिथि—८।१०।१९५०

महादेव पाण्डेय
स० म० हिन्दू विश्वविद्यालय,
काशी।

श्रीसर्वतन्त्रापरतन्त्राणां विद्वन्मूर्धन्यानां काशीविद्वत्-
परिषत्संरक्षकपदमलंकुर्वतां धर्मप्राणानां
श्रीसत्यनारायणशास्त्रिमहोदयानाम्—

शिवा शिवसमावृता वितनुयाच्छिवासद्यशो-
विभातु लघुकौमुदी जगति बालछात्रोचिता।
सुखायुसमलंकृतो बुधवरो हि श्रीगोमती-
प्रसादपदभाक् 'शिवा' रचयिता चिरं जीवतात्॥

वृत्ति प्रयोग-लसिताखिलसूत्र भाषा-
व्याख्याथ शब्दसमलंकृत-धातुरूप-
जुष्टा च क्लिष्ट-पद-साधनिका-वृतेयम्
शंभविष्यति किलार्भदलोपकर्त्री॥

सत्यनारायणः

प्रकाशकीय वक्तव्य

लघुसिद्धान्तकौमुदी का यह चतुर्थ सस्करण प्रस्तुत करत हुए प्रसन्नता हो रही है। सस्कृत-जगत् ने इससे पूर्व तीन मस्करणो का स्वागत किया—यही इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। छात्रो के हित को ध्यान मे रखते हुए टीकाकार ने सस्कृत तथा हिन्दी दोनो भाषाओ मे व्याख्या लिखी है। सस्कृत-व्याख्या उन्ही अशो मे की गई हे, जहा मूलग्रन्थ मे वत्ति का अभाव अथवा कठिन स्थलो को स्पष्ट एव बोधगम्य बनाने की आवश्यकता रही हो। इसके अतिरिक्त परीक्षार्थियो को प्रयोग-साधनिका सस्कृत म किस प्रकार लिखनी है—इस बात का भी विशेष ध्यान रखा गया है। अत परीक्षार्थी इसके पढने से लेखन काय मे अवश्य निपुण हो सकेगे। अधिकतर परीक्षार्थी लेखन-काय म शिथिलता दिखाते हे, जिसके फलस्वरूप उन्हे अच्छे अङ्क प्राप्त नही हो पाते। इस त्रुटि को सुधारने के लिय लघुकोमुदी मे आय हुए विशिष्ट प्रयोगो का सस्कृत मे विन्यास बडा लाभदायक सिद्ध होगा। दूसरी विशेषता यह है कि शब्द एव धातुओ के रूप भी यथास्थान लिखने के कारण छात्रो को उनकी रूपसिद्धि समझने म सरलता होगी।

हिन्दी म प्रत्येक सूत्र का अथ तथा उदाहरणो का विश्लेषण कर उनकी भी हिन्दी व्याख्या यथास्थान की गई हे।

इस चतुर्थ सस्करण मे परिशिष्ट के कुछ विशेष अश जोडकर अधिक उपयोगी मामग्री सम्मिलित कर दी गई हे। व्याकरणशास्त्र की उपयोगी परिभाषाये तथा लक्षण-समन्वय छात्रो को हृदयगम कराने के लिये उनका निवचन किया गया है। सूत्र सूची, धातुपाठ, वार्तिक-सूची, गणपाठ तथा समासचक्र का समावेश कर इस सस्करण को अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया किया है। आशा है छात्र-वग इससे अधिकाधिक लाभान्वित हो सकेगा।

सस्कृत जगत् की सेवा मे शुद्ध एव अच्छे ग्रन्थो को अर्पित करना ही हमारा एकमात्र लक्ष्य है।

निवेदक—

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

प्राक्कथनम्

आद्या विश्वविधात्री महाशक्ति के लोकोपकारक विविध निर्माणो मे शब्दशक्ति का प्राधान्य चेतन मानव प्राणियो मे जागरूक है। शब्द साक्षात् ब्रह्म है उसी से ससार की प्रक्रियाये चलती है अत एव—

अनादिनिधन ब्रह्म शब्दतत्त्व यदक्षरम्।
विवर्त्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत ॥

वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड की यह प्रथम कारिका एव अन्य कारिकाएँ भी शब्दतत्त्व-प्राधान्य का समर्थन करती है। यह शब्द ध्वन्यात्मक एव वर्णात्मक होता हुआ भी वर्णात्मक वाणी द्वारा भाषारूप से व्यवहार मे आता है।

विश्व म अनेक भाषाओ का क्रियाकलाप है तत्तद देश, जाति एव वर्ग के अनुसार विभिन्न भाषाओ का प्रयोग, व्यवहार एव उनसे बोध होता देखा जाता है किन्तु सस्कृत भाषा सबसे प्राचीन एव पुण्यपुञ्जोपभोक्ता देवताओ की भाषा है। अत इसे सुरभारती' अथवा 'दैवी वाक' कहते है। इस प्रकार विभिन्न मनीषियो न लिखा है—

सस्कृत नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभि । (काव्यादर्शे)

अथ च— अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यत सर्वा प्रवृत्तय ॥ (कृष्णद्वैपायनभाष्ये)

सृष्टि के आरम्भ से ही देखा जाय तो वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, इतिहास एव आयुर्वेद ग्रन्थ अथवा अन्य व्यावहारिक नीतिशास्त्र, काव्यादि सस्कृत मे ही लिखे गये हैं तथा इसमे भी सशय नही कि सस्कृत भाषा मे वे जैसे पूर्ण है वह पूर्णता भाषान्तर मे अनुवाद से वैसी सम्भव नही है, जैसी कि सस्कृत द्वारा की गयी है।

इस सुरभारती के शुद्ध स्वरूप सम्यक् प्रयोगज्ञान के लिए ही महर्षियों द्वारा व्याकरण का निर्माण हुआ। महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है कि —

"एक शब्द सम्यग ज्ञात सुष्ठु प्रयुक्त स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति, माता पितरौ चास्य स्वर्गे लोके महीयेते।"

अर्थात् एक शब्द भी भलीभाँति जानकर ठीक प्रकार से प्रयोग किया गया कामनाओ की पूर्ति करता है तथा उस (प्रयोक्ता) के माता-पिता स्वर्ग (सुख) लोक मे सम्मान पाते हैं।

व्याक्रियन्ते निष्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्, शब्दशास्त्रम्, शब्दानु
शासन वा शास्त्रमधिकृत वेदितव्यम् इत्याह पतञ्जलि ।

पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य मे व्याकरण के अध्ययन एव अध्यापन के मुख्य प्रयोजन को सुस्पष्ट किया है—

रक्षोहागमलध्वसन्देहा प्रयोजनम्। रक्षार्थं वेदानामध्येय व्याकरणम्। ऊह कर्तव्य । मौर्यं चरु निर्वपेन् ब्रह्मवर्चसकामस्तत्र सूर्यायेत्यूह । ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च ।

इस आदेश मे आये हुए षडङ्ग पद से शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एव ज्योतिष लिये जाते हैं। इसमे **'मुख व्याकरण स्मृतम'** यह उक्ति सत्य है। आचाय पतञ्जलि ने कहा है—**'षटस्वङ्गेषु प्रधान व्याकरणम, प्रधाने च कृतो यत्न फलवान भवति'** इति। श्री भास्कराचायजी मुक्तकण्ठ से कहत ह कि—

यो वेद वेदवदन सदन हि सम्यक्,
ब्राह्म स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
यस्मादत प्रथममेतदधीत्य विद्वान्,
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी ॥

अर्थात् व्याकरण-ज्ञान के बाद ही अन्य शास्त्र के ज्ञान का अधिकारी होता है। यो तो इतिहास से ज्ञात होता है कि इस धरातल पर आठ व्याकरण थे। जैसा कि बोपदेवने कहा है —

इन्द्रश्चन्द्र काशकृत्स्नाऽऽपिशली शाकटायन ।
पाणिन्यमरजनेन्द्रा जयन्त्यष्टौ हि शाब्दिका ॥

सत्य भी है, महाभाष्यकार पतञ्जलि लाघवरूप व्याकरणप्रयोजन लिखते हुए कहते हैं कि—

बृहस्पति प्रवक्ता इन्द्रश्चाध्येता, बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्य वर्षसहस्र प्रतिपदोक्ताना शब्दाना शब्दपारायण प्रोवाच न चान्त जगाम।

वाग् व पराच्यव्याकृताऽवदत्, ते देवा इन्द्रमब्रुवन् इमा नो वाच व्याकुर्विति, तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। (तै० स० ६।४।७)

इससे ऐन्द्र व्याकरण सबसे प्राचीन प्रतीत होता है। इसी प्रकार सारस्वत चन्द्रिका आदि भी है। अथ च आपिशलि एव शाकटायन के मतो का उल्लेख जहाँ तहाँ पाणिनि व्याकरण मे भी मिलता है, किन्तु यह भी निर्विवाद सत्य है कि पाणिनीय व्याकरण अत्यन्त उपादेय होने के कारण मनीषियो का हृद्य एव विश्व वन्द्य हुआ। विदेशी विचारक विद्वान् भी पाणिनीय व्याकरण की प्रशसा मुक्त

कण्ठ से करते है। प्राफेसर विलियम्स का कथन है कि पाणिनीय व्याकरण उस मानव मस्तिष्क की प्रतिमा का आश्चर्यतम नमूना है, जिसे किसी दूसरे देश ने आजतक सामने नही रखा। हाँ, उन्हे 'मानवमस्तिष्क' न कहकर 'अवतार पुरुष' कहना चाहिय था। अस्तु पाणिनीय व्याकरण विश्ववन्द्य तो हुआ। पाणिनीय व्याकरण के अवतरण की आख्यायिका से स्पष्ट होता है कि ब्रह्मोच्छ्वासनि ग्रास रूप वेदाद्गम की भाति आशुतोष भगवान् शङ्कर के आनन्दमय नत्य के अवसर पर डमरू से निकले हुए वदस्वरूप अक्षरसमाम्नाय महर्षि पाणिनि को प्राप्त हुए—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्का नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकाम सनकादिसिद्धानेतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥

तथा च महर्षि पाणिनि की वन्दना मे कहा जाता है —

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्न व्याकरण प्रोक्त तस्मै पाणिनये नम ॥

इससे भी महेश्वर प्राप्त १४ सूत्रो की व्याख्यारूप ही सिद्ध होता है। इस व्याकरण के विकास एव पूणतासम्पादन मे तीन महर्षियो (पाणिनि, कात्यायन एव पतञ्जलि) का योगदान अभ्यर्हणीय है।

महर्षि पाणिनि

पाणिनि के जन्मस्थान जन्मकाल एव अध्ययन—स्थानादि के सम्बन्धो मे कतिपय गवेषक इतिहासकारो मे मतभेद मिलता है, किन्तु इनके विभिन्न नामा से इनके गोत्र, माता पिता तथा अभिजन (देश) का यथासाध्य निवचन या निणय किया जा सकता है। जसे पाणिनि के नाम पाणिनि, दाक्षीपुत्र, शालातुरीय आदि जो प्राप्त हैं, उनमे प्रथम नाम (१) **पाणिनि** गोत्र व्यवहार का है, **अथच** पिता का नाम महर्षि पाणिनि (पाणिन) जिनका नामान्तर शलङ्क भी कहा जाता है, अत इनका नाम शालङ्कि भी है। (२) **दाक्षीपुत्र**–माता दाक्षी थी अत इनका नाम दाक्षीपुत्र पडा। महाभाष्यकार पतञ्जलि स्थान स्थान पर स्पष्ट लिखते हे— **'कथ पुनरिद भगवत पाणिनेराचायस्य लक्षण प्रवृत्तम।'**' अथ च **'सर्वे सवपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिने'**'। इससे उनकी माता, पिता एव गोत्र का निणय हो जाता है। (३) शालातुरीय नाम से जन्म प्रदेश स्पष्ट है। गणरत्नमहोदधि मे—**'शालातुरो नाम ग्राम सोऽभिजनोऽस्यास्तीति शालातुरीय। तत्र भवान् पाणिनि'**—यह स्थान लाहौर नाम से प्रसिद्ध है, जा भारत का विशेष होता हुआ आज पाकिस्तान मे है।

महर्षि पाणिनि के समय के सम्बध मे विभिन्न इतिहासकारो ने विभिन्न अनुमान किया है। **'कुमार श्रमणादिभि'** (२।१।७०) इस सूत्र मे श्रमण पद उद्धत है, इससे बुद्धकालीन अथवा तत्पश्चात्कालीन सिद्ध करते हैं। तथा **'इन्द्र-वरुण भव शव रुद्र मड हिमारण्य यव यवन मातुलाचार्याणामानुक** (४।१।४६) इस सूत्र पे यवन शब्द आया हे, अत यवन 'सिकदर' अदि का काल पाणिनि का समय है। यह नितान्त भ्रम है, क्योकि वैदिक ब्राह्मण ग्रन्थो मे भी श्रमण पद मिलता है। जैसे शतपथ ब्राह्मण मे--**'अत्र पिता अपिता भवति, माता अमाता, लोका अलोका, देवा अदेवा, श्रमणोऽश्रमण, तापसोऽतापस'** इति। साथ ही सन्यास की प्रथा भी प्राचीन है।

मेरा तो इतिहासकारो से निवेदन है कि जब आशुतोष भगवान् शकर के डमरू से निकले हुए चतुदश सूत्र तपोधन महर्षि पाणिनि को प्राप्त हुए तब अनादि भगवान् शकर के काल मे अपूव काय सम्पादन करनेवाले महर्षि को ईसा पू० ३२४ या ई० पू० ५२२ कहना युक्तियुक्त नही प्रतीत होता है। जो हो इस महर्षि ने लोककल्याण के लिए सूत्ररूप मे अष्टाध्यायी ग्रन्थरत्न दिया। सूत्र शब्द का अथ यही होता है—**'अल्पाक्षरत्वे सति बह्वथबोधकत्वम'** अर्थात् थोड अक्षर होते हुए भी बहुत अथ बाध करानेवाले सूत्र कहे जाते हैं। इनके बाद सहयोगी के रूप मे आवश्यक अशो की पूर्ति के लिए महामुनि कात्यायन आते है।

महामुनि कात्यायन

महर्षि पाणिनि के सूत्रो पर आवश्यकतानुसार महामुनि कात्यायन ने वार्तिको का निर्माण करके स्वण मे सुगन्ध ला दिया। पाणिनि व्याकरण की पूर्ति एव समृद्धि मे वार्तिककार श्री कात्यायनजी का विशेष महत्त्व है। वे पाणिनि के समकालीन एव सतीर्थ्य प्रतात होते है। वार्तिककारो मे इनका नाम सवश्रेष्ठ है।

उक्तानुक्तदुरुक्ताना चिन्ता यत्र प्रवतते।
त ग्रन्थ वातिक प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिण ॥

इनका कात्यायन नाम गोत्रसम्बधी है। आपका दूसरा नाम वररुचि था— ये केवल वार्तिककार ही नही थे, अपितु महाकवि थे। इनके "स्वर्गारोहण" नामक ग्रन्थ की प्रशसा अनेक ग्रन्थो मे है।

महाभाष्य के प्रथम आह्निक मे "यथा लौकिकवदिकेषु" इस वार्तिक पर **'प्रियतद्धिता दाक्षिणात्या यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिकवैदिकेष्विति प्रयुञ्जते'** इस वचन से ज्ञात होता है कि ये दाक्षिणात्य थे।

महाभाष्यकार महामुनि पतञ्जलि

'पाणिनि व्याकरण महाभाष्य' बडा ही प्रसिद्ध व्याख्यारूपी सागर है। सायणभाष्य, शाङ्करभाष्यादि विविध भाष्य है किन्तु यह महाभाष्य है। भाष्य-शब्दार्थ निम्नाङ्कित है—

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदैः सूत्रानुसारिभिः ।
स्ववाक्यानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः ॥

महामुनि पतञ्जलि एव उनके महाभाष्य की प्रशंसा सभी लोग मुक्तकण्ठ से करते है। इन्होने 'पातञ्जल योगदर्शन' द्वारा मनोमलापहरण के लिये योगदर्शन का उपदेश करके तथा 'पातञ्जल महाभाष्य' द्वारा वाङ्मलापहरणार्थ मार्ग प्रदर्शन करके अथ च 'चरकसंहिता' जैसे आयुर्वेद के महान् पाण्डित्यपूर्ण एव उभयलोकसाधक ग्रन्थ का उपदेश करके शारीरमल एव मनोमल निर्हरण के लिये मार्ग प्रदर्शन किया। इस बात को प्राय सभी लोग स्वीकार करते है तथा पाण्डित्यप्राप्ति के लिये निम्नाङ्कित स्तुति भी पढते है—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥

पतञ्जलि ने अपना परिचय स्वयं कहीं परिचय देने के रूपमे उल्लिखित नही किया किन्तु कुछ स्थलो पर **गोनर्दीयस्त्वाह** तथा **'गोणिकापुत्र'** ऐसा उल्लेख मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि ये गोनर्द देश के थे। यह प्रदेश कुछ लोगो के मत से काश्मीर मे तथा कुछ लोग गोंडा (बस्ती जिले के पास) मानते है। इन्हे लोग शेषावतार एव फणाभृत नाम से भी कहते है। इनके महाभाष्य ग्रन्थ मे **'पुष्यमित्रो यजते'** **'इह पुष्यमित्रं याजयाम'** इस प्रकार पद मिलते हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि ये राजा पुष्यमित्र के समकालिक थे।

आधुनिक ऐतिहासिको का मत विशेष विचारणीय है कि पतञ्जलि १५० वर्ष ई० पूर्व, कात्यायन ३५० वर्ष ई० पू० तथा पाणिनि ४५०–५५० वर्ष ई० पूर्व मे हुए थे।

मेरी गुरुपरम्परा मे ये सभी अवतार पुरुष थे। मुखपृष्ठ के चित्रपर आशुतोष भगवान् शङ्कर के नृत्यकाल मे डमरू से निकले चतुर्दश सूत्रीय प्रकाश की प्राप्ति पाणिनि को है तथा उसकी पूर्ति कात्यायन ने वार्तिका द्वारा की। इसी प्रकार महामुनि पतञ्जलि ने सभी का पूर्णत प्रकाश करके इस धरातल पर मनीषियो के हितार्थ महाभाष्य दे दिया। ये तीनो पाणिनि-व्याकरण के प्रवर्त्तक हैं।

॥ श्री ॥

श्रीवरदराजाचार्यकृता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

शिवाख्य-संस्कृत-हिन्दी-टीकाद्वयालङ्कृता



¹नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥ १ ॥

॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥

श्रीगोमतीप्रसादशास्त्रिकृता

❀ शिवा ❀

वेदानां सारभूता या गायन्तं त्रायते सदा ।
तां शिवां विघ्ननाशार्थं प्रणमामि पुनः पुनः ॥ १ ॥
नमो विश्वप्रकाशाय सूर्यायामिततेजसे ।
विश्ववन्द्याय गुरवे तद्धाम्ने च नमो नमः ॥ २ ॥

अहं वरदराजाचार्यः लघुसिद्धान्तकौमुदीम् (सिद्धः = निष्पन्नः अन्तः = निर्णयो यत्र ते सिद्धान्तास्तेषां कौमुदी = प्रकाशिका सिद्धान्तकौमुदी, लघ्वी चासौ सिद्धान्तकौमुदी लघुसिद्धान्तकौमुदी तां लघुसिद्धान्तकौमुदीम्) करोमि । किं कृत्वा ? सरस्वतीं (सारः = ज्ञानं तदस्त्यस्याः सरस्वती तां सरस्वतीं) ज्ञानस्वरूपां नत्वा = नमस्कृत्य । कथम्भूतां सरस्वतीं ? देवीम् (दीव्यति प्रकाशते प्रकाशयति वा इति देवी तां देवीं) प्रकाशपूर्णाम् । पुनः कथम्भूताम् सरस्वतीं ?

१–मैं वरदराजाचार्य शुद्धस्वरूपवाली तथा समस्त गुणों से युक्त श्रीसरस्वती देवी को नमस्कार करके बालकों को अल्प परिश्रम से व्याकरण में प्रवेश कराने के लिए इस 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' नामक ग्रन्थ को बनाता हूँ ।

अथ सञ्ज्ञाप्रकरणम् ।

अइउण् १ । ऋलृक् २ । एओङ् ३ । ऐऔच् ४ । हयवरट् ५ । लण् ६ । ञमङणनम् ७ । झभञ् ८ । घढधष् ९ । जबगडदश् १० । खफछठथचटतव् ११ । कपय् १२ । शषसर् १३ । हल् १४ । [1]इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणा-

---

शुद्धा = स्फटिकस्वरूपाम् । पुन कथम्भूता सरस्वती ? गुण्या = प्रशस्तगुणयुक्ताम् । कस्मै प्रयोजनाय ? बालाना पाणिनीयव्याकरणे सुखपूर्वक प्रवेशाय । इति खण्डा-न्वयविग्रहपूर्वको मङ्गलार्थ ।

प्रश्न — ननु ग्रन्थादौ 'नत्वा सरस्वतीं देवीम्' इति मङ्गलात्मक पद्य किमर्थ-मुपनिबद्धम् ? **उत्तरम्** — मङ्गलार्थम्–विघ्नविनाशार्थम् । एतदर्थं हि पातञ्जल महाभाष्ये प्रतिपादितम् — 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाण्यायुष्मत्पुरुषाणि च भविष्यन्त्यध्येतारश्च प्रवक्तारो भविष्यन्ति ' तथा 'समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्' इति शिष्टाचारानुमत्या च निर्विघ्नपरिसमा-प्त्यर्थं मङ्गलमावश्यकम् । अथ च मम शिष्या अप्येवं कुर्युः —इति शिष्यशिक्षार्थं च कर्तव्यम् । **ननु**—ईश्वरनमस्कारात्मकरूपमङ्गलेन—अर्थसिद्धे सम्भवात् कथ पाणि-नीयप्रवेशाय इत्यादि पदम् प्रयुक्तम् ?—**समाधत्त**—सर्वेषा ग्रन्थानामादौ विषय प्रयोजन सम्बन्धाधिकारिरूपानुबन्धचतुष्टयमावश्यकम् अतस्तेषा—ग्रहणम् । **अत्र** ग्रन्थे लघवो व्याकरणसिद्धान्ता विषया । प्रवेशार्थ स्वल्पाना पाणिनीयसिद्धा-न्ताना ज्ञान प्रयोजनम् । सिद्धान्ताना ग्रन्थेन प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव सम्बन्ध । अधीतकोशादिरनधीतव्याकरणस्तज्जिज्ञासुर्बाल ऽधिकारी । इत्यनुबन्धचतुष्टम् ।

ननु एषा चतुर्दश-सूत्राणा मुनित्रय-(पाणिनि कात्यायन पतञ्जलि) महोदयैरनुक्तत्वात्कुत प्रामाण्यमित्यत आह **इतीति** । इति = इमानि अइउण-आदि चतुर्दशसूत्राणि । **माहेश्वराणि** = महेश्वरादागतानि महेश्वरवरप्रसादात्पाणि

---

[1]-अइउण से लेकर हल पर्यन्त जो ये चौदह सूत्र हैं वे अण अक आदि सज्ञाओं को

आवश्यक सूचना—

अध्यापकों का कर्तव्य होता है कि प्रत्येक प्रकरण के प्रारम्भ मे बच्चों को बता दें कि इस प्रकरण में यह विषय है, इस लिए इस प्रकरण का यह नाम पडा है । जैसे-यह 'संज्ञाप्रकरण' है, इसमें सज्ञायें बतायी जाती हैं । 'अच्सन्धिप्रकरण' मे अचो (अ, इ, उ, ऋ, लृ ए ओ, ए, औ) की परस्पर में सन्धि (मिलन) होती है अतएव 'अच्सन्धि' नाम पडा है, इत्यादि समझा दें ।

दिसञ्ज्ञाऽर्थानि* । [1]एषामन्त्या इत । [2]हकारादिष्वकार उच्चारणार्थ । [3]लण्मध्ये त्वित्सञ्ज्ञक ।

निना लब्धानि न तु तत्कृतानि । एतेनेद सिद्ध यन्महेश्वरकृपया पाणिनिना इमानि चतुर्दशसूत्राण्याकररूपाणि प्राप्तानि । ततश्चैतरेव सम्पूर्ण पाणिनीय व्याकरण समुपनिबद्धम् । अत्र बहूनि प्रमाणानि सन्ति । तथाहि—श्री नन्दिकेश्वरकृत**काशिकायाम** उक्तम्— **'नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्का नवपञ्चवारम ।**

उद्धर्तुकाम सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम ॥''

तथा सूत्रान्त्या ण क आदिवर्णा (अनुबन्धा) अपि महेश्वरकृता एव । **अत्र प्रमाणम्**—"अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्य वर्णचतुर्दशम् ।

धात्वर्थं समुपादिष्ट पाणिन्यादीष्टसद्धये ॥"

तत्र सूत्रत्व नाम किम् इति प्रश्ने—अल्पाक्षरत्वे सति बह्वर्थबोधकत्व सूत्रत्वम् । अन्यच्च—अल्पाक्षरमसन्दिग्ध सारवद्विश्वतोमुखम् ।

अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्र सूत्रविदो विदु ॥

तच्च सूत्र षट्प्रकारकम्भवति—

सञ्ज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।

अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विध सूत्रलक्षणम् ॥

नन्वेषा सूत्राणा व्याकरणे कि प्रयोजनमित्यत आह— **'अणादिसञ्ज्ञार्थानि'** अण्—आदय सञ्ज्ञा अर्थ =प्रयोजन येषा तानि अणादिसञ्ज्ञार्थानि । **एषाम्—अइउण्—** इत्यादि चतुर्दशसूत्राणाम् अन्त्या —अन्तेऽवसाने भवा अन्त्या =णकारादिवर्णा ,

---

बनाने के लिए श्री शिवजी की कृपा से महर्षि पाणिनि को मिले हैं ।

१—इन चौदहों सूत्रों में अन्त के जो ण्, क्, ङ, च, ट्, ण, म्, ञ, ष्, श, व्, य्, र, ल्—वर्ण हैं वे इत्सञ्ज्ञक हैं । अर्थात् अण, अच्—आदि सञ्ज्ञाओं (प्रत्याहारों) की सिद्धि के लिए ये इत्' कहे जाते हैं । इनकी यह "इत्" सञ्ज्ञा 'हलन्त्यम्" सूत्र से होती है । २—हयवर ल, ञमङणन, झभ, घढध, जबगडद, खफछठथचटत कप शषस, ह इन पूर्वोक्त वर्णों में जो अकार है वह केवल उच्चारण के लिए है क्योंकि अच के बिना व्यञ्जन का उच्चारण नहीं होता है (अर्थात् हकार, यकार आदि के साथ उच्चरित अकार का प्रत्याहार के साथ ग्रहण नहीं होता) । ३—लण सूत्र के बीच में जो अकार है वह तो इत्संज्ञक है । (अतएव 'र' प्रत्याहार की सिद्धि होती है और "उरण् रपर" आदि सूत्रों में रपर से भी कार्यसिद्धि हो जाती है, नहीं तो उरण लपर' कहना पड़ता) ।

---

*—ये चौदहों सूत्र केवल पाणिनीय व्याकरण के ही उपकारक नहीं हैं किन्तु नागरी लिपि के ज्ञान के भी मूलकारण हैं । इनमे स्वर तथा व्यञ्जन सभी निहित हैं ।

[1]हलन्त्यम् १ । ३ । ३ ॥ [2]उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात् । [3]उपदेश आद्योच्चारणम् । सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र । [4]

अदर्शनं लोपः १ । १ । ६० ॥ [4]प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ।

तस्य लोपः १ । ३ । ९ ॥ [5]तस्येतो लोपः स्यात् । [6]णादयोऽणाद्यर्थाः ।

इत =इत्संज्ञकाः (हलन्त्यमिति सूत्रेण) भवन्ति । इत्संज्ञाकरणञ्च प्रत्याहारार्थम् ।

उपदेश इति । अत्र केचन—"धातुसूत्रगणोणादिनामलिङ्गानुशासनम् । आगमाः प्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः" इति प्रतिपादयन्ति, किन्तु भाष्ये एतेषां तथाऽप्रतिपादनात्, पाणिनि कात्यायन-पतञ्जलि महोदयानामाद्यं प्रथममुच्चारणमेव उपदेशपदेन गृह्यते । ननु बहुषु सूत्रेषु (यथा हलन्त्यमित्यादिषु) तत्स्वरूपं तु अल्पशब्दकम्, आवश्यकतया वृत्तिस्तु महतीति कुतः—अत आह—**सूत्रेष्विति** । सूत्रेषु यत्पदं न दृश्यते किन्तु वृत्तौ तत्प्रतिपादनमावश्यकमिति सूत्रान्तरात् तत्पदमनुवर्तनीयम् ।

प्रसक्तस्य = विद्यमानस्येत्यर्थः ।

ननु 'ण क' आदीनामनुबन्धानामित्संज्ञालोपावेव क्रियेते चेत्तेषामुच्चारणमेवानावश्यकमत आह—'**णादय** इति । ण इत्यारभ्य ल पर्यन्ताः सूत्रान्त्यवर्णाः अण् अक आदि प्रत्याहारार्थाः ।

१—उपदेश (प्रथम) अवस्था में जो अन्त्य (अन्त का अक्षर) हल् वह "इत्" संज्ञक होता है (अर्थात् उसका "इत्" यह नाम होता है)। २—पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि के प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं (अर्थात् इन तीनों मुनियों द्वारा जिस शब्द का जिस रूप में पहिले उच्चारण है, वही उपदेश है) जैसे—भू धातु से भू यह उपदेश है और उसी का गुण हो जाने पर जब 'भो' हो जाता है तब वह 'भो' उपदेश नहीं कहा जाता है—इसी प्रकार सभी जगह जानना चाहिए। ३—जो पद सूत्र में नहीं है और वहाँ उस पद की आवश्यकता है (वा आवश्यकतानुसार वृत्तिकार ने उसे कहा है) उसको दूसरे सूत्र से अनुवर्तन कर लेना चाहिए। (यह अनुवर्तन अष्टाध्यायी के क्रम से प्रायः पीछे के सूत्रों से होता है कहीं आगे के सूत्रों से भी आकर्षण हो जाता है)। यह नियम सभी सूत्रों के लिए जान लेना चाहिए। ४—विद्यमान शब्द का अदर्शन (नहीं दिखाई देना) लोप संज्ञक होता है। अर्थात् जिस किसी शब्द में पहले जो अक्षर रहे और बाद में किसी सूत्र द्वारा उसकी अविद्यमानता हो जाय (अर्थात् वह शब्द नहीं दिखाई पड़े) उसी को लोप कहते हैं। जैसे—हर इह, हरयिह। यहाँ हर इह में पहले यकार था उसका "लोपः शाकल्यस्य" इससे लोप हो गया। जब लोप हो गया तब हर इह ऐसा हुआ। जब लोप नहीं हुआ तब हरयिह हुआ। ५—जिसकी इत्संज्ञा होती है उसी का लोप होता है। अर्थात् 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से और 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इस सूत्र से जिसकी इत्संज्ञा हो जाती है उसी का लोप होता है। ६—अइउण् आदि सूत्रों में जो ण, क् आदि इत्संज्ञक हैं वे अण् अक् आदि

आदिरन्त्येन सहेता १ । १ । ७१ ॥ [1]अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यमाना स्वस्य च सञ्ज्ञा स्यात् । [2]यथा–'अण्'–इति अइउवर्णाना सञ्ज्ञा । [3]एवमच् हल्-अलित्यादय ।

ऊकालोऽज्ह्रस्वदीर्घप्लुत १ । २ । २७ ॥ उश्च ऊश्च उ३श्च व , वा

अन्त्येनेति—(पूर्व हलन्त्यमिति णकारस्येत्सञ्ज्ञा) अन्त्य इत् ण' तत्सहित आदि –'अ' ('अ ण इति) मध्यगयो –इकार उकारयो —स्वस्य अकारस्य च ग्राहक इति अण ग्रहणेन अ इ उ त्रयाणा ग्रहणमिति ।

प्रत्याहाराणामकारादिक्रमेण परिगणनम्—

महेश्वरसूत्रसिद्धानाम् तथा वार्तिके पठितानामेव क्रम –

१ अक	७ अण	१३ एङ	१९ चर	२५ झल	३१ यञ	३७ वल
२ अच	८ अण	१४ एच	२० चय	२६ झश	३२ यण	३८ वश
३ अट	९ इण	१५ ऐच	२१ छव्	२७ झष	३३ यम्	३९ शर्
४ अम्	१० इक	१६ खर	२२ जश्	२८ बश्	३४ यय्	४० शल
५ अल	११ इच	१७ खय	२३ झय्	२९ भष	३५ यर	४१ हल
६ अश	१२ उक	१८ ङम्	२४ झर	३० मय	३६ रल	४२ हश

ऊकालेति—एकमात्रिक (उ) द्विमात्रिक (ऊ) त्रिमात्रिक (उ ३) उच्चारणकालसमानकालिकोऽच क्रमाद् ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत–सञ्ज्ञका भवति ।

प्रत्याहारा के लिए हैं, लोप के लिए नहीं । (अत इत्सञ्ज्ञक होने पर भी उनका लोप नहीं होता) ।

१—अन्त मे रहनेवाल (णकार आदि के सदृश) जो इत् सञ्ज्ञक वर्ण उसके साथ जो आदिवर्ण (अकार आदि तत्सदृश) रहता है, वह मध्य के वर्णों का तथा अपना भी बोधक होता है (यह प्रत्याहार बनाने का ढङ्ग है) । २—जैसे 'अण्" प्रत्याहार मे अ, इ, उ इन तीनों की अण सञ्ज्ञा है । ३–इसी प्रका[illegible] प्रत्याहारो को भी जानना चाहिए । (स्पष्टार्थ यह है—कि [illegible] [illegible] जानना है तो इसमे अन्त्य इत् है च् , उसके साथ आदि है 'अ" वह अकार अपने साथ च् के पहले जितने इ, उ ऋ, लृ ए, ओ, ऐ, औ वर्ण हैं इन सभी का अच् प्रत्याहार के भीतर ग्रहण करायेगा) इसी प्रकार सभी प्रत्याहार सिद्ध होते हैं । प्रत्याहारों की सिद्धि के लिए "हल न्त्यम्" तथा "आदिरन्त्येन सहता" यह दोनों सूत्र याद रहना चाहिए ।

इव कालो यस्य सोऽच् [1]क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसञ्ज्ञः स्यात्। [2]स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा।

उच्चैरुदात्तः १।२।२९॥ [[3]ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसञ्ज्ञः स्यात्।]

नीचैरनुदात्तः १।२।३०॥ [[4]ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेष्वधोभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तसञ्ज्ञः स्यात्।]

समाहारः स्वरितः १।२।३१॥ [[5]उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यस्मिन् सोऽच् स्वरितसञ्ज्ञः स्यात्।] [6]स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा।

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८॥ [7]मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसञ्ज्ञः स्यात्। [8]तदित्थम् —अ इ उ ऋ एषां वर्णानां

मुखेन सहिता मुखसहिता मुखसहिता चासौ नासिका चेति मुखनासिका,

१—एकमात्रिक द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक जो उकार, उनके उच्चारण मे जितना जितना समय लगता है, उसी प्रकार उतना ही समय जिस किसी अच् के उच्चारण मे लगे उसे क्रमश एकमात्रिक को ह्रस्व सज्ञा द्विमात्रिक की दीर्घ संज्ञा और त्रिमात्रिक की प्लुत संज्ञा होती है। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत के जानने के लिये सुन्दर उदाहरण है उषाकाल की मुर्गे की बोली। २—वह ह्रस्व दीर्घ और प्लुत सज्ञक अच् उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के भेद से तीन तीन प्रकार का होता है। जैसे—ह्रस्वोदात्त, ह्रस्वानुदात्त, ह्रस्वस्वरित। दीर्घोदात्त दीर्घानुदात्त दीर्घस्वरित। प्लुतोदात्त प्लुतानुदात्त, प्लुतस्वरित। ३—भाग सहित तालु कण्ठ आदि स्थानों के ऊर्ध्वभाग (ऊपर के हिस्से) मे निष्पन्न (उच्चारण किया जाने वाला) अच् उदात्तसंज्ञक (नामक) होता है। ४—भाग सहित तालु कण्ठ आदि स्थानों के अधोभाग (नीचे के हिस्से) मे निष्पन्न (उच्चारण किया जानेवाला) अच् अनुदात्त सज्ञक होता है। ५—उदात्तत्व एव अनुदात्तत्व ये दोनों (वर्णधर्म) जिस किसी एक अच् में एकत्र हों वह अच् स्वरित सज्ञक होता है। ६—वह अच् ह्रस्वोदात्त, ह्रस्वानुदात्त, ह्रस्व स्वरित—दीर्घोदात्त दीर्घानुदात्त, दीर्घस्वरित—प्लुतोदात्त, प्लुतानुदात्त और प्लुतस्वरित के भेद से नव प्रकार का होता हुआ भी अनुनासिक और अननुनासिक के भेद से दो प्रकार का होता है। (अत अ, इ, उ ऋ, इन वर्णों के १८ भेद होते हैं, यह आगे तुरन्त बतलाया जायेगा) ७—मुख के साथ नाक से उच्चारण किया जाने वाला वर्ण अनुनासिक होता है। जैसे—जायँ में यँ, एवं ञ म आदि। ८—पूर्वोक्त विषयों का फल बताते हैं कि अकारादि अचों के ये भेद इस प्रकार मे इतने होते हैं। जैसे—अ, इ, उ, ऋ ये चारों अच् अठारह प्रकार के होते हैं (यहीं नं० ९ में देखिये)।

प्रत्येकमष्टादश भेदा । [1]लृवणस्य द्वादश तस्य दीर्घाभावात् । [2]एचामपि द्वादश तेषा ह्रस्वाभावात् ।

तुल्यास्यप्रयत्न सवणम १ । १ । ९ ॥ [3]ताल्वादिस्थानमाभ्य तरप्रयत्न श्चेत्येतद्द्वयम् यस्य येन तुल्य तस्मिथ सवर्णसञ्ज्ञ स्यात् । ([4]ऋलवणयोर्मिथ

उच्यतेऽसौ वचन मुखनासिकया (उच्यते) वचन मुखनासिकावचन । ऊकालो ज्झस्वेत्यादि पञ्चभि सूत्र प्रतिपादितानाम् सग्रह –तदित्थम् एव प्रकारेग ज्ञेयम् ।

अचामष्टादशभेदप्रदर्शनम्—

अ इ उ ऋ ल	अ इ उ ऋ ए ओ ऐ औ	अ इ उ ऋ ल ए ओ ऐ औ
ह्रस्व	दीर्घ	प्लुतभेदा
उदात्तानुनासिक	उदात्तानुनासिक	उदात्तानुनासिक
उदात्ताननुनासिक	उदात्ताननुनासिक	उदात्ताननुनासिक
अनुदात्तानुनासिक	अनुदात्तानुनासिक	अनुदात्तानुनासिक
अनुदात्ताननुनासिक	अनुदात्ताननुनासिक	अनुदात्ताननुनासिक
स्वरितानुनासिक	स्वरितानुनासिक	स्वरितानुनासिक
स्वरिताननुनासिक	स्वरिताननुनासिक	स्वरिताननुनासिक

तुल्यास्यप्रयत्नमिति । अस्यन्ति–उच्चारयन्ति वर्णानिनेनेति आस्यम् । तत्र भवमास्यम् । प्रकृष्टो यत्न प्रयत्न । आस्यञ्च प्रयत्नश्च आस्यप्रयत्नौ । तुल्यौ आस्यप्रयत्नौ यस्य तत् तुल्यास्यप्रयत्नम् ।

१—लृकार बारह प्रकार का होता है (अठारह प्रकार का नहीं) क्योंकि इसके ह्रस्व और प्लुत दो ही भेद होते हैं । दीर्घ नहीं होता । २—एच (ए, ओ, ऐ औ) ये भी बारह प्रकार के होते है क्योंकि ये ह्रस्व नहीं होते (दीर्घ और प्लुत होते हैं) । ३—तालु आदि स्थान और आभ्य तर प्रयत्न ये दोनों जिस वर्ण के जिस वण से समान हों (अर्थात् जिन दो वर्णों का स्थान एव प्रयत्न एक हो) वे परस्पर मे सवर्णसंज्ञक होते हैं । जैसे– च' और छ' इन दोनों का तालु स्थान है स्पृष्ट प्रयत्न है (अर्थात् ये दोनों समान स्थान और समान प्रयत्नवाले हैं) अत दोना का परस्पर (आपस) मे सवर्ण सञ्ज्ञा होती है । ऐसे ही अन्य वर्णों के विषय में भी समझें । ४–ऋ और लृ इन दोनों की परस्पर में सवण सञ्ज्ञा कहनी चाहिए ।

सावर्ण्यं वाच्यम्)* । †अकुहविसर्जनीयानां [1]कण्ठः । [2]इचुयशानां तालु । [3]ऋटुरषाणां मूर्धा । [4]लृतुलसानां दन्ताः । [5]उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । [6]ञम-ङणनानां नासिका च । [7]एदैतोः कण्ठतालु । [8]ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । [9]वकारस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य [10]जिह्वामूलम् । [11]नासिकाऽनुस्वारस्य । [12]यत्नो द्विधा –आभ्यन्तरो, बाह्यश्च । [13]आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात् । तत्र [14]स्पृष्टं प्रयत्नं—स्पर्शानाम् । [15]ईषत्स्पृ

कस्य वर्णस्य किम् स्थानमित्यत आह—अकुहेत्यादि ।

१–(अठारहों प्रकार के) अकार, कवर्ग (क ख, ग घ, ङ), हकार और विसर्ग का कण्ठ स्थान है । अर्थात् इनका उच्चारण कण्ठस्थान से होता है । २–(अठारहों प्रकार के) इकार, चवर्ग (च, छ ज झ ञ), यकार, और शकार का तालु स्थान है। अर्थात् ये तालु से उच्चारित होते हैं । ३–ऋकार टवर्ग (ट ठ ड, ढ ण) रकार और षकार का मूर्धा स्थान है । ४–लृकार, तवर्ग (त थ द, ध, न) लकार और सकार का दन्त स्थान है । अर्थात् इनके उच्चारण का स्थान दाँत हैं । ५–उकार, पवर्ग (प फ ब, भ म) और उपध्मानीयों (≍प ≍फ) के उच्चारण के स्थान दोनों ओष्ठ हैं । ६–ञ म, ङ, ण और न का उच्चारण स्थान नाक है (इसमें नासिका च ऐसा पाठ है । च चकार का अर्थ यह है कि इनके उच्चारणस्थान नाक तथा अपने वर्ग के अनुसार कण्ठ, तालु आदि भी हैं) । ७–ए और ऐ का कण्ठ और तालु स्थान है । ८–ओकार और औकार का कण्ठ और ओष्ठ स्थान हैं । ९–वकार का दाँत और ओष्ठ स्थान हैं । १०–जिह्वामूलीय (≍क ≍ख) का जिह्वामूल (जीभ का प्रारम्भ स्थान) स्थान है । ११–अनुस्वार (˘) का नासिका (नाक) स्थान है । १२–यत्न (प्रयत्न) दो प्रकार का होता है, आभ्यन्तर और बाह्य । १३–उनमें पहिला (आभ्यन्तर प्रयत्न) पाँच प्रकार का होता है । स्पृष्ट ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत भेद से पाँच प्रकार का होता है । १४–उसमें स्पर्शसंज्ञक वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न होता है (क से लेकर म तक के वर्ण स्पर्शसंज्ञक हैं ।) १५–अन्तःस्थसंज्ञक वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है (य, र, ल व ये अन्तःस्थसंज्ञक हैं) ।

---

* लृतुलसानां दन्ताः । ऋटुरषाणां मूर्धा । अर्थात् ऋ और लृ इन दोनों का स्थान भिन्न भिन्न है, अतः सवर्णसंज्ञा "तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्" से नहीं हो सकती थी और सवर्ण संज्ञा आवश्यक है—इसलिये वार्तिकारम्भ करते हैं कि ऋ, लृ वर्णों की परस्पर में सवर्ण संज्ञा हो ।

† प्रत्येक वर्णका उच्चारण कण्ठ तालु आदि के अभिघात से होता है, अतः जिस वर्ण के उच्चारण में जो स्थानविशेष सहकारी है उसे क्रमशः बताते हैं ("अकुह" इत्यादिसे) ।

ष्टमन्त स्थानाम् । [1]ईषद्विवृतमूष्मणाम् । [2]विवृत—स्वराणाम् । [3]ह्रस्वस्याऽवणस्य प्रयोगे—सवृतम् । [4]प्रक्रियादशाया तु विवृतमेव । [5]बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा । विवार सवार श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्त स्वरितश्चेति । [6]खरो-विवारा श्वासा अघोषाश्च । [7]हश -सवारा नादा घोषाश्च । [8]वर्गाणा प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाऽल्पप्राणा । [9]वर्गाणा द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणा । [10]कादयो मावसाना स्पर्शा । [11]यणोऽन्त स्था । [12]शल ऊष्माण । [13]अच स्वरा । [14]≍क≍ख इति कखाभ्या प्रागधविसगसदृशो जिह्वामूलीय । [15]≍प≍फ इति पफाभ्या प्रागधविसगसदृश उपध्मानीय । 'अं' [16]'अः' इत्यच परावनुस्वारविसर्गौ।

बाह्यप्रयत्ना यद्यपि सवणसञ्ज्ञायामनुपयुक्तास्तथाप्यान्तरतम्यपरीक्षाया तेषामुपयोग ।

१–ऊष्मा सञ्ज्ञक वर्णों का ईषद् विवृत प्रयत्न होता है (श, ष, स, ह ये ऊष्मा सञ्ज्ञक है) । २–स्वरों का विवृत प्रयत्न होता है (अ आ, इ, ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ ये स्वर सञ्ज्ञक हैं) । ३–प्रयोग दशा मे (अर्थात् उच्चारणकाल मे) ह्रस्व अवण का संवृत प्रयत्न होता है । ४–साधनावस्था मे तो विवृत ही रहता है (दोनो वाक्यों का निष्कर्ष यह है कि अवर्ण वस्तुत विवृत है, किन्तु उच्चारण मे सवृत मान लिया जाता है) । ५–बाह्यप्रयत्न तो ग्यारह प्रकार का होता है, विवार, संवार श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त अनुदात्त और स्वरित के भेद से । ६–खर् प्रत्याहार के (ख, फ, छ ठ थ च ट, त, क, प, श, ष, स) वर्णों के विवार, श्वास, अघोष प्रयत्न होते हैं । ७–हश् प्रत्याहार के (ह, य, व, र, ल ञ म, ङ, ण, न, झ भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड द) वर्णों के सवार नाद, घोष, प्रयत्न होते हैं । ८–वर्गों के प्रथम, तृतीय और पञ्चमवण (अर्थात् क ग, ङ । च, ज, ञ । ट, ड, ण । त, द, न । प, ब, म) और यण् प्रत्याहार (य, व, र, ल) ये अल्पप्राण प्रयत्नवाले होते हैं । ९—वर्गों के द्वितीय और चतुथ वण (अथात् ख, घ छ झ, ठ ढ, थ ध, फ भ) और शल् प्रत्याहार (श, ष, स, ह), ये महाप्राण प्रयत्नवाले होते हैं । १०–क से लेकर म तकक सभी वर्ण स्पर्श सञ्ज्ञक होते हैं । ११—यण प्रत्याहार (य व, र, ल) अन्त स्थसञ्ज्ञक होते हैं । १२—शल् प्रत्याहार (श, ष, स, ह) ऊष्मा संज्ञक होते हैं । १३–अच (अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ) स्वर संज्ञक हैं । १४–क और ख स पहले ≍ ये विसर्ग के समान जो ≍ इस प्रकार का चिह्न होगा वह जिह्वामूलीय संज्ञक होता (कहलाता) है । १५–प और फ से पहले आधे विसर्ग के समान जो ≍ इस प्रकार का चिह्न होगा वह उपध्मानीयसंज्ञक होता है । १६–अं और अः इन दोनों मे अं में अच से परे (ऊपर की ओर) 'ं' अनुस्वार है और अः में अच् से परे-विसर्ग है ।

अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः १ । १ । ६९ ॥ [1]प्रतीयते-विधीयते—इति प्रत्ययः । अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात् । [2]अत्रैवाऽण् परेण णकारेण । कु चु टु तु पु एते उदितः । [4]तदेवम्-अ इत्यष्टादशानां संज्ञा । [5]तथेकारोकारौ । [6]ऋकारस्त्रिंशतः । एवम्—[7]लृकारोऽपि । [8]एचो द्वादशानाम् । [9]अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा । तेनाऽ[10]ननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोस्संज्ञा ।

परः सन्निकर्षः संहिता १ । ४ । १०९ ॥ [11]वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात् ।

हलोऽनन्तराः संयोगः १ । १ । ७ ॥ [12]अज्भिरव्यवहिता हलः संयोग-संज्ञाः स्युः ।

अत्रैवेति । अत्र अणुदित्सूत्रे-एवाण् परेण णकारेण (लण् सूत्रस्थेनेति भावः) । इतोऽन्यत्र ढूलोपे इत्यादौ पूर्वेणैवाण्प्रत्याहारो ज्ञेयः ।

१–जिसका विधान किया जाय (वा जिससे ज्ञान हो) उसे प्रत्यय कहते हैं । अविधीयमान अण् और उदित् (कु, चु, टु, तु, पु) ये सवर्ण संज्ञक (बोधक) होते हैं । २–केवल 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' इसी सूत्र में 'अण्' पद से पर णकार (अर्थात् लण् सूत्र) पर्यन्त माना जाता है । ३–कु कवर्ग (क ख ग घ ङ), चु चवर्ग (च छ ज झ ञ), टु टवर्ग (ट ठ ड ढ ण) तु तवर्ग (त थ द ध न), पु पवर्ग (प फ ब भ म), ये सभी उदित्-संज्ञक हैं । ४–पूर्वोक्त कारणों से "अ" (अकार) अठारह की संज्ञा (बोधक) है । ५–इसी प्रकार "इ" (इकार) "उ" (उकार) भी अठारह अठारह के संज्ञावाले होते हैं । ६–(ऋ और लृ सवर्णसंज्ञक हैं अतः) ऋकार ३० तीस की संज्ञा (बोधक) है । ७–इसी प्रकार लृकार भी (तीस की संज्ञा है) । ८–एच् (ए, ओ, ऐ औ) ये प्रत्येक बारह बारह की संज्ञावाले हैं । ९–अनुनासिक और अननुनासिक के भेद से य, व, ल दो-दो प्रकार के होते हैं । १०–इसी कारण से अननुनासिक जो य, व ल हैं, उनकी दो-दो की संज्ञा होती है । ११–वर्णों का अत्यन्त सन्निधान (एकीकरण) संहितासंज्ञक होता है । जैसे—सुधी+उपास्य दोनों अलग अलग हैं । इनका जो सुद्ध्युपास्य के रूप में एकीकरण होता है वही संहिता है । १२–अचों से अव्यवहित हलों (अर्थात् जिन हलों के बीच में अच् का व्यवधान न हो उन) की संयोगसंज्ञा होती है (जैसे–महत्तम शब्द में दो तकार का संयोग है । इसी प्रकार अनेक का भी समझना चाहिये ।

सुप्तिङन्त पदम १ । ४ । १४ ॥ [1]सुबन्त तिङन्त च पदसज्ञ स्यात् ।

❀ इति सज्ञाप्रकरणम ❀

अथ *अच्सन्धिः ।

इको यणचि ६ । १ । ७७ ॥ [2]इक स्थाने यण स्यादचि सहिताया विषये । सुधी उपास्य ' इति स्थिते ।

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १ । १ । ६६ ॥ [3]सप्तमीनिर्देशेन विधीयमान कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य पवस्य बोध्यम् ।

स्थानेऽन्तरतम १ । १ । ५० ॥ [4]प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेश स्यात् । सुध्य् उपास्य इति जाते ।

तदुक्तम—परेणैवेणग्रहा सर्वे पूर्वेणवाण्ग्रहा मता ।
ऋतेऽणुदित्सवणस्येत्येतदेक परेण तु ॥

* इति सज्ञाप्रकरणम् *

सुद्धयुपास्य — सुधी + उपास्य इति दशाया 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूवस्य' 'स्थानेऽन्तरतम ' इति सूत्रद्वयसहकारेण इको यणचि इति सूत्रेण धकारनिष्ठे

१–सुबन्त और तिङन्त की पद सज्ञा होती है जैसे राम ' यह सुबन्त तथ भवति' यह तिङन्त दोनों ही पद हैं इसी प्रकार सभी सुबन्त तथा तिङन्त पद कहे जाते है।

* इस प्रकार सज्ञाप्रकरण समाप्त हुआ *

२–इक् (इ उ ऋ ऌ) के स्थान मे यण (य व र ल) हो अचि (अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ) परे रहते, सहिता (सन्धि) के विषय (विवक्षा) मे । (वह यण् किस को हो इस शका को दूर करने के लिए 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूवस्य' इस सूत्र का आरम्भ करते हैं)—३–सप्तमीनिर्देश द्वारा किया जाने वाला कार्य वर्णान्तर से अव्यवहित पूर्व को होता है (यहाँ सप्तमी निर्देश है इको यणचि' मे अचि पद उससे किया जाने वाला कार्य है यण", वह अव्यवहित पूर्व को अर्थात् सुधी+उपास्य ' मे धी' के इ' को होगा । ४–प्रसङ्ग (सन्धि प्रसङ्ग) होनेपर अत्यन्त सदृश ही आदेश होता है। जैसे—इचुयशानां तालु अर्थात् इकार यकार का एक स्थान (तालुस्थान) हैं। अत 'इ' के स्थान में 'य' ही होगा।

---

* अब अच्सन्धि प्रकरण का प्रारम्भ हो रहा है। अच्-सन्धि अर्थात् अचों की सन्धि (परस्पर मिलन) इस प्रकरण मे बतायी गयी है।

अनचि च ८। ४। ४७॥ [1]अच परस्य यरो द्वे वा स्तो, न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वम्।

झला जश झशि ८। ४। ५३॥ [2]स्पष्टम्। इति पूवधकारस्य दकार।

सयोगान्तस्य लोप ८। २। २३॥ मयोगान्त यत्पद तदन्तस्य लोप स्यात्।

अलोऽन्त्यस्य १। १। ५२॥ [4]षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याऽल आदेश स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते। ([5]यण प्रतिषेधो वाच्य) [6]सुद्ध्युपास्य। [7]मद्ध्वरि। [8]धात्त्रश। [9]लाकृति।

कारस्य यकारे अनचि च' इत्यनेन धकारस्य द्वित्वे सु ध ध य उपास्य' इति स्थिते, 'झला जश झशि' इति पूवधकारस्य दकारे अलोऽन्त्यस्येति सहकारेण सयोगान्तस्य लोप' इत्यनेन यकारस्य लोपे प्राप्ते, 'यण प्रतिषधो वाच्य' इति यलोपस्य निषेधे, वणसम्मेलने च कृते 'सुद्ध्युपास्य -इति सिद्धम्। द्वित्वाभाव पक्षे 'सुध्युपास्य' इति। 'मधु+अरि इति स्थिते 'स्थानेऽ तरतम' इति स्थानत आन्तर्यादुकारस्य वकारे, अनचि चेति धकारस्य द्वित्वे, 'झला जश् झशि'

१-अच से परे जो यर उसको विकल्प से द्वित्व हो किन्तु उससे पर में (आगे) अच् न हो तब। जैसे यहाँ 'सुधय् उपास्य' के सु मे उकार अच है, उससे परे यर है 'ध्' उसको द्वित्व हो गया, इस धकार के बाद भी यदि कोइ अच् होता तो द्वित्व नहीं होता। २-झल को झश पर होने पर जश् होता है। जैसे झल् प्रत्याहारस्थ वर्ण है 'धकार' उसके बाद का धकार झश प्रत्याहारान्तगत है, अत पूर्व धकार (झल) का दकार (जश्त्व) हो गया। तब सुद्धय उपास्य ऐसा स्थित हुआ। ३-संयोगान्त जो पद उसका लोप होवे। (यहाँ शंका इस बात की होती है कि यदि समस्त सयोगान्त पद का लोप कहते हैं तब तो द्ध्य् तीनों का लोप होना चाहिए। इस शका के निराकरण के लिए अलोऽन्त्यस्य सूत्र का आरम्भ करते हैं। ४-षष्ठी निर्देश द्वारा किया जाने वाला काय अन्त्य अल् के स्थान में होता है। यहाँ "सयोगान्तस्य" यह षष्ठी है, इससे विधीयमान कार्य 'लोप" है, वह अन्त्य को होगा। अर्थात् यकार का लोप प्राप्त होता है। ५-संयोगान्त यण् के लोप का प्रतिषेध (निषेध) कहना चाहिये। (पूर्वोक्त प्रक्रिया से सुद्ध्युपास्य की सिद्धि होती है)। ६-सुद्ध्युपास्य - सुधीभि उपास्य सुद्ध्युपास्य —विद्वानों के उपासनायोग्य परब्रह्म ब्रह्म विष्णु महेशादि रूपधारी। ७-मध्वरि -मधो दैत्यस्य अरि मध्वरि। मधुनामक दैत्य के अरि=शत्रु भगवान् विष्णु। ८-धात्त्रश धातु अश धात्त्रंश। श्रीब्रह्माजी का अंश। ९-लाकृति -लृ इवाकृति लाकृति। लृ का तरह है आकृति जिनकी अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण।

एचोऽयवायावः ६।१।७८॥ [१]एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ।

यथासंख्यमनुदेशः समानाम् १।३।१०॥ [२]समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात् । [३]हरये । विष्णवे । नायकः । पावकः ।

वान्तो यि प्रत्यये ६।१।७९॥ [४]यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः । [५]गव्यम् । [६]नाव्यम् । ([७]अध्वपरिमाणे च) [८]गव्यूतिः ।

इति पूर्वधकारस्य दकारे, 'अलोऽन्त्यस्य' इति सहकारेण 'संयोगान्तस्य लोपः' इति वलोपे प्राप्ते, 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' इति तन्निषेधे 'मद्ध्वरिः' इति । एवं 'धात्त्रंशः' 'लाकृतिः' इत्यादयोऽपि बोध्याः ।

'हरे+ए' 'विष्णो+ए', 'नै+अक', पौ+अक' इत्यादिषु 'यथासंख्यमनुदेशः समानामिति' सहकारेण 'एचोऽयवायाव' इति सूत्रेण यथाक्रमम् 'ए'कारस्य स्थाने 'अय्' 'ओ'कारस्य स्थाने 'अव्' 'ऐ'कारस्य स्थाने 'आय्' 'औ'कारस्य स्थाने 'आव्' स्वरूपा आदेशा इति हरये, विष्णवे, नायकः पावकः इत्यादयः सिद्ध्यन्ति ।

गव्यूतिः—'गो+यूति' इति दशायां 'वान्तो यि प्रत्यये' इति सूत्रप्रकरणे अध्वपरिमाणे चेति पठितवार्तिकेन ओकारस्यावादेशे सिद्धं रूपं गव्यूतिरिति । अत्र संज्ञाभङ्गभयाल्लोपः शाकल्यस्येति वलोपो न । 'गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगम्' इत्यमरः ।

१–अच् पर मे होवे तो एच् (ए, ओ, ऐ, औ) को क्रम से अय्, अव्, आय्, आव् आदेश होते हैं। (किसी प्रकार का व्युत्क्रम न हो जाय इस लिए यथासंख्य सूत्र का आरम्भ करते हैं) २–सम सम्बन्धी जो विधि वह यथासंख्य अर्थात् यथाक्रम सिलसिलेवार से होती है। ३–हरये, विष्णवे–हरि के लिये विष्णु के लिये नमस्कार है वा समर्पित है आदि। नायक—नेता प्रधान। पावक—पवित्र करने वाला अग्नि। ४–यकारादि (यकार हो आदि मे जिसके ऐसा) प्रत्यय हो पर मे जिसके ऐसे ओ और औ को क्रम से अव् आव् आदेश होते हैं। ५–गव्यम्–गोर्विकारो गव्यम्। गौ सम्बन्धी दूध दही घी आदि। ६–नाव्यम् नावा तार्यम् नाव्यम्–नौका से पार करने योग्य जल। ७–रास्ता का परिमाण वाचक हो और 'यूति' शब्द पर में हो तो गो शब्द के ओकार को अवादेश होना है। जैसे गो+यूति गव्यूति। ८–"गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुग्मम्" इत्यमरः। दो कोस को गव्यूति कहते हैं।

अदसो मात् १।१।१२॥ [1]अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्त । अमी ईशा । रामकृष्णावमू आसाते । मात्किम् ? अमुकेऽत्र ।

चादयोऽसत्त्वे १।४।५७॥ अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाता स्यु ।

प्रादय १।४।५८॥ [3]एते पि तथा स्यु ।

निपात एकाजनाङ् १।१।४॥ [4]एकाच् निपात आङ्वर्ज प्रगृह्य स्यात् । इ इन्द्र । उ उमेश । [5]**वाक्यस्मरणयोरङित्** । आ एव नु म यसे । आ एव किल तत् । अ यत्र ङित् । ईषदुष्णम् ओष्णम् ।

ओत् १।१।१५॥ [6]आद तो निपात प्रगृह्य स्यात् । अहो ईशा ।

सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६॥ [7]सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे । विष्णो इति । विष्ण इति । विष्णविति ।

मय उञो वो वा ८।३।३३॥ [8]मय परस्य उञो वो वा स्यादचि । किम्वुक्तम् । किमु उक्तम् ।

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ६।१।१२७॥ [9]पदान्ता इको

वाक्यस्मरणयोरङित—भाष्यश्लोकस्यायमन्तिम पाद । पूर्णश्लोकस्त्वित्थम्—

ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च य ।
एतमात ङित विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित् ॥

१—अदस् शब्द सम्बन्धी मकार से परे ईत (ईकार) ऊत (ऊकार) की प्रगृह्य संज्ञा होती है। अमी ईशा —ये स्वामी है, समर्थ हैं। रामकृष्णावमू आसाते—ये बलराम और कृष्ण बैठे हैं। अमुकेऽत्र वे दोनों यहां हैं। २—अद्रव्यार्थवाची (अर्थात् जिनसे लिङ्ग, सख्या और कारक का बोध न होता हो ऐसे) चादि वर्ण निपात सञ्ज्ञक होते हैं। जैसे—च ह, वा इत्यादि। ३—अद्रव्यार्थ वाची प्रादियों की भी निपात सज्ञा होती है। ४—आङ् को छोड़कर निपात जो एक अच् वह प्रगृह्यसञ्ज्ञक होता है। इ इन्द्र —ओह ! यह इन्द्र है। उ उमेश —क्या वह पार्वती के पति शिव हैं। ५— 'आङ्' शब्द वाक्य और स्मरण के विषय में ङित् रहित अर्थात् केवल 'आ' के रूप में रहता है और अन्यत्र "आङ्" ऐसा ङित्-सहित रहता है। जैसे—आ एव नु मन्यसे आदि। आ एवं नु मन्यसे—क्या तुम निश्चय ऐसा ही मानते हो ? आ एवं किल तत्—हाँ वह ऐसा ही है। ओष्णम्—कुछ उष्ण। ६—ओदन्त जो निपात वह प्रगृह्यसंज्ञक होता है। अहो ईशा —अहो ये स्वामी समर्थ प्रभु हैं। ७—अवैदिक इति शब्द परे रहते सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार को विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होती है। विष्णो इति—हे विष्णु ! यह ऐसा—इस प्रकार। ८—मय् से परे उञ् को वकार आदेश होता है विकल्प से। किमु उक्तम्, किम्वुक्तम्—आपने, तुमने, उसने, मैंने वा क्या कहा ? ९—पदान्त इक

ह्रस्वो वा स्युग्मवर्णेऽचि परे। ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धि । चक्रि अत्र। चक्र्यत्र। पदन्ता इति किम ? गौर्यौ।

अचो रहाभ्यां द्वे ८। ४। ४६॥ [1]अच परगाभ्या रेफहकाराभ्या परस्य यगो द्वे वा स्त । गौर्य्यौ। ॐ न समासे। वाप्यश्व ।

ऋत्यक ६। १। १२८॥ [3]ऋति परे पदान्ता अक प्राग्वद् वा। ब्रह्म ऋषि । ब्रह्मर्षि । पदान्ता किम् ? आच्छत्।

इत्यच्सन्धि ।



ह्रस्वविधिसामर्थ्यादिति- यदि कृतेऽपि ह्रस्वे यणादिक स्यात्तर्हि ह्रस्वविधानमेवानथक स्यात्, दीघस्यापि यणि रूपवचित्र्याभावात् इति भाव ।

ब्रह्म ऋषि—अत्रापि ह्रस्वविधिसामर्थ्याद् आद् गुण इति गुणो न।

आच्छत—'आडजादीनाम्' इति जातस्याडागमस्य धात्ववयवत्वेन पदान्तत्वाभाव इति भाव ।

* इत्यच्सन्धि *



को विकल्प से ह्रस्व होता है असवर्ण असमान' अच् परे रहते। जैसे–चक्रि+अत्र में पदान्त इक चक्री–निष्ठ इ है और असमान अच् है अत्र का अ" (इत्यादि)। ह्रस्व के बाद में यणादिक की प्राप्ति होगी किन्तु ह्रस्व के विधान सामथ्य (अथात् यदि यण् ही इष्ट रहा तो ह्रस्व क्यो किया जाय) से पुन स्वरसंधि नहीं होगी। चक्रि अत्र, चक्र्यत्र—सुदर्शनचक्रधारी विष्णु भगवान् यहाँ हैं। गौर्यौ—दो गौरी।

१–अच् से परे जो रेफ या हकार उनसे परे जो यर् प्रत्याहार के कोई वर्ण रहे तो उनको विकल्प से द्वित्व होता है। जैसे– 'गौर्य्यौ' मे अच् है गौ का 'औ' उससे परे रेफ है, उससे परे है यर् का य, उसको द्वित्व हो गया, तब गौर्य्यौ बना। २–समास मे पदान्त इक् को ह्रस्व नहीं होता है। जैसे—वाप्यामश्व वाप्यश्व । यहाँ समास है अत ह्रस्व नहीं हुआ, यण् ही हुआ। वाप्यश्व बावली (छोटा तालाब) के किनारे पर घोड़ा है। ३—ऋत् (ह्रस्व ऋकार)पर मे हो तो पदान्त अक् को पहिले की भांति जानना अथात् ह्रस्व होता है। ब्रह्मर्षि — ब्राह्मण अत्यन्त तपस्या के बाद इस पद को प्राप्त करता है। आच्छत्—वह चला गया।

॥ अच्सन्धि समाप्त ॥



अथ *हल्सन्धिप्रकरणम् ।

स्तोः श्चुना श्चुः ८ । ४ । ४० ॥ [1]सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः । रामश्शेते । रामश्चिनोति । सच्चित् । शार्ङ्गिञ्जय ।

शात् ८।४।४४ ॥ [2]शात्परस्य तवर्गस्य चुत्वं न स्यात् । विश्नः । प्रश्नः ।

ष्टुना ष्टुः ८ । ४ । ४१ ॥ [3]स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् । रामष्षष्ठः । रामष्टीकते । पेष्टा । तट्टीका । चक्रिण्ढौकसे ।

न पदान्ताट्टोरनाम् ८ । ४ । ४२ ॥ [4]पदान्ताट्टवर्गात्परस्याऽनामः स्तोः ष्टुर्न स्यात् । षट् सन्तः । षट् ते । पदान्तात्किम् ? ईट्टे । टोः किम् ? सर्पिष्टमम् ।

रामश्चिनोति— रामस्+चिनोति इत्यत्र स्तोः श्चुना श्चुः इति सकारस्य स्थाने शकारे कृते 'रामश्चिनोति' इति सिद्धम् ।

ईट्टे— ईड्+ते इत्यवस्थायां डकारस्य पदान्तत्वाभावेन ष्टुत्वनिषेधाभावे, ष्टुत्वेन तकारस्य टकारे, चर्त्वेन डकारस्य टकारे कृते रूपम् ।

टोः किमिति—टोर्ग्रहणाभावे पदान्ताभ्यां षकारटवर्गाभ्यां परस्य तो ष्टुर्न त्यर्थे सर्पिष षकारस्य पदान्तत्वात् ततः परस्य तमपस्तकारस्य ष्टुत्वं न स्यादिति निष्कर्षः ।

१—सकार और तवर्ग (त, थ, द, ध, न) का यदि शकार और चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) से योग रहे तो सकार के स्थान में शकार और तवर्ग के स्थान में चवर्ग होता है (इसको श्चुत्व कहते हैं) । जैसे—रामश्शेते में सकार और शकार से योग (मेल) है अतः स् का श् हो गया। एवं 'सच्चित्' में तवर्ग और चवर्ग से योग है अतः त् का च् हो गया । रामश्शेते—श्रीरामजी सो रहे हैं । रामश्चिनोति श्रीरामजी (फूल आदि) इकट्ठा कर रहे हैं । सच्चित्—अविनाशी ज्ञानस्वरूप । २—शकार से परे तवर्ग को चुत्व (चवर्ग च छ ज, झ ञ) नहीं होता है । विश्नः–प्रवेश । प्रश्नः पूछना । ३–षकार और टवर्ग (ट ठ ड ढ, ण) के योग में सकार को षकार और तवर्ग को टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ ण) होता है (इसी का नाम ष्टुत्व है) । रामष्षष्ठः-छठें श्रीरामजी हैं । रामष्टीकते–श्रीरामजी जाते हैं । पेष्टा–किसी पदार्थ का चूर्ण करनेवाला । तट्टीका–वह टीका । चक्रिण्ढौकसे–हे चक्रधारी नारायण आप जा रहे हैं (जा रहे हो) । ४–पदान्त टवर्ग से परे नाम् भिन्न सकार और तवर्ग उनको ष्टुत्व (षकार–टवर्ग) नहीं होता है । षट् सन्तः–छह सज्जन पुरुष हैं । षट् ते–वे छह हैं । ईट्टे स्तोत्र करता है । सर्पिष्टमम्–उत्तम घी ।

---

*अब हल्सन्धि का प्रारम्भ होता है । इस प्रकरण में हलों का सन्धि (परस्पर मिलन) बताया गया है । जैसे—रामस् शेते में स् हल् है । इत्यादि ।

❀[1] [1]अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् । षण्णाम् । षण्णवति । षण्णगर्य ।

तोः षि ८ । ४ । ४३ ॥ [2]तवर्गस्य षकारे परे न ष्टुत्वम् । सन्षष्ठः ।

झलां जशोऽन्ते ८ । २ । ३९ ॥ [3]पदान्ते झलां जशः स्युः । वागीशः ।

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८ । ४ । ४५ ॥ [4]यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् । एतन्मुरारिः । एतद्मुरारिः । ❀[5]**प्रत्यये भाषायां नित्यम्** । तन्मात्रम् । चिन्मयम् ।

तोर्लि ८ । ४ । ६० ॥ [6]तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः स्यात् । तल्लयः । विद्वाँल्लिखति । नकारस्याऽनुनासिको लकारः ।

उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८ । ४ । ६१ ॥ [7]उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः स्यात् ।

षड् + नाम्, 'षड् + नवति', 'षड् + नगर्य' इत्येतेषु 'अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्' इति नियमसहकारेण 'ष्टुना ष्टुः' इति ष्टुत्वेन नकारस्य णकारे, तेष्वाद्ये 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इति नित्यमनुनासिकत्वे, अन्त्ययोः 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' इति विकल्पेनानुनासिके तेषां सिद्धिः ।

१–पदान्त टवर्ग से परे नाम्, नवति और नगरी से भिन्न नकार और तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है। षण्णाम्–छहों (वस्तुओं, पुरुषों आदि) का। षण्णवतिः–छियानवे। षण्णगर्यः–छह नगरियाँ। २–षकार परे मे हो तो तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है। सन्षष्ठः–छठा (व्यक्ति) श्रेष्ठ है। ३–पदान्त झलों का जश् होता है। वागीशः–बृहस्पति, प्रभु। ४–अनुनासिक हो पर में जिसके ऐसे यर् को विकल्प से अनुनासिक होता है। एतन्मुरारिः–ये मुरारि (मुरनामक राक्षस के मारने वाले) भगवान् हैं। ५–प्रत्ययावयव अनुनासिक पर में हो तो पदान्त यर् के स्थान मे नित्य ही अनुनासिक होता है भाषा अर्थात् लोक के विषय मे। तन्मात्रम्—केवल उतना ही। चिन्मयम्–ज्ञानस्वरूप। ६ तवर्ग को लकार परे रहते परसवर्ण होता है (अर्थात् तवर्ग ल के समानरूप का हो जाता है)। तल्लयः—तल्लीन, विलीन या उसका नाश। विद्वाँल्लिखति–विद्वान् लिखता है। ७—उद् से परे स्था और स्तम्भ को पूर्वसवर्ण आदेश होता है। (पूर्वसवर्ण अर्थात् पूर्वपद के अन्तिम अक्षर के समान उत्तर पद का प्रथम वर्ण हो जाता है)।

---

† 'न पदान्ताट्टोरनाम्' इस सूत्र के केवल अनाम् पद से इष्टसिद्धि को न देखकर वार्तिककार 'अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्' इस वार्तिक का आरम्भ करते हैं।

तस्मादित्युत्तरस्य १ । १ । ६७ ॥ [1]पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाण कार्यं वर्णान्तरेणा व्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ॥

आदे परस्य १ । १ । ५४ ॥ [2]परस्य यद्विहित तत्तस्यादेर्बोध्यम् । इति सस्य थ ।

झरो झरि सवर्णे ८ । ४ । ६५ ॥ [3]हल परस्य झरो लोपो वा स्यात् सवर्णे झरि ।

खरि च ८ । ४ । ५५ ॥ [4]खरि परे झला चर स्यु । इत्युदो दस्य त । उत्थानम् । उत्तम्भनम् ।

झयो होऽन्यतरस्याम् ८ । ४ । ६२ ॥ [5]झय परस्य हस्य वा पूवसवण स्यात् । नादस्य घोषस्य सवारस्य महाप्राणस्य तादृशो वगचतुथ । वाग्घरि । वाग्हरि ।

उत्थानम्— उद् + स्थानम्' इत्यवस्थाया 'उद स्थास्तम्भो पूवस्य' इत्यनेन प्राप्त पूवसवण कस्य स्यादिति प्रश्ने 'तस्मादित्युत्तरस्य' इत्यनेन स्थेत्यस्या कारस्य प्राप्तस्त प्रबाध्य 'आदे परस्य इति नियमेन विवारमहाप्राणप्रयत्नवत सकारस्य स्थाने तादृशे थकारे कृते झरो झरि सवर्णे' इति पूवथकारस्य वकल्पिके लोपे दकारस्य खरि चेति चर्त्वे तत्सिद्धम् । लोपाभावपक्षे तु–उदो दस्य चर्त्वे कृते 'उत्थ्थानम्' इति । एव–उत्तम्भनम् उत्थ्तम्भनम् । अत्र थकारस्य चर्त्वेन तकारत्व तु नाशङ्क्य चत्वदृष्टया पूवसवणस्यासिद्धत्वात् ।

वाग्घरि —'वाक + हरि ' इत्यत्र 'झयो होऽन्यतरस्याम्' इत्यनेन स्थान-प्रयत्नयोस्तुल्यत्वात् हकारस्य स्थाने वैकल्पिके घकारे, 'झला जशोऽन्ते' इति घकारस्य जश्त्वेन गकारे तत्सिद्धम् । एव चवगटवगतवगपवर्गेभ्य परस्य हकारस्य झकारढकारधकारभकारा भवन्ति । उदाहरणानि—अज्झीनम्, षड्ढलानि, तद्धवि गुब्भसति इति ।

१—पञ्चमी (पञ्चमी विभक्ति) को निर्देश कर (मानकर) के किया जानेवाला कार्य वर्णान्तर से अव्यवहित पर के स्थान में होता है । २—पर के स्थान में कहा गया कार्य उस (पर) के आदि मे होता है । ३—सवर्णी झर् पर में रहे तो हल् से परे झर् का विकल्प से लोप होता है । ४—झलों के स्थान में चर् होते हैं, खर् परे रहते । उत्थानम्–अभ्युदय, उठना । उत्तम्भनम्–उभाडना, उठाना । ५—झय् से परे हकार को पूर्वसवर्ण विकल्प से होता है । नाद, घोष, संवार और महाप्राण प्रयत्नवाले का वैसा ही अपने वर्ग का चौथा अक्षर ही आदेश हुआ (होता है) । वाग्घरि –बोलने में सिंह ।

शश्छोऽटि ८ । ४ । ६३ ॥ [1]पदान्ताज्झय पग्स्य शस्य छो वा स्यादटि । तद् शिव इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते खरि चेति जकारस्य चकार । तच्शिव । तच्छिव । ❀[2]**छत्वममीति वाच्यम्** । तच्छ्लोकेन ।

मोऽनुस्वार ८ । ३ । २३ ॥ [3]मान्तस्य पदस्याऽनुस्वार स्याद्धलि । हरिं वन्दे ।

नश्चाऽपदान्तस्य झलि ८ । ३ । २४ ॥ [4]नस्य मस्य चाऽपदान्तस्य झल्यनुस्वार स्यात् । यशासि । आक्रस्यते । झलि किम् ? मन्यसे ।

[5]**अनुस्वारस्य ययि परसवण ८ । ४ । ५८ ॥** स्पष्टम् । [अनुस्वारस्य ययि परे परसवण स्यात्] शान्त ।

वा पदान्तस्य ८ । ४ । ५९ ॥ [6]पदान्तस्याऽनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात् । त्वङ्करोषि । त्व करोषि ।

मो राजि सम क्वौ ८ । ३ । २५ ॥ [7]क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् । सम्राट् ।

हे मपरे वा ८ । ३ । २६ ॥ [8]मपरे हकारे परे मस्य मो वा स्यात् । किम् ह्मलयति । किं ह्मलयति ॥ ❀[9]**यवलपरे यवला वा** । किय्ँ ह्य । किं ह्य । किव्ँ ह्वलयति । कि ह्वलयति । किल्ँ ह्लादयति । कि ह्लादयति ।

तच्छिव — तद् + शिव ' इत्यवस्थाया 'स्तो श्चुना श्चु ' इति दकारस्य श्चुत्वेन जकारे, 'खरि चे ति चर्त्वे, 'शश्छोऽटि' इति शकारस्य छकारे तत्सिद्धि ।

१–पदान्त झय् से परे जो श' उसको 'छ' होता है अट् परे रहते । २–पदान्त झय् से परे श् को छ् हो, कि तु अम् प्रत्याहार पर मे हो तब (ऐसा कहना चाहिये) । (अर्थात् अम् परे श् को छ् होता है) ३–म हो अन्त मे जिसके ऐसे पद को अनुस्वार होता है, हल् परे रहते । हरिं वन्दे–मैं श्री हरिं को नमस्कार करता हूँ । ४–झल् परे रहते अपदान्त नकार, मकार को अनुस्वार होता है । यशासि–अनेक प्रकार की कीर्तियाँ । आक्रंस्यते—आक्रमण किया जायगा । मन्यसे–स्वीकार करते हो । ५–यय् प्रत्याहार पर म हो तो अनुस्वार को परसवण होता है । ६–पदान्त जो अनुस्वार उसको परसवण होता है विकल्प से यय् परे रहते । त्वं करोषि–तुम करते हो ? ७–क्विबन्त (क्विप् प्रत्यय हो अन्त में जिसके ऐसा) राज् धातु पर मे हो तो सम् के मकार को मकार ही होता है (किन्तु अनुस्वार नहीं) । सम्राट्—चक्रवर्ती नरेश । ८–म–परक हकार यदि पर मे हो तो म को म ही विकल्प से होता है (अर्थात् एक पक्ष में अनुस्वार और एक पक्ष मे मकार होता है) । किं ह्मलयति—क्या चलाया जाता है । ९–य व या ल हो पर मे जिसके ऐसा हकार हो पर में जिसके ऐसे यकार को विकल्प से

नपरे नः ८ । ३ । २७ ॥ [1]नपरे हकारे परे मस्य नो वा स्यात् । किन् ह्नुते । किं ह्नुते ।

आद्यन्तौ टकितौ १ । १ । ४६ ॥ [2]टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः । षट्तमन्त , षटसन्त ।

ङ्णोः कुक्टुक् शरि ८ । ३ । २८ ॥ [3]ङकारणकारयोः कुक्टुकावागमौ वा स्तः शरि ॥ [4]**चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् ।** प्राङ्ख्षष्ठः । प्राङ्क्षष्ठः । प्राङ्षष्ठः । सुगण्ठ्षष्ठः । सुगण्टषष्ठः । सुगण्षष्ठः ।

डः सि धुट् ८ । ३ । २९ ॥ [5]डात्परस्य सस्य धुड् वा स्यात् । षट्त्सन्तः , षट्सन्तः ।

नश्च ८ । ३ । ३० ॥ नान्तात्परस्य सस्य धुड् वा स्यात् । सन्त्सः , सन्सः ।

षट्त्सन्तः — षड् + सन्त ' इत्यत्र 'डः सि धुट्' इति धुडागमे 'षड् + ध + सन्त ' इति स्थिते पूर्वधकारस्य चर्त्वेन तकारे कृते, तस्मिन्परे डकारस्य पुनश्चर्त्वेन टकारे 'षट्सन्तः' इति सिद्धम् ।

प्राङ्ख्षष्ठः — प्राङ् + षष्ठ ' इत्यवस्थायां 'ङ्णोः कुक्टुक् शरि' इति कुगागमे, ङकावितौ (कित्वात् ङकारस्यान्त आगमः), 'चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्' इत्यनेन ककारस्य खत्वे प्राङ्ख्षष्ठः इति, खत्वाभावे प्राङ्क्षष्ठः, कुगभावे प्राङ्षष्ठः ।

सानुनासिक य, व, ल होता है । किय्ँह्यः—किं ह्यः—कल क्या (हुआ) ? किँह्वलयति—क्या नाता है ? किं ह्लादयति—क्या चाहता है ?

१—नकार हो परे में जिसके ऐसे हकार परे रहते मकार को नकार होता है विकल्प से । किन् ह्नुते—क्या छिपाता है ? २—टित् (टकार है इत् जिसमें) कित् (ककार है इत् जिसमें) ये टित और कित् जिसको कहे गये हों उसके क्रम से आद्यवयव तथा अन्तावयव होता है (अर्थात् टित् पहले और कित् अन्त में होता है)। ३—शर् (प्रत्याहार) परे में रहते ङकार तथा णकार को (क्रम से) कुक्, टुक् का आगम विकल्प से होता है । ४—शर् (प्रत्याहार) परे में हो तो चय् (च, ट, त, क, प) को द्वितीय अक्षर (छ, ठ, थ, ख, फ) होता है पौष्करसादि आचार्य के मत में । प्राङ्षष्ठः—छठा (व्यक्ति) प्रतिष्ठित है । सुगण्टषष्ठः—छठा (छात्र) उत्तम गणितज्ञ है । ५—डकार से परे जो सकार उसको धुट् का आगम होता है विकल्प से । षट्सन्तः—छह (व्यक्ति) सज्जन हैं । ६—नकार हो अन्त में जिसके ऐसे पद से परे जो सकार उसको धुट् का आगम होता है विकल्प से । सन्त्सः—वह सत्पुरुष है ।

शि तुक् ८ । ३ । ३१ ॥ [1]पदान्तस्य नस्य शे परे तुग् वा स्यात् । सञ्छम्भु । सञ्च्छम्भु । सञ्चशम्भु । सञ्शम्भु ।

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् ८ । ३ । ३२ ॥ [2]ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याऽचो नित्यं ङमुडागमः स्यात् । प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्णीशः । सन्नच्युतः ।

समः सुटि ८ । ३ । ५ ॥ [3]समो रुः स्यात् सुटि ।

अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ८ । ३ । २ ॥ [4]अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा स्यात् ।

अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः ८ । ३ । ४ ॥ [5]अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः स्यात् ।

खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८ । ३ । १५ ॥ [6]खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः स्यात् । ❀[7]**सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः** । सँस्स्कर्ता । संस्स्कर्ता ।

सञ्छम्भु — सन् + शम्भु इत्यत्र 'शि तुक्' इति नकारस्य वैकल्पिके तुगागमेऽनुबन्धलोपे तकारस्य श्चुत्वेन चकारे, पुनः नकारस्यापि श्चुत्वेन ञकारे कृते, 'शश्छोऽटि' इति वैकल्पिके छकारे, 'झरो झरि सवर्णे' इति चकारस्य वैकल्पिकलोपे सञ्छम्भु, लोपाभावे सञ्च्छम्भु, छत्वलोपयोरभावे सञ्चशम्भु, तुगागमाभावे तु सञ्शम्भु—इति चत्वारि रूपाणि भवन्ति । तथा चोक्तम्—

ञछौ ञचछा ञचशा ञशाविति रूपचतुष्टयम् ।
रूपाणामिह तुक्छत्वचलोपानां विकल्पनात् ॥ इति ॥

सँस्स्कर्ता, संस्स्कर्ता— सम् + स्कर्ता इत्यत्र 'समः सुटि' इति मकारस्य रुत्वे, 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' इति सकारोत्तराकारस्यानुनासिकत्वविकल्पे तदभावे

१—श हो परे मे जिसके अन्त मे पदान्त नकार को तुक् का आगम होता है विकल्प से । सञ्छम्भु—भगवान् शंकर श्रेष्ठ है । २—ह्रस्व से परे जो ङम् तदन्त जो पद उससे परे जो अच् उसको नित्य ही ङमुट् का आगम होता है (ङमुट पद से णुट् नुट् आदि भी गृहीत होते हैं) । प्रत्यङ्ङात्मा—जीवात्मा । सुगण्णीश—अच्छा गणितज्ञ स्वामी । सन्नच्युत—भगवान् अच्युत नित्य हैं । ३—सम् के मकार को रु होता है सुट परे रहते । ४—इस रु प्रकरण में रु से पूर्व जो अच् उसको अनुनासिक होता है विकल्प से । ५—(इस रु प्रकरण मे) अनुनासिकयुक्त प्रयोग को छोडकर रु से पूर्व जो अच् उससे परे अनुस्वार का आगम होता है । ६—खर (प्रत्याहार) परे रहते और अवसान मे विद्यमान जो पदान्त रेफ उसको विसर्ग हो जाता है । ७—सम् पुम् और कान् के विसर्ग को 'स' कहना चाहिये (होता है) । संस्कर्ता—संस्कार करने (अच्छा बनाने)-वाला ।

पुम खय्यम्परे ८।३।६॥ [1]अम्परे खयि पुमो र स्यात्। पुँस्कोकिल । पुस्कोकिल ।

नश्छव्यप्रशान् ८।३।७॥ [2]अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रु स्यात्, न तु प्रशान्शब्दस्य ।

विसर्जनीयस्य स ८।३।३४॥ [3]खरि विसजनीयस्य स स्यात्। चक्रिँस्त्रायस्व । चक्रिस्त्रायस्व । अप्रशान् किम् ? प्रशान् तनोति । पदान्तस्येति किम् ? हन्ति ।

नॄन् पे ८।३।१०॥ [4]नॄनित्यस्य रु स्याद्वा पकारे परे।

कुप्वो ≍क≍ पौ च ८।३।३७॥ [5]कवर्गे पवर्गे च परे विसगस्य ≍क≍पौ स्त । चाद्विसग । नॄँ≍पाहि । नॄँ पाहि । नॄ≍पाहि । नॄ पाहि । नॄन् पाहि ।

तस्य परमाम्रेडितम् ८।१।२॥ [6]द्विरुक्तस्य पर रूपमाम्रेडित स्यात् ।

'अनुनासिकात्परोऽनुस्वार' इति अनुस्वारागमे 'सँरु+स्कर्ता' 'संरु+स्कर्ता' इति स्थिते, अनुबन्धलोपे, 'खरवसानयोर्विसर्जनीय' इत्यनेनोभयत्रापि विसर्गे 'सपुकाना सो वक्तव्य' इति विसर्गस्य सकारे सिद्ध 'सँस्स्कर्ता' संस्स्कर्ता इति रूपद्वयम् ।

'नॄन् पाहि' इति विग्रहे पञ्च रूपाणि भवन्ति। तथाहि— नॄन् + पाहि' इत्यत्र 'नॄन् पे' इति नकारस्य वैकल्पिके रुत्वे, अनुनासिकेऽनुस्वारे च कृते 'नॄँ रु+पाहि' 'नॄं रु + पाहि' इति स्थिते, उभयत्रापि अनुबन्धलोपे नॄँ र् + पाहि, नॄं र+ पाहि इति दशाया रेफस्य विसर्गे, 'कुप्वो ≍क≍पौ च' इति विसर्गस्योपध्मानीयत्वे, उभयत्रापि चकारात् विसर्गस्य विसर्गे, अनुनासिकपक्षे 'नॄँ≍पाहि', नॄँ

१—अम् परक खय् परे रहते पुम् के मकार को रु होता है। पुँस्कोकिल —कोयल पक्षी। २—अम्परक छव् परे रहते नान्त पदको रु होता है, प्रशान् शब्द को छोड़कर (अर्थात् प्रशान् शब्द के नकार को नहीं होता है)। ३—खर् (प्रत्याहार) पर में हो तो विसर्ग को स आदेश होता है। चक्रिस्त्रायस्व—हे सुदर्शन चक्रधारी ! रक्षा करो। प्रशान् तनोति—शान्ति फैलाता है। हन्ति मारता है। ४—पकार पर में रहे तो नॄन् के न् को रु होता है विकल्प से। ५—कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ) या पवर्ग (प, फ, ब, भ, म) पर में रहे तो क्रम से कवर्ग को जिह्वामूलीय और पवर्ग को उपध्मानीय होता है। सूत्र में 'च' शब्द है अत इनके अभाव में विसर्ग भी होता है। ६—जो शब्द दो बार कहा गया हो उसके पर (द्वितीय) रूप (शब्द) की आम्रेडित संज्ञा होती है।

कानाम्रेडिते च ८ । ३ । १२ ॥ [1]कान्नकारस्य रु स्यादाम्रेडिते परे । कांस्कान् । कास्कान् ।

छे च ६ । १ । ७३ ॥ [2]ह्रस्वस्य छे परे तुगागम स्यात् । शिवच्छाया ।

पदान्ताद्वा ६ । १ । ७६ ॥ [3]दीर्घात्पदान्ताच्छे परे तुग् वा स्यात् । लक्ष्मीच्छाया । लक्ष्मीछाया ।

* इति हल्सन्धि । *



अथ *विसर्गसन्धिप्रकरणम् ।

विसर्जनीयस्य स ८ । ३ । ३४॥ [4]खरि विसर्जनीयस्य स स्यात् । विष्णुस्त्राता ।

वा शरि ८ । ३ । ३६ ॥ [5]शरि विसर्गस्य विसर्गो वा स्यात् । हरिः शेते । हरिश्शेते ।

ससजुषो रुः ८ । २ । ६६ ॥ [6]पदान्तस्य सस्य, सजुष्शब्दस्य च रुः स्यात् ।

पाहि । अनुस्वारपक्षे नॄं पाहि, नॄँ पाहि । रुत्वाभावे तु 'नॄन् पाहि इति पञ्च रूपाणि सिद्धयन्ति ।

❀ इति हल्सन्धि ❀



१—कान् के नकार को रु होता है आम्रेडित (आम्रेडित संज्ञक कान् शब्द) परे रहते । कांस्कान्—किन किन को (प्रसाद दूँ) । २—छकार पर में हो तो ह्रस्व (पद) को तुक् का आगम होता है । शिवच्छाया—श्री शिवजी की छाया । ३—छकार पर मे हो तो पदान्त दीर्घ को तुक् का आगम होता है विकल्प से । लक्ष्मीच्छाया—लक्ष्मी की छाया ।

[हल्सन्धि समाप्त]



४—खर् (प्रत्याहार) पर में हो तो विसर्ग को स् होता है । विष्णुस्त्राता—भगवान् विष्णु रक्षक हैं । ५—शर् (प्रत्याहार) पर मे हो तो विसर्ग को विसर्ग होता है विकल्प से (पक्ष में स् होता है) हरिश्शेते, हरिः शेते—विष्णु भगवान् सो रहे हैं । ६—पदान्त सकार और सजुष् शब्द के षकार को रु होता है ।

* अब विसर्गसन्धि का प्रारम्भ हो रहा है । इस प्रकरण मे विसर्गों की सन्धि (मिलन) बतायी गयी है । जैसे—विष्णु+त्राता यहाँ विष्णु के बाद जो (:) दो बिन्दु हैं वे ही विसर्ग कहे जाते हैं । इत्यादि ।

अतो रोरप्लुतादप्लुते ६ । १ । ११३ ॥ [1]अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति । शिवोऽर्च्यः ।

हशि च ६ । १ । ११४ ॥ [2]अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्याद्धशि । शिवो वन्द्यः ।

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ८ । ३ । १७ ॥ [3]एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशः स्यादशि । देवा इह । देवायिह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः । तेषां रोर्यत्वे कृते—

हलि सर्वेषाम् ८ । ३ । २२ ॥ [4]भो भगो अघो अपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि । भो देवाः । भगो नमस्ते । अघो याहि ।

रोऽसुपि ८ । २ । ६९ ॥ [5]अह्नो रेफादेशः स्यान्न तु सुपि । अहरहः । अहर्गणः ।

रोरि ८ । ३ । १४ ॥ [6]रेफस्य रेफे परे लोपः स्यात् ।

ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६ । ३ । १११ ॥ [7]ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः स्यात् । पुना रमते । हरी रम्यः । शम्भू राजते । अणः

शिवोऽर्च्य — शिवस् + अर्च्यः इत्यत्र ससजुषो रुः इति सस्य रुत्वे अतो रोरप्लुतादप्लुते' इति उत्वे 'आद् गुणः' इति गुणे 'एङः पदान्तादति' इति अकारस्य पूर्वरूपे शिवोऽर्च्यः इति सिद्धम् ।

'रोऽसुपि' सूत्रे 'अहरादीनां वा रफः' इति विसर्गापवादवार्तिकम् पठितम् तेन अहर्पतिः, गीर्पतिः, धूर्पतिः इत्यादौ न रेफस्य विसर्गः । पक्षे तु विसर्गोपध्मानीयौ भवतः ।

१—अप्लुत अत् (ह्रस्व अकार) से परे जो 'रु' उसको 'उ' होता है अप्लुत अत् परे रहते । शिवोऽर्च्य—श्री शिवजी पूज्य हैं । २—हश् (प्रत्याहार) परे में हो तो अप्लुत अकार से परे जो 'रु' उसको 'उ' होता है । शिवो वन्द्य—श्री शिवजी स्तुति योग्य हैं । ३—अश् (प्रत्याहार) पर में हो तो भो, भगो, अघो और अ पूर्वक रु (र्) के स्थान में 'य्' आदेश होता है । देवा इह—देवता लोग यहाँ हैं । ४—हल् (प्रत्याहार) पर में रहे तो भो, भगो, अघो अपूर्वक 'य' का लोप होता है (सब के मत से) । भो देवा—हे देवताओ ! भगो नमस्ते—परमात्मन् ! नमस्कार है । अघो याहि—हे पापस्वरूप ! जाओ । ५—अहन् शब्द के नकार को रेफादेश होता है, सुप् परे (पर में) न हो तब । अहरहः—प्रतिदिन । अहर्गण—वर्ष, दिनसमूह । ६—रेफ पर में हो तो रेफ का लोप होता है । ७—ढ और रेफ के लोप में निमित्त (कारण) भूत जो ढ और रेफ वे पर में रहें तो पूर्व

किम् ? तढ । वढ । मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रो रीति लोपे च प्राप्ते ।

विप्रतिषेधे परं कार्यम् १ । ४ । २ ॥ [1]तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् । इति लोपे प्राप्ते । पूर्वत्राऽसिद्धमि'ति 'रो री'त्यस्याऽसिद्धत्वादुत्वमेव । मनोरथ ।

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६ । १ । १३२ ॥ [2]अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपः स्याद्धलि न तु नञ्समासे । एष विष्णु । स शम्भु । अको किम् ? एषको रुद्र । अनञ्समासे किम् ? असः शिव । हलि किम् ? एषोऽत्र ।

मनोरथ — मनस + रथ इत्यवस्थायां ससजुषो रु इति सस्य रुत्वे कृते, 'हशि च' इत्यनेन रोरुत्वं प्राप्नोति, 'रो रि' इति रेफस्य लोपः प्राप्नोति । कतरेण भाव्यमिति शङ्कायां विप्रतिषेधे परं कार्यम् इति सूत्रबलेन परत्वात् 'रो रि' इति लोप एव प्राप्नोति किन्तु पूर्वत्रासिद्धम्' इति दृष्ट्या लोपस्यासित्वेन॰उत्वे गुणे च कृते मनोरथ ' इति सिद्ध्यति ।

(अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाशयोरेकत्रैकदा प्राप्तिस्तुल्यबलविरोध) अत्रोक्तसूत्रया —यथा रो रि इत्यस्य 'पुना रमते' इत्यत्र, एवं 'हशि च' इत्यस्य 'शिवो वन्द्य ' इत्यत्रावकाशस्तथा मनोरथ ' इत्यत्रैकदा प्रयोग इति तुल्यबलविरोधो ज्ञेय ।

अण को दीर्घ होता है। पुना रमते—पुन खेल रहा है। हरी रम्य —विष्णु भगवान् सुन्दर हैं। शम्भू राजते—श्रीशिव जी दीप्तिमान् है । तृढ , वृढ —समर्थ वा उद्यत ।

१—तुल्यबल के विरोध होने पर परकार्य होता है (अर्थात् जैसे दो सूत्र हैं, दोनों अन्यत्र दो स्थलों मे चरितार्थ हैं और संयोग से किसी एक स्थल मे दोनों की प्राप्ति है। इस दशा में जो पर कार्य (शास्त्र) होता है वही बलवान् होता है। आवश्यकतानुसार इस 'पर' शब्द का अर्थ "परम् इष्ट" भी किया जाता है, जिससे विरुद्धस्थलों में भी विरोध नहीं होता) । मनोरथ -अभिलाष, इच्छा । २—हल् पर मे हो तो ककार रहित जो एतद् और तद् शब्द, तत्सम्बन्धी जो सु (स्) उसका लोप होता है नञ् समास को छोड़कर (अर्थात् नञ् समास में नहीं) । 'एषको रुद्र ' मे सु लोप निवारणार्थ 'अको" ग्रहण किया । अनञ् समासे नहीं कहते तो 'न स =अस ' मे सुलोप प्रवृत्ति हो जाती । हलि परे रहते ऐसा न रहता तो अच् परक एषोऽत्र मे भी सुलोप होने लगता—इत्यादि । एष विष्णु -ये विष्णु भगवान् हैं। स शम्भु -वे शिवजी हैं। एषको रुद्र —ये रुद्र (भगवान् शंकर या भयङ्कर व्यक्ति) हैं। असः शिव -वह शिव नहीं है। एषोऽत्र—यह वहाँ है।

सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ६।१।१३४॥ [1]स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्य्येत। सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः।

इति विसर्गसन्धिः।

[इति *पञ्चसन्धिप्रकरणम्]



सेमामिति—'सस् + इमामविड्ढि सस् + एष दाशरथी रामः' इति प्रयोगद्वयेऽपि यदि सोर्लोपो न स्यात्तर्हि सस्य रुत्वे यत्वे च कृते, यकारस्य लोपे, तस्यासिद्धत्वाद्–गुणाद्यभावे पादस्य पूर्तिर्न स्यादिति।

दाशरथी रामः' इत्यत्र 'थी' इति कथं दीर्घ इति नाशङ्कनीयः—दाशरथिस् रामः इति दशायां सकारस्य रुत्वेऽनुबन्धलोपे, 'रो रि' इति रेफस्य लोपे दीर्घे कृते तत्सिद्धिः।

❀ इति विसर्गसन्धिः ❀



१—यदि लोप के होने पर ही पाद (किसी श्लोक के एक चरण) की पूर्ति हो तो तद् शब्द के सु (स्) का लोप होता है। सेमामविड्ढि प्रभृतिम्–वह आप हमें (देने मे समर्थ हैं अतः) इस प्रबल धारणा को दें। सैष दाशरथी रामः—वे ये रामचन्द्र दशरथ के पुत्र हैं।

[विसर्गसन्धिप्रकरण समाप्त।]



---

* पञ्चसन्धि की समाप्ति होते ही यह प्रश्न हो सकता है कि प्रसिद्धि तो 'पञ्चसन्धि' के नाम से है किन्तु अच्, हल् और विसर्ग की ही सन्धियाँ प्रसिद्ध हैं तो 'पञ्चसन्धि' कैसे ?

उ०—महाशय! पञ्चसन्धिप्रकरण सार्थक है। एक 'स्वादिसन्धि' होती है जैसे शिवार्च्यः है। आप यह कहें कि सु के उ का लोप हो जाता है 'स्' मात्र बच जाता है, अतः यह भी 'हल्सन्धि' है ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि 'स्वौजस्'–इत्यादि सूत्र से 'सु' ऐसी प्रवृत्ति होती है अतः 'स्वादिसन्धि' भी एक अलग सन्धि है। दूसरी बात यह है कि 'गोबलीवर्दन्याय' से भी यह सिद्ध होता है। इसी प्रकार कुछ लोग प्रकृतिभाव को भी सन्धि के अन्तर्गत मानते हैं किन्तु इसके अपेक्षा पाँचवाँ 'अनुस्वारसन्धि' परसवर्ण रूप है ऐसा मानना उत्तम है। विस्तार के भय से अधिक नहीं लिखता हूँ।

अथ षड्लिङ्गेषु अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम् ।

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १ । २ । ४५ ॥ [1]धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वाऽर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात् ।

कृत्तद्धितसमासाश्च १ । २ । ४६ ॥ [2]कृत्तद्धितान्ताः समासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञाः स्युः ।

स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् ४ । १ । २ ॥ [3]ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः *। सु औ जस् इति **प्रथमा** । अम् औट् शस् इति **द्वितीया** । टा भ्याम् भिस् इति **तृतीया** । ङे भ्याम् भ्यस् इति **चतुर्थी** । ङसि भ्याम् भ्यस् इति **पञ्चमी** । ङस् ओस् आम् इति **षष्ठी** । ङि ओस् सुप् इति **सप्तमी** ।

ङ्याप्प्रातिपदिकात् ४ । १ । १ ॥ प्रत्ययः ३ । १ । १ ॥ परश्च ३ । १ । २ ॥—[4]इत्यधिकृत्य । ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः ।

अर्थवदिति—धनम् वनम् इत्यादौ प्रतिवर्णस्य प्रातिपदिकसंज्ञा मा भूदिति अर्थवद्ग्रहणम् । अहन्नित्यादौ प्रातिपदिकत्वेन नलोपाद्यापत्तिस्तद्वारणाय अधातुरिति । अप्रत्ययः—इत्यत्र प्रत्ययपदमावर्त्यते, तेन प्रत्ययः प्रत्ययान्तश्चेत्यर्थौ लभ्यते (प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्तविधिः) । प्रत्ययस्य पर्युदासात् 'हरिषु' इत्यादौ सोन प्रातिपदिकत्वम्, तदन्तपर्युदासात् समुदायस्य च न संज्ञा ।

१—धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अर्थवान् (अर्थयुक्त) जो शब्दस्वरूप उसकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है । २—कृदन्त ('कृत्' प्रत्ययान्त), तद्धितान्त और समास प्रातिपादिक-संज्ञक होते हैं । ३—ङ्यन्त (अर्थात् ङीप् या ङीष् आदि प्रत्यय हों अन्त में जिस शब्द के) और प्रातिपादिक से परे (बाद में) स्वादि (सु औ जस् आदि) प्रत्यय होते हैं । ४—पाँचवें अध्याय की समाप्ति तक (ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च) इन तीनों सूत्रों का अधिकार जाता है । ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपादिक से परे सु आदि प्रत्यय होते हैं ।

---

* **मीमांसायोग्य**—विभक्तियों का जो प्रारम्भिक क्रम है उससे कहीं यह निम्ननिर्दिष्ट क्रम अच्छा होता, फिर भी विद्वान् लोग विचार कर लेंगे । मैं केवल प्रदर्शन मात्र करा रहा हूँ । जैसे—पहले 'प्रत्ययः, परश्च' 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्'—ये अधिकारसूत्र रहते । तदनन्तर स्वौजसमौट्—सूत्र रहता तत्पश्चात् ङ्यन्तादाबन्तात् वृत्ति होती, उसके बाद 'सु औ जस्' विभक्तियाँ होती तो ज्ञान में सुगमता होती ।

सुपः १।४।१०३॥ [1]सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचन-द्विवचन-बहुवचन-सञ्ज्ञानि स्युः ।

द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२॥ [2]द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः ।

विरामोऽवसानम् १।४।११०॥ [3]वर्णानामभावोऽवसानसञ्ज्ञः स्यात् । रुत्वविसर्गौ रामः ।

सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ १।२।।६४॥ [4]एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते ।

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२॥ [5]अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात् ।

नादिचि ६।१।१०४॥ [6]आदिचि [परे] न पूर्वसवर्णदीर्घः । **वृद्धिरेचि** । रामौ ।

बहुषु बहुवचनम् १।४।२१॥ [7]बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात् ।

चुटू १।३।७॥ [8]प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः ।

विभक्तिश्च १।४।१०४॥ [9]सुप्तिङौ विभक्तिसञ्ज्ञौ स्तः ।

• अवसानेति—यत्र यदव्यवहितोत्तरकाले वर्णान्तरं नोच्चार्यते तत्र पूर्वोच्चारितान्त्यवर्णोऽवसानसञ्ज्ञको भवतीति बोध्यम् ।

१—सुप (प्रथमा के सु से लेकर सप्तमीके सुप् तक) के जो तीन तीन वचन हैं वे (प्रथमा आदि विभक्तियों में) क्रम से एकवचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञक होते हैं। २—द्वित्व की विवक्षा मे द्विवचन (औ, औट्, भ्याम्, भ्याम्, भ्याम्, ओस्, ओस्) और एकत्व की विवक्षा मे एकवचन (सु, अम्, टा ङे, ङसि, ङस्, ङि) होते हैं। ३—वर्णों के अभाव को अवसान संज्ञा होती है (अर्थात् अवसान उसे कहते हैं जिसके बाद कोई वर्ण न हो)। राम —श्रीरामचन्द्रजी। ४—एक विभक्ति में जितने समान (एक प्रकार के) रूप देखे जायँ, उनमें से एक रूप शेष रह जाता है और अन्य सभी रूपों का लोप हो जाता है। ५—अक् से प्रथमा और द्वितीया सम्बन्धी अच् पर में रहे तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होता है। ६—अवर्ण से इच् पर में हो तो पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं होता। ७—बहुत्व की विवक्षा (कहने की इच्छा) हो तो बहुवचन (जस्, शस्, भिस्, भ्यस्, भ्यस्, आम्, सुप) होता है। ८—प्रत्यय के आदि में जो चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) और टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण) उनकी इत्संज्ञा होती है (बालकों को यह ध्यान रखना चाहिये कि जिस वर्ण की इत्संज्ञा होती है उसका 'तस्य लोपः' से लोप हो जाता है)। ९—सुप् और तिङ् विभक्ति-संज्ञक होते हैं।

न विभक्तौ तुस्माः १ । ३ । ४॥ [1]विभक्तिस्थास्तवर्गसकारमकारा इतो न स्युः । इति नेत्त्वम् । रामाः ।

एकवचनं सम्बुद्धिः २ । ३ । ४९ ॥ [2]सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात् ।

यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १ । ४ । १३ ॥ [3]यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन् परेऽङ्गसञ्ज्ञं स्यात् ।

एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः ६ । १ । ६९ ॥ [4]एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाऽङ्गाद्धल्लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत् । हे राम । हे रामौ । हे रामाः ।

अमि पूर्वः ६ । १ । १०७ ॥ [5]अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । रामम् । रामौ ।

रामाः—(रमन्ते क्रीडन्ति योगिनो यस्मिन् वा रमते यः स इति रामः) रामशब्दस्याव्युत्पत्तिपक्षे 'अर्थवत'–सूत्रेण तथा व्युत्पत्तिपक्षे 'कृत्तद्धित–' इति सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञायां बहुत्वविवक्षायां 'रामश्च रामश्च रामश्च' इति विग्रहः क्रियते । तत्र 'राम राम राम' इति शब्दत्रये 'सरूपाणामेक०–' इति सूत्रेणैकस्य 'राम' शब्दस्य शेषः, (बहुत्वविवक्षया) 'स्वौजसमौट्–' इति 'जस्'-विभक्तौ, 'चुटू' इति जस्येत्वे, तस्य लोपः इति लोपे, सकारस्य 'हलन्त्यम्' इत्यनेन प्राप्तायामित्संज्ञायां विभक्तिश्चेत्यनेन विभक्तिसंज्ञां विधाय 'न विभक्तौ–' इतीत्संज्ञाया निषेधे, 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' इति पूर्वसवर्णदीर्घे, सकारस्य रुत्वे, विसर्गे च कृते सिद्धम् रूपम् 'रामाः' इति ।

हे रामेति—कारकपदैः सह सम्बोधनं प्रयुज्यते, प्रयोगश्च तेषां पूर्वं भवति, यथा–'हे राम' इति । सम्बोधने 'हे, अयि, है, रे, धिक्'–इत्यादयश्शब्दाः प्रयुज्यन्ते । तत्र 'रे धिक्' शब्दौ निन्दया क्रोधेन वा प्रयुज्येते । क्वचिदन्तेऽपि 'हे' शब्दादीनां प्रयोगः । क्वचित्—'हे' शब्दं विनापि प्रयोगः । यथा 'हे राम ! आगच्छ । राम ! आगच्छ—इत्युभयमपि शुद्धम् ।

१–विभक्ति में रहने वाले तवर्ग (त, थ, द, ध, न) सकार और मकार की इत्संज्ञा नहीं होती है । २—सम्बोधन में (सम्बोधन की विवक्षा में) प्रथमा का एकवचन (सु) सम्बुद्धि-संज्ञक होता है । ३–जो प्रत्यय जिस (शब्द) से किया जाता है, तदादि (उसके आदि का) जो शब्दस्वरूप उसकी अङ्ग-संज्ञा होती है प्रत्यय परे रहते । ४–एङन्त और ह्रस्वान्त अङ्ग से परे यदि सम्बुद्धि का अवयव हल् हो तो उसका लोप होता है । ५—अक् से अम् सम्बन्धी अच् पर में हो तो पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है ।

लशक्वतद्धिते १ । ३ । ८ ॥ [1]तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इत स्युः ।

तस्माच्छसो नः पुंसि ६ । १ । १०३ ॥ [2]पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात्पुंसि ।

अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८ । ४ । २ ॥ [3]अट् कवर्गः पवर्गः आङ् नुम्–एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात्समानपदे । इति प्राप्ते ।

पदान्तस्य ८ । ४ । ३७ ॥ [4]पदान्तस्य नस्य णत्वं न स्यात् । रामान् ।

टाङसिङसामिनात्स्याः ७ । १ । १२ ॥ [5]अदन्ताट्टादीनामिनादयः स्युः । णत्वम् । रामेण ।

सुपि च ७ । ३ । १०२ ॥ [6]यञादौ सुप्यतोऽङ्गस्य दीर्घः स्यात् । रामाभ्याम् ।

अतो भिस ऐस् ७ । १ । ९ ॥ [[7]अकारान्तादङ्गाद्भिस ऐस् स्यात्] **अनेकाल्शित्सर्वस्य** । रामैः ।

ङेर्यः ७ । १ । १३ ॥ [8]अतोऽङ्गात्परस्य ङेर्यादेशः स्यात् ।

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ १ । १ । ५६ ॥ [9]आदेशः स्थानिवत्स्यान्न तु

रामेण—'राम' शब्दस्य प्रातिपदिकत्वेन टा विभक्तावनुबन्धलोपे, 'टाङसिङसामिनात्स्याः' इति-इनादेशे, गुणे, 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' इति नस्य णत्वे कृते सिद्धिः ।

१—तद्धित को छोड़कर जो प्रत्यय के आदि में लकार, शकार और कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ) इनकी इत्संज्ञा होती है । २–पूर्वसवर्णदीर्घ से परे जो शस् का सकार उसको नकार आदेश होता है, पुल्लिङ्ग में । ३–समान पद (किसी एक पद) में अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् इनमें से किसी एक का अथवा यथा-सम्भव सम्मिलित बहुतों का व्यवधान होने पर भी रेफ और षकार से परे नकार को णकार होता है । ४–पद के अन्त में जो नकार (न्) उसको णकार (ण्) नहीं होता है । ५–अदन्त अङ्ग से परे जो टा, ङसि, ङस् उनके स्थान में क्रम से इन, आत्, स्य आदेश होते हैं । ६–यञादि सुप् पर में हो तो अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है । ७–अदन्त अङ्ग से परे 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश होता है । ८–अदन्त अङ्ग से परे जो 'ङे' उसको 'य' आदेश होता है । ९–आदेश स्थानिवत् (स्थानिनिष्ठधर्मवान्) होता

स्थान्यलाश्रयविधौ । इति स्थानिवत्त्वात् सुपि चेति दीघ । रामाय । रामाभ्याम् ।

बहुवचने झल्येत् ७ । ३ । १०३ ॥ [1]झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकार स्यात् । रामेभ्य । सुपि किम् ? पचध्वम् ।

वाऽवसाने ८ । ४ । ५६ ॥ [2]अवसाने झला चरो वा स्यु । रामात्, रामाद् । गमाभ्याम् । रामेभ्य । रामस्य ।

ओसि च ७ । ३ । १०४ ॥ [3]ओसि परेऽतोऽङ्गस्यैकार स्यात् । रामयो ।

ह्रस्वनद्यापो नुट् ७ । १ । ५४ ॥ [4]ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो नुडागम स्यात् ।

नामि ६ । ४ । ३ ॥ [5]नामि परेऽजन्ताङ्गस्य दीघ स्यात् । रामाणाम् । रामे । रामयो । सुपि एत्वे कृते ।

आदेशप्रत्यययो ८ । ३ । ५९ ॥ [6]इण्कवर्गाभ्या परस्याऽपदान्तस्याऽऽदेश प्रत्ययावयवश्च य सकारस्तस्य मूर्धन्यादेश स्यात् । ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव ष । रामेषु । एव कृष्णादयोऽप्यदन्ता ।

रामाय—'राम' शब्दस्य प्रातिपदिकत्वेन ङे' विभक्तौ ङेर्य' इति ङे' इत्यस्य यादेशे, 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' इति स्थानिवत्वेन यकारे, सुप्त्वमादाय 'सुपि च' इति दीर्घे 'रामाय' इति सिद्धम् ।

ईषदिति—तत्र ऋटुरषाणा मूधस्थानिकत्वात्सर्वेषा प्राप्तौ उच्यते ईषदिति । यतो हि ईषद्विवृतमूष्मणाम् ।

	एकव०	द्विव०	बहुव०		एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	राम	रामौ	रामा	तृ०	रामेण	रामाभ्या	रामै
द्वि०	रामम्	रामौ	रामान्	च०	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्य

है, किन्तु स्थानिसम्बन्धी जो 'अल्' उसको मानकर कोई विधि करनी हो तो नहीं।

१–झलादि बहुवचन पर में रहे तो अदन्त अङ्ग के स्थान में एकार आदेश होता है। (सुपि पद नहीं रखते तो 'पचध्वम्' इस तिङन्त प्रयोग मे भी सूत्र प्रवृत्त हो जाता, क्योंकि पचध्वम् में भी झलादिबहुवचन है)। २–अवसान में जो झल् वे चर होते हैं, विकल्प से। ३—ओस विभक्ति पर में रहे तो अदन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है। ४—ह्रस्वान्त, नद्यन्त और आबन्त अङ्ग से परे जो 'आम्' उसको नुट् का आगम होता है। ५—'नाम्' पर में हो तो अदन्त अङ्ग को दीघ होता है। ६—इण्, और कवर्ग से परे जो अपदान्त

सर्वादीनि सवनामानि १ । १ । २७ ॥ [1]सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि सवनामसज्ञानि स्यु । सव, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम । [2]**पूवपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराऽधराणि व्यवस्थायामसञ्ज्ञायाम । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ।** [4]**अन्तर बहिर्योगोपसव्यानयो** । त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ।

जस शी ७ । १ । १७ ॥ [5]अदन्तात्सवनाम्नो जस शीस्यात् । अनेकाल्त्वात्सर्वादेश । मर्वे ।

सवनाम्न स्मै ७ । १ । १४ ॥ [6]अत सवनाम्नो ङे इत्यस्य स्मै स्यात् । सवस्मै ।

ङसिङयो स्मात्स्मिनौ ७ । १ । १५ ॥ [7]अत सवनाम्न एतयोरेतौ स्त । सवस्मात् ।

प०	रामात द्	रामाभ्या	रामेभ्य	स०	रामे	रामयो	रामेषु
ष०	रामस्य	रामयो	रामाणाम्	स०	हे राम	हे रामौ	हे रामा

(एव गोविन्द, मुकुन्द कृष्ण बालकादयोऽपि अदन्तशब्दा बोध्या)

सर्वे— सर्वादीनि सवनामानि' इति विहितसवनाम सज्ञक सव शब्दस्य प्रातिपदिकत्वेन जसि, 'जस शी' इति सूत्रेण अनेकाल्त्वात जस स्थाने 'शी' इत्यादेशे, शकारस्य 'लशक्वतद्धिते' इति इत्सज्ञाया, 'तस्य लोप ' इति लोपे 'आद् गुण ' इति गुणे 'सर्वे' इति सिद्धम् ।

आदेशस्वरूप सकार और प्रत्यय का अवयव जो सकार उसको मूर्धन्य (षकार) आदेश होता है । कृष्ण –भगवान् श्रीकृष्णजी ।

१–'सर्व शब्द है आदि मे जिनके वा सर्वे, विश्व आदि शब्द, सवनाम संज्ञक होते हैं । सर्व—सभी । विश्व–ससार । उभ उभय–दो । इतर दो में एक । डतम अनेक में या तीन में एक । अन्य, अन्यतर—दूसरा । इतर–भिन्न । नेम–आधा । सम–सम्पूर्ण । २—व्यवस्था और असंज्ञा अर्थ में पूर्व पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर अधर शब्दों की सर्वनाम संज्ञा होती है । ३—ज्ञाति (जाति) और धन से भिन्न (आत्मीय आदि) अर्थ में स्व' शब्द सर्वनामसंज्ञक होता है । ४—बहिर्योग और उपसंव्यान (पहनने के) अर्थ में अन्तरशब्द सर्वनाम-संज्ञक होता है । त्यद्, तद्–वह । यद्–जो । एतद्, इदम्–यह । एक–एक । द्वि–दो । युष्मद्—तू । अस्मद्–मैं । भवतु–आप । किम्–कौन । ५–अदन्त सर्वनाम शब्द से परे जस् के स्थान में शी आदेश होता है । ६—अदन्त सर्वनाम से परे जो ङे उसके स्थान में स्मै आदेश होता है । ७—अदन्त सर्वनाम से परे जो ङसि और ङि उनके स्थान में क्रम से (ङसि को) स्मात् और (ङि को) स्मिन् आदेश होते हैं ।

आमि सर्वनाम्न सुट ७।१।५२॥ [1]अवर्णान्तात्परस्य सवनाम्नो विहितस्याऽऽम सुडागम स्यात् । एत्वषत्वे । सर्वेषाम् । सवस्मिन् । शेष रामवत् । एव विश्वादयोऽप्यदन्ता । [2]**उभशब्दो नित्य द्विवचनान्त ।** उभौ, उभौ । उभाभ्याम्, उभाभ्याम्, उभाभ्याम् । उभयो , उभयो । तस्येह पाठोऽकजथ । उभशब्दस्य द्विवचन नास्ति । उभय , उभये । उभयम्, उभयान् । उभयेन, उभयै । उभयस्मै, उभयेभ्य । उभयस्मात्, उभयेभ्य । उभयस्य, उभयेषाम् । उभये, उभयेषु । [3]डतरडतमौ प्रत्ययौ । [4]प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ता ग्राह्या । [5]नेम इत्यर्धे । [6]सम सवपर्याय , तुल्य-पर्यायस्तु न, यथासडख्यमनुदेश समानामिति ज्ञापकात् ।

सर्वेषाम—सवशब्दस्य प्रातिपदिकत्वेनामि, आमि सवनाम्न सुट्' इति सुडागमे, अनुबन्धलोपे 'सव स आम्' इति स्थिते 'बहुवचने झल्येत' इत्येत्वे 'आदेश-प्रत्यययो ' इति षत्वे 'सर्वेषाम्' इति सिद्धम् ।

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	सव	सर्वौ	सर्वे
द्वि०	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृ०	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वै
च०	सवस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य
प०	सवस्मात द्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य
ष०	सवस्य	सवयो	सर्वेषाम्
स०	सवस्मिन्	सवयो	सर्वेषु
स०	हे सव !	हे सर्वौ !	हे सर्वे !

(एव विश्व, कतर अन्य, अ यतर इतर, त्वत् त्व, सम, सिमादयोऽपि बोध्या) ।-

ननु सवनामसज्ञाकायमेकवचनबहुवचनयोदृष्टम्, उभशब्दस्तु केवल द्विवचन इति इह तस्य पाठो व्यथ इत्यत आह-**तस्येह पाठोऽकजथ** इति ।

उभयशब्दस्य द्विवचन नास्ति—अय भाव 'उभयो मणि , उभये देवमनुष्या ' इत्येवमेव भाष्यकृता स्वीकृतस्तेनकवचनबहुवचनयोरेव तत्प्रयोग । द्विवचने तु तयप्रत्ययान्तस्य प्रयोग । यथा—उभय , उभयतयौ, उभये इत्यादि बोध्यम् ।

'तदन्ता ' इति—डतर-डतम प्रत्ययान्ता । कतर, कतम, यतर, यतम, ततर, ततम, एकतर, एकतम (आदि) शब्दा सवनामसज्ञका इति भाव ।

'सम ' इति । समशब्द सवपर्याय तुल्यपर्यायश्च, किन्त्वत्र (सर्वादिगणे)

१—अवर्णान्त अङ्ग से परे सर्वनाम शब्द से किया गया जो आम् उसको सुट् का आगम होता है । २—उभ शब्द सदा द्विवचनान्त होता है । ३—डतर और डतम प्रत्यय (होते) हैं । ४—प्रत्यय के ग्रहण में तदन्त का ग्रहण होता है (अर्थात् तत्प्रत्ययान्त शब्द लिया जाता है) । ५—नेम शब्द का अर्थ आधा है । ६—सर्वार्थवाची सम शब्द की सर्वनामसंज्ञा

पूर्वपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराऽधराणि व्यवस्थायामसञ्ज्ञायाम् । १ । १ । ३४ ॥ [1]एतेषां व्यवस्थायामसञ्ज्ञायां सर्वनामसञ्ज्ञा गणसूत्रात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात् । पूर्वे, पूर्वाः । असञ्ज्ञायां किम् ? उत्तराः कुरवः । [2]**स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था** । व्यवस्थायां किम् ? दक्षिणा गाथकाः । कुशला इत्यर्थः ।

स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । १ । १ । ३५ । [3]ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य या प्राप्ता सञ्ज्ञा सा जसि वा स्यात् । स्वे, स्वाः । आत्मीया आत्मान इति वा । ज्ञातिधनवाचिनस्तु—स्वाः । ज्ञातयोऽर्था वा ।

अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । १ । १ । ३६ । [4]बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य या प्राप्ता सञ्ज्ञा सा जसि वा स्यात् । अन्तरे अन्तरा वा गृहाः । बाह्या इत्यर्थः । अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः । परिधानीया इत्यर्थः ।

सर्वपर्यायस्यैव ग्रहणमन्यथा यथासंख्यमनुदेशः समानामिति सूत्रे समानामित्यस्य स्थाने समेषामिति स्यात् ।

स्वशब्दस्य चत्वारोऽर्थाः—आत्मा-आत्मीय ज्ञाति धन रूपाः । तत्र 'आत्मनि आत्मीयार्थे एव सर्वनामसञ्ज्ञा नान्यद्द्वयार्थे ।

होती है (वही यहाँ गृहीत है) तुल्यार्थवाची की नहीं, क्योंकि यदि तुल्यार्थवाची की भी सर्वनाम संज्ञा होती तो 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' में समानाम् के स्थान में 'समेषाम्' होना चाहिए था ।

१–व्यवस्था और असंज्ञा अर्थ में "पूर्व पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर" शब्दों की सर्वत्र गणसूत्र से प्राप्त सर्वनाम संज्ञा जस (प्रत्यय) पर में हो तो विकल्प से होती है । पूर्व—पहिला । पर—अन्य । अवर—निकृष्ट । दक्षिण, उत्तर दिशा भेद । अपर—दूसरा । उत्तरा कुरवः—उत्तर कुरु नाम देश । २–स्व (पूर्व, पर आदि शब्द) के अभिधेय (वाच्य अर्थ) से अपेक्ष्यमाण (अर्थात् किस के पूर्व किस के अन्त तक इस प्रकार का) अवधि का जो नियम वही व्यवस्था पद से कहा जाता है । व्यवस्था पद नहीं रहता तो 'दक्षिणा गाथकाः' यहाँ भी सर्वनाम संज्ञा होने लगती । दक्षिणा गाथकाः—चतुर गायक । ३–ज्ञाति (जाति) और धन से भिन्न आत्मा और आत्मीय अर्थ में 'स्व' शब्द को गण सूत्र से प्राप्त जो नित्य सर्वनामसंज्ञा वह जस् परे रहते विकल्प से होती है । केवल 'स्वाः' का अर्थ है जाति या धन । स्वे, स्वाः का अर्थ है आत्मीय (अपना) वा आप । ४–बाह्य (बाहर) और परिधानीय (पहनने योग्य) अर्थ में अन्तर शब्द को गणसूत्र से प्राप्त जो नित्य सर्वनामसंज्ञा वह जस परे रहते विकल्प से होती है । 'अन्तरे, अन्तरा वा' इसके बाद 'गृहाः' कहने पर बाहर अर्थ होगा । 'शाटकाः' कहनेपर पहनने योग्य साड़ी कपड़ा ।

पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७।१।१६॥ [1]एभ्यो ङसिङ्यो स्मात्स्मिनौ वा स्त । पूर्वस्मात्, पूर्वात् । पूर्वस्मिन्, पूर्वे । एव परादीनाम् । शेष सर्ववत् ।

प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च ।१।१।३३॥ [2]एते जसि उक्तसञ्ज्ञा वा स्यु । प्रथमे, प्रथमा । तय प्रत्यय । द्वितये, द्वितया । शेष रामवत् । नेमे, नेमा । शेष सर्ववत् । [3]**तीयस्य ङित्सु वा ।** द्वितीयायेत्यादि । एव तृतीय । निजर ।

पूर्वादिभ्यो नवभ्य इति । पूर्व, पर, अवर, दक्षिण उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर—इत्येते नव पूर्वादय । सञ्ज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादय अस्या प्राप्त• विभाषात्वात् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
पूर्व	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वा	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्य
पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्	पूर्वस्य	पूर्वयो	पूर्वेषाम्
पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वै	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयो	पूर्वेषु
पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्य	हे पूर्व !	हे पूर्वौ !	हे पूर्वे, हे पूर्वा !

एवमेव पर-अवर-दक्षिण उत्तर अपर अधर शब्दानामपि रूपाणि ज्ञेयानि ।

तय प्रत्यय —'सख्याया अवयवे तयप्' इति विहित । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्तस्य ग्रहणाद् द्वितय, द्वय, त्रितय, त्रय, चतुष्टय, पञ्चतय इत्यादीना ग्रहण ज्ञेयम् । प्रथम चरम द्वितीय तृतीय चतुष्टय अल्प अध कतिपयशब्दा 'राम' शब्दवद् बोध्या । केवल जसि विशेष । यथा 'प्रथमे, प्रथमा' इत्यादि बोध्यम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
द्वितीय	द्वितीयौ	द्वितीया	द्वितीयस्मात् द् द्वितीयात् द्	द्वितीया•	द्वितीयेभ्य
द्वितीयम्	द्वितीयौ	द्वितीयान्	द्वितीयस्य	द्वितीययो	द्वितीयानाम्
द्वितीयेन	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयै	द्वितीयस्मिन् द्वितीये	द्वितीययो	द्वितीयेषु
द्वितीयस्मै द्वितीयाय	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्य	हे द्वितीय !	हे द्वितीयौ !	हे द्वितीया !

१–पूर्व पर आदि नौ शब्दोंमे ङसि या ङि विभक्ति पर में रहे तो ङसि को स्मात् और ङि को स्मिन् आदेश होता है, विकल्प से । २–(प्रथम, चरम तय प्रत्यान्त, अल्प अर्ध कतिपय और नेम) इन शब्दों की सर्वनामसंज्ञा विकल्प से होती है जस परे रहते । प्रथम – पहिला । चरम –अन्तिम । कतिपय –कुछ एक । द्वितीय –दूसरा । अल्प –थोडा । अर्ध –आधा । तृतीय –तीसरा । ३–ङित् (ङकार इत्संज्ञक–ङे ङसि ङस प्रत्यय पर में हो तो तीय

जराया जरसन्यतरस्याम् । ७ । २ । १०१ ॥ [1]जराशब्दस्य जरस् वा स्यादजादौ विभक्तौ ।

❀[2]**पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च।** [3]**निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति।** [4]**एकदेशविकृतमनन्यवदिति** जर-शब्दस्य जरस् । निजरसौ, निजरस इत्यादि । पक्षे हलादौ च रामवत् । विश्वपा ।

निजरसौ—जराया –निगत इति विग्रहात्मक (जराविशिष्ट) निजर शब्दस्य प्रातिपदिकत्वेन 'औ' विभक्तौ 'जराया जरसन्यतरस्याम्' इति जरसादेशेन तत्सिद्धि । पक्षे 'निजरौ' इति रूपम् । ननु सूत्रे 'जरा' शब्दस्यव जरसादेशनियम, अत्र तु 'निजर' शब्द इति कथम् जरसादेश इत्यत आह–'पदाङ्गाधिकारे तस्य०–' इति। तेन तस्य सूत्रोच्चारित जरा' शब्दस्य तदन्तस्य निजर, परमजर–शब्दस्य च ग्रहणेन दोषाभाव । 'पदाङ्गाधिकारे०' परिभाषया तदन्तग्रहणेन निजरेति सम्पूणस्य स्यादित्यपि न शङ्क्यम् निर्दिश्यमानस्यैवादेशा भवन्तीति स्वीकारात् । ननु सूत्रे तु जराशब्द उपदिष्टो न तु जर शब्द इत्यपि न शङ्क्यम्, एकदेशविकृतस्यानन्यत्वस्वीकारात् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
निजर	निजरसौ / निजरौ	निजरस / निर्जरा	निजरसा / निर्जरेण	निजराभ्याम्	निर्जरै
निजरसम् / निजरम्	निर्जरसौ / निजरौ	निजरस / निर्जरान्	निजरसे / निजराय	निजराभ्याम्	निर्जरेभ्य

प्रत्ययान्त (द्वितीय आदि) शब्दों को विकल्प से सर्वनामसंज्ञा होती है । जराया निगत निर्जर –देवता ।

१–अजादि विभक्ति पर में रहे तो जरा शब्द को जरस् आदेश होता है विकल्प से। प्रश्न यह होता है कि सूत्र में जरा शब्द पठित है और आप निजर शब्द से जरस् आदेश करना चाहते हैं कैसे होगा ? उ० 'पदाङ्गाधिकारे–इति । अत कोई दोष नहीं है । २–पदाधिकार में और अङ्गाधिकार में किये जाने वाले कार्य उच्चारित शब्द के तथा वह शब्द जिसके अन्त में हो उसके स्थान में भी होते हैं । तब प्रश्न यह होता है कि–निर्जर शब्द अनेकाल् है, इस लिये सम्पूर्ण (निर्जर) के स्थान में जरस् आदेश प्राप्त होगा । उ०–यह भी नियम है कि ३–उच्चारण कर के किया जाने वाला कार्य उच्चारित पद को ही होता है, अत निर्जर के स्थान पर न होकर जरा के स्थान में जरस् होगा । ४–पुन यह प्रश्न होता है कि यह तो निर्जर शब्द है न कि जरा शब्द, इस दशा में उ०–"एकदेशविकृतमनन्यवत्

दीर्घाज्जसि च । ६ । १ । १०५ ॥ [1]दीर्घाज्जसि इचि च परे प्रथमयो पूर्वसवर्णदीर्घो न स्यात् । विश्वपौ । विश्वपा । हे विश्वपा । विश्वपाम् । विश्वपौ ।

सुडनपुंसकस्य । १ । ४ । ४३ ॥ [2]स्वादिपञ्च वचनानि सर्वनामस्थान-सञ्ज्ञानि स्युरक्लीबस्य ।

स्वादिष्वसर्वनामस्थाने । १ । ४ । १७ ॥ कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्व-सर्वनामस्थानेषु पूर्व पद स्यात् ।

यचि भम् । १ । ४ । १८ ॥ [4]यकारादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्व भसञ्ज्ञ स्यात् ।

आकडारादेका सञ्ज्ञा । १ । ४ । १ ॥ [5]इत ऊर्ध्व 'कडारा कर्मधारये' इत्यत प्रागेकस्यैकैव सञ्ज्ञा ज्ञेया । या पराऽनवकाशा च ।

आतो धातो । ६ । ४ । १४० ॥ [6]आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य

निर्जरस	निजराभ्याम्	निजरेभ्य	निजरसि	निजरसो	निजरेषु
निर्जरात् द्			निजरे	निजरयो	
निजरस	निजरसो	निजरसाम्	हे निजर !	हे निजरौ !	हे निजरा
निजरस्य	निजरयो	निजराणाम्		हे निर्जरसौ !	हे निर्जरस

इति । एकदेश की विकृति से स्वरूपभिन्नता नहीं मानी जाती (जैसे कुत्ते की "पूँछ कट जाने पर भी कुत्ता कुत्ता ही कहा जाता है न कि शृगाल) अर्थात् निर्जर को भी जरा मानकर कार्य किया जायगा । विश्वं पाति रक्षति इति विश्वपा —संसार का रक्षक ।

१–दीर्घ से जस् और इच् पर में रहे तो पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश नहीं होता है । २–नपुंसकलिङ्ग को छोड़कर स्वादि (सु, औ, जस् अम्, औट्) पाँच वचन सर्वनामस्थान संज्ञक होते हैं । ३–सु से लेकर कप् प्रत्यय पर्यन्त जो सर्वनामस्थान भिन्न प्रत्यय वे (कोई) पर में हों तो पूर्व की पदसंज्ञा होती है । ४–'सु' से लेकर कप् प्रत्यय पर्यन्त जो सर्वनामस्थान भिन्न यकारादि और अजादि प्रत्यय वे (कोई) पर में रहें तो पूर्व की भ संज्ञा होती है । ५–पहले अध्याय के चौथे चरण से लेकर "कडारा कर्मधारये" सूत्र तक एक की एक ही संज्ञा होती है । प्रश्न–कौन हो ? उ०–जो पर तथा अनवकाश हो (सावकाश अनवकाश का अर्थ यह है कि सूत्र या संज्ञा जब कहीं चरितार्थ रहती है तो उसे सावकाश कहते हैं । अचरितार्थ को अनवकाश कहते हैं) । ६–आकारान्त जो धातु तदन्त भ–संज्ञक अङ्ग का लोप होता है । शङ्खध्मा शङ्ख बजाने वाला । हाहा गन्धर्वों का भेद होता है ।

भस्याङ्गस्य लोपः स्यात् । **अलोऽन्त्यस्य** । विश्वपः । विश्वपा । विश्वपाभ्यामित्यादि । एवं शङ्खध्मादयः । धातोः किम् ? हाहान् । हरिः । हरी ।

जसि च । ७।३।१०९ ॥ [1]ह्रस्वान्तस्याऽङ्गस्य गुणः स्याज्जसि । हरयः ।

ह्रस्वस्य गुणः । ७ । ३ । १०८ ॥ [2]ह्रस्वस्य गुणः स्यात्सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम् । हरी । हरीन् ।

शेषो घ्यसखि । १ । ४ । ७ ॥ 'शेष' इति स्पष्टार्थम् । [3]अनदीसञ्ज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसञ्ज्ञं स्यात् ।

आङो नाऽस्त्रियाम् । ७ । ३ । १२० ॥ [4]घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम् । आङिति टासञ्ज्ञा । हरिणा । हरिभ्याम् । हरिभिः ।

विश्वपः—विश्वं पाति-इति विश्वपाशब्दस्य प्रातिपदिकत्वेन शसि अनुबन्धलोपे, स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' इति प्राप्तां पदसञ्ज्ञां प्रबाध्य, आकडारादेका सञ्ज्ञा' इति सूत्रसहकारेण परत्वानवकाशत्वाभ्यां यचि भम्' इति भसञ्ज्ञायां, 'अलोऽन्त्यस्य' इति सहकारेण—'आतो धातोः' इति—आकारलोपे, सकारस्य रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु
विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः	हे विश्वपाः ! हे विश्वपौ ! हे विश्वपाः !		

एवं शङ्खध्मा, अग्निध्मा, धनपा आदि शब्दानामपि रूपाणि बोध्यानि ।

हे हरे—प्रातिपदिक-हरि-शब्दस्य सम्बुद्ध्येकवचने—'सौ' विभक्तौ 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इति सम्बुद्धिसञ्ज्ञायां 'हे' इत्यस्य प्राक्प्रयोगः । 'ह्रस्वस्य गुणः' इति—इकारस्य गुणे, 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' इति सस्य लोपे तत्सिद्धम् ।

हरिणा—हरिशब्दात् प्रातिपदिकत्वेन टा' विभक्तौ, 'चुटू' इति टकारस्येत्सञ्ज्ञायां 'तस्य लोपः' इति लोपे च कृते, 'शेषो घ्यसखि' इति घिसञ्ज्ञायां 'आङो नाऽस्त्रियाम्' इति नादेशे 'अट्कुप्वाङ्–' इति नस्य णत्वे च कृते तत्सिद्धम् ।

१–जस् पर में ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होता है । २–सम्बुद्धि (सम्बोधन के प्रथमा एकवचन) पर में रहे तो ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होता है । ३–सखि शब्द को छोड़कर नदी-संज्ञा से भिन्न ह्रस्व इकारान्त तथा उकारान्त शब्द घि-संज्ञक होता है । ४–घि-संज्ञावाले शब्द से परे जो आङ् (टा विभक्ति) उनको 'ना' आदेश होता है स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर ।

घेर्ङिति । ७ । ३ । १११ ॥ [1]घिसञ्ज्ञकस्य ङिति सुपि गुण स्यात् । हरये । हरिभ्याम् । हरिभ्य ।

ङसिङसोश्च । ६ । १ । ११० ॥ [2]एङो ङसिङसोरति परे पूर्वरूपमेकादेश स्यात् । हरे । हरे । हर्यो । हरीणाम् ।

अच्च घे । ७ । ३ । ११९ ॥ [3]इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत् स्यात्, घेरन्तादेशश्चाऽकार । हरौ । हरिषु । एव कव्यादय ।

अनङ् सौ । ७ । १ । ९३ ॥ [4]सख्युरङ्गस्याऽनङादेश स्यादसम्बुद्धौ सौ ।

अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा । १ । १ । ५६ ॥ [5]अन्त्यादल पूर्वो वण उपधासञ्ज्ञ स्यात् ।

सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ । ६ । ४ । ८ ॥ [6]नान्तस्योपधाया दीघ स्यादसम्बुद्धौ सवनामस्थाने ।

अपृक्त एकाल्प्रत्यय । १ । २ । ४१ ॥ [7]एकाल्प्रत्ययो य सोऽपृक्तसञ्ज्ञ स्यात् ।

हरौ—हरिशब्दात् प्रातिपदिकत्वेन 'ङि' विभक्तौ, अनुबन्धलोपे, 'शेषो घ्यसखि' इति घिसञ्ज्ञायाम् 'अच्च घे' इति ङेरौकारादेशे, घिसञ्ज्ञकेकारस्य चाकारे वृद्धौ च तत्सिद्धम् ।

एक०	द्वि०	बहु०	एक०	द्वि०	बहु०
हरि	हरी	हरय	हरे	हरिभ्याम्	हरिभ्य
हरिम्	हरी	हरीन्	हरे	हर्यो	हरीणाम्
हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभि	हरौ	हर्यो	हरिषु
हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्य	हे हरे !	हे हरी !	हे हरय

एवमेव प्रायो ह्रस्वेकारान्तानाम्—भूपति, श्रीपति, रवि, वह्नि, कवि, कपि, सन्धि, विधि—आदीना शब्दाना रूपाणि ज्ञेयानि ।

१—ङित् सुप् पर में हो तो घि संज्ञावाले शब्द को गुण होता है । २—एङ् से ङसि ङस् सम्बन्धी अकार पर में रहे तो पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरूप (एङ के समान रूप) एकादेश होता है । ३—इकार उकार से परे जो 'ङि' उसके स्थान में औत् और घि-संज्ञा के स्थान में अत् (अकार) अन्तादेश भी आदेश होता है । ४—सम्बुद्धि से भिन्न सु विभक्ति पर में रहे तो अङ्ग-संज्ञक सखि शब्द को अनङ् आदेश होता है । ५—किसी भी वर्ण के अन्त्य अल् से अव्यवहित पूर्ववर्ण की उपधासंज्ञा होती है । ६—सम्बुद्धि भिन्न सर्वनाम-स्थान पर में रहे तो नान्त पद की उपधा को दीर्घ होता है । ७—एक अल् वाला प्रत्यय-अपृक्त संज्ञक होता है ।

हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ६ । १ । ६८ ॥ [1]हलन्तात्परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते ।

नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य । ८ । २ । ७ ॥ [2]प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः स्यात् । सखा ।

सख्युरसम्बुद्धौ । ७ । १ । ९२ ॥ सख्युरङ्गात्परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात् ।

अचो ञ्णिति । ७ । २ । ११५ ॥ [4]अजन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च परे । सखायौ । सखायः । हे सखे । सखायम् । सखायौ । सखीन् । सख्या । सख्ये ।

ख्यत्यात्परस्य । ६ । १ । ११२ ॥ [5]खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उत्स्यात् । सख्युः । सत्युः ।

सखा—प्रातिपादिकसखिशब्दात् 'सौ', अङ्गसंज्ञायां 'ङिच्च' इति सहकारेण 'अनङ् सौ' इति–इकारस्थाने अनङादेशे अनुबन्धलोपे, 'अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा' इति सूत्रेण नकारात्पूर्वस्याकारस्य उपधासंज्ञायां 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' इति दीर्घे, 'अपृक्त एकालप्रत्ययः' इति अपृक्तसंज्ञां कृत्वा 'हल्ङ्याब्भ्यो–' इति सो सकारस्य लोपे, 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इत्यनेन नलोपे सिद्धम् 'सखा' इति रूपम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
सखा	सखायौ	सखायः	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
सखायम्	सखायौ	सखीन्	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः	हे सखे !	हे सखायौ !	हे सखायः !

१–हलन्त से परे जो सु, ति, सि सम्बन्धी अपृक्त हल् और दीर्घ जो ङी आप, तदन्त से परे जो सु सम्बन्धी अपृक्त हल् उसका लोप होता है। २–प्रातिपादिक संज्ञावाले पद के अंतिम नकार का लोप होता है। सखा=मित्र। ३–अङ्ग संज्ञक सखि शब्द से परे सम्बुद्धि भिन्न जो सर्वनामस्थान वह णिद्वत् (णित् के समान) माना जाता है (अर्थात् जो कार्य णित् को विहित हैं वे उससे भी होते हैं)। ४–ञित् (ञ् इत्संज्ञक) या णित् (ण् इत्संज्ञक) प्रत्यय परे में रहे तो अजन्त अङ्ग को वृद्धि होती है। ५–कर दिया गया है यण्रूपी आदेश जिनको ऐसे ह्रस्व खि, ति शब्द और दीर्घ खी, ती शब्द से परे जो ङसि या ङस् सम्बन्धी अकार उसको उत् (उकार) आदेश होता है।

औत् । ७ । ३ । ११८ ॥ [1]इदुद्भ्या परस्य ङेरौत्स्यात् । सख्यौ । शेष हरिवत् ।

पति समास एव । १ । ४ । ८ ॥ [2]पतिशब्द समास एव घिसञ्ज्ञ स्यात् । पत्ये । पत्यु । पत्यौ । शेष हरिवत् । समासे तु भूपतये । [3]कतिशब्दो बहुवचनान्त ।

बहुगणवतुडतिसख्या । १ । १ । २३ ॥ [[4]एने सख्यासञ्ज्ञा स्यु ।]

डति च । १ । १ । २५ ॥ [5]डत्यन्ता सख्या षटसञ्ज्ञा स्यात् ।

षड्भ्यो लुक् । ७ । १ । २२ ॥ [6]षड्भ्य परयोजश्शसोलुक् स्यात् ।

प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुप । १ । १ । ६१ ॥ [7]लुक्श्लुलुपशब्दै कृत प्रत्यया-ऽदशन क्रमात्तत्तत्सज्ञ स्यात् ।

प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् । १ । १ । ६२ ॥ [8]प्रत्यये लुप्तेऽपि तदाश्रित काय स्यात् । इति जसि चेति गुणे प्राप्ते ।

पतिशब्द समासे–एव घिसज्ञको भवति ।

पत्यु—पतिशब्दात् ङसि, अनुबन्धलोपे, 'पति समास एव' इति नियमे नास्य केवल–पतिशब्दस्य घिसज्ञाभावात् 'इको यणचि' इति यणि, 'ख्यत्यात्परस्य' इति–अकारस्योकारे, सस्य रुत्वे, विसर्गे च तत्सिद्धम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
पति	पती	पतय	पत्यु	पतिभ्याम्	पतिभ्य
पतिम्	पती	पतीन्	पत्यु	पत्यो	पतीनाम्
पत्या	पतिभ्याम्	पतिभि	पत्यौ	पत्यो	पतिषु
पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्य	हे पते !	हे पती !	हे पतय !

भूपति, रमापति श्रीपति-आदि—शब्दाना रूपाणि 'हरि'शब्दवद् बोध्यानि ।

१–ह्रस्व इकार, उकार से परे ङि को औत् (औकार) आदेश होता है । २–पति शब्द की घि संज्ञा केवल समास में ही होती है । पति =स्वामी । भूपति —राजा । ३– कति' शब्द नित्य (सदा) बहुवचनान्त ही होता है । ४–बहु शब्द, गण शब्द, वतु प्रत्ययान्त शब्द और डति-प्रत्यान्त शब्दों की संख्या संज्ञा होती हैं । ५–डतिप्रत्ययान्त सख्यावाचक शब्द की षट् संज्ञा होती है । ६–षट्-संज्ञाले शब्दों से परे जो जस् और शस् उनका लुक् (लोप) हो जाता हैं । ७–लुक्, श्लु और लुप शब्दोच्चारणपूर्वक किया गया जो अदर्शन (लोप) वह क्रम से लुक्, श्लु, लुप संज्ञक होता है । ८–प्रत्यय के लोप हो जानेपर भी तदाश्रित (प्रत्ययनिमित्तक) कार्य होता है ।

न लुमताङ्गस्य । १ । १ । ६३ ॥ [1]लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात् । कति । कति । कतिभिः । कतिभ्यः । कतिभ्यः । कतीनाम् । कतिषु । **युष्मदस्मत्षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः ।** त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः । त्रिभ्यः ।

त्रेस्त्रयः । ७ । १ । ५३ ॥ [2]त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि । त्रयाणाम् । त्रिषु । गौणत्वेऽपि । प्रियत्रयाणाम् ।

त्यदादीनामः । ७ । २ । १२२ ॥ [3]एषामकारोऽन्तादेशः स्याद्विभक्तौ । [4]**द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः ।** द्वौ । द्वौ । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः । पाति लोकमिति पपीः—सूर्यः ।

दीर्घाज्जसि च । ६ । १ । १०५ ॥ [5]दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः । पप्यौ । पप्यौ । पप्यः । हे पपीः । पपीम् । पपीन् । पप्या । पपीभ्याम् । पपीभ्याम् । पपीभ्याम् । पपीभिः । पप्ये । पपीभ्यः । पपीभ्यः । पप्यः । पप्यः । पप्योः । दीर्घत्वान्न नुट् । पप्याम् । ङौ तु सवर्णदीर्घः । पपी । पप्योः । पपीषु । एवं वातप्रम्यादयः । बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी ।

कति—कतिशब्दाज्जसि 'बहुगणवतुडतिसंख्या' इति संख्यासंज्ञा तथा 'डति च' इत्यनेन षट्संज्ञां च कृत्वा 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' इति लुक्संज्ञायां 'षड्भ्यो लुक्' इति जसो लुकि (लोपे) सति 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' इति सूत्रसहकारेण जसनिमित्तको गुणः प्राप्तो 'न लुमताङ्गस्य' इति प्रत्ययलक्षणनिषेधे सिद्धं रूपं कति इति ।

युष्मदस्मदिति—युष्मद्, अस्मद् तथा षट्संज्ञकाश्च शब्दाः त्रिषु 'पुंल्लिङ्गस्त्रीलिङ्गनपुंसकलिङ्गेषु' समानरूपाः (भवन्ति) । यथा कति पुरुषाः ? कति स्त्रियः ? कति पुष्पाणि ? इत्यादि ।

त्रेस्त्रयः—त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः इति नियमोऽर्थपरोऽतस्त्रिशब्दस्वरूपकत्रिशब्दस्य 'त्रे' रूपस्य प्रतिपादने न कश्चिद्दोषः ।

त्रयः	(प्र०)	त्रीन्	(द्वि०)	त्रिभ्यः	(पं०)	त्रयाणाम्	(षष्ठी)
त्रिभिः	(तृ०)	त्रिभ्यः	(च०)	त्रिषु	(स०)	हे त्रयः !	(सम्बो०)

१—जहाँ लुमान् (लुक्, श्लु, लुप्) शब्दों द्वारा लोप हुआ रहता है वहाँ तन्निमित्तिक कार्य नहीं होता । कति कितने । त्रयः—तीन । २—आम् विभक्ति पर में रहे तो 'त्रि' शब्द को त्रय आदेश होता है । ३—विभक्ति पर में हो तो त्यदादियों (के अन्त) को अकार अन्तादेश होता है । ४—'त्यद्' से लेकर 'द्वि' शब्द पर्यन्त ही त्यदादि शब्द हैं, क्योंकि भाष्यकार को ऐसा ही इष्ट है । पपी—सूर्य । ५—दीर्घ से जस् और इच् पर में रहे तो पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश नहीं होता है । वातप्रमी—मृग । बहुश्रेयसी—बहुत कल्याण चाहनेवाली नारियों का पुरुष ।

यू स्त्र्याख्यौ नदी १ । ४ । ३ ॥ [1]ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसञ्ज्ञौ स्त । ❀[2]**प्रथमलिङ्गग्रहणं च ।** पूर्व स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्व वक्तव्यमित्यर्थ ।

अम्बार्थनद्योर्ह्रस्व ७ । ३ । १०७ ॥ [3]अम्बार्थाना नद्यन्तानाञ्च ह्रस्व स्यात्सम्बुद्धौ । हे बहुश्रेयसि ।

आण्नद्या ७ । ३ । ११२ ॥ [4]नद्यन्तात्परेषा ङितामाडागम स्यात् ।

आटश्च ६ । १ । ९० ॥ [5]आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेश स्यात् । बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयस्या । बहुश्रेयस्या । बहुश्रेयसीनाम् ।

ङेराम्नद्याम्नीभ्य ७ । ३ । ११६ ॥ [6]नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च परस्य ङेराम् स्यात् । बहुश्रेयस्याम् । शेष पपीवत् । अङयन्तत्वान्न सुलोप । अतिलक्ष्मी । शेष बहुश्रेयसीवत् । प्रधी ।

प्रथमलिङ्गेति—समासादिवृत्ते प्राक् नित्यस्त्रीलिङ्गस्य शब्दस्य वृत्तौ उपसर्जनत्वेऽपि नदीसञ्ज्ञा भवतीत्यर्थ ।

अम्बार्थेति—अम्बार्थाना नद्यन्तानाञ्च ह्रस्व स्यात् सम्बुद्धौ—इत्यर्थ ।

बहुश्रेयस्याम—बहुश्रेयसीशब्दात् प्रातिपदिकत्वेन ङि' विभक्तौ अनुबन्धलोपे च 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' इति सूत्रेण नदीसञ्ज्ञायाम, आण नद्या ' इत्यनेनाटि, 'ङेराम्नद्याम्नीभ्य ' इति ङेरामि, इको यणचि' इति यणादेशे वृद्धौ च कृते तत्सिद्धम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
बहुश्रेयसी	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयस्य	बहुश्रेयस्या	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभ्य
बहुश्रेयसीम्	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयसी	बहुश्रेयस्या	बहुश्रेयस्यो	बहुश्रेयसीनाम्
बहुश्रेयस्या	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभि	बहुश्रेयस्याम्	बहुश्रेयस्यो	बहुश्रेयसीषु
बहुश्रेयस्यै	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभ्य	हे ब श्रेयसि	हे बहुश्रेयस्यौ	हे बहुश्रेयस्य

न सुलोप इति—अत्राय विशेषसग्रह पूर्वैराचरित —

> अवी तन्त्री तरी-लक्ष्मी धी-ह्री श्रीणामुणादिषु ।
> सप्तानामपि शब्दाना सोर्लोपो न कदाचन ॥

१-नित्य स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त ऊकारान्त शब्दों की नदी संज्ञा होती है । २-जो शब्द पहले स्त्रीलिङ्ग हो और उपसर्जनवश अन्यलिङ्ग भी हो गया तो उसको नदी-संज्ञा कहनी चाहिए (होती है) । ३-सम्बुद्धि पर मे रहे तो अम्बार्थक (अम्बा शब्द के अर्थवाले) और नदी सज्ञावाले शब्दों को ह्रस्व होता है । ४-नद्यन्त शब्द से परे जो ङित् (ङे, ङसि ङस्, ङि) उनको आट् का आगम होता है । ५-आट् से अच् पर में रहे तो पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है । ६-नद्यन्त, आबन्त और नी शब्द से परे जो

अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७॥ [1]श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाऽङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे। इति प्राप्ते।

एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६।४।८२॥ [2]धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण्स्यादजादौ प्रत्यये। प्रध्यौ। प्रध्यः। प्रध्यम्। प्रध्यौ। प्रध्यः। प्रध्यि। शेषं पपीवत्। एवं ग्रामणी। ङौ तु ग्रामण्याम्। अनेकाचः किम्?। नीः। नियौ। नियः। अमि शसि च परत्वादियङ्। नियम्। ङेराम्। नियाम्। असंयोगपूर्वस्य किम्? सुश्रियौ। यवक्रियौ।

अतिलक्ष्मी शब्दस्य सौ अतिलक्ष्मीः इति। शेषरूपाणि बहुश्रेयसीवद् बोध्यानि।

प्रध्य—प्रधी शब्दात्प्रातिपदिकत्वेन ङि विभक्तौ, अनुबन्धलोपे, 'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' इति यणि प्राप्तस्तं प्रबाध्य 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' इति यणि कृते सिद्धं रूपं 'प्रध्यि' इति।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः	प्रध्यः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः	प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम्
प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः	प्रध्यि	प्रध्योः	प्रधीषु
प्रध्ये	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः	हे प्रधीः!	हे प्रध्यौ!	हे प्रध्यः

प्रधीवत् ग्रामणीशब्दस्यापि रूपाणि। केवलं ङौ भेदः—'ग्रामण्याम्' इति।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
सुश्रीः	सुश्रियौ	सुश्रियः	सुश्रियः	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः
सुश्रियम्	सुश्रियौ	सुश्रियः	सुश्रियः	सुश्रियोः	सुश्रियाम्
सुश्रिया	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभिः	सुश्रियि	सुश्रियोः	सुश्रीषु
सुश्रिये	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः	हे सुश्रीः!	हे सुश्रियौ!	हे सुश्रियः!

'ङि' को आम् आदेश होता है। लक्ष्मीमतिक्रान्तोऽतिलक्ष्मीः, लक्ष्मी का अतिक्रमण करने वाला। प्रकृष्टा धीः बुद्धिर्यस्य सः प्रधीः—अति बुद्धिमान्।

१—श्नु प्रत्ययान्त और इवर्णान्त तथा उवर्णान्त धातु को तथा 'भ्रू' शब्द के अङ्ग को इयङ्, उवङ् आदेश होते हैं अजादि प्रत्यय परे रहते। २—धातु का अवयव संयोग से पूर्व

गतिश्च १ । ४ । ४० ॥ [1]प्रादयः क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञाः स्युः । ❀ **गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते ।** शुद्धधियौ ।

न भूसुधियोः ६ । ४ । ८५ ॥ एतयोरचि सुपि यण्न स्यात् । सुधियौ । सुधियः इत्यादि । सुखमिच्छतीति सुखीः । सुतीः । सुख्यौ । सुख्यौ । सुत्यौ । सुत्यौ । सुख्युः । सुख्युः । सुत्युः । सुत्युः । शेषं प्रधीवत् । शम्भुर्हरिवत् । एवं भान्वादयः ।

तृज्वत्क्रोष्टुः ७ । १ । ९५ ॥ [4]क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे । क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः ।

ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ७ । ३ । ११० ॥ [5]ऋतोऽङ्गस्य गुणः स्यात् ङौ सर्वनामस्थाने च परे । इति प्राप्ते ।

ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ७ । १ । ७८ ॥ [6]ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ ।

अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ६ । ४ । ११ ॥ [7]अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः । क्रोष्टून् ।

एवमेव यवक्री शुद्धधी धान्यक्री, सुधी, लब्धधी—आदि शब्दानामपि रूपाणि बोध्यानि । सुखी, सुती—आदि शब्दाः उक्तादन्या प्रधीवत् ज्ञेयाः । शम्भु, भानु विष्णु, मनु—आदि—शब्दास्तत्सदृशाश्च हरिशब्दवत्—नेयाः ।

क्रोष्टा—क्रोष्टुशब्दात्प्रातिपदिकत्वेन सौ, तृज्वत्क्रोष्टुः इत्यनेन तृज्वद्भावेन

मे न हो ऐसा जो इवर्ण, तदन्त अनेकाच् अङ्ग को यण आदेश होता है अजादि प्रत्यय परे रहते । ग्रामणी—गाँव का अफसर, मुखिया । नी—पहुँचानेवाला । सुश्री—सुन्दर शोभावाला । यवक्री—यव (जव) खरीदनेवाला ।

१—क्रिया के योग मे प्रादियो की गति सञ्ज्ञा होती है । २—गति और कारक से भिन्न पूर्वपद रहे तो यण नहीं होता है । शुद्धधी—निर्मल बुद्धिवाला । ३—भू और सुधी शब्द का अजादि सुप् प्रत्यय परे रहते यण नहीं होता है । सुखी—सुख चाहनेवाला । सुती—पुत्र की इच्छा करनेवाला । शम्भु—श्री शिवजी । भानु—सूर्य । ४—सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनामस्थान विभक्ति पर मे रहे तो क्रोष्टु शब्द के स्थान मे क्रोष्टृ आदेश होता है । ५—ङि या सर्वनाम स्थानसञ्ज्ञक विभक्ति पर मे रहे तो ऋदन्त अङ्ग का गुण होता है । ६—सम्बुद्धि से भिन्न 'सु' विभक्ति पर मे रहे तो ऋदन्त और उशनसादिको का अनङ् आदेश होता है । ७—सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनाम स्थान पर मे रहे तो अप् तृन्, तृच् आदि शब्दो की उपधा का दीर्घ

विभाषा तृतीयादिष्वचि ७।१।९७॥ [1]अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत्। क्रोष्ट्रा। क्रोष्ट्रे।

ऋत उत् ६।१।१११॥ [2]ऋतो ङसिङसोरति उदेकादेशः स्यात्। रपरः।

रात्सस्य ८।२।२४॥ [3]रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य। रस्य विसर्गः। क्रोष्टुः। क्रोष्टुः। क्रोष्ट्रोः। क्रोष्ट्रोः। ॐ[4]**नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन।** क्रोष्टूनाम्। क्रोष्टरि। पक्षे हलादौ च शम्भुवत्।

क्रोष्टुशब्दस्य क्रोष्टभावे जाते, 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः' इत्यनेन प्राप्तं गुणं बाधित्वा 'ऋदुशनस्पुरुदंसो—०' इति सूत्रेणापधादीर्घे, नकारस्य लोपे च कृते 'क्रोष्टा' इति सिद्धम्।

क्रोष्टुः—क्रोष्टुशब्दात्—ङसि, अनुबन्धलोपे, 'विभाषा तृतीयादिषु' इति सत्रकारेण वैकल्पिके तृज्वद्भावे 'ऋत उत्' इति पूर्वपरयोः उत्वे रपत्वे च 'रात्सस्य' इति सस्य लोपे, खरवसानयोरिति रेफस्य विसर्गे च 'क्रोष्टुः' इति सिद्ध्यति। तृज्वद्भावाभावे—घिसंज्ञायां घेर्ङितीति गुणे ङसिङसोश्चेति पूर्वरूपे च 'क्रोष्टोः' इति सिद्ध्यति।

एकव०	द्विव०	बहुव०
क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टून्
क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
क्रोष्टरि, क्रोष्टौ	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टुषु
हे क्रोष्टो!	हे क्रोष्टारौ!	हे क्रोष्टारः!

पूर्वविप्रतिषेधेन—विप्रतिषेधे परं कार्यमिति सूत्रे 'अपरम्' इति छेदः

होता है। क्रोष्टा–शृगाल, गीदड़।

१–अजादि तृतीयादि विभक्तियाँ परे में हों तो क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव विकल्प से होता है। २–ऋदन्त अङ्ग से ङसि या ङस् सम्बन्धी अकार परे में हो तो पूर्वपर के स्थान में ह्रस्व उकार आदेश होता है। ३–रेफ से परे यदि संयोगान्त लोप होवे तो केवल सकार का ही हो अन्य का नहीं। ४–नुम् और अच् परे में हो तो रभाव एवं तृज्वद्भावों के

हूहू । हूह्वौ । हूह्व । हूहूम्-इत्यादि । अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः । हे अतिचमु । अतिचम्वै । अतिचम्वाः । अतिचम्वाः । अतिचमूनाम् । खलपूः ।

ओः सुपि ६ । ४ । ८३ ॥ [1]धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति च उवर्ण-स्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्याऽनेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि । खलप्वौ । खलप्वः । एवं सुल्वादयः । स्वभूः । स्वभुवौ । स्वभुवः । वर्षाभूः ।

वर्षाभ्वश्च ६ । ४ । ८४ ॥ [2]अस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सुपि । वर्षा-भ्वावित्यादि । दृन्भूः । ※[3]**दृन्करपुनः पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः** । दृन्भ्वौ । एवं करभूः । धाता । हे धातः । धातारौ । धातारः । [4]**ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** । धातॄणाम् । एवं नप्त्रादयः । नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमा-

क्रियते तेन 'पूर्वं कार्यं स्यात्' इत्यर्थो लभ्यते । वार्तिककाराद्यभिमतस्थलेष्वेव पूर्वविप्रतिषेधनियमो यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यात् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
धाता	धातारौ	धातारः	धातुः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
धातारम्	धातारौ	धातॄन्	धातुः	धात्रोः	धातॄणाम्
धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः	धातरि	धात्रोः	धातृषु
धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः	हे धातः	हे धातारौ	हे धातारः

एवमेव नप्त्रादयोऽपि शब्दा ज्ञेयाः ।

नियमार्थम्—उणादिनिष्पन्नानां तृन्तृच्प्रत्ययान्तानां संज्ञाशब्दानामुपधादीर्घ-श्चेत्तर्हि नप्त्रादीनामेवेति नियमाकारः । एवञ्च पित्रादिशब्दानां नप्त्रादिभिन्नतया नानेन दीर्घः ।

अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध (के नियम) से नुट् ही होता है । हूहू–गन्धर्व । अतिचमू–सेना को अतिक्रमण करनेवाला । खलपू–खलिहान, सफाई करनेवाला ।

१–धातु का अवयव संयोगपूर्व में न हो ऐसा जो उवर्णान्त धातु, तदन्त अनेकाच् अङ्ग को यण् होता है अजादि सुप् प्रत्यय परे रहते । सुलू–अच्छा काटनेवाला । स्वभू–ब्रह्मा । वर्षाभू–मेढक । २–वर्षाभू' शब्दावयव उकार के स्थान में यण् आदेश होता है, अजादि सुप् परे रहते । दृन्भू–वानर, सांप, वज्र सूर्य । ३–दृन् कर और पुन पूर्वक भू के उवर्ण को यण् होता है अजादि सुप् परे रहते । करभू–हाथ से उत्पन्न हुआ । धाता–ब्रह्मा । ४–ऋवर्ण से परे जो नकार उसको णकार होता है । नप्ता–नाती, पौत्र ।

थम्। तेनेह न। पिता। पितरौ। पितर। पितरम्। शेष धातृवत्। एव जामात्रादय। ना। नरौ।

नृ च ६।४।६॥ 'न[1]' इत्येतस्य नामि वा दीर्घ स्यात्। नृणाम्। नृणाम्।

गोतो णित् ७।१।९०॥ [2]ओकाराद्विहित सर्वनामस्थान णिद्वत्स्यात्। गौ। गावौ। गाव।

औतोऽम्शसो ६।१।९३॥ [3]ओकारादम्शसोरचि पर आकार एकादेश स्यात्। गाम्। गावौ। गा। गवा। गवे। गो—इत्यादि।

रायो हलि ७।२।८५॥ [4]रशब्दस्याकारोऽन्तादेश स्याद्धलि विभक्तौ। रा। रायौ। राय। राभ्यामित्यादि। ग्लौ। ग्लावौ। ग्लाव। ग्लौभ्यामित्यादि।

॥ इत्यजन्ता पुंलिङ्गा ॥



एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
पिता	पितरौ	पितर	पितु	पितृभ्याम्	पितृभ्य
पितरम्	पितरौ	पितन्	पितु	पित्रो	पितणाम्
पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभि	पितरि	पित्रो	पितृष
पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्य	हे पित !	हे पितरौ !	हे पितर !

एवमेव भ्रातृ जामात्रादीनामपि रूपाणि बाध्यानि।

इत्यजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम्।



जामाता—दामाद। ना मनुष्य।

१—नाम् पर मे हो तो नृ शब्द को दीर्घ होता है विकल्प से। २—ओकार मे विहित (किया गया) जो सर्वनामस्थान वह णिद्वत (णित् के समान) होता है। ३—ओकार से अम् और शस् सम्बन्धी अच पर मे रहे तो पूर्व पर के स्थान मे आकार एकादेश होता है। ४—हलादि विभक्ति पर में रहे तो 'रै' शब्द को आकार अन्तादेश होता है (अथात 'ऐ' को "आ" हो जाता है)।

* अजन्तपुंल्लिङ्ग प्रकरण समाप्त *



अथाजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

रमा ।

औङ आप ७ । १ । १८ ॥ [1]आबन्तादङ्गात्परस्योङ शी स्यात् । औङित्योकारविभक्तेः सञ्ज्ञा । रमे । रमाः ।

सम्बुद्धौ च ७ । ३ । १०६ ॥ [2]आप एकारः स्यात्सम्बुद्धौ । एङ्ह्रस्वादिति सम्बुद्धिलोपः । हे रमे । हे रमे । हे रमाः । रमाम् । रमे । रमाः ।

आङि चाऽऽपः ७ । ३ । १०५ ॥ [3]आङि ओसि च परे आबन्तस्याऽङ्गस्य एकारः स्यात् । रमया । रमाभ्याम् । रमाभिः ।

याडापः ७ । ३ । ११३ ॥ [4]आपः परस्य ङिद्वचनस्य याडागमः स्यात् । वृद्धिः । रमायै । रमाभ्याम् । रमाभ्यः । रमायाः । रमायाः । रमयोः । रमयोः । रमाणाम् । रमायाम् । रमासु । एवं दुर्गाऽम्बिकादयः ।

रमा—रमते विष्णुना सह—इति विग्रहे पचाद्यच् 'अजाद्यतष्टाप्' इति टापि—अनुबन्धलोपे, हल्ङ्यादिना सुलोपे तत्सिद्धम् ।

रमायै—रमा शब्दात् प्रातिपदिकत्वेन ङे विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'याडापः' इति याडागमे, अनुबन्धलोपे वृद्धिरेचि वृद्धौ कृतायां तत्सिद्धिः । अत्र आटश्चेति वृद्धिस्तु न शङ्क्या प्रकृते आटोऽभावात् । 'सर्वस्य' इत्यादावपि वृद्धिरेचीत्यनेनैव वृद्धिर्ज्ञेया । रमायाः इत्यादावपि अकः सवर्णे दीर्घः इति दीर्घ एव ज्ञेयः ।

रमायाम्—रमाशब्दात् ङि विभक्तौ ङेराम्नद्याम्नीभ्यः इति ङेरामि, 'याडापः' इति याटि टकारस्य लोपः, वृद्धिरेचि इति वृद्धौ कृतायां तत्सिद्धम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
रमा	रमे	रमाः	रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
रमाम्	रमे	रमाः	रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः	रमायाम्	रमयोः	रमासु
रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः	हे रमे !	हे रमे !	हे रमाः !

एवं दुर्गा अम्बिका खट्वा शाला माला बाला श्रद्धा मेधादीनामपि रूपाणि बोध्यानि ।

१—आबन्त अङ्ग से परे जो औङ् (औकार विभक्ति) उसको शी आदेश होता है । रमा—लक्ष्मी । २—सम्बुद्धि (सम्बोधन) परे रहे तो आबन्त अङ्ग के आकार को एकार होता है । ३—आङ (टा) या ओस् विभक्ति पर में हो तो आबन्त अङ्ग के आकार को एकार होता है । ४—आबन्त अङ्ग से पर में जो ङिद्वचन (ङे, ङसि, ङस्, ङि) उनको याट्का आगम होता है ।

सवनाम्न स्याड्–ह्रस्वश्च ७ । ३ । ११४ ॥ [1]आवन्तात्मवनाम्न परम्य डित स्याट् म्यादापश्च ह्रस्व । सवस्यै । सवस्या । सवस्या । सर्वासाम् । सवस्याम् । शेष रमावत् । एव विश्वादय आबन्ता ।

विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ १ । १ । २८ ॥ [2]अत्र सवनामता वा स्यात् । उत्तरपूवस्यै । उत्तरपूर्वायै । तीयस्येति वा सवनामसज्ञा । द्वितीयस्यै, द्वितीयायै । एव तृतीया । अम्बार्थेति ह्रस्व । ह अम्ब ! हे अक्क ! हे अल्ल ! जरा । जरसो । जरे । इत्यादि । पक्षे रमावत् । गोपा विश्वपावत् । मती । मत्या ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
सर्वा	सर्वे	सवा	सवस्या	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्य
सर्वाम्	सर्वे	सर्वा	सवस्या	मवया	सर्वासाम्
सवया	सवाभ्याम्	सवाभि	सवस्याम्	सवयो	सर्वासु
सवस्य	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्य	हे सर्वे !	हे सर्वे !	ह सर्वा !

एव विश्वा आदयाऽपि बोध्या ।

विभाषा दिकसमासे बहुव्रीहौ इति वैकल्पिकसवनामसज्ञाविधानेन–उत्तरपूर्वा–शब्दान् सवनामसज्ञापक्षे डिति श्रामि स्याट–सुटौ भविष्यत । पक्ष च रमावत् रूपाणि बोध्यानि । यथा–उत्तरपूवस्य, उत्तरपूर्वाय इत्यादि । एवमेव द्वितीया, तृतीया–आदि-शब्दानामपि रूपाणि भवन्ति । 'अम्बा शब्द रमावत् ।

आबन्त स्त्रीलिङ्गो जरा शब्द —

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
जरा	जरे, जरसौ	जरा, जरस	जराया, जरस	जराभ्याम्	जराभ्य
जराम्, जरसम्	जरे, जरसौ	जरा, जरस	जराया, जरस	जरयो, जरसो	जराणाम्, जरसाम्
जरया, जरसा	जराभ्याम्	जराभि	जरायाम्, जरसि	जरयो, जरसा	जरासु
जराय, जरसे	जराभ्याम्	जराभ्य	हे जरे !	हे जरे !, हे जरसौ !	हे जरा !, हे जरस !

१–आब त सवनाम से परे ङिद्वचन को स्याट् का आगम होता है और आप् का ह्रस्व भी हो जाता है । सवा—सब (स्त्री सामग्री इत्यादि) २–दिशावाचा शब्दों को बहुव्रीहि समास में सवनामसंज्ञा विकल्प से होती है । उत्तरपूवा–इशानकोण । द्वितीया–दूसरी । तृतीया–तीसरी । अम्बा–माता वा दुगा । अल्ला–माना । जरा–बुढापा । गापा–गापी।

ङिति ह्रस्वश्च १ । ४ । ६ ॥ [1]इयङुवङ्स्थानो स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्य-स्त्रीलिङ्गावीदूतो ह्रस्वौ च इवर्णावर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति । मत्यै, मतये । मत्याः । मत्याः । मतेः । मतेः ।

इदुद्भ्याम् ७ । ३ । ११७ ॥ [2]नदीसंज्ञकाभ्यामिदुद्भ्यां परस्य ङेराम् स्यात् । मत्याम् मतौ । शेषं हरिवत् । एवं बुद्ध्यादयः ।

त्रि-चतुरोः स्त्रियां तिसृ चतसृ ७ । २ । ९९ ॥ [3]स्त्रीलिङ्गयोरेतावादेशौ स्तो विभक्तौ ।

अचि र ऋतः ७ । २ । १०० ॥ [4]'तिसृ' 'चतसृ' एतयोर्ऋकारस्य

मत्याम्—मतीत्यस्य प्रातिपदिकत्वेन ङौ, अनुबन्धलोपे च कृते 'ङिति ह्रस्वश्च' इति नदीसंज्ञायाम् 'इदुद्भ्याम्' इति ङेरामि कृते 'इको यणचि' इति यणादेशे तत्सिद्धम् । ननु मत्यामित्यत्र नदीसंज्ञापक्षे 'ङेराम् नद्याम्नीभ्यः' इत्यनेनैव आमि सिद्धे इदुद्भ्यामित्यस्यारम्भो व्यर्थ इति नाशङ्कनीयम् ङेरामित्यस्य गौर्यामित्यत्र 'औत्' इत्यस्य च सख्यौ पत्यौ इत्यादौ चारितार्थ्येन प्रकृते 'औत्' इत्यस्य प्रवृत्त्यापत्तेः । सति त्वस्मिन् निरवकाशेनानेन औदित्यस्य बाध इति अभिप्रायेणास्यारम्भ इति ।

एकव०	द्विव०	बहुव०
मतिः	मती	मतयः
मतिम्	मती	मतीः
मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु
हे मते !	हे मती !	हे मतयः !

एवमेव गति भूति धृति कान्ति दीप्ति स्मृति रुचि बुद्धि स्तुत्यादयो ह्रस्व-इकारान्ताः स्त्रीलिङ्गाः शब्दा ज्ञेयाः ।

१—ङित्वचन विभक्ति पर मे रहे तो इयङ् या उवङ् के स्थानी स्त्रीशब्दावयव इकार से भिन्न एवं नित्य स्त्रीलिङ्ग जो दीर्घ ईकार ऊकार और ह्रस्व जो इकार उकार, उनकी नदीसंज्ञा स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से होती है। २—नदीसंज्ञक ह्रस्व इकार उकार से परे जो 'ङि' उसको आम् होता है। ३—विभक्ति पर मे रहे तो स्त्रीलिङ्ग में त्रि शब्द को तिसृ और चतुर् शब्द को चतसृ आदेश होता है। ४—अच् पर मे रहे तो तिसृ, चतसृ शब्दों के ऋकार के स्थान

रेफादेशः स्यादचि । गुणदीर्घोत्वानामपवादः । तिस्रः । तिसृभिः । तिसृभ्यः । तिसृभ्यः । आमि नुट् ।

न तिसृचतसृ ६ । ४ । ४ ॥ [1]एतयोर्नामि दीर्घो न स्यात् । तिसृणाम् । तिसृषु । द्वे । द्वे । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः । गौरी । गौर्यौ । गौर्यः । हे गौरि । गौर्य-इत्यादि । एवं नद्यादयः । लक्ष्मीः । शेषं गौरीवत् । एवं तरीतन्त्र्यादयः । स्त्री । हे स्त्रि ।

स्त्रियाः ६ । ४ । ७९ ॥ [2]स्त्रीशब्दस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे । स्त्रियौ । स्त्रियः ।

वाऽम्शसोः ६ । ४ । ८० ॥ [3]अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात् । स्त्रियम्, स्त्रीम् । स्त्रियः स्त्रीः । स्त्रिया । स्त्रियै । स्त्रियाः । स्त्रियाः । परत्वान्नुट् । स्त्रीणाम् । स्त्रियाम् । स्त्रीषु । श्रीः । श्रियौ । श्रियः ।

नेयङुवङ्स्थानावस्त्री १ । ४ । ४ ॥ [4]इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री । हे श्रीः । श्रियै, श्रिये । श्रियाः, श्रियः ।

गुणदीर्घोत्वानामपवादः—प्रथमायां 'ऋतो ङि—०' इति 'जसि च' इति वा प्राप्तं गुणं बाधते । एवं द्वितीयायां 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' इति प्राप्तं दीर्घं बाधते । प्रियतिस्रः इत्यादौ 'ऋत उत्' इति प्राप्तम् उत्वं बाधते इत्यर्थः ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
गौरी	गौर्यौ	गौर्यः	गौर्याः	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
गौरीम्	गौर्यौ	गौरीः	गौर्याः	गौर्योः	गौरीणाम्
गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभिः	गौर्याम्	गौर्योः	गौरीषु
गौर्यै	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः	हे गौरि !	हे गौर्यौ !	हे गौर्यः !

लक्ष्मी शब्दस्यापि रूपाणि—एवंविधानि । केवलं 'सौ' विशेषः 'लक्ष्मीः' इति । एवमेव सरस्वती नदी ब्राह्मणी कुमारी सारङ्गी काष्ठी दरी-सुन्दरी वानरी सखी पुत्री इत्यादयः शब्दाः दीर्घेकारान्ताः स्त्रीलिङ्गाः ज्ञेयाः ।

में रेफादेश होता है । तिस्रः—तीन स्त्रियाँ । चतस्रः—चार स्त्रियाँ ।

१—नाम् परे रहते तिसृ चतसृ शब्दों को दीर्घ नहीं होता । द्वे—दो (स्त्रियाँ) । गौरी—शिवपत्नी (पार्वती) । तरी—नौका । तन्त्री—वीणा । २—अजादि प्रत्यय पर में रहे तो 'स्त्री' शब्द के इकार को इयङ् आदेश होता है । ३—अम् या शस् विभक्ति पर में रहे तो स्त्री शब्दावयव इकार को इयङ् विकल्प से होता है । श्री—लक्ष्मी । ४—स्त्री शब्द को छोडकर (अलावा) इयङ् उवङ्स्थानीय एवं नित्यस्त्रीलिङ्ग जो दीर्घ ईकार ऊकार उनकी नदी संज्ञा होती है ।

वाऽऽमि १ । ४ । ५ ॥ [1]इयङुवङस्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री । श्रीणाम्, श्रियाम् । श्रियि, श्रियाम् । धेनुमतिवत् ।

स्त्रियाञ्च ७ । १ । ९६ ॥ [2]स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते ।

ऋन्नेभ्यो ङीप् ४ । १ । ५ ॥ [3]ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् स्यात् । क्रोष्ट्री । गौरीवत् । भ्रूः—श्रीवत् । स्वयम्भूः—पुंवत् ।

न षट्स्वस्रादिभ्यः ४ । १ । १० ॥ [4]षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च ङीप्टापौ न स्तः ।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ॥

स्वसा । स्वसारौ । माता—पितृवत् । शसि मातॄः । द्यौर्गोवत् । राः—पुंवत् । नौर्ग्लौवत् ।

॥ इत्यजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥



अथाजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

अतोऽम् ७ । १ । २४ ॥ [5]अतोऽङ्गात् क्लीबात्स्वमोरम् स्यात् । **अमि पूर्वः** । ज्ञानम् । एङ्ह्रस्वादिति **हल्लोपः** । हे ज्ञान !

हल्लोपः—अत्र परत्वात् सोः अमादेशपूर्वरूपयोः कृतयोः एङ्ह्रस्वादिति मकारस्य लोप इत्यर्थः ।

इत्यजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।



१—आम् विभक्ति पर में रहे तो स्त्री शब्द से भिन्न इयङ्—उवङ् स्थानी नित्यस्त्रीलिङ्ग जो ईकार, ऊकार उनकी नदीसंज्ञा विकल्प से होती है । धेनु—नई ब्याई गाय । २—स्त्रीवाची (स्त्रीलिङ्ग में होनेवाला) कोष्टु शब्द तृजन्त के समान रूप को प्राप्त करता है । ३—स्त्रीलिङ्ग में ऋदन्त एवं नकारान्त शब्दों से ङीप् प्रत्यय होता है । क्रोष्ट्री—सिआरिन (गीदड़ी)। भ्रू—भ्रुकुटि । स्वयम्भू—परमेश्वर वा मायी । ४—षट् संज्ञक एवं स्वस्रादि शब्दों से ङीप् और टाप् प्रत्यय नहीं होते हैं । स्वसा—बहिन (भगिनी) । तिस्र—तीन । चतस्र—चार । ननान्दा ननद (पतिभगिनी) । दुहिता (पुत्री) । याता—देवरानी, जेठानी—(देवर की या जेठ की स्त्री) माता—प्रसिद्ध है । ये सात स्वस्रादि हैं ।

* अजन्तस्त्रीलिङ्ग प्रकरण समाप्त *



५—नपुंसक अदन्त अङ्ग से परे सु और अम् को अम् होता है ।

नपुसकाच्च ७।१।१९॥ [1]क्लीबात्परस्यौड शी स्यात्। भसज्ञायाम्।

यस्येति च ६।४।१४८॥ [2]ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णाऽवणयोर्लोप स्यात्। इत्यल्लोप प्राप्ते ॐ **औड श्या प्रतिषेधो वाच्य**। ज्ञाने।

जश्शसो शि ७।१।२०॥ [4]क्लीबादनयो शि स्यात्।

शि सवनामस्थानम् १।१।४२॥ '[5]शि' इत्येतदुक्त—[सवनाम स्थान] सज्ञ स्यात्।

नपुसकस्य झलच ७।१।७२॥ [6]झलन्तस्याऽजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सवनामस्थाने।

मिदचोऽन्त्यात्पर १।१।४७॥ [7]अचा मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित्स्यात्। उपधादीघ। ज्ञानानि। पुनस्तद्वत्। शेष पुवत्। एव धनवनफलादय।

ज्ञानानि—प्रातिपदिक-ज्ञानशब्दाज्जसि—'जश्शसो शि इति जस स्थान श्यादेशे, 'शि सवनामस्थानम् इति सवनामस्थानसज्ञाया, 'मिदचोऽन्त्यापर' इति बलेन 'नपुसकस्य झलच इति नुमागमेऽनुबन्धलोपे, सवनामस्थाने चासम्बुद्धौ' इति दीर्घे सिद्ध रूप ज्ञानानीति।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि	ज्ञानात् द्	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्य
ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि	ज्ञानस्य	ज्ञानयो	ज्ञानानाम्
ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञान	ज्ञाने	ज्ञानयो	ज्ञानेषु
ज्ञानाय	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्य	हे ज्ञान !	हे ज्ञाने !	हे ज्ञानानि !

एवमेव धन-वन फल पुष्प मुख वचन आदय शब्दा ज्ञेया।

१—नपुसक अङ्ग से पर मे जो औड् (औ या औट) उनको शी' आदेश होता है। २—ईकार और तद्धित पर मे रहे तो भसज्ञक इवर्ण और उवर्ण का लोप हो जाता है। ३—औङ् के स्थान मे जो 'शी' वह पर मे रहे तो (भसज्ञक इवण, अवर्ण के) लोप का प्रतिषेध (निषध) कहना चाहिये। ४—नपुसक अङ्ग से परे जस् और शस् को 'शि' का आदेश होता है। ५—'शि' यह सवनामस्थानसंज्ञक होता है। ६—सवनामस्थान पर मे रहे तो झल त एव अज त अङ्ग को नुम् का आगम होता है। ७—अचों के मध्य के अन्त्य अच् से परे और उसी (अन्त्य अच्) का अन्तिम अवयव मित्–संज्ञक होता है। धन, वन, फल—तीनों का अर्थ प्रसिद्ध है।

अद्ड्डतरादिभ्य पञ्चभ्य ७। १। २५॥ [1]एभ्य क्लीबेभ्य स्वमोरद्-डादेश स्यात्।

टे ६। ४। १४३॥ [2]डिति भस्य टेर्लोप स्यात्। कतरत्, कतरद्। कतरे। कतराणि। हे कतरत्। शेष पुवत्। एव कतमत्। इतरत्। अन्यत्। अन्यतरत्। अन्यतमस्य त्वन्यतममित्येव। [3]**एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्य** ❀। एकतरम्।

ह्रस्वो नपुसके प्रातिपदिकस्य १। २। ४७॥ [4]अजन्तस्येत्येव [क्लीबे प्रातिपदिकस्याऽजन्तस्य ह्रस्व स्यात्]। श्रीप ज्ञानवत्।

स्वमोनपुसकात् ७। १। २३॥ [5]क्लीबादङ्गात्परयो स्वमोलुक स्यात्। वारि।

इकोऽचि विभक्तौ ७। १। ७३॥ [6]इगन्तस्य क्लीबस्य नुम् स्यादचि

कतरत द—कतरशब्दात् सौ अ‍्‍‍ ।ग न्य पञ्चभ्य' इति सोऽद्डादेशे अनुब धलोपे यचि मम्' इति भसज्ञाया टे' इत्यनेन टिलोपे कतरद्' इति। 'वावसाने' इति दस्य तकारेण कतरत्' इति सिद्धयति।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
कतरत्, कतरद्	कतरे	कतराणि	कतरस्मात्, कतरस्माद्	कतराभ्याम्	कतरेभ्य
कतरत्-द्	कतरे	कतराणि	कतरस्य	कतरयो	कतरेषाम्
कतरेण	कतराभ्याम्	कतरै	कतरस्मिन्	कतरयो	कतरेषु
कतरस्मै	कतराभ्याम्	कतरेभ्य	हे कतरत्-द्!	हे कतरे!	हे कतराणि!

एवमेव कतमत् इतरत् अन्यत् अन्यतरच्छब्दानामपि रूपाणि बोध्यानि।

'इकोऽचि विभक्तौ' इत्यात्राजग्रहणम् न लुमतेत्यस्या'नित्यत्वज्ञापकम्। तेन

१—नपुसक लिङ्ग म डतर आदि पाँचो से परे सु और अम् के स्थान मे अद्ड् आदेश होता है। २—डित् (डकार इत्सज्ञक) प्रत्यय पर मे रहे तो भसंज्ञक टि' का लोप होता है। कतरत्-दो मे से कौन। कतमत्—तीन या बहुतों मे स कौन। इतरत् दूसरा। अन्यत्—अन्य। अन्यतरत्—दो म से एक। अन्यतमम्—इनम मे कोइ एक। ३—एकतर शब्द से परे सु और अम् के स्थान मे अम् का निषेध कहना। ४—क्लीब मे अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है। श्रीपम्—धन का रक्षक। ५—नपुसक अङ्ग से पर मे जो सु और अम् उनका लोप होता है। वारि जल (पीना)। ६—अजादि विभक्ति पर मे रहे तो नपुसक

विभक्तौ। वारिणी। वारीणि। न लुमतेत्यस्याऽनित्यत्वात्पक्ष सम्बुद्धि निमित्तो गुण। हे वारे, हे वारि। घेर्ङितीति गुण प्राप्ते—[1]**वृद्धयौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन।** वारिणे। वारिण। वारिण। वारिणो। वारिणो। नुमचिरेति नुट। वारीणाम्। वारिणि। हलादौ हरिवत्।

अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्त ७। १। ७५॥ एषामनङ स्याट्टादावचि [स चोदात्त]।

अल्लोपोऽन ६। ४। १३४॥ अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादि स्वादिपरो योऽन् तस्याऽकारस्य लोप स्यात्। दध्ना। दध्ने। दध्न। दध्न। दध्नो। दध्नो। दध्नाम्।

पक्ष प्रत्ययलक्षणेन सुत्वमादाय एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धे इति गुणे सति 'हे वारे' इति सिद्ध रूपम्भवति। पक्षे 'हे वारि!' इति।

वारिणे—वारि शब्दात् ङे' विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'शेषो घ्यसखि' इति घिसज्ञाया 'इकोऽचि विभक्तौ' इति नुमागम प्राप्ते, घेर्ङिति' इति गुणे च प्राप्ते, परत्वाद् घेर्ङितीति गुण एव प्राप्त, 'वृद्धयौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वप्रतिषेधेन' इति वार्तिकबलेन पूर्वविप्रतिषेधेन नुमागमे, नकारस्य णत्वे च 'वारिणे' इति सिद्धम्।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
वारि	वारिणी	वारीणि	वारिण	वारिभ्याम्	वारिभ्य
वारि	वारिणी	वारीणि	वारिण	वारिणो	वारिणाम्
वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभि	वारिणि	वारिणो	वारिषु
वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्य	हे वारे!, हे वारि!	हे वारिणी	हे वारीणि!

दध्ना—दधिशब्दात्-टा विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्त' इति अनङि अनुबन्धलोपे, 'दधन् आ' इति स्थिते, 'अल्लोपोऽन' इत्यकारलोपे 'दध्ना' इति सिद्धयति।

इग न अङ्ग स नुम् का आगम होता है।

१—वृद्धि औत्व तृज्वद्भाव और गुण इन सबों की अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध (के नियम) से अर्थात् इनको बाधकर नुम् ही होता है। २—टा आदि अच् (टा आदि अच् इसलिए हैं कि टकारादि की चुटू आदि से इत्संज्ञा हो जाती है, अच् अवशिष्ट रह जाता है, यह नियम सर्वत्र है) पर में रहे तो अस्थि दधि आदि शब्दों के अन्तावयव को अनङ् आदेश होता है और वह उदात्तसंज्ञक होता है। ३—अङ्ग का अवयव सर्वनामस्थान से भिन्न यजादि और स्वादिपरक जो 'अन्' उसके अकार का लोप होता है।

विभाषा ङिश्योः ६।४।१३६ ॥ [1]अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः । दध्नि, दधनि । शेषं वारिवत् । एवमस्थिसक्थ्यक्षि । सुधि । सुधिनी । सुधीनि । हे सुधे, हे सुधि ।

तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य ७।१।७४ ॥ [2]प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद्वा स्याट्टादावचि । सुधिया, सुधिनेत्यादि । मधु । मधुनी । मधूनि । हे मधो, हे मधु । सुलु । सुलुनी ।

दध्नि दधनि—दधि शब्दात् ङौ, अनुबन्धलोपे, 'अस्थिदधि०' इत्यादिना अनङि अनुबन्धलोपे विभाषा ङिश्योः इत्यकारलोपे दध्नि लोपाभावे दधनि इति रूपद्वयं सिद्ध्यति ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
दधि	दधिनी	दधीनि	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
दधि	दधिनी	दधीनि	दध्नि दधनि	दध्नोः	दधिषु
दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः	हे दधे ! हे दधि !	हे दधिनी !	हे दधीनि !
दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः			
दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः			

एवमेव—अस्थि, सक्थि अक्षि—आदि शब्दानामपि रूपाणि बोध्यानि ।

एकव०	द्विव०	बहु०	एकव०	द्विव०	बहु०
सुधि	सुधिनी	सुधीनि	सुधियः सुधिनः	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
सुधि	सुधिनी	सुधीनि	सुधियः सुधिनः	सुधियोः सुधिनोः	सुधियाम् सुधीनाम्
सुधिया सुधिना	सुधिभ्याम्	सुधिभिः	सुधियि सुधिनि	सुधियोः सुधिनोः	सुधिषु
सुधिये सुधिने	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः	हे सुधे ! हे सुधि !	हे सुधिनी !	हे सुधीनि !

१—ङि या शी पर में रहते जो अङ्ग का अवयव यजादि, स्वादि परक जो अन्' उसके अकार का विकल्प से लोप होता है। अस्थि—हड्डी। सक्थि—जङ्घा। अक्षि—आँख। सुधि—बुद्धिमान् कुल। २—प्रवृत्ति का निमित्त (कारण) एक हो तो भाषितपुंस्क (पुल्लिङ्ग में

सुलूनि । सुल्वा, सुलुनेत्यादि । धातृ । धातृणी । धातॄणि । हे धातः, हे धातृ । धात्रा, धातृणा । धातॄणाम् । एवं ज्ञात्रादयः ।

एच इग्घ्रस्वादेशे १।१।४८॥ [1]आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु एचः इगेव स्यात् । प्रद्यु । प्रद्युनी । प्रद्यूनि । प्रद्युनेत्यादि । प्ररि । प्ररिणी । प्ररीणि । प्ररिणा । **एकदेशविकृतमनन्यवत्** । प्रराभ्याम् । प्ररीणाम् । सुनु । सुनुनी । सुनूनि । सुनुनेत्यादि ।

* इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् *

अथ हलन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम् ।

हो ढः ८।२।३१॥ [2]हस्य ढः स्याज्झलि पदान्ते च । लिट्, लिड् । लिहौ । लिहः । लिहा । लिड्भ्याम् । लिट्त्सु, लिट्सु ।

धातृशब्दस्य टा ङसि ङस् ओस्–ङि विभक्तिषु सम्बोधने च विशेषा यथा– धातृणा–धात्रा । धात्रे–धातृणे । धातुः–धातृणः । धात्रोः–धातृणोः । धातरि–धातृणि । हे धातः, हे धातृ । इति ।

इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

लिट्–लिड्–'लिह् आस्वादने' क्विपि, हल्ङ्यादिलोपे, पदान्तत्वाड्ढत्वे 'वाऽवसाने' इति चर्त्वविकल्पः । सपादसप्ताध्यायीस्थकार्यत्वात्प्रथमं हल्ङ्यादिलोपः ।

लिट्त्सु–लिह्–शब्दात् सुपि, अनुबन्धलोपे, 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे, ढकारस्य जश्त्वेन डकारे 'डः सि धुट्' इति धुडागमेऽनुबन्धलोपे, 'खरि च' इति चर्त्वेन धस्य तकारे पुनः 'खरि च' इत्यनेन डस्य टकारे सिद्धं रूपं 'लिट्त्सु' इति । धुडभावे 'लिट्सु' इति ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
लिट् लिड्	लिहौ	लिहः	लिहा	लिड्भ्याम्	लिड्भिः
लिहम्	लिहौ	लिहः	लिहे	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः

कहे गये) इगन्त (इक् हो अन्त में जिसके ऐसे) नपुंसक शब्दस्वरूप को पुंवद्भाव (पुंल्लिङ्ग के समान रूप तथा कार्य) होता है । सुलु–अच्छा काटनेवाला, नाऊ वा मनोहर । धातृ–धारण या पालन पोषण करनेवाला । ज्ञातृ–ज्ञाता कुल । १–आदिश्यमान ह्रस्वों के मध्य में एच् के स्थान में ह्रस्व इक् ही होता है । प्ररि–धनी कुल । सुनु–सुन्दर नौकायुक्त कुल ।

२–झल्परक एवं पदान्त 'हकार' के स्थान में 'ढकार' होता है । लिट्–चाटनेवाला ।

दादेर्धातोर्घः ८ । २ । ३२ ॥ [1]उपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः स्याज्झलि पदान्ते च ।

एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८ । २ । ३७ ॥ [2]धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष् स्यात् से ध्वे पदान्ते च । धुक्, धुग् । दुहौ । दुहः । धुग्भ्याम् । धुक्षु ।

वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ८ । २ । ३३ ॥ एषां हस्य वा घः स्याज्झलि पदान्ते च । ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड् । द्रुहौ । द्रुहः । ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम् । ध्रुक्षु, ध्रुट्सु, ध्रुट्त्सु । एवं—मुक्, मुग्, मुट्, मुड् इत्यादि ।

लिहः	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः	लिहि	लिहोः	लिट्त्सु लिट्सु
लिहः	लिहोः	लिहाम्	हे लिट् ड् !	हे लिहौ !	हे लिहः !

धुक्षु—दुहशब्दात् सुपि, अनुबन्धलोपे, 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घत्वं 'एकाचो-०' इत्यादिना दकारस्य धकारे, 'खरि च' इति चर्त्वेन घस्य ककारे 'आदेशप्रत्यययोः' इति सस्य षकारे, कषसंयोगेन क्षत्वे जाते सिद्धं रूपम् 'धुक्षु' इति ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
धुक् धुग्	दुहौ	दुहः	दुहः	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
दुहम्	दुहौ	दुहः	दुहः	दुहोः	दुहाम्
दुहा	धुग्भ्याम्	धुग्भिः	दुहि	दुहोः	धुक्षु
दुहे	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः	हे धुक्, हे धुग् !	हे दुहौ !	हे दुहः !

ध्रुक्षु—इत्यादि । द्रुह शब्दात्सुप्यनुबन्धलोपे 'वा द्रुह' ० इत्यादिना वैकल्पिकेन हकारस्य घकारे, 'खरि च' इति चर्त्वेन घस्य ककारे, 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे, 'ध्रुक्षु' इति । घकाराभावपक्षे 'होढः' इति हस्य ढत्वे, 'एकाचो ०' इति भष्भावे, 'झलां जशोऽन्ते' इति जश्त्वेन ढस्य डकारे, तस्य चर्त्वे ध्रुट्सु । धुट्पक्षे 'ध्रुट्त्सु' इति त्रीणि रूपाणि भवन्ति ।

एक०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
ध्रुक् ध्रुग् ध्रुट् ध्रुड्	द्रुहौ	द्रुहः	द्रुहा	ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भिः ध्रुड्भिः
द्रुहम्	द्रुहौ	द्रुहः	द्रुहे	ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भ्यः ध्रुड्भ्यः

१—झल् परे या पदान्त में उपदेश अवस्था (प्रथम उच्चारणावस्था) में जो दादि धातु का अवयव हकार उसको घकार होता है । २—सकार या ध्व परे या पदान्त में जो धातु का
5 अवयव एकाच्, झषन्त तदवयव बश को भष्भाव होता है । धुक्—दूहनेवाला । ३—झल्

सुनूनि। सुत्वा, सुनुनेत्यादि। धातृ। धातृणी। धातृणि। हे धातृ, हे धातः। धात्रा, धातृणा। धातृणाम्। एवं ज्ञात्रादयः।

एच इग्घ्रस्वादेशे १।१।४८॥ [1]आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु एच इगेव स्यात्। प्रद्यु। प्रद्युनी। प्रद्यूनि। प्रद्युनेत्यादि। प्ररि। प्ररिणी। प्ररीणि। प्ररिणा। **एकदेशविकृतमनन्यवत्**। प्रराभ्याम्। प्ररीणाम्। सुनु। सुनुनी। सुनूनि। सुनुनेत्यादि।

* इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् *

अथ हलन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम्।

हो ढः ८।२।३१॥ [2]हस्य ढः स्याज्झलि पदान्ते च। लिट्, लिड्। लिहौ। लिहः। लिहा। लिड्भ्याम्। लिट्त्सु, लिट्सु।

धातृशब्दस्य टा ङसि ङस् ओस्–ङि विभक्तिषु सम्बोधने च विशेषा यथा– धातृणा–धात्रा। धात्रे–धातृणे। धातुः–धातृणः। धात्रोः–धातृणोः। धातरि–धातृणि। हे धातः, हे धातृ' इति।

इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

लिट्–लिड्–'लिह आस्वादने' क्विपि, हल्ङ्यादिलोपे, पदान्तत्वाड्ढत्वे, 'वाऽवसाने' इति चर्त्वविकल्पः। सपादसप्ताध्यायीस्थकार्यत्वात्प्रथमं हल्ङ्यादिलोपः।

लिट्त्सु–लिह्–शब्दात् सुपि, अनुबन्धलोपे 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे, ढकारस्य जश्त्वेन डकारे 'ङः सि धुट्' इति धुडागमेऽनुबन्धलोपे, 'खरि च' इति चर्त्वेण धस्य तकारे पुनः 'खरि च' इत्यनेन डस्य टकारे सिद्धं रूपं 'लिट्त्सु' इति। 'धुडभावे लिट्सु' इति।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
लिट् लिड्	लिहौ	लिहः	लिहा	लिड्भ्याम्	लिड्भिः
लिहम्	लिहौ	लिहः	लिहः	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः

कहे गये) इगन्त (इक् हो अन्त में जिसके ऐसे) नपुंसक शब्दस्वरूप को पुंवद्भाव (पुल्लिङ्ग के समान रूप तथा कार्य) होता है। सुलु–अच्छा काटनेवाला नाऊ वा सेनीहर। धातृ–धारण या पालन पोषण करनेवाला। ज्ञातृ–ज्ञानी कुल। १—आदिश्यमान ह्रस्वों के मध्य में एच् के स्थान में ह्रस्व इक् ही होता है। प्ररि–धनी कुल। सुनु–सुन्दर नौकायुक्त कुल।

२—झल्परक एवं पदान्त 'हकार' के स्थान में 'ढकार' होता है। लिट्–चाटनेवाला।

दादेर्धातोर्घः ८ । २ । ३२ ॥ [1]उपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः स्याज्झलि पदान्ते च ।

एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८ । २ । ३७ ॥ [2]धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष् स्यात् से ध्वे पदान्ते च । धुक्, धुग् । दुहौ । दुहः । धुग्भ्याम् । धुक्षु ।

वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ८ । २ । ३३ । एषां हस्य वा घः स्याज्झलि पदान्ते च । ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड् । द्रुहौ । द्रुहः । ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम् । ध्रुक्षु, ध्रुट्सु, ध्रुट्त्सु । एवं–मुक्, मुग्, मुट्, मुड् इत्यादि ।

लिहः	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः	लिहि	लिहोः	लिट्त्सु लिट्सु
लिहः	लिहोः	लिहाम्	हे लिट् ड् !	हे लिहौ !	हे लिहः !

धुक्षु–दुहशब्दात् सुपि अनुबन्धलोपे 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घत्वं 'एकाचो-०' इत्यादिना दकारस्य धकारे, 'खरि च' इति चर्त्वेन घस्य ककारे 'आदेशप्रत्यययोः' इति सस्य षकारे, कषसंयोगेन क्षत्वे जाते सिद्धं रूपम् धुक्षु इति ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
धुक् धुग्	दुहौ	दुहः	दुहः	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
दुहम्	दुहौ	दुहः	दुहः	दुहोः	दुहाम्
दुहा	धुग्भ्याम्	धुग्भिः	दुहि	दुहोः	धुक्षु
दुहे	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः	हे धुक्, हे धुग् !	हे दुहौ !	हे दुहः !

ध्रुक्षु–इत्यादि । द्रुह् शब्दात्सुप्यनुबन्धलोपे 'वा द्रुह' ० इत्यादिना वैकल्पिकेन हकारस्य घकारे, 'खरि च' इति चर्त्वेन घस्य ककारे, 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे, 'ध्रुक्षु' इति । घकाराभावपक्षे 'होढः' इति हस्य ढत्वे, 'एकाचो-०' इति भष्भावे, 'झलां जशोऽन्ते' इति जश्त्वेन ढस्य डकारे, तस्य चर्त्वे ध्रुट्सु । धुटपक्षे 'ध्रुट्त्सु' इति त्रीणि रूपाणि भवन्ति ।

एक०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
ध्रुक् ध्रुग् ध्रुट् ध्रुड्	द्रुहौ	द्रुहः	द्रुहा	ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भिः ध्रुड्भिः
द्रुहम्	द्रुहौ	द्रुहः	द्रुहे	ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भ्यः ध्रुड्भ्यः

१–झल परे या पदान्त मे उपदेश अवस्था (प्रथम उच्चारणावस्था) मे जो दादि धातु का अवयव हकार उसको घकार होता है । २–सकार या ध्व परे या पदान्त मे जो धातु का
5 अवयव एकाच् झषन्त तदवयव बश् को भष्भाव होता है । धुक्–दूहनेवाला ।

धात्वादे ष स ६ । १ । ६४ ॥ [1]धातोरादे पस्य स स्यात् । स्नुक, स्नुग । स्नुट, स्नुड । एव–स्निक, स्निग । स्निट, स्निड । विश्ववाट, विश्ववाड । विश्ववाहौ । विश्ववाह । विश्ववाहम् । विश्ववाहौ ।

इग्यण सम्प्रसारणम १ । १ । ४५ ॥ यण स्थाने प्रयुज्यमानो य इक स सम्प्रसारणसंज्ञ स्यात् ।

वाह ऊठ् ६ । ४ । १३२ ॥ भस्य वाह सम्प्रसारणमूठ स्यात् ।

सम्प्रसारणाच्च ६ । १ । १०८ ॥ [4]सम्प्रसारणादचि परे पूवरूप मेकादेश स्यात् । एत्येधत्यूठ्स्विति वृद्धि । विश्वौह इत्यादि ।

चतुरनडुहोरामुदात्त ७ । १ । ९८ ॥ [5]अनयोराम् स्यात्सवनामस्थाने परे ।

द्रुह	ध्रुग्भ्याम् / ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भ्य / ध्रुड्भ्य	द्रुहि	द्रुहो	ध्रुक्षु ध्रुट्त्सु ध्रुटसु
द्रुह	द्रुहो	द्रुहाम्	हे ध्रुक ! हे ध्रुग् ! हे ध्रुट ! हे ध्रुड !	हे द्रुहो !	हे द्रुह !

एवमेव ष्णुह् ष्णिह शब्दावपि ज्ञेयौ ।

विश्वौह — विश्ववाह –शब्दाच्छसि, 'वाह ऊठ्' इत्यनेन ऊठि, सम्प्रसारणे, 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूवरूपे, 'एत्येधत्यूठसु' इति वृद्धौ, सस्य रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धि ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
विश्ववाट ड	विश्ववाहौ	विश्ववाह	विश्वौह	विश्वौहो	विश्वौहाम्
विश्ववाहम्	विश्ववाहौ	विश्वौह	विश्वौहि	विश्वौहो	विश्ववाटत्सु / विश्ववाटसु
विश्वौहा	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भि			
विश्वौहे	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्य	हे विश्ववाट् !	हे विश्ववाहौ	हे विश्ववाह
विश्वौह	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्य	हे विश्ववाट् !		

पर में हो या पदान्त में जो द्रुह, मुह् , ष्णुह् या ष्णिह् सम्बन्धी हकार उसको घकार विकल्प से होता है । ध्रुक वैर करनेवाला । मुक्–मोहनेवाला ।

१—धातु के आदि के षकार का सकार होता है । स्निक–प्यार करनेवाला । विश्ववाट्–संसार का भार ढोनेवाला । २–यण् के स्थान में प्रयुज्यमान (किया गया) 'इक' सम्प्रसारण संज्ञक होता है । ३—भसंज्ञक वाह् शब्दावयव वकार को ऊठ् सम्प्रसारण होता है । ४—सम्प्रसारण से अच् पर में हो तो पूर्व–पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है । ५—सर्वनामस्थान पर में रहे तो चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् होता है (मित् होने से अन्त्य अच् से पर में होता है) ।

सावनडुहः ७ । १ । ८२ ॥ [1]अस्य नुम् स्यात् सौ परे । अनड्वान् ।

अम् सम्बुद्धौ ७ । १ । ९९ ॥ चतुरनडुहोरम् स्यात् सम्बुद्धौ । हे अनड्वन् । हे अनड्वाहौ । हे अनड्वाहः । अनडुहः । अनडुहा ।

वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ८ । २ । ७२ ॥ सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात्पदान्ते । अनडुद्भ्यामित्यादि । सान्तेति किम् ? विद्वान् । पदान्तेति किम् ? स्रस्तम् । ध्वस्तम् ।

सहेः साडः सः ८ । ३ । ५६ ॥ [4]साडरूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । तुराषाट्, तुराषाड् । तुराषाहौ । तुराषाहः । तुराषाड्भ्यामित्यादि ।

दिव औत् ७ । १ । ८४ ॥ [5]दिविति प्रातिपदिकस्यौत्स्यात्सौ परे । सुद्यौः । सुदिवौ ।

अनड्वान्–अनडुह् शब्दात् सौ 'चतुरनडुहोरामुदात्तः' इति–आमि 'सावनडुहः' इति नुमि, अनुबन्धलोपे 'अनड्वह आन् सु' इति स्थिते विभक्तेरुकारस्य लोपे 'हल्ङ्याब्भ्यो' इत्यादिना सस्य लोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इत्यस्य दृष्ट्या 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति शास्त्रबलेन संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वान्नलोपाभावे 'इको यणचि' इति यणा वकारे कृते तत्सिद्धम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु
अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः	हे अनड्वन् !	हे अनड्वाहौ !	हे अनड्वाहः !
एकव०	द्विव०	बहु०	एकव०	द्विव०	बहुव०
सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः	सुदिवः	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
सुदिवम्	सुदिवौ	सुदिवः	सुदिवः	सुदिवोः	सुदिवाम्
सुदिवा	सुद्युभ्याम्	सुद्युभिः	सुदिवि	सुदिवोः	सुद्युषु
सुदिवे	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः	हे सुद्यौः !	हे सुदिवौ !	हे सुदिवः !

१– सु' विभक्ति पर में रहते अनडुह् शब्द को नुम् का आगम होता है। अनड्वान् बैल। २–सम्बुद्धि पर मे रहते चतुर और अनडुह् शब्द को अम् का आगम होता है। ३–पदान्त मे वर्तमान जो सान्त (सकारान्त) वसु–प्रत्ययान्त तथा स्रंस ध्वंस को दकार होता है। विद्वान्–पण्डित। स्रस्तम्–गिरा पड़ा। ध्वस्तम्–नष्टभ्रष्ट। ४–साड रूप सह के सकार के स्थान मे मूर्धन्य षकार होता है। तुराषाड् इन्द्र। ५–सु परे रहते दिव् शब्द को औकार अन्तादेश होता है (अर्थात् वकार के स्थान मे औकार होता है)। सुद्यौः – अच्छा आकाश।

दिव उत् ६। १। १३१॥ [1]दिवोऽन्तादेश उकार स्यात् पदान्ते। सुद्युभ्यामित्यादि। चत्वार। चतुर। चतुर्भि। चतुर्भ्य। चतुर्भ्य।

षट्चतुर्भ्यश्च ७। १। ५५॥ [2]षटसज्ञकेभ्यश्चतुरश्च परस्याऽऽमो नुडागम स्यात्।

रषाभ्या नो ण समानपदे ८। ४। १॥ [[3]रेफषकाराभ्या परस्य नस्य ण स्यादेकपदे]।

अचो रहाभ्या द्वे ८। ४। ४६॥ [4]अच पराभ्या रेफहकाराभ्या परस्य यरो द्वे वा स्त। चतुर्ण्णाम्। चतुर्णाम्।

रो सुपि ८। ३। १६॥ [5]सप्तमीबहुवचने रोरेव विसजनीयो नान्य रेफस्य। षत्वम्। षस्य द्वित्वे प्राप्ते।

शरोऽचि ८। ४। ४९॥ [6]अचि परे शरो न द्वे स्त। चतुर्षु।

मो नो धातो ८। २। ६४॥ [7]धातोमस्य न स्यात् पदान्ते। प्रशान्।

किम क ७। २। १०३॥ [8]किम क स्याद्विभक्तौ। क। कौ।

चतुर्णाम—चतुर्शब्दात् आमि, 'षटचतुर्भ्यश्च' इति नुडागमे अनुबन्धलोपे, 'रषाभ्या नो ण समानपदे' इति नस्य णत्वे, अचो रहाभ्यां द्वे' इति णकारस्य द्वित्वपक्षे चतुर्ण्णाम्, द्वित्वाभावे तु 'चतुर्णाम्' इति रूपद्वय भवति।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
क	कौ	के	कस्मात् द	काभ्याम्	केभ्य
कम्	कौ	कान्			
केन	काभ्याम्	कै	कस्य	कयो	केषाम्
कस्मै	काभ्याम्	केभ्य	कस्मिन्	कयो	केषु

त्यदादीना सम्बोधन नास्तीत्युत्सग (पूर्वमेवोक्त)।

१—पदान्त में स्थित दिव् शब्द के वकार के स्थान में उकार अन्तादेश होता है। २—षट संज्ञक शब्दों से और चतुर् शब्द से परे आम् को नुट् का आगम होता है। ३—समानपद (एक पद) मे स्थित रेफ और षकार से परे जो नकार उसको णकार होता है। ४—अच से पर मे स्थित रेफ या हकार से परे यर् को विकल्प से द्वित्व होता है। ५—सप्तमी का बहुवचन सुप् पर मे रहे तो रु के ही रेफ का विसर्ग होता है, अन्य रेफ का नहीं। ६—'अच' पर में रहे तो शर्' को द्वित्व नहीं होता। ७—पदान्त में स्थित धातु सम्बन्धी मकार को नकार होता है। प्रशान्–शान्त। ८—विभक्ति पर में रहे तो 'किम्' के स्थान में 'क' आदेश होता है। क –कौन।

के। [कम्। कौ। कान्] इत्यादि। शेष सववत्।

इदमो म ७। २। १०८॥ [1]इदमो दस्य म स्यात् सौ परे। त्यदाद्यत्वापवाद।

इदोऽय् पुसि ७। २। १११॥ [2]इदम इदोऽय् स्यात् सौ पुसि। [मोर्ऽपि]। अयम्। त्यदाद्यत्वे।

अतो गुणे ६। १। ९७॥ [3]अपदान्तादतो गुणे परत पररूपमेकादेश स्यात्।

दश्च ७। २। १०९॥ [4]इदमो दस्य म स्याद्विभक्तौ। इमौ। इमे। त्यदादे सम्बोधन नास्तीत्युत्सर्ग।

अनाप्यक ७। २। ११२॥ [5]अककारस्येदम इदोऽन् स्यादापि विभक्तौ। आविति प्रत्याहार। अनेन।

हलि लोप ७। २। ११३॥ [6]अककारस्येदम इदो लोप स्यादापि हलादौ। [7]**नाऽनर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे।**

आद्यन्तवदेकस्मिन् १। २। २१॥ [8]एकस्मिन्क्रियमाण कार्यमादाविवान्त इव स्यात्। सुपि चेति दीर्घ। आभ्याम्।

अनेन—इदम् शब्दात्–टा विभक्तौ त्यदादीनाम इत्यत्वे पररूपे, अनाप्यक इति इद्भागस्यानादेशे अतो गुणे' इति पररूपे, टाङसिङसामिनात्स्या' इति टा–स्थानेऽनादेशे गुणे कृत अनेन' इति सिद्ध भवति।

ना थके—अनर्थकेऽला यसूत्र न प्रवर्तते, अभ्यासविकारे तु–अनर्थके प्रवर्तते। यथा बिभर्ति—इति।

आभ्याम—इदम् शब्दात् भ्यामि, त्यदाद्यत्व पररूपे च कृते हलि लोप'

१—'सु' विभक्ति परे में रहते तो इदम् के दकार को मकार होना है (त्यदाद्यत्व का बाधक सूत्र है)। २—'सु' विभक्ति परे में हो तो 'इदम्' शब्दावयव इद् को 'अय' आदेश होता है। अयम्–यह। ३—पदान्तभिन्न अकार से गुण परे में रहे तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है। ४—विभक्ति परे में रहे तो इदम् के दकार को मकार होता है। इमौ–ये दोनों। इमे–ये सब। ५–आप् (अर्थात् तृतीया के टा से सुप् तक की कोई विभक्ति) परे में रहते तो ककाररहित इदम् शब्द के 'इद्' के स्थान में अन् आदेश होता है। ६—हलादि आप् (तृतीयादि) विभक्ति परे में रहे तो ककार रहित 'इदम्' शब्द के इद् का लोप होता है। ७—अभ्यास के विकार (रूपान्तरोत्पत्ति) को छोड़कर अनर्थक में अलोऽन्त्यस्य सूत्रादिष्ट विधि नहीं होती है। ८—एक (असहाय) के विषय में किया जाने वाला कार्य आदि की तरह और अन्त की तरह होता है।

नेदमदसोरको ७ । १ । ११ ॥ [1]अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न स्यात् । एभि । अस्मै । [आभ्याम्] । एभ्य । अस्मात् । [आभ्याम् । एभ्य] । अस्य । अनयो । एषाम् । अस्मिन् । अनयो । एषु ।

द्वितीयाटौस्स्वेन २ । ४ । ३४ ॥ [2]द्वितीयायां टौसोश्च परत इदमेतदोरेनादेश स्यादन्वादेशे । किञ्चित्कार्य विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तर विधातु पुनरुपादानम[3]न्वादेश । यथा अनेन व्याकरणमधीतमेन छन्दोऽध्यापयति । अनयो पवित्र कुलमेनयो प्रभूत स्वमिति । एनम् । एनौ । एनान् । एनेन । एनयो । एनयो । राजा ।

न ङिसम्बुद्ध्यो ८ । २ । ८ ॥ [4]नस्य लपो न स्यान्ङौ सम्बुद्धौ च । हे राजन् । ❀[5]**ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्य ।** ब्रह्मनिष्ठ । राजानौ । राजान । राज्ञ ।

इतीदमागस्य लोपे प्राप्ते 'अलोऽन्त्यस्य' इति बलेनान्त्यस्यैव स्यादित्याशङ्कायां नानर्थके लोन्त्यविधिरिति नियमेनालोन्त्यस्याप्राप्तौ—इद्भागस्य लोपे, अवशिष्टा कारस्य 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' इति सहकारेण सुपि चेति दीर्घे सिद्धम् आभ्यामिति ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
अयम्	इमौ	इमे	अस्मात् / अस्माद्	आभ्याम्	एभ्य
इमम्	इमौ	इमान्			
अनेन	आभ्याम्	एभि	अस्य	अनयो	एषाम्
अस्मै	आभ्याम्	एभ्य	अस्मिन्	अनयो	एषु

अन्वादेशे—अमौटछसटा—ओस विभक्तिषु भिन्नान्यपि रूपाणि—

एनम्, एनौ, एनान्, एनेन, एनयो , एनयो ।

१—ककार रहित इदम् और अदस शब्द से पर मे जो भिस उसका ऐस आदेश नहीं होता । २—द्वितीया विभक्ति या टा या ओस पर मे रहे तो इदम् और एतद शब्द के स्थान मे एन आदेश होता है अन्वादेश में । ३—अनु पश्चाद् आदेश –अन्वादेश । किसी कार्य के करने में किसी को प्रवृत्त करा दिया जाय (और वह उसमे लग गया हो) फिर उसी को अन्य कार्य के लिए आज्ञा देने का नाम अन्वादेश है । जैसे—इसने व्याकरण पढ लिया इसको छन्द शास्त्र पढाओ । ४—ङि या सम्बुद्धि पर मे रहे तो नकार का लोप नहीं होता है । ५—जिस ङि विभक्ति से पर में कोई पद (उत्तरपद) हो ऐसी ङि विभक्ति पर मे रहे तो नकारलोपक निषेध का प्रतिषेध कहना चाहिये । अर्थात् 'न ङिसम्बुद्ध्यो' निषेध नहीं होता किन्तु लोप ही हो जाता है । ब्रह्मनिष्ठ –ब्रह्म ईश्वर में प्रेम करनेवाला ।

नलोप सुप्स्वरसञ्ज्ञातुग्विधिषु कृति ८ । २ । २ ॥ [1]सुब्विधौ स्वर-विधौ सञ्ज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र—राजाश्व इत्यादौ । इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वञ्च न । राजभ्याम् । राजभि । राजभ्य । राज्ञि, राजनि । राजसु । यज्वा । यज्वानौ । यज्वान ।

न सयोगाद्वमन्तात् ६ । ४ । १३७ ॥ [2]वकारमकारान्तसयोगात्परस्या-ऽनोऽकारस्य लोपो न स्यात् । यज्वन । यज्वना । यज्वभ्याम् । ब्रह्मण । ब्रह्मणा ।

इन्हन्पूषाऽर्यम्णा शौ ६ । ४ । १२ ॥ [3]एषा शावेवोपधाया दीर्घो नाऽन्यत्र । इति निषेधे प्राप्ते ।

आत्वमेत्वमैस्त्व च न—राजभ्यामित्यत्रात्वम् । राजभिरित्यत्रत्वम् । राजभ्य इत्यत्रैस्त्व च नेत्यथ ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
राजा	राजानौ	राजान	राज्ञ	राजभ्याम्	राजभ्य
राजानम्	राजानौ	राज्ञ	राज्ञ	राज्ञो	राज्ञाम्
राज्ञा	राजभ्याम्	राजभि	राज्ञि, राजनि	राज्ञो	राजसु
राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्य	हे राजन् !	हे राजानौ !	हे राजान !

यज्वन—यज्वन्–शब्दात् प्रातिपदिकत्वेन शसि अनुबन्धलोपे, यचि भम्'—इति मत्वेन '**भल्लोपोऽन** इत्यनोऽकारस्य लोपे प्राप्ते **न सयोगाद् वमन्तात्**' इति निषेधे, शकारस्य रुत्वे विसर्गे च कृते 'यज्वन ' इति ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
यज्वा	यज्वानौ	यज्वान	यज्वन	यज्वभ्याम्	यज्वभ्य
यज्वानम्	यज्वानौ	यज्वन	यज्वन	यज्वनो	यज्वनाम्
यज्वना	यज्वभ्याम्	यज्वभि	यज्वनि	यज्वनो	यज्वसु
यज्वने	यज्वभ्याम्	यज्वभ्य	हे यज्वन् !	हे यज्वानौ !	हे यज्वान

एवमेव ब्रह्मन्–शब्दस्यापि बोध्यानि ।

१—सुप्–विधि, स्वर–विधि, सज्ञा–विधि और कृत्–प्रत्यय सम्बन्धी तुग्–विधि मे भी नकार का लोप असिद्ध होता है किन्तु अन्यत्र नहीं । यज्वा—यज्ञकर्ता । २—वकारान्त मकारान्त संयोग से पर जो 'अन्'–सम्बन्धी अकार उसका लोप नहीं होता है । ३—केवल 'शि' पर में हो तो इन्, हन्, पूषन् और अर्यमन् शब्दों की उपधा को दीर्घ होता है अन्यत्र नहीं ।

सौ च ६ । ४ । १३ ॥ [1]इन्नादीनामुपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सौ परे । वृत्रहा । हे वृत्रहन् ।

एकाजुत्तरपदे णः ८ । ४ । १२ ॥ [2]एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन्समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णः स्यात् । वृत्रहणौ ।

हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ७ । ३ । ५४ ॥ [3]ञिति णिति च प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वं स्यात् । वृत्रघ्नः—इत्यादि । एवं शार्ङ्गिन् । यशस्विन् । अर्यमन् । पूषन् ।

मघवा बहुलम् ६ । ४ । १२८ ॥ [4]मघवन्शब्दस्य वा 'तृ' इत्यन्तादेशः स्यात् । ऋ इत् ।

उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७ । १ । ७० ॥ [5]अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतश्च नुमागमः स्यात्सर्वनामस्थाने परे । मघवान् । मघवन्तौ ।

वृत्रघ्नः—वृत्रहन् शब्दात्–शसि–अनुबन्धलोपे 'अल्लोपोऽनः' इति हकारोत्तरवर्त्यकारस्य लोपे 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' इति हस्य घकारे सस्य रुत्वं विसर्गे च कृते वृत्रघ्नः इति सिद्धम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः	वृत्रघ्नः	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
वृत्रहणम्	वृत्रहणौ	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः	वृत्रघ्नि, वृत्रहणि	वृत्रघ्नोः	वृत्रहसु
वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः	हे वृत्रहन् !	हे वृत्रहणौ !	हे वृत्रहणः !

एवमेव शार्ङ्गिन् यशस्विन् अर्यमन् पूषन् शब्दानामपि रूपाणि ज्ञेयानि ।

मघवान्, मघवा—मघवन्–शब्दात् सौ 'मघवा बहुलम्' इति 'तृ' अन्तादेशे 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' इति नुमि अनुबन्धलोपे हल्ङ्याब्भ्यो सुलोपे

१—सम्बुद्धि निमित्तक 'सु' परे रहे तो इन् हन् आदि की उपधा को दीर्घ होता है । वृत्रहा–इन्द्र । २—एक अच् है उत्तरपद में जिसके ऐसे समास के पूर्वपद में स्थित जो निमित्त (रेफ षकार) उससे परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकार होता है समानपद (एकपद) में । ३—ञित् (ञकार इत्संज्ञक) णित् (णकार इत्संज्ञक) प्रत्यय परे रहे या नकार परे हो तो हन् धातु के हकार को कुत्व होता है । शार्ङ्गी–धनुधारी भगवान् । अर्यमा देवविशेष । पूषा–सूर्य । ४—मघवन् शब्द को विकल्प से 'तृ' अन्तादेश होता है । ५—सर्वनामस्थान–संज्ञक कोई विभक्ति परे रहे तो धातु से भिन्न

मघवन्त । हे मघवन् । मघवद्भ्याम् । तृत्वाऽभावे मघवा । सुटि–राजवत् ।

श्वयुवमघोनामतद्धिते ६ । ४ । १३३ ॥ [1]अन्नन्ताना भसञ्ज्ञकानामेषा-मतद्धिते परे सम्प्रसारण स्यात् । मघोन । मघवभ्याम् । एव श्वन् । युवन् ।

न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम ६ । १ । ३७ ॥ [2]सम्प्रसारणे परत पूर्वस्य यण सम्प्रसारण न स्यात् । इति यकारस्य नेत्वम् । अत एव ज्ञापकादन्त्यस्य यण पूव सम्प्रसारणम् । यून । यूना । युवभ्याम् इत्यादि ।

'सयोगा तस्य लोप' इति तकारलोपे तस्य च बहुलग्रहणादसिद्धत्वाभावेन 'सव नामस्थाने चासम्बुद्धौ' इति दीर्घे 'मघवान्' इति । तृत्वाभावे तु नलोपेन मघवा' इति सिद्ध्यति ।

मघोन –मघवन्–शब्दाच्छसि अनुब धलोपे, श्वयवमघोनामतद्धिते' इति सम्प्र सारणे सम्प्रसारणाच्चेति पूवरूपे, आद् गुण ' इति गुणे, तस्य रुत्वे विसर्गे च मघोन इति ।

मघवन् श०दस्य तृत्वे, तृत्वाभावे च सवविभक्तिषु रूपाणि भवन्ति ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्त	मघवा	मघवानौ	मघवान
मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवत	मघवानम्	मघवानौ	मघोन
मघवना	मघवद्भ्याम्	मघवद्भि	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभि
मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्य	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्य
मघवत	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्य	मघोन	मघवभ्याम्	मघवभ्य
मघवत	मघवतो	मघवताम्	मघोन	मघोनो	मघोनाम्
मघवति	मघवतो	मघवत्सु	मघोनि	मघोनो	मघवसु
हे मघवन् !	हे मघवन्तौ !	हे मघवन्त !	हे मघवन् !	हे मघवानौ !	हे मघवान !

एव श्वन् युवन् श०दयोरपि रूपाणि । तथाहि—श्वा श्वानौ, श्वान । श्वानम्, श्वानौ शुन । शुना, श्वभ्याम् इत्यादि ।

युवा, युवानौ, युवान । युवानम्, युवानौ यून । यूना, युवभ्याम् युवभि । यूने इत्यादि बोध्यम् ।

यून —युवन् शब्दाच्छसि–अनुब धलोपे, 'युवन्–अस्' इति स्थिते, 'श्वयुवम-

---

उगित् और नलोपी अञ्च धातु से नुम् का आगम होता है । मघवान्–इन्द्र ।

१—तद्धित से भिन्न प्रत्यय पर में रहे तो अन्नन्त भसञ्ज्ञक श्वन्, युवन्, मघवन् शब्दों (शब्दनिष्ठ वकारों) को सम्प्रसारण होता है । श्वा–कुत्ता । युवा–युवक । २—सम्प्रसारण

अर्वा। हे अर्वन्।

अर्वणस्त्रसावनञः ६।४।१२७॥ [1]नञा रहितस्याऽर्वन्नित्यस्याऽङ्गस्य 'तृ' इत्यन्तादेशः स्यात् सौ। अर्वन्तौ। अर्वन्तः। अर्वद्भ्यामित्यादि।

पथिमथ्यृभुक्षामात् ७।१।८५॥ [2]एषामाकारः स्यात् सौ परे।

इतोऽत्सर्वनामस्थाने ७।१।८६॥ [3]पथ्यादेरिकारस्याऽकारः स्यात्सर्वनामस्थाने परे।

थो न्थः ७।१।८७॥ [4]पथिमथोस्थस्य न्थादेशः स्यात् सर्वनामस्थाने परे। पन्थाः। पन्थानौ। पन्थानः।

भस्य टेर्लोपः ७।१।८८॥ [5]भसञ्ज्ञकस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात्। पथः। पथा। पथिभ्याम्। एवं मथिन्। ऋभुक्षिन्।

घोनामतद्धिते' इति वकारस्य सम्प्रसारणे सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपे, 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घे, 'यून्–अस्' इत्यवस्थायां पुनः यकारस्य रुत्वे प्राप्तस्य सम्प्रसारणस्य न 'सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' इति निषेधे, रुत्वे विसर्गे च यूनः इति सिद्धम्।

पन्थाः—पथिन्–शब्दात्सौ 'पथिमथ्यृभुक्षामात्' इति नकारस्यात्वे, 'इतोऽत्सर्वनामस्थाने' इति थकारोत्तरनिष्ठ–इकारस्य अकारे, 'थो न्थः' इति थस्य न्थादेशे, 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घे सकारस्य रुत्वे विसर्गे च पन्थाः इति सिद्धम्।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पन्थानम्	पन्थानौ	पथः	पथः	पथोः	पथाम्
पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः	पथि	पथोः	पथिषु
पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः	हे पन्थाः!	हे पन्थानौ!	हे पन्थानः

एवं मथिन्, ऋभुक्षिन् आदि शब्दानामपि रूपाणि बोध्यानि।

पर में हो तो पूर्व यण को सम्प्रसारण नहीं होता है। अर्वा–घोड़ा।

१–'सु' विभक्ति को छोड़कर (अन्यत्र) नञ् रहित 'अर्वन्' शब्द को 'तृ' अन्तादेश होता है। २–'सु' विभक्ति पर में पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दों का आकार अन्तादेश होता है। ३—सर्वनामस्थानसंज्ञक विभक्ति पर में रहे तो पथिन् आदि शब्दों के इकार को अकार अन्तादेश होता है। ४—सर्वनामस्थान विभक्ति पर में रहे तो पथिन् और मथिन् के 'थकार' के स्थान में '–न्थ' आदेश होता है। पन्था–रास्ता। ५—भसंज्ञा वाले पथिन् आदि शब्दों की 'टि' (अन्त्य अच्) का लोप होता है। मन्था—मथनी, 'रई'। ऋभुक्षा–इन्द्र।

ष्णान्ता षट् १ । १ । २४ ॥ [1]षान्ता नान्ता च सङ्ख्या षट्सञ्ज्ञा स्यात् । पञ्चन्शब्दो नित्य बहुवचनान्त । पञ्च । पञ्च । पञ्चभि । पञ्चभ्य । पञ्चभ्य । नुट ।

नोपधाया ६ । ४ । ७ ॥ नान्तस्योपधाया दीर्घ स्यादामि परे । पञ्चानाम् । पञ्चसु ।

अष्टन आ विभक्तौ ७ । २ । ८४ ॥ [3]अष्टन आत्व वा स्याद्धलादौ विभक्तौ ।

अष्टाभ्य औश् ७ । १ । २१ ॥ [4]कृताऽऽकारादष्टन परयोजश्शसोरौश् स्यात । 'अष्टभ्य' इति वक्तव्ये कृताऽऽत्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्व ज्ञापयति । अष्टौ । अष्टौ । अष्टाभि । अष्टाभ्य । अष्टाभ्य । अष्टानाम् । अष्टासु । आत्वाऽभावे अष्ट, अष्ट इत्यादि पञ्चवत ।

ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चाञ्च ३ । २ । ५९ ॥ [5]एभ्य क्विन् स्यात, अञ्चे सुप्युपपदे, युजिक्रुञ्चो केवलयो । क्रुञ्चेर्नलोपाऽभावश्च निपात्यते । कनावितौ ।

अष्टौ—अष्टन्-शब्दात् जसि अष्टन आ विभक्तौ' इत्यात्वे, अष्ट + आ + जस इति स्थिते 'अक सवर्णे दीघ ' इति दीर्घे अष्टाभ्य औश इति जस औशि अनुबन्धलोपे वृद्धिरेचि इति वृद्धौ कृताया तत्सिद्धि ।

अष्टानाम—अष्टन् शब्दाद् आमि ष्णान्ता षट' इति षट्सञ्ज्ञा, षट्चतुर्भ्यश्चेति नुडागमे अनुबन्धलोपे 'नोपधाया इत्युपधादीर्घे, नलोप प्रातिपदिकान्तस्येति नकारलोपे अष्टानाम्' इति ।

प्र०	द्वि०	तृ०
अष्टौ (अष्ट)	अष्टौ (अष्ट)	अष्टाभि (अष्टभि)

च०	प०	ष०	स०	स०
अष्टाभ्य अष्टभ्य	अष्टाभ्य अष्टभ्य	अष्टानाम्	अष्टासु अष्टसु	हे अष्टौ ! हे अष्ट !

१—षान्त (षकारान्त) और नान्त (नकारान्त) जो संख्यावाची शब्द उनकी षट्-संज्ञा होती है। पञ्च—पाँच। २—नाम् पर मे रहे तो नान्त पद की उपधा को दीर्घ होता है। ३—हलादि विभक्ति पर में रहे तो विकल्प मे अष्टन् शब्द को आत्व होता है। ४—कर दिया गया है आकार जिसको ऐसे अष्टन् शब्द से परे जस् और शस के स्थान मे औश आदेश होता है। ५—ऋत्विक, दधृक् स्रक, दिक उष्णिक् अञ्चु, युजि और क्रुञ्च से क्विन् प्रत्यय होता है। सुप (सुबन्त) उपपद (पद के समीप) रहे तो अञ्चु धातु से, और केवल युज्,

कृदतिङ् ३ । १ । ९३ ॥ [1]अत्र सन्निहिते धात्वधिकारे तिङभिन्न प्रत्यय कृत्सज्ञ स्यात ।

वेरपृक्तस्य ६ । १ । ६७ ॥ [2]अपृक्तस्य वस्य लोप स्यात ।

क्विन्प्रत्ययस्य कु ८ । २ । ६२ ॥ क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गो ऽन्तादेश स्यात पदान्ते । अस्याऽसिद्धत्वाच्चो कुरिति कुत्वम् । ऋत्विक, ऋत्विग । ऋत्विजौ । [ऋत्विज] । ऋत्विग्भ्याम् ।

युजेरसमासे ७ । १ । ७१ ॥ [4]युजे सवनामस्थाने नुम् स्यादसमासे । सुलोप । सयोगान्तलोप । कुत्वेन नस्य ङ । युङ । अनुस्वारपरसवर्णौ । युञ्जौ । युञ्ज । युग्भ्याम् ।

ऋत्विक—ऋतु उपपद यज् धातो 'ऋत्विग्दधक्–' इत्यादिना क्विनि, अनुबन्धलोपे इकारस्योच्चारणार्थकत्वे यण सम्प्रसारणे यणि वेरपृक्तस्येति वस्य लोपे कृदतिङ इति कृत्सज्ञाया कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सौ उकारलोपे हल्ङयादिना सोर्लोपे, 'क्वि प्रत्ययस्य कु इति कुत्वस्यासिद्धत्वात् चो कुरिति कुत्वेन गकारे, वाऽवसाने इति चत्वविकल्पेन 'ऋत्विक—ऋत्विग इति सिद्धयत ।

ऋत्विक ग्	ऋत्विजौ	ऋत्विज
ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विज
ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्—	इत्यादि ।

युङ—युज् धातो ऋत्विग्दधक इत्यादिना क्विनि अनुबन्धलोप वेरपृक्तस्य इति वकारलोपे युज शब्दात् सौ उकारलोपे 'युजेरसमासे इति नुमि उमावितौ लोपे च, हल्ङयादिना—सोर्लोपे 'सयोगान्तस्य लोप' इति जलोपे, 'क्वि प्रत्ययस्य कु' इति नकारस्य कुत्वेन ङकारे 'युङ इति सिद्धम् ।

क्रुञ्च् से भी क्विन् प्रत्यय होता है और क्रुञ्च धातु मे रहनेवाले न' के लोप का अभाव भी निपातन से करते हैं ।

१—यहाँ सन्निकटस्थ धात्वधिकार (धातो सूत्र के अधिकार) में पढ़े गये तिङ्-भिन्न प्रत्ययों का कृत्-संज्ञा होती है । २—अपृक्त संज्ञक वकार का लोप होता है । ३—क्विन् प्रत्यय जिससे किया जाय, उसको कवर्ग अन्तादेश होता है पदान्त में । ४—समास को छोड़कर (अन्यत्र) सर्वनामस्थानसंज्ञक विभक्ति पर में रहे तो युज् धातु से नुम् होता है । युङ्–योगी ।

चो कु ८ । २ । ३० ॥ [1]चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च । सुयुक्, सुयुग् । सुयुजौ । सुयुग्भ्याम् । खन् । खञ्जौ । खन्भ्याम् ।

व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ८ । २ । ३६ ॥ [2]व्रश्चादीनां सप्तानां छशान्तयोश्च षकारोऽन्तादेशः स्यात् झलि पदान्ते च । जश्त्व चर्त्वे । राट्, राड् । राजौ । राजः । राड्भ्याम् । एवं विभ्राट् । देवेट् । विश्वसृट् । ॐ**परौ व्रजेः षः पदान्ते ।** [3]परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्याद्दीर्घश्च । पदान्ते षत्वमपि । परिव्राट् । परिव्राजौ ।

विश्वस्य वसुराटोः ६ । ३ । १२८ ॥ [4]विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशः स्याद्वसौ राट्शब्दे च परे । विश्वाराट्, विश्वाराड् । विश्वराजौ । विश्वाराड्भ्याम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
युङ्	युञ्जौ	युञ्जः	युजः	युग्भ्याम्	युग्भ्यः
युञ्जम्	युञ्जौ	युजः	युजः	युजोः	युजाम्
युजा	युग्भ्याम्	युग्भिः	युजि	युजोः	युक्षु
युजे	युग्भ्याम्	युग्भ्यः	हे युङ् !	हे युञ्जौ !	हे युञ्जः !

एवं सुयुक्-ग्, सुयुजौ, सुयुजः —इत्यादीनामपि रूपाणि ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
राट्-ड्	राजौ	राजः	राजः	राड्भ्याम्	राड्भ्यः
राजम्	राजौ	राजः	राजः	राजोः	राजाम्
राजा	राड्भ्याम्	राड्भिः	राजि	राजोः	राट्त्सु राट्सु
राजे	राड्भ्याम्	राड्भ्यः	हे राट्-ड् !	हे राजौ !	हे राजः !

राड्वत् विभ्राट्, देवेट्, विश्वसृट्, विश्वाराट्, परिव्राट्-शब्दा ज्ञेयाः ।

१—झल् प्रत्याहार पर में हो या पदान्त मे स्थित जो चवर्ग उसको कवर्ग आदेश होता है। सुयुक्–सुयोगी। खन्–लँगडा। २—झल (प्रत्याहार) पर मे हो या पदान्त में वर्तमान, व्रश्च आदि सातों को तथा छकारान्तों को एवं शकारान्तों को षकार अन्तादेश होता है। राट्–राजा। विभ्राट्–अत्यन्त शोभायुक्त। देवेट्–देवपूजक। विश्वसृट्–ब्रह्मा, संसार के सृष्टिकर्ता। ३—परि उपपद व्रज् धातु से क्विप् प्रत्यय और दीर्घ भी होता है एवं पदान्त मे षत्व भी होता है। परिव्राट्–संन्यासी। ४–वसु या राट् शब्द पर मे रहे तो विश्व शब्द को दीर्घ अन्तादेश होता है। विश्वाराट्–विश्वप्रकाशक, सूर्य।

स्को संयोगाद्योरन्ते च ८ । २ । २९ ॥ [1]पदान्ते झलि च परे य संयोगस्तदाद्यो सकारककारयोर्लोप स्यात । भृट । सस्य श्चुत्वेन श । झलाञ्जश झशीति शस्य ज । भृज्जो । भृड्भ्याम् । त्यदाद्यत्व च ।

तदो स सावनन्त्यो ७ । २ । १०६ ॥ [2]त्यदादीना तकारदकार योरनन्त्ययो स स्यात्सौ । स्य । त्यौ । त्ये । स । तो । ते । य । यो । ये । एष । एतौ । एते ।

ङे प्रथमयोरम ७ । १ । २८ ॥ [3]युष्मदस्मद्भ्या परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चाऽमादेश स्यात् ।

त्वाहौ सौ ७ । २ । ९४ ॥ [4]अनयोमपर्यन्तस्य त्वाहावादेशौ स्त सौ परे ।

शेषे लोप ७ । २ । ९० ॥ [5]आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तो परतो युष्मदस्मदोरन्त्यस्य लोप स्यात । त्वम् । अहम् ।

भट भड—भृस्ज सु इति दशाया हल्ङयादिना सालोंपे स्को —० इत्यादिना सकारलोपे व्रश्च–०' इत्यादिना षकारे, झला–जशाऽन्ते' इति जश्त्वे 'वाऽवसाने इति चर्त्वविकल्पे, भृट्, भृड इति रूपद्वय सिद्धम् ।

भृट भृड, भृज्जौ, भृज्ज । भृज्जम्, भृज्जौ, भृज्ज । भृजा इत्यादि ।

त्यद् शब्दस्य—स्य, त्यौ, त्ये । त्यम्, त्यौ, त्यान्—इत्यादि रामवत् ।

तद्-शब्दस्य—

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
स	तौ	ते	तस्मात् द	ताभ्याम्	तेभ्य
तम्	तौ	तान्	तस्य	तयो	तेषाम्
तेन	ताभ्याम्	त	तस्मिन्	तयो	तेषु
तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्य	त्यदादे सम्बोधन नास्ति इति स्मर ।		

य यौ, ये । यम्, यौ यान् । येन, याभ्या, यै —इत्यादि तद्वत् ।

१—पदान्त मे स्थित या झल् हो पर मे जिसके ऐसा जो 'संयोग' उसके आदि के सकार और ककार का लोप होता है । २—'सु' विभक्ति पर में हो तो त्यदादियों के अनन्त्य (अर्थात् अन्त्य मे नहीं ऐसे) तकार, एवं दकार को सकार होता है । स्य, स –वह । य –जो । एष –यह । ३–युष्मद् और अस्मद् शब्द से पर मे जो ङे और प्रथमा द्वितीया विभक्ति उसको अम् आदेश होता है । ४—'सु' विभक्ति पर मे रहे तो युष्मद्, अस्मद् के मपर्यं त (युष्म, अस्म) को (क्रम से) 'त्व' 'अह' आदेश होते हैं । ५—आत्व या यत्व के निमित्त से भिन्न 'विभक्ति' पर में रहे तो युष्मद्, अस्मद् शब्द के अन्त भाग का लोप होता है । त्वम्–तू । अहम्–मैं ।

युवावौ द्विवचने ७ । २ । ९२ ॥ [1]द्वयोरुक्तौ युष्मदस्मदोमपयन्तस्य युवावौ स्ता विभक्तौ ।

प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७ । २ । ८८ ॥ [2]ओडयेतयोरात्व लोके । युवाम् । आवाम् ।

यूयवयौ जसि ७ । २ । ९३ ॥ [3]अनयोमपयन्यस्य यूयवयौ स्तो जसि । यूयम् । वयम् ।

त्वमावेकवचने ७ । २ । ९७ ॥ [4]एकस्योक्तौ युष्मदस्मदोमपयन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ।

द्वितीयाया च ७।२।८७ ॥ [5]अनयोरात्स्यात् [द्वितीयायाम्]। त्वाम् । माम् ।

शसो न ७ । १ । २९ ॥ [6]आभ्या परस्य शसो न स्यात । अमोऽपवाद । आदे परस्य । सयोगान्तलोप । युष्मान् । अस्मान् ।

योऽचि ७ । २ । ८९ ॥ [7]अनयोयकारादेश स्यादनादेशेऽजादौ परत । त्वया । मया ।

आवाम—अस्मद् शब्दात् औ विमक्तौ 'ङे प्रथमयोरम्' इत्यमादेशे, 'युवावौ द्विवचने' इति मपयन्तस्य 'आव' आदेशे, अतो गुणे, पररूपे 'प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्' इति दस्यात्वे, 'अक सवर्णे दीघ' इति दीर्घे, 'अमि पूव' इति पूवरूपे 'आवाम्' इति । युवादेशे 'युवाम्' इति ।

युष्मान्—युष्मच्छब्दाच्छसि 'द्वितीयायाञ्च' इति आत्वे दीर्घे च 'युष्मा अस' इति स्थिते, 'आदे परस्ये'ति साहाय्येन 'शसो न' इति शसोऽकारस्य नकारे, सकारस्य च सयोगान्तलोपे, 'युष्मान् इति सिद्धम् ।

त्वया—युष्मद् शब्दात् 'टा विभक्तौ, अनुब धलोपे 'त्वमावेकवचने' मपयस्य त्वादेशे, 'योऽचि' इति यकारादेशे सिद्धम 'त्वया' इति ।

१—द्वित्व की उक्ति (दो व्यक्तियों की प्रतिपादनेच्छा) मे विभक्ति पर रहे तो युष्मद शब्द को युव और अस्मद् शब्द को आव आदेश होता है । २—प्रथमा का द्विवचन पर रहे तो युष्मद्, अस्मद् शब्द को आकार अन्तादेश होता है भाषा (लोक) मे । ३—जस (विभक्ति) पर रहे तो युष्मद् अस्मद् के मपर्य त को (क्रम से) यूय, वय आदेश होते हैं । ४—एकत्व की विवक्षा होने पर, विभक्ति पर रहे तो युष्मद्, अस्मद् को 'त्व' 'म आदेश होते हैं । ५—द्वितीया विभक्ति पर रहे तो युष्मद्, अस्मद् को आकार (अन्तादेश) होता है । ६—युष्मद् अस्मद् शब्द से परे 'शस्' को नकार आदेश होता है । ७—आदेश से रहित अजादि विभक्ति पर रहे तो युष्मद्, अस्मद् शब्द को यकार आदेश होता है ।

युष्मदस्मदोरनादेशे ७ । २ । ८६ ॥ [1]अनयोरात्स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभि । अस्माभि ।

तुभ्यमह्यौ ङयि ७ । २ । ९५ ॥ [2]अनयोमपयन्तस्य तुभ्यमह्यौ स्तो ङयि । टिलोप । तुभ्यम् । मह्यम् ।

भ्यसोऽभ्यम् ७ । १ । ३० ॥ [3]आभ्या परस्य भ्यसोऽभ्यम् इत्यादेश स्यात । युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ।

एकवचनस्य च ७ । १ । ३२ ॥ [4]आभ्या पञ्चम्येकवचनस्य ङसेरत् स्यात् । त्वत । मत् ।

पञ्चम्या अत् ७ । १ । ३१ ॥ [5]आभ्या पञ्चम्या भ्यसोऽत्स्यात् । युष्मत् । अस्मत ।

तवममौ ङसि ७ । २ । ९६ ॥ [6]अनयोर्मपयन्तस्य तवममौ स्तौ ङसि ।

युष्मदस्मद्भ्या ङसोऽश् ७ । १ । २७ ॥ [7][युष्मदस्मद्भ्या परस्य ङसोऽशादेश स्यात] । तव । मम । युवयो । आवयो ।

साम आकम् ७ । १ । ३३ ॥ [8]आभ्या परस्य साम आकम् स्यात् । युष्माकम् । अस्माकम् । त्वयि । मयि । युवयो । आवयो । युष्मासु । अस्मासु ।

युष्मभ्यम—युष्मद्-शब्दात् भ्यसि दकारलोपे, 'भ्यसोऽभ्यम्' इत्यभ्यमादेशे, 'अतो गुणे' इति पररूपे युष्मभ्यमिति ।

युष्माकम—युष्मच्छब्दादामि आम साम् बुद्धया 'साम आकम्' इत्याकमादेशे, शेषे लोप ' इति टिलोपे 'युष्माकम' इति ।

१—आदेश रहित हलादि विभक्ति पर में रहे तो युष्मद्, अस्मद् को आकार अन्तादेश होता है। २—ङे' विभक्ति पर में रहे तो युष्मद्, अस्मद् के म पर्यन्त को (क्रम से) तुभ्य, मह्य आदेश होते हैं। ३—युष्मद् और अस्मद् शब्द से परे 'भ्यस्' को ('भ्यम्' अथवा) 'अभ्यम्' आदेश होता है। ४—युष्मद् अस्मद् शब्द से परे पञ्चमी के एकवचन 'ङसि' को अत् आदेश होता है। ५—युष्मद, अस्मद् शब्द से परे पञ्चमी के भ्यस् को अत् आदेश होता है। ६—ङस' विभक्ति पर रहे तो युष्मद्, अस्मद् के म-पर्यन्त को तव, मम आदेश होते हैं। ७—युष्मद्, अस्मद् शब्द से परे ङस्, को 'अश्' आदेश होता है। ८—युष्मद्, अस्मद् से परे 'साम्' को आकम्' आदेश होता है।

युष्मदस्मदो षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ८ । १ । २० ॥ [1]पदात्परयोरपादादो स्थितयोरनयो षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वाम् नौ इत्यादेशो स्त ।

बहुवचनस्य वस्नसो ८ । १ । २१ ॥ [2]उक्तविधयोरनयो षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोवस्नसो स्त ।

तेमयावेकवचनस्य ८ । १ । २२ ॥ उक्तविधयोरनयो षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे एतो स्त ।

त्वामौ द्वितीयाया ८ । १ । २३ ॥ [4]द्वितीयैकवचनान्तयास्त्वा मा इत्यादेशो स्त ।

[5]श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शम स ।
स्वामी ते मेऽपि स हरि, पातु वामपि नौ विभु ॥ १ ॥

युष्मच्छब्द —			अस्मच्छब्द —		
एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
त्वम्	युवाम्	यूयम्	अहम्	आवाम्	वयम्
त्वाम्	युवाम्	युष्मान्	माम्	आवाम्	अस्मान्
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभि	मया	आवाभ्याम्	अस्माभि
तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
तव	युवयो	युष्माकम	मम	आवयो	अस्माकम्
त्वयि	युवयो	युष्मासु	मयि	आवयो	अस्मासु

१—पद से परे हो और किसी पाद के आदि मे स्थित न हो ऐसे षष्ठी चतुर्थी द्वितीया विशिष्ट युष्मद् अस्मद् शब्द को (क्रम से) वाम्, नौ आदेश होते हैं । २—उक्त विधि से परे अपादादि मे (पाद के आदि में नहीं) स्थित षष्ठी चतुर्थी द्वितीया के बहुवचनान्त से विशिष्ट युष्मद्, अस्मद् शब्द को (क्रम से) वस् नस् आदेश होते हैं । ३—पद से परे एवं अपादादि मे स्थित (अर्थात् पाद के आदि मे नहीं रहनेवाले) षष्ठी चतुर्थी के एकवचनान्त युष्मद्, अस्मद् शब्द को (क्रम से) ते, मे आदेश होते है । ४—पद से परे अपादादि मे स्थित (अर्थात् पाद के आदि मे नहीं रहनेवाले) द्वितीया के एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् शब्द को (क्रम से) त्वा मा आदेश होते हैं । ५—श्रीमान् लक्ष्मीपति

[1]सुख वा नौ ददात्वीश पतिर्वामपि नौ हरि ।
सोऽव्याद्वो न शिव वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र व स न ॥ २ ॥

❀[2]समानवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्या । ❀एकतिङ् वाक्यम्❀ । तेनेह न । ओदन पच, तव भविष्यति । इह तु स्यादेव । शालीना ते ओदन दास्यामि ।

❀ **एते वान्नावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्या ।** अन्वादेशे तु नित्य स्यु । धाता ते भक्तोऽस्ति, धाता तव भक्तोऽस्ति वा । तस्मै ते नम इत्येव । सुपात, सुपाद् । सुपादौ ।

भगवान् । इह–इस जगत् में । त्वा–तुमको (तेरी) । मा–मुझको (मेरी) । अपि–भी । अवतु–रक्षा करें । स –वह भगवान् । ते–तुम्हारे लिए । मे–मेरे लिए । अपि–भी । शम–सुख को । दत्ताद्–देवें । स हरि –वह विष्णु । ते–तुम्हारा । मे–मेरा । अपि–भी । स्वामी–प्रभु है । विभु –वे यापक प्रभु । वाम्–तुम दोनो को । नौ–हम दोना को (की) । पातु–रक्षा करें ॥१॥

१—ईश –वह ईश्वर । वाम्–तुम दोनों के लिए । नौ–हम दोनों के लिए । सुख–सुख को ददातु–देवें । हरि –वे विष्णु । वाम्–तुम दोनों के । नौ–हम दोनों के भी । पति –रक्षक हैं । स –वह प्रभु । व –तुम सबों को । न –हम सबों का (की) । अव्यात्–रक्षा करे । स –वह प्रभु । व –तुम सबों के लिए । न –हम सबों के लिए । शिव–कल्याण को । दद्यात्–दें । अत्र–यहाँ इस ससार मे स –वह प्रभु । व –तुम्हारे । न –हमारे । सेव्य –सेवा (उपासना) करने योग्य हैं ॥ २ ॥ २—युष्मद अस्मद् शब्दों के स्थान मे कहे गये आदेश एकवाक्य मे ही होते हैं ऐसा कहना चाहिए । 'एक तिङ्' को वाक्य कहते हैं । जैसे–राम गच्छति, राम जाता है । यह वाक्य है । भात बनाओ, तुम्हारा होगा । यहाँ एक वाक्य नहीं है, ते नहीं होगा । शाली (अगहनी जडहन) का भात तुम्हे दूगा । यह एक वाक्य है, अत 'ते' आदेश हो जाता है इति निष्कर्ष । ३—पूर्वोक्त 'वाम्' 'नौ' आदि आदेश अनन्वादेश में विकल्प से होते हैं और अन्वादेश में नित्य ही होते हैं । जैसे– ब्रह्मा तुम्हारे भक्त हैं, यहाँ 'ते' तव दोनों होते हैं । तस्मै ते नम में नित्य ही 'ते' आदेश हो गया । सुपात, सुपाद्–सुन्दर पैर वाला ।

---

*छात्रों को यह ध्यान रखना चाहिए कि इन दोनों पदो में 'युष्मदस्मदो ' सूत्र से लेकर 'त्वामौ द्वितीयाया ' तक के आदेश वर्णित हैं । उन्हें एकवचन, द्विवचन, बहुवचन–क्रम से नीचे दिया जाता है समझें—द्वितीया के एकवचन में त्वा=त्वाम् । मा=माम् । चतुर्थी में ते=तुभ्यम् । मे=मह्यम् । षष्ठी में ते=तव । मे=मम । द्वितीया के द्विवचन में वा=युवाम् । नौ=आवाम् । चतुर्थी में वाम्=युवाभ्याम् । नौ=आवाभ्याम् । षष्ठी में वाम्=युवयो । नौ=आवयो । द्वितीया के बहुवचन में व =युष्मान् । न =अस्मान् । चतुर्थी मे व =युष्मभ्यम् । न=अस्मभ्यम् । षष्ठी में=व युष्माकम् । न =अस्माकम् ।

पाद पत् ६ । ४ । १३० ॥ [1]पाच्छब्दान्त यदङ्ग भ तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेश स्यात । सुपद । सुपदा । सुपाद्भ्याम् । अग्निमत, अग्निमद् । अग्निमथौ । अग्निमथ ।

अनिदिता हल उपधाया क्डिति ६ । ४ । २४ ॥ [2]हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोप स्यात् किति ङिति च । नुम् । सयोगान्तस्य लोप । नस्य कुत्वेन ङ । प्राङ । प्राञ्चौ । पाञ्च ।

अच ६ । ४ । १३८ ॥ [3]लुप्तनकारस्याञ्चतेभस्याऽकारस्य लोप स्यात ।

चौ ६ । ३ । १३८ ॥ [4]लुप्ताऽकारनकारेऽञ्चतौ परे पूवस्याऽणो दीर्घ स्यात् । प्राच । प्राचा । प्राग्भ्याम् । प्रत्यङ । प्रत्यञ्चौ । प्रतीच । प्रत्यग्भ्याम् । उदङ । उदञ्चौ ।

प्राङ—प्रकर्षेण अञ्चतीति विग्रहे प्र अञ्च इत्यस्माद् 'ऋत्विगित्यादिना क्विनि, तस्य सर्वापहारिलोपे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सौ, 'अनिदिता हल उपाधाया –०' इति नलोपे, दीर्घे उगिदचाम् —इति नुमि, हलङयादिना सोर्लोपे, चकारस्य च सयोगान्तलोपे नकारस्य कुत्वेन ङकारे 'प्राङ इति सिद्धम् । (अय प्रकार पूजार्थके न, तत्र तु नाञ्चे पूजायामिति नलोपनिषेध इति ज्ञेयम्) ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्च	प्राच	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्य
प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राच	प्राच	प्राचो	प्राचाम्
प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भि	प्राचि	प्राचो	प्राक्षु
प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्य	हे प्राङ !	हे प्राञ्चौ !	हे प्राञ्च !

एव प्रत्यङ सध्र्यङ , उदङ् , सम्यङ् , तिर्यङ , ˜यङ , अर्वाङ—इत्यादीना श०ग्ना साधुत्व तथा रूपाणि च बोध्यानि ।

१—पाद् शब्द है अन्त मे जिसके ऐसा जो भसज्ञक अङ्ग तदवयव पाद् शब्द को पद् आदेश होता है । अग्निमत्—यज्ञ मे अरणि आदि द्वारा अग्नि को पैदा करनेवाला । २—कित् (ककार इत्संज्ञक) ङित् (ङकार–इत्सज्ञक) पर मे रहे तो हलन्त अङ्ग की उपधा के नकार का लोप होता है । प्राङ्–प्राचीन वा सुपूज्य । ३—जिसके नकारका लोप हो गया हो ऐसे अञ्च् धातु के भसज्ञक अकार का लोप होना है । ४–नकार और अकार का लोप हो गया हो ऐसा अञ्च् धातु पर में रहे तो पूव अण् को दीघ होता है । प्रत्यङ्—पश्चिम दिशा । उदङ्—उत्तर दिशा ।

उद ईत् ६ । ४ । १३१ ॥ [1]उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याऽकारस्य इत् स्यात् । उदीचः । उदीचा । उदग्भ्याम् ।

सम: समि ६ । ३ । ९३ ॥ [2]वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे [सम: सम्यादेशः] । सम्यङ् । सम्यञ्चौ । समीचः । सम्यग्भ्याम् ।

सहस्य सध्रि: ६ । ३ । ९५ ॥ [3]तथा [वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे सहस्य सध्र्यादेशः स्यात्] । सध्र्यङ् ।

तिरसस्तिर्यलोपे ६ । ३ । ९४ ॥ [4]अलुप्ताकारेऽञ्चतौ वप्रत्ययान्ते परे तिरसस्तिर्यादेशः स्यात् । तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिरश्चः । तिर्यग्भ्याम् ।

नाञ्चेः पूजायाम् ६ । ४ । ३० ॥ [5]पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न स्यात् । प्राङ् । प्राञ्चौ । नलोपाऽभावादल्लोपो न । प्राञ्चः । प्राङ्भ्याम् ।

उदीचः—उत्पूर्वकादञ्चतेः 'ऋत्विग्—' इत्यादिना क्विनि सर्वापहारिलोपे, 'अनिदिताम्–०' इति नलोपे 'कृत्तद्धित—०' इति प्रातिपदिकत्वे—शसि अनुबन्धलोपे, 'उद ईत्' इति ईत्वे, 'झलां जशोऽन्ते' इति तकारस्य दकारे, सकारस्य रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः ।

प्राङ्क्षु—इत्यादि । प्रपूर्वक–पूजार्थक अञ्चतेः–ऋत्विगित्यादिना क्विनि, तस्य सर्वापहारिलोपे नलोपस्य 'नाञ्चेः पूजायाम्' इति निषेधे प्राञ्च इत्यस्मात् सुपि, अनुबन्धलोपे पदत्वेन चकारस्य संयोगान्तलोपे, 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इति न्यायेनानुस्वारपरसवर्णयोरप्यभावे (अकारणे) नकारस्थितौ प्रान् सु इति दशायां नकारस्य कुत्वेन ङकारे 'ङ्णोः कुक्टुक् शरि' कुगागमे, सकारस्य षत्वे 'चयो द्वितीयाः०' इत्यादिना ककारस्य खकारे 'प्राङ्ख्षु' इति । द्वितीयाभावे कषसंयोगे क्षत्वे 'प्राङ्क्षु' इति । कुगागमाभावे 'प्राङ्षु' इति रूपत्रयं सम्पद्यते । पूजार्थक प्रत्यञ्चादिशब्दानामप्येष एव क्रमः । अत्र रूपाणि—

१—जो अञ्च धातु उत् से पर में हो और उसके नकार का लोप हो गया हो ऐसे (अञ्च) धातु के भ–संज्ञक अकार को इकार होता है । २—व–प्रत्ययान्त अञ्च् धातु पर में रहे तो, 'सम्' को समि आदेश होता है । ३—व–प्रत्ययान्त अञ्च् धातु पर में रहे तो 'सह' को 'सध्रि' आदेश होता है । सध्र्यङ्—साथ रहने चलने वाला (मित्र) । ४—जिस अञ्च धातु के अकार का लोप नहीं हुआ हो ऐसा 'व–प्रत्ययान्त अञ्च् धातु' पर में रहे तो 'तिरस्' शब्द को 'तिरि' आदेश होता है । तिर्यङ्—टेढा–मेढा चलनेवाला, पक्षी, पशु । ५—पूजा अर्थवाले अञ्च धातु के उपधा के नकार का लोप नहीं होता है । क्रुङ्—क्रौञ्च नामक चिड़िया । पयोमुक्—बादल

प्राङक्षु । एव पूजार्थे प्रत्यङडादय । क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुङ्भ्याम् । पयोमुक्, पयोमुग । पयोमुचौ । पयोमुग्भ्याम् । उगित्त्वान्नुम् ।

सान्तमहत सयोगस्य ६ । ४ । १० ॥ [1]सान्तसयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीघ स्यादसम्बुद्धौ सवनामस्थाने । महान् । महान्तौ । महान्त । हे महन् । महद्भ्याम् ।

अत्वसन्तस्य चाऽधातो ६ । ४ । १४ ॥ [2]अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नाऽसन्तस्य चाऽसम्बुद्धौ सी परे । उगित्त्वान्नुम् । धीमान् । धीमन्तौ ।

एकव०	द्विव०	बहु०	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्राङ	प्राञ्चौ	प्राञ्च	प्राञ्च	प्राञ्चो	प्राञ्चाम्
प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राञ्च			
प्राञ्चा	प्राङभ्याम्	प्राङभि	प्राञ्चि	प्राञ्चो	प्राङखषु, प्राङक्षु, प्राङषु
प्राञ्चे	प्राङभ्याम्	प्राङभ्य			
प्राञ्च	प्राङभ्याम्	प्राङभ्य	हे प्राङ् !	हे प्राञ्चौ !	हे प्राञ्च !

एवमेव पूजाथक–प्रत्यञ्चादीनामपि रूपाणि ।

क्रुङ—क्रुञ्च धातो 'ऋत्विग्दधक–०' इत्यादिना क्विनि, तद्विधानसामर्थ्यादिम्य अकारापधत्वेन नलोपो न कृदन्तत्वेन प्रातिपदिकत्वात्सौ हल्ङयादिना सोर्लोप, चस्य च सयोगान्तलोपे, चस्य कुत्वेन ङकारे 'क्रुङ्' इति । पूजाथक प्राञ्च्–शब्दवद् रूपाणि । अस्यापि सुपि त्रीणि रूपाणि बोध्यानि ।

महान—महच्छब्दात्सौ अनुबन्धलोपे, 'उगिदचाम्–०' नुमागमे, अनुबन्धलोपे, हल्ङयादिना सोर्लोपे तकारस्य च सयोगान्तलोपे, 'सान्तमहत सयोगस्य' इति उपधादीर्घे 'महान्' इति ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
महान्	महान्तौ	महान्त	महत	महद्भ्याम्	महद्भ्य
महान्तम्	महान्तौ	महत	महत	महतो	महताम्
महता	महद्भ्याम्	महद्भि	महति	महतो	महत्सु
महते	महद्भ्याम्	महद्भ्य	हे महन् !	हे महान्तौ !	हे महान्त !

धीमान्, धीमन्तौ, धीमन्त । धीमन्तम्, धीमन्तौ, धीमत । धीमता—आदि महद्वत् ।

१–सम्बुद्धि से भिन्न सवनामस्थान पर मे रहे तो सकारान्त संयोग के और महत् शब्द नकार की उपधा को दीर्घ होता है । महान्–श्रेष्ठ, बडा । २–सम्बुद्धि–भिन्न 'सु' पर में रहे त

धीमन्त । हे धीमान् । शसादौ महद्वत् । [1]डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोप । भवान् । भवन्तौ । भवन्त । शत्रन्तस्य भवन् ।

उभे अभ्यस्तम् ६ । १ । ५ ॥ [2]षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसञ्ज्ञे स्त ।

नाभ्यस्ताच्छतु ७ । १ । ७८ ॥ [3]अभ्यस्तात्परस्य शतुनुम् न स्यात् । ददत्, ददद् । ददतौ । ददत ।

जक्षित्यादय षट् ६ । १ । ६ ॥ [4]षड धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसञ्ज्ञा स्यु । जक्षत्, जक्षद् । जक्षतौ । जक्षत । एव जाग्रत् । दरिद्रत् । शासत् । चकासत् । गुप्, गुब । गुपौ । गुप । गुब्भ्याम् ।

त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ३ । २ । ६० ॥ [5]त्यदादिषूपपदेष्व ज्ञानार्थाद् दृशे कञ् स्याच्चात् क्विन् ।

आ सर्वनाम्न ६ । ३ । ९१ ॥ [6]सवनाम्न आकारोऽन्तादेश स्याद् दृग्दृश्वतुषु । तादृक्, तादृग् । तादृशौ । तादृश । तादृग्भ्याम् । व्रश्चेति ष । जश्त्वचर्त्वे । विट, विड । विशौ । विश । विड्भ्याम् ।

भवान् भवन्तौ, भवन्त । भवन्तम्, भवन्तौ, भवत । भवता—इत्यादि महच्छब्दवत् । शत्रन्तस्य त्वन्तत्वाभावान्न दीघ । तेन शत्रन्ते भवन्, भवन्तौ, भवन्त । भवन्तम्, भवन्तौ—इत्यादि ।

तादृक—'तद्–दृश इत्यस्मात् 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च' इति क्विनि, तस्य सर्वापहारिलोपे, 'आ सवनाम्न ' इति तदो दकारस्याकारे दीर्घे च प्राति पदिकत्वात्सौ सोर्लोपे, शकारस्य व्रश्चेत्यादिना षत्वे तस्य जश्त्वेन डकारे 'क्विन्प्रत्ययस्य कु ' इति कुत्वेन गकारे, 'वाऽवसाने' इति चत्व विकल्पे 'तादक, तादृग' इति ।

अत्वन्त की उपधा को और धातु भिन्न अस न्त की उपधा को दीघ होता है । धीमान्–बुद्धिमान्

१—भ–संज्ञा नहीं होने पर भी डकार इत्संज्ञक होने के कारण टि का लोप होता है। भवान्–आप । भवन्–होता हुआ । २—छठवें अध्याय के द्वित्व विधान प्रकरण मे जो दोन विहित हैं, वे दोनों समुदाय अभ्यस्त—सज्ञक होते हैं । ३—अभ्यस्त–सज्ञक शब्द से परे ज 'शतृ' उसको नुम् नहीं होता है । ददत्–देता हुआ । ४—छह अन्य धातु और सातवाँ जक्ष धातु ये अभ्यस्त–संज्ञक होते हैं। जक्षत्–खाता हुआ। जाग्रत्–जागता हुआ । दरिद्रत्–दरिद्र होता हुआ। शासत्–शासन करता हुआ । चकासत्–अत्यन्त शोभा युक्त होता हुआ गुप्–रक्षक । ५—त्यद्–आदि शब्द उपपद (पद के समीप) में रहे ता अज्ञानार्थक दृश् धातु से कञ् तथा चकारात् क्विन् प्रत्यय होता है । ६—दृग्, दृश् या वतु प्रत्यय पर में रहे त सर्वनाम संज्ञक शब्दों को आकार अन्तादेश होता है। तादृक्–वैसा। विट्–वैश्य ।

नशेर्वा ८ । २ । ६३ ॥ [1]नशो कवर्गोऽन्तादेशो वा स्यात् पदान्ते । नक, नग । नट, नड । नशौ । नश । नगभ्याम्, नडभ्याम् ।

स्पृशोऽनुदके क्विन् ३ । २ । ५८ ॥ [2]अनुदके सुप्युपपदे स्पृशे क्विन् स्यात् । घृतस्पृक, घृतस्पृग । घृतस्पृशौ । घृतस्पृश । दधृक, दधृग । दधृषौ । दधृष । दधृग्भ्याम् । रत्नमुट, रत्नमुड । रत्नमुषा । रत्नमुड्भ्याम् । षट , षड् । षट, षड । षड्भि । षड्भ्य । षड्भ्य । षण्णाम् । षट्सु । रुत्व प्रति षत्वस्याऽसिद्धत्व त्ससजुषोरिति रुत्वम् ।

र्वोरुपधाया दीर्घ इक ८ । २ । ७६ ॥ रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घ स्यात् पदान्ते । पिपठी । पिपठिषा । पिपठीर्भ्याम् ।

नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८ । ३ । ५८ ॥ [4]एते प्रत्येक व्यवधानेऽपि इण्कुभ्या परस्य सस्य मूर्धन्यादेश स्यात् । ष्टुत्वेन पूर्वस्य ष । पिपठीष्षु,

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
तादृक्, तादृग	तादृशौ	तादृश	तादृश	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्य
			तादृश	तादृशो	तादृशाम्
तादृशम्	तादृशौ	तादृश	तादृशि	तादृशो	तादृक्षु
तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भि	हे तादृक ! हे तादृग !	हे तादृशौ !	हे तादृश !
तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्य			

नक्—इत्यत्रापि कुत्वपक्षे षत्व ढत्व गत्व कत्वाना प्रक्रिया तादृग्वज्ज्ञेया । एव 'घृतस्पृक' इत्यत्रापि ।

दधृक—ऋत्विगित्यादिना क्विन्नन्त-दधृष शब्दात्सौ तस्य लोपे षस्य जश्त्वेन डकारे कुत्वेन गकारे, वैकल्पिके चर्त्वे दधृक , दधृग इति रूपद्वयम् ।

पिपठीष्ष, पिपठी षु—पिपठिष्-शब्दात्सुप्यनुबन्धलोपे 'स्वादिष्वसर्वनाम-स्थाने' इति पदसंज्ञाया 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति षत्वस्यासिद्धत्वात् 'ससजुषो रु' इति रुत्वेऽनुबन्धलोपे, 'र्वोरुपधाया दीर्घ इक ' इति दीर्घे रो सुपि इति रात्विसर्गे, तस्य 'वा शरि' इति नियमेन पाक्षिकस्थितौ अभावे विसर्गस्य सकारादेशे, नुम्वि-

१—पदान्त मे नश को कवर्ग अन्तादेश विकल्प से होता है । नक्-नष्ट होने वाला । २—उदक भिन्न सुबन्त उपपद रहते स्पृश धातु से क्विन् प्रत्यय होता है । घृतस्पृक-घी स्पर्श करनेवाला । रत्नमुट्-रत्न को चुरानेवाला चोर । षट्-छह । ३—पदान्त मे रेफान्त और वान्त धातुओं की उपधा के इक् को दीर्घ होता है । पिपठी -पढने का इच्छा करनेवाला । ४—नुम् विसर्ग या शर प्रत्याहार इनके प्रत्येक के व्यवधान रहने पर भी इण्

पिपठी षु । चिकी । चिकीर्षौ । चिकीर्भ्याम् । चिकीषु । विद्वान् । विद्वांसौ । हे विद्वन् ।

वसो सम्प्रसारणम् ६ । ४ । १३१ ॥ [1]वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारण स्यात् । विदुष । वसुस्रंस्विति द । विद्वद्भ्याम् ।

पुसोऽसुङ ७ । १ । ८९ ॥ [2]सवनामस्थाने विवक्षिते पुसोऽसुङ् स्यात् । पुमान् । हे पुमन् । पुमांसौ । पुंस । पुम्भ्याम् । पुंसु । ऋदुशनेत्यनङ ।

सजनीयशर्व्यवायेऽपि इति सुप सकारस्य षत्वे पिपठी षु पिपठीसषु' इति स्थिते द्वितीयलक्ष्ये ष्टुत्वेन पूवसकारस्य षकारे सिद्ध रूपद्वयम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
पिपठी	पिपठिषौ	पिपठिष	पिपठिष	पिपठिषो	पिपठिषाम्
पिपठिषम्	पिपठिषौ	पिपठिष	पिपठिषि	पिपठिषो	पिपठीष्षु / पिपठी षु
पिपठिषा	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भि			
पिपठिषे	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्य	हे पिपठी !	हे पिपठिषौ !	हे पिपठिष !
पिपठिष	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्य			

एव चिकी —चिकीर्षौ चिकीष —इत्यादि ।

चिकी —चिकीष—शब्दात्सौ तस्य लोपे, षत्वस्यासिद्धत्वात् रात्सस्य' इति सयोगान्तलोपे, रेफस्य च विसर्गे 'चिकी' इति ।

विदुष —विद्वस श ्दाच्छसि अनुब धलोपे, वसो सम्प्रसारणम्' इति सम्प्र सारणे, सम्प्रसारणाच्चेति पूवरूपे 'आदेशप्रत्यययो' इति सकारस्य षकारे, विभक्तिसकारस्य रुत्वे विसर्गे च विदुष' इति सिद्धयति ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहु०
विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांस	विदुष	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुष	विदुष	विदुषो	विदुषाम्
विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भि	विदुषि	विदुषो	विद्वत्सु
विदुष	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य	हे विद्वन् !	हे विद्वांसौ !	हे विद्वांस !

पुमान—पुंस-शब्दात्सौ पुसोऽसुङ' इति सस्यासुङि, अनुब धलोपे, उगिदचा सवनामस्थानेऽधातो इति नुमागमे अनुब धलोप 'सा तमहत सयोगस्य' इत्युपधा

कवर्ग स परे सकार को मूर्धन्य षकार होता है । चिकी —(किसी कार्य के) करने की इच्छा करने वाला । विद्वान् पण्डित, जानकार ।

१—वस्वन्त भसंज्ञक अङ्ग को सम्प्रसारण होता है । २—सर्वनामस्थान की विवक्षा (कहने

उशना । उशनसौ । ॐ अस्य सम्बुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्य । हे उशन, हे उशनन्, हे उशन । हे उशनसो । उशनोभ्याम् । उशनस्सु । अनेहा । अनेहसौ । हे अनेह । वेधा । वेधसौ । हे वेध । वेधोभ्याम् ।

अदस औ सुलोपश्च ७ । २ । १०७ ॥ [1]अदस औकारोऽन्तादेश स्यात् सौ परे, सुलोपश्च । तदोरिति स । असौ । त्यदाद्यत्वम् । पररूपत्वम् । वृद्धि ।

अदसोऽसेर्दादुदो म ८ । २ । ८० ॥ [2]अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ स्तो दस्य मश्च । आन्तरतम्याद् ह्रस्वस्य उ, दीर्घस्य ऊ । अमू । जस शी । गुण ।

दीर्घे, हल्ङ्यादिना सोर्लोपे, सयोगान्तस्य लोप ’ सलोपे ‘पुमान् इति सिद्धम् ।

एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
पुमान्	पुमासौ	पुमास	उशना	उशनसौ	उशनस
पुमासम्	पुमासौ	पुस	उशनसम्	उशनसौ	उशनस
पुसा	पुम्भ्याम्	पुम्भि	उशनसा	उशनोभ्याम्	उशनाभि
पुसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य	उशनसे	उशनोभ्याम्	उशनोभ्य
पुस	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य	उशनस	उशनाभ्याम्	उशनाभ्य
पुस	पुसो	पुसाम्	उशनस	उशनसो	उशनसाम्
पुसि	पुसो	पुसु	उशनसि	उशनसा	उशन सु उशनस्सु
हे पुमान् !	हे पुमासौ !	हे पुमास !	हे उशन ! हे उशनन् ! हे उशन !	हे उशनसौ !	हे उशनस !

एव–अनेहस वेधस् शब्दयोरपि रूपाणि ज्ञेयानि । केवल सौ सम्बोधने भेद । हे अनेह हे वेध हनि ।

असौ—अदस–शब्दात्सौ ‘अदस औ सुलोपश्च’ इति सस्यौत्वे, सोर्लोपे च कृते ‘तदो स सावनन्त्ययो ’ इति दकारस्य सकारे, ‘वृद्धिरेचि इति वृद्धौ कृताया असौ’ इति ।

की इच्छा) मे पुंम’ को असुङ्’ आदेश होता है । पुमान्–पुरुष । उशना –शुक्राचार्य । सम्बोधन मे उशना शब्द को अनङ् का आगम विकल्प से होता है और नकार का लोप भी विकल्प से कहना चाहिए । अनेहा–समय । वेधा –ब्रह्मा ।

१— सु’ पर मे रहे तो अदस् शब्द के अन्त्य अल् को औकार आदेश होता है और स का लोप भी हो जाता है । असौ वह । २—सकारान्त से भिन्न (अर्थात् रूपान्तर को प्राप्त)

एत ईद् बहुवचने ८ । २ । ८१ ॥ [1]अदसो दात्परस्यैत ईद्दस्य च मो बह्वर्थोक्तौ । अमी । पूर्वत्राऽसिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक्, पश्चादुत्वमत्वे । अमुम् । अमू । अमून् । मुत्वे कृते घिसञ्ज्ञायां नाभावः ।

न मु ने ८ । २ । ३ ॥ [2]नाभावे कर्तव्ये कृते च मुभावो नाऽसिद्धः । अमुना । अमूभ्याम् । अमूभ्याम् । अमूभ्याम् । अमीभिः । अमुष्मै । अमीभ्यः । अमीभ्यः । अमुष्मात् । अमुष्य । अमुयोः । अमुयोः । अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमीषु ।

* इति हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम् *



अमुना—अदस-शब्दात् टा विभक्तावनुबन्धलोपे त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते 'अदसोऽसे—०' इति मुत्वे 'अमु आ' इति जाते घिसञ्ज्ञायां 'आङो नाऽस्त्रियाम्' इति नाभावे कर्तव्ये मुत्वस्यासिद्धत्वं प्राप्तं 'न मु ने' इत्यनेन निषिध्यते, ततश्च नाभावे कृते 'अमुना' इति सिद्ध्यति । मुत्वस्यासिद्धत्वात् 'सुपि च' इति दीर्घस्तु न शङ्क्यः, तेनैव नाभावे जातेऽपि मुत्वस्यासिद्धत्वनिषेधात् ।

असौ	अमू	अमी	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
			अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
अमुम्	अमू	अमून्	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

* इति हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम् *



अदस शब्द के दकार से परे ह्रस्व को 'उ' और दीर्घ को 'ऊ' आदेश होता है और 'द' को म आदेश भी होता है ।

१—बहुत्व अर्थ के प्रतिपादन (अर्थात् बहुवचन) मे अदस् शब्द के दकार से परे एकार को इकार होता है और द को म भी हो जाता है । २—'ना' भाव करना हो या कर लिया गया हो तो भी 'मु' भाव असिद्ध नहीं होता है ।

* इस प्रकार हलन्तपुँल्लिङ्ग—प्रकरण समाप्त हुआ *



अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

नहो ध ८ । २ । ३४ ॥ [1]नहो हस्य ध स्याज्झलि पदान्ते च ।

नहि-वृति-वृषि-व्यधि-रुचि-सहि-तनिषु क्वौ ६ । ३ । ११६ ॥ [2]क्विबन्तेषु परेषु पूर्वपदस्य दीर्घ स्यात् । उपानत्, उपानद् । उपानहौ । उपानत्सु । क्विन्नन्तत्वात्कुत्वेन घ । उष्णिक, उष्णिग । उष्णिहौ । उष्णिगभ्याम् । द्यौ । दिवौ । दिव । द्युभ्याम् । गी । गिरौ । गिर । एव पू । चतस्र । चतसृणाम् । का के । का । सर्वावत् ।

य सौ ७ । २ । ११० ॥ [3]इदमो दस्य य स्यात् सौ । इयम् । त्यदाद्यत्वम् । पररूपत्वम् । टाप । दश्चेति म । इमे । इमा । इमाम् । अनया ।

उपानत—उपपूवक नह धातो क्विप नहिवृति इत्यादिना पूवपदस्य दीर्घे क्विपोऽनुबन्धलोपे, 'वेरपृक्तस्य' इति वकारलोपे, प्रातिपदिकत्वेन सौ उकारलोपे, 'नहो ध' इति हस्य धत्वे, हल्ङयादिना सोर्लोपे, 'झला जशोऽन्ते' इति धकारस्य दकारे, 'वावसाने' इति चर्त्वे 'उपानत्' इति ।

उपानत्-द्	उपानहौ	उपानह	उपानह	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्य
उपानहम्	उपानहौ	उपानह	उपानह	उपानहो	उपानहाम्
उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भि	उपानहि	उपानहो	उपानत्सु
उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्य	हे उपानत् द् ।	हे उपानहौ ।	हे उपानह ।

एवम्—उष्णिह्-शब्दस्यापि रूपाणि । सुपि उष्णिक्षु' इति ।

द्यौ	दिवौ	दिव	गी	गिरौ	गिर
दिवम्	दिवौ	दिव	गिरम्	गिरौ	गिर
दिवा	द्युभ्याम्	इत्यादि			
		सुपि—द्युषुइति ।	गिरा	गीर्भ्याम् गीर्भि	इत्यादि ।

चतसृणाम—चतुर्-शब्दादामि 'त्रिचतुरो स्त्रिया तिसृचतसृ' इति चतुर—चतस्रादेशे, नुडागमे अनुबन्धलोपे नामीति दीर्घे प्राप्ते, 'न तिसृचतसृ' इति निषेधे, 'ऋवर्णान्नस्य णत्व वाच्यम्' इति णत्वे 'चतसृणाम्' इति ।

१—झल् पर में हो या पदान्त मे स्थित जो 'नह' धातु का हकार उसको धकार होता है।
२—क्विप् प्रत्ययान्त नहि, वृति, वृषि, व्यधि, रुचि, सहि तनि—ये पर में रहें तो पूर्वपद को दीर्घ होता है। उपानत्=जूता। उष्णिक्=मुरेठा, पगडी (उष्णिक् छन्द)। द्यौ =आकाश। गी =वाणी। पू =नगरी। चतस्र =चार स्त्रियाँ। का=कौन स्त्री। ३—स्त्रीलिङ्ग मे सु विभक्ति पर मे रहे तो इदम् शब्द के दकार को यकार आदेश होता है। इयम्=एषा, यह स्त्री

हलि लोप । आभ्याम् । आभि । अस्यै । अस्या । अस्या । अनयो । अनयो । आसाम् । अस्याम् । आसु । त्यदाद्यत्वम् । टाप । स्या । त्ये । त्या । एव तद्, यद्, एतद् । वाक्, वाग् । वाचौ । वाग्भ्याम् । वाक्षु । अप्-शब्दो नित्य बहुवचनान्त । अप्तृन्निति दीघ । आप । अप ।

अपो भि ७ । ४ । ४८ ॥ [1]अपस्तकार स्याद्भादौ प्रत्यये परे। अद्भि । अद्भ्य । अद्भ्य । अपाम् । अप्सु । दिक, दिग । दिशौ । दिश । दिग्भ्याम् । त्यदादिष्विति दशे क्विन्विधानादन्यत्रापि कुत्वम् । दृक, दृग । दशौ । दृग्भ्याम् । त्विट, त्विड् । त्विषौ । त्विडभ्याम् । ससजुषोरिति रुत्वम् । सजू । सजुषो । सजूर्भ्याम् । आशी । आशिषौ । आशीर्भ्याम् । असौ । उत्वमत्वे । अमू । अमू । अमुया । अमूभ्याम् । अमूभ्याम् । अमूभ्याम् ।

अस्या—इदम् शब्दात्-ङसि अनुबन्धलोपे, त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते अजाद्यतष्टाप इति टापि अनुबन्धलोपे, सवर्ण-दीर्घे, सर्वनाम्न स्याड्ढ्रस्वश्च' इति स्याडागमे ह्रस्वे च कृते, हलि लोप'—इतीदमागस्य लोपे, 'अक सवर्णे दीघ' इति दीर्घे सत्व रुत्वे विसर्गे च 'अस्या' इति ।

अस्याम—इदम्-शब्दात् ङौ विभक्तावनुबन्धलोपे, त्यदाद्यत्वे पररूपे च कृते, टापि दीर्घे ङेराम्- इति ङेरामि 'सर्वनाम्न स्याड-' इति स्याडागमे आपश्च ह्रस्वे हलिलोपे, आमा सह सवर्णदीर्घे अस्याम्' इति सिद्धम् ।

इयम्	इमे	इमा	अस्या	आभ्याम्	आभ्य
इमाम्	इमे	इमा	अस्या	अनयो	आसाम्
अनया	आभ्याम्	आभि			
अस्यै	आभ्याम्	आभ्य	अस्याम्	अनयो	आसु

अद्भि—अप्-शब्दाद् भिसि 'अपो भि इति—अप पकारस्य तकारे, 'झलां जशोऽन्ते' इति तकारस्य दकारे, विभक्तिसकारस्य रुत्वे विसर्गे च 'अद्भि' इति ।

दिक—ऋत्विगित्यादिना क्विन्नन्त दिश-शब्दात् सौ, तस्य लोपे व्रश्चेत्यादिना शस्य षत्वे जश्त्वे क्विन्नन्तत्वात्कुत्वेन गकारे पक्षे आवसानिकचर्त्वे 'दिक, दिग्' इति । एव 'दृक दृग' इत्यपि बोध्यम् ।

'आङि चाप' इत्येत्वेऽयादेशे, उत्वमत्वे च कृते **'अमुया'** इति ।

(वा सामग्रा आदि) । स्या=सा=वह स्त्री । या=जो, स्त्री । वाक्=वाणी । आप=जल । अप शब्द नित्य ही बहुवचनान्त होता है ।

१–भादि (भिस्, भ्यस) प्रत्यय पर में रहें तो अप् शब्द को तकार अन्तादेश होता है।

अमूभि । अमुष्यै । अमूभ्य । अमभ्य । अमुष्या । असुयो । अमुयो । अमूषाम् । अमुष्याम् । अमूषु ।

* इति हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम *



अथहलन्तनपुसकलिङ्गप्रकरणम्

[1]स्वमोलक । दत्वम् । स्वनडुत्, स्वनडुद् । स्वनडुही । चतुरनडुहो-

---

अमुष्यै—अदस शब्दात् ङे–विभक्तौ, त्यदाद्यत्वे पररूपे च कृते अजाद्यतष्टाप इति टाप्यनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे, 'सवनाम्न स्याडढ्रस्वश्चेति' स्याडागमे ह्रस्वे च, वृद्धिरेचीति वद्धौ, अदसो०—इत्यादिना उत्वमत्वे, आदेशप्रत्ययो इति षत्वे 'अमुष्यै' इति ।

अमूषाम–अदस शब्दादामि त्यदाद्यत्वे पररूपे च कृते, टापि अनुबन्धलोपे, 'अक सवर्णे दीघ इति दीर्घे, आमि सवनाम्न सुट्' इति सुटि, अनुबन्धलोपे, 'अदसोऽसे ' रिति उत्वमत्वे, 'आदेशप्रत्ययो ' इति षकारे अमूषाम् इति सिद्धयति ।

असौ	अमू	अमू	अमुष्या	अमूभ्याम्	अमूभ्य
अमुम्	अमू	अमू	अमुष्या	अमुयो	अमूषाम्
अमुया	अमूभ्याम्	अमूभि	अमुष्याम्	अमुयो	अमूषु
अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्य			

* इति हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् *



स्वनडुत् द	स्वनडुही	स्वनड्वाहि	स्वनडुह	स्वनडुद्भ्याम्	स्वनडुद्भ्य
स्वनडुत् द	स्वनडुही	स्वनड्वाहि	स्वनडुह	स्वनडुहो	स्वनडुहाम्
स्वनडुहा	स्वनडुद्भ्याम्	स्वनडुद्भि	स्वनडुहि	स्वनडुहो	स्वनडुत्सु
स्वनडुहे	स्वनडुद्भ्याम्	स्वनडुद्भ्य	हे स्वनडुत् द!	हे स्वनडुही !	हे स्वनड्वाहि!

दिक् =दिशा । दृक् =नेत्र । त्विट्=कान्ति । सजू =सखी । आशी =आशीर्वाद । असौ=वह स्त्री ।

* इस प्रकार हलन्तस्त्रीलिङ्ग समाप्त हुआ *



१—नपुसक में सु और अम् का लोप हो जाता है। स्वनडुद्=अच्छा बैलवाला

रित्याम् । स्वनड्वाहि । पुनस्तद्वत् । शेष पुवत् । वा । वारी । वारि । वार्भ्याम् । चत्वारि । किम् । के कानि इदम् । इमे । इमानि ।

॥ [1]**अन्वादेशे नपुसके वा एनद्वक्तव्य** ॥ । एनत् । एने । एनानि । एनेन । एनयो । अह । "विभाषा ङिश्यो" । अह्नी, अहनी अहानि ।

अहन् ८ । २ । ६८ ॥ [2]अहन्नित्यस्य रु स्यात् पदान्ते । अहोभ्याम् । दण्डि । दण्डिनी । दण्डीनि । दण्डिना । दण्डिभ्याम् । सुपथि । टेर्लोप । सुपथी । सुपन्थानि । ऊर्क् , ऊर्ग् । ऊर्जी । ऊन्र्जि । न-र जाना सयोग ।

वा	वारी	वारि	वार	वार्भ्याम्	वार्भ्य
वा	वारी	वारि	वार	वारो	वाराम्
वारा	वार्भ्याम्	वार्भि	वारि	वारो	वार्षु
वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्य	हे वा !	हे वारी !	हे वारि !

किम—नात्र किम कादेशो विभक्तेरभावात् । न लुमतेति निषधात्प्रत्यय लक्षणमपि न प्रवतते । एवम्–इदम् त्यद तद् यद्, एतद्—आदिशब्दानामपि स्वमोलुकि अत्वसत्वाद्यभाव ।

अहोभ्याम—अहन्–शब्दात् भ्यामि अहन्नित्यस्य 'स्वादिष्वसवनामस्थाने' इति पदसज्ञायाम् 'अहन्' इति नकारस्य रुत्वे, हशि च' इत्युत्वे, 'आद् गुण ' इति गुणे 'अहोभ्याम्' इति ।

सुपन्थानि—सुपथिन्–शब्दाज्जश्शसो श्यादेशे सवनामस्थानत्वेन इतोत्सव नामस्थाने' इति अत्वे, 'थो न्थ ' इति थस्य थादेशे, सवनामस्थाने–०' इत्यादिना दीर्घे 'सुपन्थानि' इति ।

सुपथि सुपथी, सुपन्थानि । सुपथि, सुपथी सुपन्थानि । सुपथा, सुपथिभ्याम्–इत्यादि ।

(कुल) । वा =पानी । चत्वारि=चार (वस्तुएँ) । किम्=कौन (वस्तु) । इदम्=यह (वस्तु कुल आदि) ।

१—नपुसकलिङग में, अन्वादेश में इदम् शब्द को एनद् आदेश कहना चाहिए (होता है) । एनत्=यह । अह =दिन । २—पदान्त में अहन् शब्द के न् को रु होना है । दण्डि=दण्डवाला । सुपथि=सुन्दर रास्तावाला (नगर) या वन । ऊर्क्= बल । तद्=वह । यत्=जो । एतत्=यह । गवाक्= गोपूजक, रक्षक । शकृत्=मल ।

तत् । ते । तानि । यत् । ये । यानि । एतत् । एते । एतानि । गवाक्, गवाग । गोची । गवाञ्चि । पुनस्तस्त् । गोचा । गवाग्भ्याम । शकृत् । शकृती । शकृन्ति । ददत् । ददती ।

वा नपुंसकस्य ७ । १ । ७९ ॥ [1]अभ्यस्तात्परो य शता तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् स्यात सर्वनामस्थाने परे । ददन्ति, ददति । तुदत ।

आच्छीनद्योर्नुम् ७ । १ । ८० ॥ [2]अवर्णान्तादङ्गात्परो य शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा स्यात, शी-नद्यो परत । तुदन्ती । तुदन्ति ।

शप् श्यनोर्नित्यम् ७ । १ । ८१ ॥ [3]शप-श्यनोरात्परो य शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्य नुम् स्यात् शी-नद्यो परत । पचन्ती । पचन्ति । दीव्यत । दीव्यन्ती । दीव्यन्ति । धनु । धनुषी । सान्तेति दीर्घ । नुम् विसर्जनीयेति ष । धनूंषि । धनुषा । धनुर्भ्याम् । एव चक्षुर्हविरादय । पय । पयसी पयांसि । पयसा । पयोभ्याम् । सुपुम् । सुपुंसी । सुपुमांसि । अद । विभक्ति कायम् । उत्वमत्वे । अमू । अमूनि । शेष पुंवत ।

❀ इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम ❀



गवाक—शब्दस्य रूपाणि संक्षेपतया—

गवाक-ग	गोची	गवाञ्चि	गोच	गवाग्भ्याम्	गवाग्भ्य
गवाक् ग	गोची	गवाञ्चि	गोच	गोचा	गोचाम्
गोचा	गवाग्भ्याम्	गवाग्भि			
गोचे	गवाग्भ्याम्	गवाग्भ्य	गोचि	गोचो	गवाक्षु

* इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् *

— ० —

१—सर्वनामस्थान पर मे रहे तो अभ्यस्त संज्ञक से परे शतृप्रत्ययान्त नपुंसक अङ्ग को विकल्प से नुम् होता है । तुदत=दु ख देता हुआ । २—शी या नदीसंज्ञक (वर्ण) पर मे रहे तो अवर्णान्त अङ्ग से परे जो शतृ का अवयव तदन्त शब्दस्वरूप को नुम् होता है विकल्प से । ३–शी या नदीसंज्ञक वर्ण पर मे हो तो शप्, श्यन् सम्बन्धी अकार से परे जो शतृ का अवयव तदन्त शब्दस्वरूप को नित्य ही नुम् होता है । पचत्=पकाता हुआ । दीव्यत्=खेलना हुआ, प्रकाशमान होता हुआ । चक्षु =आँख । हवि =हवनार्थ खीर आदि सामग्री । पय =दूध या पानी । सुपुम्=अच्छे पुरुषों वाला । अद =यह ।

* इस प्रकार हलन्तनपुंसकलिङ्ग समाप्त हुआ *

— ० —

अथाऽव्ययप्रकरणम्

स्वरादिनिपातमव्ययम १ । १ । ३७ ॥ [1]स्वरादयो निपाताश्चाऽव्ययसंज्ञा स्य । स्वर । अन्तर । प्रातर् । पुनर । सनुतर् । उच्चैस् । नीचस् । शनस । ऋधक् । ऋते । युगपत् । आरात । पृथक । ह्यस । श्वस । दिवा । रात्रौ । सायम् । चिरम् । मनाक । ईषत । जोषम् । तूष्णीम् । बहिस । अवस । समया । निकषा । स्वयम् । वृथा । नक्तम् । नञ । हेतौ । इद्धा । अद्धा । सामि । वत् । ब्राह्मणवत । क्षत्रियवत । सना । सनत् । सनात् । उपधा । तिरस । अन्तरा । अन्तरेण । ज्योक । कम् । शम् । सहसा । विना । नाना । स्वस्ति । स्वधा । अलम् । वषट । श्रौषट् । वौषट । अन्यत् । अस्ति । उपांशु । क्षमा । विहायसा । दोषा । मृषा । मिथ्या । मुधा । पुरा । मिथो । मिथस् । प्रायस । मुहुस् । प्रवाहुकम्, [प्रवाहिका] । आर्यहलम । अभीक्षणम । साकम । सार्धम् । नमस् । हिरुक ।

१-स्वरादिगण मे पढ गये शब्द और निपात-संज्ञक शब्द 'अव्यय संज्ञक होते है । अन्तर=बीच । प्रातर=प्रात काल । पुनर्=फिर, बार बार । सनुतर्=छिपना । उच्चैस = ऊचा बडा । नीचैस् = नीचा, छोटा । शनैस् = धीरे धीरे, विलम्ब । ऋधक = सत्य । ऋते=बिना । युगपत्=एक साथ । आरात्=दूर और नजदीक । पृथक = अलग, बिना । ह्यस = बीता हुआ कल का दिन । श्वस = आगामी (कल का) दिन । दिवा=दिन । रात्रौ=रात । सायम्= सायकाल । चिरम्=बहुत दिन । मनाक् = ईषत्=थोडा । जोषम्=चुप रहना, सुख । तूष्णीम् =न बोलना चुपचाप । बहिस् , अवस् = बाहर । समया, निकषा=नजदीक मध्य । स्वय= अपने । वृथा=व्यर्थ । नक्तम्=रात्रि । नञ् = नहीं । हेतौ=कारण । इद्धा=स्पष्ट । अद्धा= स्पष्टार्थ, विनिश्चय (साक्षात्) । सामि=आधा । वत्=समान, तुल्य । ब्राह्मणवत्=ब्राह्मण के समान । क्षत्रियवत्=क्षत्रियके समान । सना सनात्=नित्य । उपधा=भेद या घूम । तिरस् = टेढा, छिप जाना । अन्तरेण, अन्तरा=बिना (छोडकर) बीच मे । ज्योक = अतिशीघ्रता । कम् = पानी, शिर, सुख, निन्दा । शम् = कल्याण (भलाई), सुख । सहसा=एकाएक (अचानक) विना=बिना । नाना=अनेक प्रकार । स्वस्ति=शुभ, कल्याण । स्वधा=पितरों के तृप्ति के लिए श्राद्धादिकों में प्रयुक्त किया जाने वाला (प्रतिष्ठित) पद । अलम्= बस', और की इच्छा (आवश्यकता) न रहने पर यह शब्द कहा जाता है आभूषण परिपूर्णता । वषट् = देवताओं के तृप्त्यर्थ 'हवि' दान में । अन्यत्-अन्य और । अस्ति=है । उपांशु=अन्त उच्चारण (जैसे गायत्री मन्त्रके जपमें) एकान्त । क्षमा-माफी । विहायसा=आकाश । दोषा=रात । मिथ्या=मृषा, असत्य । मुधा=व्यर्थ, पाय । पुरा=पहले । मिथो, मिथस् = परस्पर । प्रायस = अत्यन्त । मुहुस् = पुन । प्रवाहुकम् वा प्रवाहिका= एक कालमें वा ऊँचाई मे । आर्यहलम्=बलात्कार करने में, रोकने में । अभीक्ष्णम्=निरन्तर,

धिक् । अथ । अम् । आम् । प्रताम् । [प्रशान्] प्रतान् । मा । माङ् । आकृतिगणोऽयम् । च । वा । ह । अह । एव । एवम् । नूनम् । शश्वत् । युगपत् । भूयस् । कूपत् । कुवित् । नेत् । चेत् । चण् । कच्चित् । यत्र । नह । हन्त । माकि । माकिम् । नाकि । नाकिम् । माङ् । नञ् । यावत् । तावत् । त्वै । द्वै । [न्वै] । रै । श्रौषट् । वौषट् । स्वाहा । तुम् । तथाहि । खलु । किल । अथो । अथ । सुष्ठु । स्म । आदह ।

❀ [1]उपसर्ग-विभक्ति-स्वरप्रतिरूपकाश्च ❀

अवदत्तम् । अहंयु । अस्तिक्षीरा । अ । आ । इ । ई । उ । ऊ । ए । ऐ । ओ । औ । पशु । शुकम् । यथाकथाच । पाट् । प्याट् । अङ्ग । है । हे । भो । अये । द्य । विषु । एकपदे । युत् । आतः । चादिरप्याकृतिगणः ।

बारम्बार । साकम्=सार्धम् साथ में । नमस्=नमस्कार । हिरुक्=बिना । धिक्=धिक्कार । अथ=मंगल । अम्=अतिशीघ्रता । आम्=स्वीकार करना । प्रताम्=पश्चात्ताप वा प्रारम्भ । प्रशान्=तुल्य । प्रतान=विस्तार । मा, माङ्=रोकना खण्डन करना । ये पूर्वोक्त स्वर आदि अव्यय आकृतिगण हैं । अर्थात् आकृत्या स्वरूपेणैव गण्यते इति अपने स्वरूप से ही जाने जाते हैं । प्रशाम् के स्थान में प्रशान् का पाठ कुछ लोग मानते हैं । किन्तु वह साम्प्रदायिक नहीं है । इसी प्रकार के कुछ और भी स्वरादि हैं । ग्रन्थविस्तार के भय से नहीं दिये जाते हैं । च=भी, और (समुच्चय अन्वाचय, इतरेतर योग समाहार और । वा=अथवा विकल्प । ह=प्रसिद्ध निश्चय । अह=स्पष्ट । एव=निश्चय । एवम्=इसी प्रकार । नूनम्=निश्चय अवश्य । शश्वत्=सब दिन । युगपत्—एक समय । भूयस्=अत्यधिक पुनः । कूपत्=प्रश्न, बड़ाई । कुवित्=अत्यधिक, प्रशंसा । नेत्=निषेध, विचार, सन्देह । चेत्=यदि । कच्चित्=कदाचित्, अनुकूल प्रश्न । यत्र=जहाँ । तत्र=वहाँ, हाँ । नह=नहीं । हन्त=प्रसन्नता प्रस्तुत पर दुःख प्रकट करना । माकि माकिम्=प्रतिषेध (रोकना) । नाकि, नाकिम=नहीं नहीं । माङ्, नञ्=निषेध । यावत्=जितना जब तक । तावत्=तब तक, उतना । त्वै, द्वै न्वै=विशिष्ट विचार (तर्क) । न्वै पाठ-भेद है । रै=दान, आदर । श्रौषट् वौषट् स्वाहा=देवताओं के तृप्त्यर्थ हवि आदि के प्रदान आदि में । तुम्=तू । तथाहि=जैसे उदाहरण के अर्थ में । खलु, किल=निश्चय । सुष्ठु=सुन्दर । स्म=भूतकालवाचक पाद की पूर्ति में । आदह=प्रारम्भ, निन्दा, हिंसा ।

[1] उपसर्ग प्रतिरूपक (सदृश) सुबन्त-सुप्प्रतिरूपक तिङन्तप्रतिरूपक एवं स्वर प्रतिरूपक शब्द भी अव्यय संज्ञक होते हैं । अवदत्तम्=दिया गया । अहंयु=अभिमानी । अस्तिक्षीरा=दूधवाली । 'अ' से औ तक के स्वर । पशु=सम्यक् । शुकम्=शीघ्र । यथाकथाच=अनादर, किसी तरह से । पाट्, प्याट्, अङ्ग, है हे, भो अये सम्बोधन अर्थ में । द्य=सम्बोधन

[1]**तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः १ । १ । ३८ ॥** यस्मात् सर्वा विभक्ति- र्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययं स्यात्। परिगणनं कर्त्तव्यम्। तसिलादयः प्राक् पाशपः। शसप्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः। अम्। आम्। कृत्वोर्थाः। तसिवती। नानाञौ। एतदन्तमप्यव्ययम्।

कृन्मेजन्तः १ । १ । ३९ ॥ [2]कृद्यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात्। स्मारं स्मारम्। जीवसे। पिबध्यै।

क्त्वा-तोसुन्-कसुनः १ । १ । ४० ॥ [3]एतदन्तमव्ययं स्यात्। कृत्वा। उदेतोः। विसृपः।

अव्ययीभावश्च १ । १ । ४१ ॥ [[4]अव्ययीभावश्चाऽव्ययसंज्ञः स्यात्।] अधिहरि।

अव्ययादाप्सुपः २ । ४ । ८२ ॥ [5]अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक् स्यात्। तत्र शालायाम्।

[6]सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥ १ ॥
वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥ २ ॥

हिंसा, पादपूरण उलटा। विषु=अनेक। एकपदे=एक वा एकत्र, सहसा अकस्मात्। युत्=निन्दा। आत =इसलिए। चादि=च है आदि मे जिनके वे भी आकृतिगण है।

१—तद्धित के जिस शब्द से सभी विभक्तियाँ न हों ऐसा तद्धितान्त पद भी अव्यय-संज्ञक होता है। उनकी गणना करनी चाहिए। तसिल् प्रत्यय तक के (तद्धितान्त) अव्यय सञ्ज्ञक होते हैं। और शस् से लेकर समासान्त प्रत्ययों के पूर्व के अव्यय संज्ञक होते हैं। २—मान्त और एजन्त जो कृत् तदन्त की अव्यय संज्ञा होती हैं। स्मारं स्मारम्=बार बार स्मरण कर के। जीवसे=जीने के लिए। ३—क्त्वा, तोसुन् और कसुन् प्रत्ययान्त शब्द अव्यय संज्ञक होते है। कृत्वा=करके। उदेतो=उदय होकर। विसृप=फैलकर। ४—अव्ययीभाव समास की अव्ययसंज्ञा होती है। अधिहरि=हरि में। ५—अव्यय से लाये गये आप और सुप् का लोप होता है। तत्र शालायाम्=उस भवन मे। ६—जो शब्द तीनों (पु० स्त्री० नपुसक) लिङ्गों में प्रथमा से सप्तमी तक के सब विभक्तियों मे एवं सब वचनों एकवचन द्विवचन बहुवचनों मे विकृत (रूपान्त को प्राप्त) नहीं होता वही अव्यय कहलाता है। भागुरि आचार्य कहते हैं कि अव और अपि—इन उपसर्गों के अकार का लोप होता है और हलन्त शब्दों से आप् प्रत्यय होता है, जैसा वाचा (वाणी) निशा (रात्रि) दिशा आदि मे आप् हो गया।

पाणिनि व्याकरण के मूलग्रन्थ अष्टाध्यायी पर अनेक वत्तिग्रथ लिखे गये। अष्टाध्यायी के सूत्रो के अनुसार लिखी गई जयादित्य वामनकी 'काशिका वत्ति' सराहनीय है। कात्यायन के वार्तिक तो सूत्रो के साथ मे उल्लिखित मिलते हे। पतञ्जलि ने सूत्रो के अनुसार महाभाष्य का निवचन किया। महाभाष्य पर अनेक टीकाए लिखी गइ, जिनमे जैयटात्मज कयट का प्रदीप तथा प्रदीपपर नागेश कृत उद्योत बहुत ही प्रसिद्ध है। इस प्रकार सवप्रथम सम्पूण अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करना तथा प्रयोग के लिये 'काशिकावत्ति' पढना, अनन्तर विशेषज्ञानार्थं महाभाष्य पढने के बाद विशिष्ट पाण्डित्य प्राप्त होता था तथा आज भी वह क्रम सराहनीय है। जि ह अष्टाध्यायी कण्ठस्थ हो जायेगी, वे शीघ्र ही पाणिनि व्याकरण मे पूणगति प्राप्त कर सकते है।

प्रौढ एव परिश्रम न करनेवालो को प्रयोगादि मे कठिनाइ मालूम पडने लगी तब प्रक्रिया कम से पठन पाठन की सुव्यवस्था के लिये आचाय श्रीरामच द्र ने 'प्रकिया कौमुदी' का निर्माण किया। ऐतिहासिक इनका समय ईसा की पन्द्रहवी शताब्दी स्वीकार करते हे।

प्रक्रिया कौमुदी मे पाणिनि के समस्त सूत्रो का सन्निवेश अप्राप्त है, अत यह ग्र थ पाणिनि व्याकरण का पूणत उपकारक नही बन सका। इस न्यूनता को पूर्ण करने की दृष्टि से महामनीषी श्री भट्टाजिदीक्षित न 'सिद्धा तकौमुदी' की रचना की जो शास्त्राथपूवक अनोखी प्रयोग प्रणाली की प्रकाशिका है। श्री दीक्षितजी ने समस्त अष्टाध्यायी के सहित उणादि सूत्र, लिङ्गानुशासन, गणपाठ एव धातु-पाठादि से सम्पन्न यह ग्र थ बनाया। कौमुदी की प्रशसा गुरुजन किया करते थे। बात भी सत्य है—

कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रम।
कौमुदी यद्यकण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रम॥

आचाय श्री वरदराज जी श्री भट्टोजिदीक्षित के शिष्य थे। इनके पिता का नाम दुर्गातनय था। ये दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। इन्होने पाणिनि व्याकरण मे प्रवेश पाने की कामनावाले सूकुमार बुद्धिवाले बालको के सुखपूवक बोध के लिए **'लघु सिद्धान्तकौमुदी'** की रचना की। पाणिनीय व्याकरणरूपी महासमुद्र से शब्दरत्नो का यह लघु प्रयास अभ्यासाथ परमोपयोगी है। लेखक की आद्यप्रतिज्ञा एव अन्तिम निर्देश सत्य है—

प्रारम्भे—पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ।
अन्ते—शास्त्रान्तरे प्रविष्टाना बालाना चोपकारिका ।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥

श्रीवरदराजजी ने बाद मे (अर्थात् लघुकौमुदी द्वारा साधारण ज्ञान हो जाने पर) जिज्ञासु शिष्यो की ज्ञान वद्धि के निमित्त 'मध्यकौमुदी' का सम्पादन किया । यह किंवद ती है कि भट्टोजि दीक्षित को इस कृति से सशय हुआ कि इस मध्यकौमुदी के पढने के बाद मेरी 'सिद्धा तकौमुदी' कौन पढेगा, क्योकि सिद्धा तकौमुदी का सार सवस्व मध्यकौमुदी है । किन्तु पहले के आचाय शिष्य-वत्सल होते थे । 'नन्‌ु राजीवदयावशवद ' इत्यादि उक्तिया प्रमाण हैं ।

श्री वरदराजजी श्री भट्टोजि दीक्षित के शिष्य थे । इसमे प्रमाण मध्यकौमुदी का मङ्गलाचरण है—

नत्वा वरदराज श्री-गुरून् भट्टोजिदीक्षितान् ।
करोति पाणिनीयाना मध्यसिद्धान्तकौमुदीम् ॥

इससे प्रमाणित होने है कि ये दोनो गुरुशिष्य समकालिक थे ।

प्रस्तुत 'लघुसिद्धा तकौमुदी' स्वय बालोपयोगिनी है, किन्तु यथासमय बालको के उपकाराथ अनेक विद्वानो ने अनक टीकाए (सस्कृत एव हिन्दी मे) लिखी है । सभी उपयोगिनी है कि तु मेरी 'शिवा' (माता महालक्ष्मी गौरी की भाति कल्याणदायिनी) टीका छात्रो के हिताथ लिखी गई है । पूज्य गुरुजनो से भी प्राथना है कि प्रत्येक प्रकरण के प्रारम्भ मे उस प्रकरण के नामकरण का प्रयोजन एव विषय निर्देशन अवश्य करा दिया जाय ।

इस व्याख्या मे विशेष बात यह है कि ज्ञानोपयोगी एव परीक्षोपयोगी जो कठिन शब्द है, उनका साधुत्व प्रकार यथास्थान आवश्यक शब्दो एव धातुओ के रूप तथा आवश्यकतानुसार विशेष विवेचन आदि सस्कृत मे है तथा सूत्रो, वार्तिको एव तत्तत्प्रकरण मे तत्तत्स्थल पर आये हुए शब्दो के अथ हिन्दी भाषा मे भी सुस्पष्ट लिखे गये है । आशा एव विश्वास है कि गुरुजन शुभकामना करेंगे तथा छात्रवग मन लगाकर पढकर लाभ उठायेंगे ।

शिवार्थं सर्वच्छात्राणा शिवेय सम्प्रकाशिता ।
गुरूणाञ्चैव हृद्या स्यादिति याचे वशवद ॥

विदुषा वशवद —
गोमती प्रसाद मिश्र

वगाह, अवगाह । पिधानम्, अपिधानम् ।

० इति लघुसिद्धान्तकौमुद्यामव्ययप्रकरणम् ०



अथ तिङन्ते भ्वादिप्रकरणम्

लट लिट लुट लृट लेट् लोट् लङ् लिङ लुङ् लृङ् ।—[1]एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचर ।

ल कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्य ३ । ४ । ६९ ॥ [2]लकारा सकर्मकेभ्य कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ।

वर्तमाने लट ३ । २ । १२३ ॥ [3]वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात । अटावितो । [4]उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्त्वम । भू सत्तायाम् । कर्तृविवक्षाया भू ल् इति स्थिते—

तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वसमस्ताऽऽताञ्झथासाथान्ध्वमिड्वहिमहिङ् ३ । ४ । ७८ ॥ [5]एतेऽष्टादश लादेशा स्यु ।

अब अपि उपसर्गो का उदाहरण दे रहे हैं । वगाह=स्नान । पिधानम्=ढकना । दोनों मे अकार का लोप हो गया है ।

* इस प्रकार अव्ययप्रकरण समाप्त *



१—इन दशों लकारों मे से पाँचवें (लेट्) लकार का प्रयोग केवल वेद में ही होता है ।
२—'लकार' सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता मे तथा अकर्मक धातुओं से भाव एवं कर्ता में होते हैं ।

बच्चो को यह ध्यान रखना चाहिये कि काल (समय) के प्रधानतया तीन विभाग है—भूत वर्तमान और भविष्यत् । बीते हुए समय को भूतकाल कहते हैं, जैसे—स जगाम=वह गया, यह भूतकाल है । देवदत्त पठति=देवदत्त पढना है यह वर्तमान काल है । यज्ञदत्त पठिष्यति=यज्ञदत्त पढेगा, यह भविष्यत् काल है । ये तीनों काल सामान्य एवं विशेष भेद वाले भी होते हैं ।

३—वर्तमान कालिक क्रियावृत्ति (क्रिया के व्यवहार में) धातु से लट् लकार होता है । ४—'लशक्वतद्धिते' से 'ल' की इत्संज्ञा प्राप्त होती है किंतु उच्चारण के सामर्थ्य से नहीं होती है । ५—लकार के स्थान मे ये तिप् तस आदि अठारहों आदेश होते हैं । (जैन व्याकरण मे पहले उत्तम पुरुष, तब मध्यम तत्पश्चात् अन्य पुरुष होता है । यह सूत्र वहाँ मिब्वस् से है) ।

ल परस्मैपदम् १।४।९९।। [1]लादेशा परस्मैपदसंज्ञाः स्युः ।

तङानावात्मनेपदम् १।४।१००।। तङ् प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः । पूर्वसंज्ञाऽपवादः ।

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२।। अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् ।

स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२।। [4]स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले ।

शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८।। [5]आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् ।

तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१।। [6]तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः ।

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १।४।१०२।। [7]लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि वचनानि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः ।

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः १।४।१०५।। [8]तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः स्यात् ।

अस्मद्युत्तमः १।४।१०७।। [9]तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः स्यात् ।

शेषे प्रथमः १।४।१०८।। [10]मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात् । भू-ति इति जाते ।

१-लकार के स्थान मे होने वाले तिप आदि आदेश परस्मैपद-संज्ञक होते हैं। २-तङ् प्रत्याहार और शानच् कानच् प्रत्यय आत्मनेपद-संज्ञक होते है। यह परस्मैपद का बाधक है। ३-अनुदात्तेत् और ङित् धातु से आत्मनेपद होता है। ४-कार्य का फल कर्ता में जाता (प्राप्त होता) हो तो स्वरितेत् ञित् धातु से आत्मनेपद होता है (जैसे-कोई मनुष्य भोजन बना रहा है वह यदि अपने लिए बनाता है, तब तो 'पचते' ऐसा आत्मनेपद होगा और यदि दूसरे के लिए बना रहा है तो वहाँ 'पचति' ऐसा परस्मैपदका प्रयोग होगा)। ५-आत्मनेपद के निमित्त से हीन धातु से कर्ता मे परस्मैपद होता है। ६-तिङ् के परस्मैपद और आत्मनेपद सम्बन्धी तीन तीन त्रिकों को क्रम से प्रथम, मध्यम उत्तम (पुरुष) संज्ञा होती है। ७-उन प्राप्त प्रथमादि संज्ञावाले तीन तीन त्रिकों की (प्रत्येक मे) क्रम से एक वचन द्विवचन बहुवचन संज्ञा होती है। ८-तिङ् से वाच्य जो कारक तद्‌ (कारक) वाची युष्मद् शब्द का प्रयोग (उच्चारण) किया जाय या नहीं तो मध्यमपुरुष होता है (अर्थात् युष्मद् शब्द और मध्यम पुरुष मे अभेद है)। ९-तिङ्वाच्यकारकवाची अस्मद् शब्द प्रयुज्यमान हो या अप्रयुज्यमान हो तो धातु से उत्तम पुरुष होता है। १०-मध्यम और उत्तम पुरुष के अविषय अर्थात् अन्य व्यक्ति मे प्रथम पुरुष होता है।

तिङ्शित्सार्वधातुकम् ३ । ४ । ११३ ॥ [1]तिङ शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्सञ्ज्ञा स्यु ।

कर्तरि शप् ३ । १ । ६८ ॥ [2]कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातो शप स्यात् ।

सार्वधातुकार्धधातुकयो ७ । ३ । ८४ ॥ [3]अनयो परयोरिगन्ताङ्गस्य गुण स्यात् । अवादेश । भवति । भवत ।

झोऽन्त ७ । १ । ३ ॥ [4]प्रत्ययावयवस्य झस्याऽन्तादेश स्यात् । अतो गुणे । भवन्ति । भवसि । भवथ । भवथ ।

अतो दीर्घो यञि ७ । ३ । १०१ ॥ [5]अतोऽङ्गस्य दीघ स्याद्यञादौ सार्वधातुके । भवामि । भवाव । भवाम । स भवति । तौ भवत । ते भवन्ति । त्व भवसि । युवा भवथ । यूय भवथ । अह भवामि । आवा भवाव । वय भवाम ।

परोक्षे लिट् ३ । २ । ११५ ॥ [6]भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् । लस्य तिबादय ।

परस्मैपदाना णलतुसुस्थलथुसणल्वमा ३ । ४ । ८२ ॥ [7]लिटस्तिबादीना नवाना णलादयो नव स्यु । भू अ इति स्थिते ।

भुवो वुग् लुङ्लिटो ६ । ४ । ८८ ॥ [8]भुवो वुगागम स्याल्लुङ्लिटोरचि ।

लिटि धातोरनभ्यासस्य ६ । १ । ८ ॥ [9]लिटि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाच प्रथमस्य द्व स्त, आदिभूतादच परस्य तु द्वितीयस्य । भूव् भूव् अ इति स्थिते ।

१–धातु के अधिकार मे पठित तिङ् और शित् सार्वधातुक-संज्ञक होते हैं । २–कर्त्रथक अथात् कर्ता का कहनेवाला सार्वधातुक पर मे रहे तो धातुसे शप् प्रत्यय होता है । ३–सार्वधातुक या आर्धधातुक पर मे रहे तो इगन्त अङ्ग को गुण होता है । भवति=होना है हो रहा है । ४–प्रत्यय के अवयव झ को 'अन्त' आदेश होता है । ५–यञादि सार्वधातुक पर मे रहे तो अदन्त अङ्ग को दीघ होता है । ६–भूत अनद्यतन (आज मे पूर्व) परोक्ष (आँख से न देखा गया) अथ मे व्यवहार होने पर धातु से लिट् लकार होता है । ७–लिट् के तिप् आदि नवो के स्थान मे णल आदि नव होते हैं । ८–लुङ् या लिट् सम्बन्धी अच् पर में रहे तो भू धातु से वुक् का आगम होता है । ९–लिट् पर मे रहे तो अभ्यासरहित धातु का अवयव जो एकाच् उसको द्वित्व होता है आदिभूत अच् से परे द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है ।

पूर्वोऽभ्यास ६ । १ । ४ ॥ [1]अत्र ये द्वे विहिते तयो पूर्वोऽभ्यासस‌ज्ञ स्यात् ।

हलादि शेष ७ । ४ । ६० ॥ [2]अभ्यासस्याऽऽदिहल शिष्यते, अन्ये हलो लुप्यन्ते । इति वलोप ।

ह्रस्व ७ । ४ । ५९ ॥ [3]अभ्यासस्याऽचो ह्रस्व स्यात् ।

भवतेर ७ । ४ । ७३ ॥ [4]भवतेरभ्यासोकारस्य अ स्याल्लिटि ।

अभ्यासे चच ८ । ४ । ५४ ॥ [5]अभ्यासे झला चर स्युर्जशश्च । झशा जश , खया चर इति विवेक । बभूव । बभूवतु । बभूवु ।

लिट च ३ । ४ । ११५ ॥ [6]लिडादेशस्तिडाधधातुकसज्ञ स्यात् ।

आधधातुकस्येड् वलादे ७ । २ । ३५ ॥ [7]वलादेराधधातुकस्येडागम स्यात् । बभूविथ । बभूवथु । बभूव । बभूव । बभूविव । बभूविम ।

अनद्यतने लुट् ३ । ३ । १५ ॥ [8]भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् स्यात् ।

बभूव—सत्ताथवाची धातुसज्ञक भू' इत्यस्माल्लिटि तस्य स्थाने 'तिसस' इत्यादिना तिपि, 'परस्मपदाना णलतुस इत्यादिना तिपो णलादेशे, अनुबन्धलोपे, 'भुवो वुग् लुङलिटो ' इति वुगागमे, उकावितौ, लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति भूव इत्यस्य द्वित्वे, अभ्यासादिकार्ये, 'ह्रस्व ' इति अभ्यासस्य ह्रस्वे, 'भवतेर ' इति उकारस्य अकारे, 'अभ्यासे चच' इति चर्त्वेन भस्य बत्वे 'बभूव' इति ।

बभूविथ—भू धातो 'परोक्षे लिट' इति लिटि, अनुबन्धलोपे, तस्य सिपि, 'लिट च' इत्याधधातुकत्वे परस्मैपदानामित्यदिना सिपस्थलादेशे 'भू थ' इति दशाया स्थानिवत्त्वेन थस्याधधातुकत्वात् 'आधधातुकस्येडवलादे ' इति इडागमे, अनुबन्धलोपे, भुवो वुगिति वुगागमे, लिटि धातोरित्यादिना भूव इत्यस्य द्वित्वे, 'पूर्वोऽभ्यास ' इति अभ्यासत्वे, 'हलादि शेष ' इति वस्य लोपे, 'ह्रस्व ' इति ह्रस्वे, 'अभ्यासे चच' इति चर्त्वेन भस्य बकारे 'बभूविथ' इति ।

१–यहाँ जो द्वित्व विधान किये हैं, उनमे से पूव की अभ्यास संज्ञा होती है । २–अभ्यास के आदि हल् का शेष रहता है अन्य हलों का लोप हो जाता है । ३–अभ्यास के अच् को ह्रस्व होता हैं । ४–लिट् पर मे रहे तो 'भू' धातु के अभ्यास सम्बन्धी उकार को अकार होता है । ५–अभ्यास मे झलों की चर् तथा जश भी होते हैं । ६–लिट् के स्थान में आदेश होने वाला जो तिङ् उसकी,आर्धधातुक सज्ञा होती है । ७–वल् प्रत्याहार हो आदि में जिसके ऐसे आर्धधातुक से इट् का आगम होता है । ८–भविष्यत् अनद्यतन (आज से आगे) अर्थ मे धातु से 'लुट्' लकार होता है ।

स्यतासी लृलुटो ३ । १ । ३३ ॥ [1]धातो स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो ल्लृटो परत । शबाद्यपवाद । 'लृ' लृड लृटोग्रहणम् ।

आधधातुक शेष ३ । ४ । ११४ ॥ [2]तिड शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहित प्रत्यय एतत्सज्ञ स्यात् । इट ।

लुट प्रथमस्य डारौरस २ । ४ । ८५ ॥ [3]डा रौ रस एते क्रमात्स्यु । [4]डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोप । भविता ।

तासस्त्योर्लोप ७ । ४ । ५० ॥ [5]तासेरस्तश्च सस्य लोप स्यात्सादौ प्रत्यये परे ।

रि च ७ । ४ । ५१ ॥ [6]रादौ प्रत्यये तथा । भवितारौ । भवितार । भवितासि । भवितास्थ । भवितास्थ । भवितास्मि । भवितास्व । भवितास्म ।

लृट शेषे च ३ । ३ । १३ ॥ [7]भविष्यदर्थाद्धातोलृ ट स्यात् क्रियार्थाया क्रियाया सत्यामसत्या वा । स्य । इट । भविष्यति । भविष्यत । भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथ । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्याव । भविष्याम ।

लोट् च ३ । ३ । १६२ ॥ [8]विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट स्यात् ।

भवितारौ— भू' धातो अनद्यतने लुट इति लुटि लस्य तिप्तसादिना तसा देशे कृते, शप प्रबाध्य स्यतासी ललुटो ' इति तासि तास 'आधधातुक शेष ' इति आधधातुकसज्ञायाम् आधधातुकस्येड वलादे ' इतीडागमे धातोगुणावादेशयो: कृतयो तस लुट प्रथमस्य डारौरस ' इति रौभावे, 'रि च इति सस्य लोपे 'भवितारौ' इति ।

१–लृट तथा लुट् को स्य और तास् प्रत्यय क्रमश होते हैं । २–तिड् और शित से भिन्न और धातो ' इसके अधिकार में विहित प्रत्यय की आधधातुक सज्ञा होती है । ३–लुटसम्बन्धी प्रथम पुरुष (तिप् तस झि) के स्थान मे क्रम से डा, रौ रस् आदेश होते हैं । ४–('डा' प्रत्यय) टकार की इत्संज्ञा होने डित है अत भसंज्ञक न होने पर भी टि का लोप होता है । ५—सादि (सकार हा आदि मे जिसके ऐसा) प्रत्यय पर मे रहे तो तास प्रत्यय एवं अस् धातु-सम्बन्धी सकार का लोप होता है । ६—रादि प्रत्यय भी पर में रहे तो वैसा ही जानना । ७–क्रिया क्रियार्थक हो या नहीं हो भविष्यत् अथ मे धातु से लृट् लकार होता है । ८—विधि, निमन्त्रण, आम त्रण, अधीष्ट, संप्रश्न प्रार्थना–इन अर्थों मे धातु से लोट् लकार होता है ।

आशिषि लिङ्लोटौ ३ । ३ । १७३ ॥ [[1]आशिषि धातोर्लिङ्लोटौ स्त]।

एरुः ३ । ४ । ८६ ॥ [2]लोट इकारस्य उ स्यात् । भवतु ।

तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम ७ । १ । ३५ ॥ आशिषि तुह्योस्तातङ् वा स्यात् । परत्वात्सर्वादेश । भवतात् ।

लोटो लङ्वत् ३ । ४ । ८५ ॥ [4]लोटो लङ इव काय स्यात् । तेन तामादय सलोपश्च ।

तस्थस्थमिपा तान्तन्ताम ३ । ४ । १०१ ॥ [5]ङितश्चतुर्णा तामादय क्रमात्स्यु । भवताम् । भवन्तु ।

सेर्ह्यपिच्च ३ । ४ । ८७ ॥ [6]लोट सेर्हि स्यात् सोऽपिच्च ।

अतो हे: ६ । ४ । १०५ ॥ [7]अत परस्य हेर्लुक् स्यात् । भव, भवतात् । भवतम् । भवत ।

मेर्नि ३ । ४ । ८९ ॥ [8]लोटो मेर्नि स्यात् ।

आडुत्तमस्य पिच्च ३ । ४ । ९२ ॥ [9]लोडुत्तमस्याऽऽट् स्यात्म पिच्च । भवानि । [10]हिन्योरुत्व न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात् ।

ते प्राग्धातो: १ । ४ । ८० ॥ [11]ते = गत्युपसगसज्ञका धातो प्रागेव प्रयोक्तव्या ।

आनि लोट् ८ । ४ । १६ ॥ [12]उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्या-

---

१—आशीर्वाद अथ मे धातु स लिङ् और लोट लकार हाते हैं । २—लोट सम्बधी इकारके स्थान में उकार होना है । ३—आशीर्वाद अथ मे 'तु' एव 'हि' को तातङ आदेश विकल्प मे होता है । ४—लोट्-सम्बधी काय लङ की तरह होते हैं । अत तम्-आदि के स्थान में ताम्-आदि आदेश और सकार का लोप भी होता है । ५—ङित् सम्बधी तस थस्, थ मिप्-इन चारों के स्थान मे क्रम से ताम्, तम्, त अम् आदेश होते हैं । ६—लोट्-सम्बधी 'सि' के स्थान मे 'हि' होना है और वह 'अपित्' संज्ञक होता है । ७—अदन्त (ह्रस्व अकारान्त) से परे 'हि' का लोप होता है । ८—लोट सम्बधी 'मि' के स्थान में 'नि' आदेश होना है । ९—लोट सम्बधी उत्तम पुरुष से 'आट' का आगम होता है और वह पित्' संज्ञक होता है । १०—'मेह्यपिच्च, मेर्नि' मे विहित हि' 'नि' के 'इ' का 'उ' नहीं होता, इकारोच्चारण के सामर्थ्य से अर्थात यदि उकार ही करना इष्ट होता तो उकार युक्त ही उच्चारण किया गया होता । ११—गति-संज्ञक एवं उपसर्ग-संज्ञकों का धातु में पहले ही प्रयोग करना चाहिए । १२—उपसग मे रहने वाले निमित्त (अर्थात् णत्व निमित्त रेफ षकार) से परे लोडादेश 'आनि' के नकार को णकार होता है ।

ऽनीत्यस्य नस्य ण स्यात् । प्रभवाणि । ❀[1]**दुर षत्वणत्वयोरुपसर्गत्व-प्रतिषेधो वक्तव्य** । दु स्थिति । दुभवानि । ❀[2]**अन्तश्शब्दस्याऽङ्कि-विधिणत्वेषूपसर्गत्व वाच्यम्** । अन्तभवाणि ।

नित्य ङित ३ । ४ । ९९ ॥ सकारान्तस्य डिदुत्तमस्य नित्य लोप स्यात् । अलोऽन्त्यस्येनि सलोप । भवाव । भवाम ।

अनद्यतने लङ् ३ । २ । १११ ॥ [4]अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात् ।

लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्त ६ । ४ । ७१ ॥ [5]एष्वङ्गस्याऽडागम स्यात्, स चोदात्त ।

इतश्च ३ । ४ । १०० ॥ [6]ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्त यत्तदन्तस्य लोप स्यात् । अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभव । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम ।

विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३ । ३ । १६१ ॥ [7]एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात् ।

भवानि, प्रभवाणि—भू धातो लोट च 'आशिषि इति वा लोटि, अनुबन्धलोपे, तस्य सार्वधातुकत्वेन शपि गुणेऽवादेशे च जाते, मेर्नि' इति 'मि' इत्यस्य 'नि इत्यादेशे, 'आडुत्तमस्य पिच्च' इत्याडागमे दीर्घे 'भवानि' इति । मेर्निरित्यत्रेकारोच्चारणान्न 'एरु' इत्यस्य प्रवृत्ति । 'ते प्राग्धातो' इति सूत्रेण शब्दस्य प्राक्प्रयोगे 'आनि लोट' इति नस्य णत्वे 'प्रभवाणि' इति ।

अभवत—भू–धातो 'अनद्यतने लङ' इति लङि, तस्य तिपि, लस्य स्थानिवत्त्वे 'लुङलङलृङक्ष्वडुदात्त' इति अडागमे, भू इत्यस्मात् शपि गुणेऽवादेशे, ति'–निष्ठ इकारस्य 'इतश्च इति लोपे अभवत्' इति ।

१—षत्वऔर णत्व के विधान मे 'दुर्' के उपसर्गत्व का प्रतिषेध कहना चाहिए। २—अड विधि किविधि एवं णत्व विधान मे अन्तर शब्द की उपसर्गसज्ञा कहनी चाहिए। ३—ङित् (लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्) सम्बन्धी सकारान्त उत्तम पुरुष का नित्य ही लोप होता है। ४—अनद्यतन भूत अर्थ मे धातु से 'लङ्' लकार होता है। ५—लुङ्, लङ् या लृङ् पर मे रहे तो अङ्ग से अट् का आगम होता है और वह उदात्त संज्ञक होता है। ६—ङित् सम्बन्धी इकार के स्थान मे जो इकारान्त परस्मैपद (ति, सि, मि—आदि) तदन्त (अर्थात् इकार) का लोप होता है। ७–विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थना, इन अर्थों में धातु से लिङ लकार होता है। विधि–नोकर आदि को किसी कार्य के लिए प्रेरित करना। निमन्त्रण–नियोगकरण श्राद्धादिमें दौहित्र (पुत्री के पुत्र) आदि का प्रेम श्रद्धापूर्वक आह्वान। आमन्त्रण–जैसा चाहो करो, ऐसा कहना। अधीष्ट–सत्कारपूर्वक

यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३॥ [1]लिङ परस्मैपदाना यासुडागम स्यात्स चोदात्तो ङिच्च।

लिङ सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९॥ [2]सावधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सम्य लोप स्यात्। इति प्राप्ते।

अतो येय ७।२।८०॥ [3]अत परस्य सावधातुकावयवस्य यास इत्यस्य इय् स्यात्। गुण।

लोपो व्योवलि ६।१।६६॥ [4][वकारयकारयोर्लोप स्याद्वलि]। भवेत्। भवेताम्।

झेर्जुस् ३।४।१०८॥ [5]लिङो झेजुस स्यात्। भवेयु। भवे। भवेतम्। भवेत। भवेयम्। भवेव। भवेम।

लिङाशिषि ३।४।११६॥ [6]आशिषि लिङस्तिङाधधातुकसज्ञ स्यात्।

किदाशिषि ३।४।१०४॥ [7]आशिषि लिङो यासुट् कित्स्यात्। स्को सयोगाद्योरिति सलोप।

ग्क्ङिति च १।१।५॥ [8]गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवद्धी न स्त। भूयात्। भूयास्ताम्। भूयासु। भूया। भूयास्तम्। भूयास्त। भूयासम्। भूयास्व। भूयास्म।

भवेयु—भू धातो विधिनिमन्त्रणाधीष्ट' इत्यादिना लिङि, तस्य प्रथमपुरुष बहुवचन झि' आदेशे, सावधातुकत्वे च 'झेजुस' 'इति झि इत्यस्य जुसि केवल जकारस्येत्वलोपौ, सकारस्य न विभक्तौ–' इति निषेधात्–लोपो न भवति। 'यासुट परस्मपदेषूदात्तो ङिच्च' इति यासुडागमे, अनुबन्धलोपे, धातो शपि गुणेऽवादेशे च भव यास उस इति स्थिते 'अतो येय' इति यास इयादेशे, गुणे, रुत्वे, विसर्गे च 'भवेयु' इति।

गुरु आदि को पढाने के लिए प्रवृत्त कराना।

१–लिङ्सम्बन्धी परस्मैपद को यासुट् का आगम होता है और वह उदात्त एव ङित् होता है। २—सार्वधातुक लिङ्–सम्बन्धी अनन्त्य सकार का लोप होता है। ३—अत् से परे जो सार्वधातुक का अवयव 'यास्' उसको इय होता है। ४—वल् प्रत्याहार पर मे हो तो वकार एव यकार का लोप होता है। ५—लिङ् सम्बन्धी झि के स्थान मे जुस् होता है। ६—लिङ् के स्थान में जो तिङ' उसकी आशीर्वाद अर्थ मे आधधातुक–संज्ञा होती है। ७—आशीर्वाद अर्थ मे लिङ्–सम्बन्धी यासुट् कित्–सज्ञक होता है। ८—गित्, कित् या ङित्–निमित्त इग्लक्षण में गुण या वृद्धि नहीं होती हैं।

लुङ् ३ । २ । ११० ॥ [1]भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लुङ् स्यात् ।

माङि लुङ् ३ । ३ । १७५ ॥ [2][माङ्युपपदे धातोर्लुङ् स्यात्]। सर्वलकारापवादः ।

स्मोत्तरे लङ् च ३ । ३ । १७६ ॥ [3]स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ् ।

च्लि लुङि ३ । १ । ४३ ॥ [4][धातोश्च्लिप्रत्ययः स्याल्लुङि]। शबाद्यपवादः ।

च्लेः सिच् ३ । १ । ४४ ॥ [5][च्लेः सिजादेशः स्यात्]। इचावितौ ।

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २ । ४ । ७७ ॥ [6]एभ्यः सिचो लुक् स्यात् । गापाविहेणादेशपिबती गृह्येते ।

भूसुवोस्तिङि ७ । ३ । ८८ ॥ [7]भू सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न स्यात् । अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभूः । अभूतम् । अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूम ।

अभूत्—भूधातोर्लुङि, तस्य तिपि 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' इत्यडागमे टकारलोपे, 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'च्लेः सिच्' इति सिचि, गातिस्थेति सिचो लुकि, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति प्राप्तस्य गुणस्य 'भूसुवोस्तिङि' इति निषेधे, "इतश्च" इतीकारलोपे 'अभूत्' इति ।

अभूवन्—भू धातोः लुङि तस्य झि प्रत्यये 'लुङ् लङ्—इत्यादिना अडागमे, टकारलोपे, 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'च्लेः सिच् इति सिचि, गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु इति सिचो लुकि 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति प्राप्तस्य गुणस्य भूसुवोस्तिङि' इति निषेधे, 'झोऽन्तः' इति झस्यान्तादेशे, भुवो वुग्लुङ्लिटोः' इति वुगागमे, अनुबन्धलोपे तकारस्य च संयोगान्तलोपे 'अभूवन्' इति ।

अभूवम्—भूधातोर्लुङि, अटागमे, लुङो मिपि 'तस्थस्थमिपाम्—इति अमि,

---

१–भूत–कालार्थ वृत्ति धातु से लुङ् लकार होता है । २–माङ् (मा) शब्द उपपद (पद के समीप) हो तो धातु से लुङ् लकार होता है। सभी लकारों का बाधक है। ३—स्म' शब्द उत्तर (बाद) मे हो ऐसे माङ् [मा स्म ऐसे] के योग मे लङ् लकार तथा (चकारात्) लुङ् लकार भी होता है। ४—लुङ् परे रहते धातु से 'च्लि' प्रत्यय होता है। यह शप–आदि का बाधक है। ५—च्लि' के स्थान मे 'सिच्' आदेश होता है। ६—गा, स्था, घुसंज्ञक धातु, पा एवं भू धातु से परे सिच् का लोप होता है। इणादेश गा' धातु तथा पिबादेश 'पा' धातु का ही गा और पा से ग्रहण है। ७—सार्वधातुक तिङ् पर मे रहे तो 'भू' सु' धातु को गुण नहीं होता है।

न माङ्योगे ६ । ४ । ७४ ॥ [1]अडाटौ न स्त । मा भवान् भूत् । मा स्म भवत् । मा स्म भूत् ।

लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३ । ३ । १३९ ॥ [2]हेतुहेतुमद्भावादि लिङनिमित्त, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ स्यात्, क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्य । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम । 'सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्' इत्यादि ज्ञेयम् । **अत** सातत्यगमने । अतति ।

'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'च्ले सिच इति सिचि, अनुबन्धलोपे गातिस्थेति सिचो लुकि, भुवो वुग लुङ इत्यादिना वुगागम, अनुबन्धलोपे, 'अभूवम् इति ।

'भू' धातुरूपाणा सङ्कलनम्—

लट लकारे—भवति भवत भवन्ति । भवसि, भवथ, भवथ । भवामि, भवाव, भवाम । **लिट लकारे**—बभूव बभूवतु, बभूवु । बभूविथ, बभूवथु, बभूव । बभूव, बभूविव, बभूविम । **लुट लकारे**—भविता भवितारौ, भवितार । भवितासि, भवितास्थ, भवितास्थ । भवितास्मि, भवितास्व भवितास्म । **लृट लकारे**—भविष्यति भविष्यत, भविष्यन्ति । भविष्यसि, भविष्यथ, भविष्यथ । भविष्यामि, भविष्याव भविष्याम । **लोट लकारे**—भवतु–भवतात्, भवताम् भवन्तु । भव–भवतात् भवतम्, भवत । भवानि, भवाव भवाम । **लङ लकारे**—अभवत्, अभवताम् अभवन् । अभव, अभवतम्, अभवत । अभवम्, अभवाव, अभवाम । **विधिलिङि**—भवेत्, भवेताम्, भवेयु । भवे, भवेतम्, भवेत । भवेयम्, भवेव भवेम । **आशिषि लिङि**—भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासु । भूया भूयास्तम्, भूयास्त । भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म । **लुङि**—अभूत्, अभूताम् अभूवन् । अभू अभूतम्, अभूत । अभूवम्, अभूव, अभूम । **लृङि**—अभविष्यत् अभविष्यताम अभविष्यन् । अभविष्य, अभविष्यतम्, अभविष्यत । अभविष्यम् अभविष्याव अभविष्याम ।

परस्मैपदे प्राय सर्वेषा धातूनामेवविधान्येव रूपाणि भवन्ति । विशिष्टस्थले तु यानि भिन्नरूपाणि तानि तु प्रदर्शयिष्यन्ते ।

अतति—निरन्तर गच्छति इत्यादि प्रतिलकार कालभेदश्च ज्ञेय ।

१—माङ (मा) के योग मे अट् या आट नहीं होते हैं । २—क्रिया की सिद्धि न निश्चित हो तो हेतुहेतुमद्भावादि जो लिङ के निमित्त उन अर्थों मे, भविष्यत्काल की क्रिया के यवहार में धातु से लृङ्' लकार होता है । अत–धातु निरन्तर चलने अर्थ मे है ।

अत आदे ७।४।७०॥ [1]अभ्यासस्यादेरतो दीर्घ स्यात्। आत, आततु, आतु। आतिथ, आतथु, आत। आत, आतिव, आतिम। अतिता। अतिष्यति। अततु।

आडजादीनाम् ६।४।७२॥ [2]अजादेरङ्गस्याऽऽट् स्यात् लुङलङ-ऌङ्क्षु। आतत्। अतेत्। अत्यात्। अत्यास्ताम्। लुङि सिचि इडागमे कृते।

अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।९६॥ [3]विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्या-ऽपृक्तस्य हल ईडागम। स्यात्।

इट ईटि ८।२।२८॥ [4]इट परस्य सस्य लोप स्यादीटि परे।

❀ [5]**सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्य**। आतीत। आतिष्टाम्।

सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०९॥ [6]सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेजुस् स्यात्। आतिषु। आती। आतिष्टम्। आतिष्ट। आतिषम्। आतिष्व। आतिष्म। आतिष्यत्। **षिध** गत्याम्।

आतीत—सततगमनाथक अत धातोर्लुङि, तस्य तिपि, अनुबन्धलोपे, 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'च्ले सिच्' इति सिचि, अनुबन्धलोपे, 'आडजादीनाम्' इत्या-डागमेऽनुबन्धलोपे, आटश्चेति वृद्धौ, आर्धधातुकस्येड वलादेरितीटि, 'अस्तिसिचोऽ-पृक्ते' इति-ईडागमे, 'इट ईटि' इति सस्य लोपे, तस्यासिद्धत्वात् सवर्णदीर्घाभाव प्राप्त, किन्तु 'सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्य' इति बलेन दीर्घे 'आतीत्' इति।

आतिषु—निरन्तर गमनाथक 'अत्' धातोर्लुङि तस्य झयादेशे, 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'च्ले सिच' इति सिचि, अनुबन्धलोपे, 'आडजादीनाम्' इत्याडागमे, आटश्चेति वृद्धौ, 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' इति झेजुसादेशे, सिच इडागमे, सस्य षत्वे रुत्वे, विसर्गे च 'आतिषु' इति।

'अत' धातो रूपाणि—

लटि–अतति, अतत अतन्ति। अतसि, अतथ, अतथ। अतामि, अताव,

१—अभ्यास के आदि अकार को दीर्घ होता है। २—लुङ् लङ् या ऌङ् लकार पर मे रहे तो अजादि अङ्ग से आट् का आगम होता है (टित् है अत आदि में होगा)। ३—विद्यमान् सिच् या अस्ति (अस धातु) से परे अपृक्त हल् को ईट् का आगम होता है। ४—ईट् पर में रहे तो इट् से परे जो सकार उसका लोप होता है। ५—एकादेश करने में सिच् का लोप सिद्ध ही रहता है (ऐसा कहना चाहिए)। ६—सिच् (प्रत्यय), अभ्यस्त (संज्ञक) और विद् धातु से परे ङित् सम्बन्धी झि' के स्थान में जुस्' होता है।

ह्रस्वं लघु १ । ४ । १० ॥ [1][ह्रस्वं लघुसञ्ज्ञं स्यात्] ।

संयोगे गुरु १ । ४ । ११ ॥ [2]संयोगे परे ह्रस्वं गुरु [सञ्ज्ञं] स्यात् ।

दीर्घञ्च १ । ४ । १२ ॥ [3]दीर्घञ्च गुरु [सञ्ज्ञं] स्यात् ।

पुगन्तलघूपधस्य च ७ । ३ । ८६ ॥ [4]पुगन्तस्य लघूपधस्य चाऽङ्गस्येको गुणः स्यात् सार्वधातुकार्धधातुकयोः । धात्वादेरिति सः । सेधति । षत्वम् । सिषेध ।

असंयोगाल्लिट् कित् १ । २ । ५ ॥ [5]असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात् । सिषिधतुः । सिषिधुः । सिषेधिथ । सिषिधथुः । सिषिध । सिषेध । सिषिधिव । सिषिधिम । सेधिता । सेधिष्यति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । असेधीत् । असेधिष्यत् । एवम्–**चिती** सञ्ज्ञाने । **शुच** शोके । **गद** व्यक्तायां वाचि । गदति ।

अताम । **लिटि**–आत आततुः, आतुः । आतिथ आतथुः, आत । आत, आतिव आतिम । **लुटि**–अतिता, अतितारौ अतितारः । अतितासि, अतितास्थः, अतितास्थ । अतितास्मि, अतितास्वः, अतितास्मः । **लृटि**–अतिष्यति, अतिष्यतः, अतिष्यन्ति । अतिष्यसि, अतिष्यथः, अतिष्यथ । अतिष्यामि, अतिष्यावः, अतिष्यामः । **लोटि**–अततु अततात्, अतताम्, अतन्तु । अत-अततात्, अततम्, अतत । अतानि, अताव, अताम । **लङि**–आतत्, आतताम्, आतन् । आतः, आततम्, आतत । आतम् आताव आताम । **विधिलिङि**–अतेत्, अतेताम्, अतेयुः । अतेः, अतेतम्, अतेत । अतेयम्, अतेव, अतेम । **आशिषि लिङि**–अत्यात्, अत्यास्ताम्, अत्यासुः । अत्याः, अत्यास्तम्, अत्यास्त । अत्यासम्, अत्यास्व, अत्यास्म । **लुङि**–आतीत्, आतिष्टाम्, आतिषुः । आतीः, आतिष्टम्, आतिष्ट । आतिषम्, आतिष्व आतिष्म । **लृङि**–आतिष्यत् आतिष्यताम्, आतिष्यन् । आतिष्यः, आतिष्यतम्, आतिष्यत । आतिष्यम्, आतिष्याव, आतिष्याम ।

चिती सञ्ज्ञाने—

लटि–चेतति, चेततः, चेतन्ति । चेतसि, चेतथः, चेतथ । चेतामि, चेतावः,

---

१—ह्रस्व वर्ण लघुसंज्ञक होता है । २—संयुक्त वर्ण पर में रहे तो ह्रस्व वर्ण गुरु–संज्ञक होता है । ३—दीर्घ की भी गुरु संज्ञा होती है । ४—सार्वधातुक या आर्धधातुक पर में हो तो पुगन्त एवं लघूपध अङ्ग के अवयव इक् को गुण होता है । ५—असंयोग से परे पित्–भिन्न लिट् की कित् संज्ञा होती है । चिती–धातु सम्यग–ज्ञान के अर्थ में । शुच–धातु शोक करने अर्थ में ।

नेगदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ८।४।१७॥ [1]उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेनस्य ण स्याद् गदादिषु परेषु प्रणिगदति।

कुहोश्चु ७।४।६२॥ [2]अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेश स्यात्।

अत उपधाया ७।२।११६॥ [3]उपधाया अतो वृद्धि स्यात् ञिति णिचि च प्रत्यये परे। जगाद। जगदतु। जगदु। जगदिथ। जगदथु। जगद।

चेताम। **लिटि**–चिचेत, चिचिततु, चिचितु। चिचेतिथ, चिचितथु, चिचित। चिचेत चिचितिव, चिचितिम। **लुटि**–चेतिता, चेतितारौ, चेतितार। चेतितासि, चेतितास्थ, चेतितास्थ। चेतितास्मि, चेतितास्व, चेतितास्म। **लृटि**–चेतिष्यति चेतिष्यतः चेतिष्यन्ति। चेतिष्यसि, चेतिष्यथ चेतिष्यथ। चेतिष्यामि, चेतिष्याव, चेतिष्याम। **लोटि**–चेततु चेततात्, चेतताम्, चेतन्तु। चेत चेततात् चेततम् चेतत। चेतानि, चेताव, चेताम। **लङि**–अचेतत्, अचेतताम्, अचेतन्। अचेत, अचेततम् अचेतत। अचेतम्, अचेताव अचेताम। **विधिलिङि**–चेतेत् चेतेताम्, चेतेयु। चेते चेतेतम् चेतेत। चेतेयम्, चेतेव चेतेम। **आशिर्लिङि**–चित्यात्, चित्यास्ताम् चित्यासु। चित्या, चित्यास्तम्, चित्यास्त। चित्यासम् चित्यास्व, चित्यास्म। **लुङि**–अचेतीत्, अचेतिष्टाम्, अचेतिषु। अचेती, अचेतिष्टम्, अचेतिष्ट। अचेतिषम्, अचेतिष्व, अचेतिष्म। **लृङि**–अचेतिष्यत्, अचेतिष्यताम् अचेतिष्यन्। अचेतिष्य, अचेतिष्यतम् अचेतिष्यत। अचेतिष्यम्, अचेतिष्याव, अचेतिष्याम। **एव शुच शोके**–शोचति। शुशोच। शोचिता। शोचिष्यति। शोचतु। अशोचत्। शोचेत्। शुच्यात्। अशोचीत्। अशोचिष्यत्।

गद धातु स्पष्टोच्चारणे एव प्रयुज्यते तेन गौगदनीति न भवति।

जगाद—व्यक्तवचनार्थक गद् धातोर्लिटि तस्य तिपि, तस्य च परस्मैपदानाम् इति णलि, अनुबन्धलोपे, 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे, अभ्यासादिकार्ये, 'कुहोश्चु' इति कवर्गस्य चवर्गादेशे, 'अत उपधाया' इति वृद्धौ कृतायां 'जगाद' इति।

१—गद, नद आदि धातु पर मे रहे तो उपसर्गस्थ निमित्त (णत्व निमित्त रेफ षकार) से परे 'नि' के नकार को णकार होता है। गद–धातु स्पष्ट बोलने अर्थ में। २—अभ्यास सम्बन्धी कवर्ग और हकार को चवर्ग आदेश होता है। ३—ञित् या णित् प्रत्यय पर मे रहे तो उपधा के ह्रस्वाकार को वृद्धि होती है।

णलुत्तमो वा ७ । १ । ९१ ॥ [१]उत्तमो णल वा णित्स्यात् । जगाद जगद । जगदिव । जगदिम । गदिता । गदिष्यति । गदतु । अगदत् । गदेत् । गद्यात् ।

अतो हलादेर्लघोः ७ । २ । ७ ॥ [२]हलादेर्लघोरकारस्य इडादौ परस्मैपदे सिचि वृद्धिर्वा स्यात् । अगादीत्-अगदीत् । अगदिष्यत् । **णद** अव्यक्ते शब्दे ।

णो नः ६ । १ । ६५ ॥ [३]धातोरादेर्णस्य नः [४]णोपदेशास्त्वनर्दनाटि-नाथनाध्नन्दनक्कनॄनृत ।

उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८ । ४ । १४ ॥ [५]उपसर्गस्थान्निमित्ता-त्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः स्यात् समासे असमासे च । प्रणदति । प्रणिनदति । नदति । ननाद ।

अगादीत्—गद्धातोर्लुङि, तस्य तिपि, पकारलोपे 'इतश्च'ेतीकारलोपे, 'लुङ्-लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' इति अडागमेऽनुबन्धलोपे, 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'च्लेः सिच्' इति सिचि, इचावितौ, 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इतीडागमे 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इत्य-पृक्तहल ईडागमे 'इट ईटि' इति सस्य लोपे, 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घे 'अतो हलादेर्लघोः' इति वा वृद्धौ च अगादीत् अगदीत् इति ।

गद धातो रूपाणि

लटि–गदति, गदतः, गदन्ति । गदसि, गदथः, गदथ । गदामि गदावः, गदामः । **लिटि**–जगाद, जगदतुः, जगदुः । जगदिथ, जगदथुः, जगद । जगाद जगद, जगदिव, जगदिम । **लुटि**–गदिता, गदितारौ, गदितारः । गदितासि, गदितास्थः, गदितास्थ । गदितास्मि, गदितास्वः, गदितास्मः । **लृटि**–गदिष्यति, गदिष्यतः, गदिष्यन्ति । गदिष्यसि, गदिष्यथः, गदिष्यथ । गदिष्यामि, गदिष्यावः गदिष्यामः । **लोटि**–गदतु-गदतात्, गदताम्, गदन्तु । गद-गदतात्, गदतम्, गदत । गदानि, गदाव, गदाम । **लङि**–अगदत्, अगदताम्, अगदन् । अगदः, अगदतम्, अगदत । अगदम्, अगदाव, अगदाम । **विधिलिङि**–गदेत्, गदेताम्, गदेयुः । गदेः,

---

१—उत्तम पुरुष का णल विकल्प से णित् होता है । २—इडादि परस्मैपद सिच् पर में हो तो हलादि धातु के ह्रस्व अकार को वृद्धि विकल्प से होती है । ३—धातु के आदि णकार को नकार होता है । ४—नर्द, नाटि, नाथ्, नाध्, नन्द, नक्क, नॄ और नृत्–इन धातुओं को छोड़कर अन्य नकारादि धातु णोपदेश कहलाते हैं । ५—समास तथा असमास में भी उपसर्गस्थ निमित्त से परे णकारोपदेश धातु के नकार को णकार होता है ।

अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६ । ४ । १२० ॥ [1]लिण्निमित्तादेशादिक न भवति यदङ्ग तदवयवस्यासयुक्तहल्मध्यस्थस्याऽकारस्य एकार स्यादभ्यासलोपश्च किति लिटि । नेदतु । नेदु ।

थलि च सेटि ६ । ४ । १२१ ॥ [2]प्रागुक्त स्यात् । नेदिथ । नेदथु । नेद । ननाद, ननद । नेदिव । नेदिम । नदिता । नदिष्यति । नदतु । अनदत् । नदेत् । नद्यात् । अनादीत्, अनदीत् । अनदिष्यत् । **टुनदि** समद्धा ।

आदिर्ञिटुडव १ । ३ । ५ ॥ [3]उपदेशे धातोराद्या एते इत स्यु ।

इदितो नुम धातो ७ । १ । ५८ ॥ [4][इदितो धातोनुमागम स्यत्] ।

गदेतम् गदेत । गदेयम्, गदेव, गदेम । **आशीर्लिङि**–गद्यात् गद्यास्ताम् गद्यानु । गद्या , गद्यास्तम् गद्यास्त । गद्यासम्, गद्यास्व, गद्यास्म । **लुङि**–अगादीन् अगादिष्टाम्, अगादिषु । अगादी अगादिष्टम्, अगादिष्ट । अगादिषम् अगादिष्व अगादिष्म । **वद्धयभावपक्षे**–अगदीत्, अगदिष्टाम्, अगदिषु । अगदी —–त्यादि । **लङि**–अगदिष्यन्, अगदिष्यताम् अगदिष्यन् । अगदिष्य , अगदिष्यतम अगदिष्यत । अगदिष्यम अगदिष्याव अगदिष्याम ।

एवमव णद धातोरपि—नदति । ननाद । नदिता । नदिष्यति । नदतु । अनदत् । नदेत् । नद्यात् । अनादीत् । अनदिष्यत् इत्यादि क्रम ।

लिण्निमित्तादेशादिकम—लिण्निमित्तो य 'कुहोश्चु' 'अभ्यामे चच इति शास्त्रकृत आदेशादि तद्भिन्न यदङ्ग तदवयवस्यासयुक्तहल्मध्यस्थस्याकारस्यैवमित्यादि । यथा–नेदुतुरित्यत्र नद् धातोर्लिटि, तसि तस्यातुसि द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये तत 'न नद् अतुस' इति दशाया ननद' इति अङ्ग लिण्निमित्तादेशादिभिन्न तदवयवोऽसयुक्तहल्मध्योऽकारो द्वितीयनकारोत्तरोऽकारस्तस्यत्वम्, आद्यनकारस्य लोपे च नेदतु इति सिद्धयति ।

टुनदि समृद्धौ—एतस्मादेव आनन्द-शब्दस्य निष्पत्ति । समृद्धि धनधान्ययशादिवृद्धि ।

१—लिट का निमित्त मानकर आदेश आदि न हुए हों ऐसा जो अङ्ग तदवयव असयुक्त हल्मध्यस्थ जो अकार उसको एत्व होता है और अभ्यास का लोप भी होता है कित्–लिट् परे रहते। २–इट् सहित थल् प्रत्यय पर मे रहे तो लिट् को मानकर आदेश आदि न हुए हों ऐसा जो अङ्ग तदवयव असंयुक्त हल्मध्यस्थ अकार को एकार होता है तथा अभ्यास का लोप भी हो जाता है। टु इत्सज्ञक नद्–धातु अभिवृद्धि अर्थात् आनन्द अर्थ मे। ३–उपदेश–पाणिनि आदि के प्रथमोच्चारण मे धातु के आदि–मे जो ञि, टु, डु उनकी ४ इत्संज्ञा होती है। ४—इदित् (इकारेत्संज्ञक) धातु से नुम् का आगम होता है।

नन्दति । ननन्द । नन्दिता । नन्दिष्यति । नन्दतु । अनन्दत् । नन्देत् । नन्द्यात् । अनन्दीत् । अनन्दिष्यत् । **अच** पूजायाम् । अचति ।

तस्मान्नुड् द्विहल ७ । ४ । ७१ ॥ [१]द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतादकारात्परस्य नुट स्यात् । आनच । आनर्चतु । अर्चिता । अर्चिष्यति । अचतु । आचत् । अर्चेत् । अर्च्यात् । आर्चीत् । आर्चिष्यत् । **व्रज** गतौ । व्रजति । वव्राज । व्रजिता । व्रजिष्यति । व्रजतु । अव्रजत् । व्रजेत् । व्रज्यात् ।

वदव्रजहलन्तस्याच ७ । २ । ३ ॥ [२]वदेव्रजेहलन्तस्य चाऽङ्गस्याऽच स्थाने वृद्धि स्यात्सिचि परस्मैपदेषु । अव्राजीत् । अव्रजिष्यत् । **कटे** वर्षा-

आनच–पूजाथक अच्' धातोर्लिटि तस्य तिपि, तिपो णलादेशेऽनुबन्धलोपे, 'लिटि धातोरनभ्यासस्य इति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये 'अ अच् अ' इति स्थिते, 'अतो गुणे इति प्राप्त पररूप प्रबाध्य 'अत आदे' इति अभ्यासस्य दीर्घे, तस्मान्नुड द्विहल' इति नुडागमेऽनुबन्धलोपे 'आनच इति ।

अच धातो रूपाणि—

लटि–अचति, अचत , अचन्ति । अचसि, अचथ अचथ । अर्चामि, अचाव , अर्चाम । **लिटि**–आनच आनचतु, आनचु । आनर्चिथ, आनचथु , आनच । आनच, आनर्चिव, आनर्चिम । **लुटि**–अर्चिता, अर्चितारौ, अर्चितार । अर्चितासि, अर्चितास्थ , अर्चितास्थ । अर्चितास्मि, अर्चितास्व , अर्चितास्म । **लृटि**–अर्चिष्यति, अर्चिष्यत , अर्चिष्यन्ति । अर्चिष्यसि, अर्चिष्यथ , अर्चिष्यथ । अर्चिष्यामि, अर्चिष्याव , अर्चिष्याम । **लोटि**–अचतु-अचतात्, अर्चताम् अचतु । अच-अचतात्, अचतम्, अचत । अर्चानि, अर्चाव, अर्चाम । **लङि**-आचत्, आचताम् आचन् । आच , आचतम् आचत । आचम्, आर्चाव, आर्चाम । **विधिलिङि**–अर्चेत्, अर्चेताम्, अर्चेयु । अर्चे , अर्चेतम्, अर्चेत । अर्चेयम्, अर्चेव, अर्चेम । **आशीर्लिङि**–अर्च्यात्, अर्च्यास्ताम् अर्च्यासु । अर्च्या , अर्च्यास्तम् अर्च्यास्त । अर्च्यासम्, अर्च्यास्व, अर्च्यास्म । **लुङि**–आर्चीत्, आर्चिष्टाम्, आर्चिषु । आर्ची , आर्चिष्टम्, आर्चिष्ट । आर्चिषम्, आर्चिष्व, आर्चिष्म । **लृङि**–आर्चिष्यत्, आर्चिष्यताम्, आर्चिष्यन् । आर्चिष्य , आर्चिष्यतम्, आर्चिष्यत । आर्चिष्यम्, आर्चिष्याव, आर्चिष्याम ।

अव्राजीत्—गत्यथक व्रज धातोर्लुङि, तस्य तिपि, 'लुङ लङ्–०' इत्यादिना

अच–धातु पूजा अर्थ में है ।

१–द्विहल अर्थात दो हल हों जिसमें ऐसे धातु के दीर्घीभूत अकार से परे नुट् का आगम होता है । २–परस्मैपद में सिच् परे रहते वद, व्रज और हलन्त धातु के अङ्गावयव अच् को

ऽऽवरणयो । कटति । चकाट । चकटतु । कटिता । कटिष्यति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् ।

ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ७ । २ । ५ ॥ [1]हमयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्न स्यादिडादौ सिचि । अकटीत् । अकटिष्यत् । **गुपू** रक्षणे ।

अटि, अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'च्ले सिच्' इति सिचि, अनुबन्धलोपे, 'आर्धधातुकस्येड् वलादे' इति इटि, पुन 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इतीटि, 'इट ईटि' इति सस्य लोपे, वदव्रजेति वृद्धौ इतश्चेति तिप इकारस्य लोपे 'अव्राजीत्' इति ।

व्रज धातो रूपाणि—

लटि—व्रजति व्रजत व्रजन्ति । व्रजसि, व्रजथ, व्रजथ । व्रजामि, व्रजाव, व्रजाम । **लिटि**—वव्राज, वव्रजतु वव्रजु । वव्रजिथ वव्रजथु, वव्रज । वव्राज वव्रज, वव्रजिव, वव्रजिम । **लुटि**—व्रजिता व्रजितारौ, व्रजितार । व्रजितासि, व्रजितास्थ, व्रजितास्थ । व्रजितास्मि, व्रजितास्व । व्रजितास्म । **लटि**—व्रजिष्यति व्रजिष्यत, व्रजिष्यन्ति । व्रजिष्यसि, व्रजिष्यथ व्रजिष्यथ । व्रजिष्यामि, व्रजिष्याव, व्रजिष्याम । **लोटि**—व्रजतु व्रजतात्, व्रजताम्, व्रजन्तु । व्रज व्रजतात्, व्रजतम्, व्रजत । व्रजानि, व्रजाव, व्रजाम । **लङि**—अव्रजत, अव्रजताम् अव्रजन् । अव्रज, अव्रजतम्, अव्रजत । अव्रजम्, अव्रजाव, अव्रजाम । **विधिलिङि**—व्रजेत व्रजेताम् व्रजेयु । व्रज व्रजेतम्, व्रजेत । व्रजेयम्, व्रजेव, व्रजेम । **आशीर्लिङि**—व्रज्यात्, व्रज्यास्ताम् व्रज्यासु । व्रज्या, व्रज्यास्तम्, व्रज्यास्त । व्रज्यासम्, व्रज्यास्व, व्रज्यास्म । **लुङि**—अव्राजीत अव्राजिष्टाम्, अव्राजिषु । अव्राजी, अव्राजिष्टम्, अव्राजिष्ट । अव्राजिषम्, अव्राजिष्व, अव्राजिष्म । **लङि**—अव्रजिष्यत्, अव्रजिष्यताम्, अव्रजिष्यन् । अव्रजिष्य अव्रजिष्यतम्, अव्रजिष्यत । अव्रजिष्यम्, अव्रजिष्याव, अव्रजिष्याम । एव कटेधातोरपि कटति, कटत, कटन्ति इत्यादि रूपाणि ।

अकटीत—वर्षा तथा-आवरणार्थक कट धातोर्लुङि, तिपि, अटि, च्लौ सिचि, इटि, ईटि, सलोपे च कृते हलन्तत्वाद् वदव्रजहलन्तस्याच' इति वृद्धो प्राप्तायां ह्म्यन्तेति निषेधे 'अकटीत इति ।

वृद्धि होती है । कटे-धातु वर्षा और आवरण=आच्छादन अर्थ में है ।

१—इडादि सिच् पर में रहे तो हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त धातु और क्षणादि (क्षण, श्वस जागृ) और ण्यन्त, श्वि एवं एदित धातु को वृद्धि नहीं होती है । गुपू-धातु रक्षा करने अर्थ मे ।

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आय ३ । १ । २८॥ [1]एभ्य आयप्रत्यय स्यात्स्वार्थे ।

सनाद्यन्ता धातव ३ । १ । ३२ । [2]सनादय कर्मेणिडन्ता प्रत्यया अन्ते येषा ते धातुसञ्ज्ञका स्यु । धातुत्वाल्लडादय । गोपायति ।

आयादय आर्धधातुके वा ३ । १ । ३१ ॥ [3]आर्धधातुकविवक्षायामायादयो वा स्यु । [4]**कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि ।** आस्कामारम्भविधानान्मस्य नेत्त्वम् ।

अतो लोप ६ । ४ । ४८ ॥ [5]आर्धधातुकोपदेशे यदकारान्त तस्याऽकारस्य लोप स्यादार्धधातुके ।

आम २ । ४ । ८१ ॥ [6]आम परस्य लुक् स्यात् ।

कृञ्‌ चानुप्रयुज्यते लिटि ३ । १ । ४० ॥ [7]आमन्ताल्लिटपरा कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते । तषा द्वित्वादि ।

उरत् ७ । ४ । ६६ ॥ [8]अभ्यासऋवर्णस्यात्स्यात्प्रत्यये परे । रपर । हलादि शेष । वृद्धि । गोपायाञ्चकार । द्वित्वात्परत्वाद्यणि प्राप्ते—

सनादय—इति–सन्क्यच्काम्यच्क्यङ्क्यषोऽथाचारक्विब्णिज्यङस्तथा ।
यगाय ईयङ् णिङ् चेति द्वादशामी सनादय ॥

गोपायाञ्चकार—उकारेत्सञ्ज्ञक 'गुप' धातो 'आयादय आर्धधातुक वा' इति सहकारेण 'गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आय' इति वैकल्पिक आय–प्रत्यये, 'पुगन्तलघूपधस्य' च इति गुणे, सनाद्यन्तेति धातुसञ्ज्ञाया लिटि गोपाय' इत्यस्य अनेका-

---

१—गुप्, धूप, विच्छ्, पण्, पन्–इन धातुओ से स्वार्थ मे आय प्रत्यय होता है। २—सन्, क्यच्, काम्यच्‌ आदि स लेकर 'कर्मेणिङ्' तक के (कोई) प्रत्यय जिनके अन्त मे हों व (शब्द) धातु संज्ञक होते हैं। ३—आर्धधातुक की विवक्षा मे आय–आदिक प्रत्यय विकल्प से होते हैं। ४—लिट् पर में हो तो कास् धातु एव अनेकाच् धातु से आम् होता है (कहना चाहिए)। आस् तथा कास धातुसे 'आम्' किये जाने के कारण (आम् के) मकार की इत्सञ्ज्ञा नहीं होता है। अथात् मकारोच्चारण का अन्य प्रयोजन है नहीं। एव यदि इत्सञ्ज्ञा ही इष्ट होता तो आ' ऐसा ही पढ़े होते। ५–आर्धधातुक प्रत्यय पर में रहे तो उपदेश (प्रथमोच्चारण) काल मे अकारान्त जो धातु उसके अकार का लोप होता है। ६—आम् से पर मे जो लिट् उसका लोप होता है। ७—आमन्त से परे लिट् परक कृ, भू, अस् का अनु (पश्चात्) प्रयोग होता है। ८—प्रत्यय पर मे रहे तो अभ्यास ऋवर्ण को अत् (अ) होता है।

द्विवचनेऽचि १ । १ । ५९ ॥ [1]द्विर्वनिमित्तेऽचि परे अच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कतव्ये । गोपायाञ्चक्रतु ।

एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७ । २ । १० ॥ [2]उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च तत परस्याधधातुकस्येण्न स्यात् ।

[3]**ऊदृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीस्नुनुक्षुश्विडीङश्रिभि ।**
वृङ्वृञभ्या च विनैकाचोऽजन्तेषु निहता स्मृता ॥

[4]कान्तषु शकल-एक । चान्तेषु—पच-मुच् रिच-वच विच-सिच षट । छान्तेषु प्रच्छेक । जान्तेषु—त्यज निजिर् भज भञ्ज-भुज् भ्रस्ज-मस्ज-यज्-युज-रुज रञ्ज्-विजिर-स्वञ्ज-सञ्ज-सृज पञ्चदश । दान्तेषु—अद-क्षुद खिद् छिद्-तुद

च्त्वात् कास्यनेकाच—० इति वार्तिकेन आमि मकारत्येत्सनालोपौ प्राप्तौ किन्तु 'आस्कासाराम्विधानान्मस्य नेत्वम्' इति लोपाभावे 'अतो लोप' इति यकाराकारलोपे, आम ' इति लिटो लुकि गापायाम्' इति स्थिते, कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति कृञो नुप्रयोगे लिटस्तिपि, तिपो णलि, अनुबन्धलोपे, कृञो लिटि धातो —०' इति द्वित्वे उरत् इत्यभ्यासऋकारस्य अकारे, रपरे हलादिशेषे, कुहोश्चु ' इति पूवककारस्य चकारे 'मोऽनुस्वार ' इत्यनुस्वारे परमवर्णे, 'अचो ञ्णिति इति वद्धौ रपरे (वा आर वद्धौ) च तत्सिद्धि । पक्षे 'जुगोप' इति ।

गोपायाञ्चक्रतु —उकारेत्सज्ञक रक्षाथक गुप धातो 'आयादय आधधातुके वा' इति नियमन वैकल्पिक आय प्रत्यये तस्याधधातुकत्वेन लघूपधगुणे 'गोपाय' इति 'सनाद्यन्ता —०' इति धातुत्वेन लिटि कास्यनेकाच–' इत्यामि अतो लोप ' इति यकाराकारलोपे 'आम ' इति लिटो लुकि कृञ्चानुप्रयुज्यते'—इति लिटपरकृ—अनुयोगे, लिटस्तसादेशे, तस्य परस्मपदानाम्–'इति अतुसि इको यणचि' इति यणि द्वित्वे च प्राप्त (कतरेण माव्यम् इति) 'द्विवचनेऽचि' इति यणादि निषेधे द्वित्वे, 'उरत' इत्यभ्यासऋकारस्याकारे रपरे, हलादिना रलोपे, 'कुहोश्चु ' इति चकारे, आमो मस्यानुस्वारे परसवर्णे च । तत ऋकारस्य यणि सकारस्य रुत्वे विसर्गे च 'गोपायाञ्चक्रतु ' । पक्षे जुगुपतु ' इति ।

१—द्वित्वकतव्य मे द्वित्वनिमित्तक अच् पर रहे तो अच् के स्थान मे आदेश नहीं होता है । २—उपदेश अवस्था मे जो धातु एकाच् या अनुदात्त हो उससे परे आर्धधातुक को इट् नहीं होता है । ३—अजन्त धातुओं मे ऊदन्त एवं ऋदन्त धातु, यु, रु, क्ष्णु, शीङ, स्नु नु, टुक्षु, श्वि, डीङ् श्रिञ्, वृङ और वृञ इन धातुओं को छोडकर अन्य एकाच् धातु अनुदात्त संज्ञक होते हैं । ४—ककारान्त धातुओं मे एक शक् धातु—इत्यादि स्पष्ट है । ये सभी अनुदात्त होते हैं ।

नुद्-पद्य-भिद्-विद्यतिविनद् विन्द्-शद्-सद् स्विद्य-स्कन्द् हृद षोडश । धान्तेषु—क्रुध्-क्षुध्-बुध-बन्ध-युध-रुध-राध्-व्यध्-शुध-साध-सिध्या एकादश । नान्तेषु—मन्यहनौ द्वौ । पान्तेषु—आप-क्षुप्-क्षिप् तिप् तृप्य-दृप्य लिप्-लुप-वप्-शप्-स्वप्-सृपस्त्रयोदश । भान्तेषु—यभ् रभ-लभस्त्रय । मान्तेषु—गम्—नम् यम्-रमश्चत्वार । शान्तेषु—क्रुश-दश दिश्-दृश् मश्-रिश रुश् लिश-विश्-स्पृशो दश । षान्तेषु—कृष्-त्विष-तुष्-द्विष-दुष्-पुष्य-पिष विष शिष-शुष श्लिष्या—एकादश । सान्तेषु—घस-वसती द्वौ । हान्तेषु—दह्-दिह्-दुह्-नह-मिह-रुह लिह-वहोऽष्टौ ।

[1]अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिक शतम् [१०३] ।

गोपायाञ्चकथ । गोपायाञ्चक्रथु । गोपाञ्चक्र । गोपायाञ्चकार, गोपायाञ्चकर । गोपायाञ्चकृव । गोपायाञ्चकृम । गोपायाम्बभूव । गोपायामास । जुगोप । जुगुपतु । जुगुपु ।

स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ७ । २ । ४४ ॥ [2]स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेराधधातुकस्येड् वा स्यात् । जुगोपिथ, जुगोप्थ । गोपायिता, गोपिता, गोप्ता । गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति । गोपायतु । अगोपायत् । गोपायेत् । गोपाय्यात्, गुप्यात् । अगोपायीत् ।

नेटि ७ । २ । ४ ॥ [3]इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिन स्यात् । अगोपीत् । अगौप्सीत् ।

जुगोपिथ—गुप् धातोर्लिटि, तस्य सिपि, सिपो थलि, 'लिटि धातो –०' इति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये, कुहोश्चुरिति गकारस्य जत्वे 'आधधातुक–०' इति नित्य मिट बाधित्वा 'स्वरतिसूति–०' इति वकल्पिक इटि, पुगन्तलघूप–० इति गुणे 'जुगोपिथ' इति । इडभावे 'जुगोप्थ' इति ।

अगोपीत—उकारेत्सज्ञक गुप् धातोलुङि तस्य तिपि, 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'च्ले सिच' इति सिचि, अनुब धलोपे, लुङलङ–इति अडागमेऽनुबन्धलोपे, स्वरति सूति'–इति वकल्पिके इटि, पुन 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इत्यपृक्तहल ईडागमे, 'इट ईटि' इति सस्य लोपे, वदव्रजेति वद्धौ प्राप्तायां 'नेटि' इति निषेधे, पुगन्तेति गुणे, इतश्चेतीकारलोपे तत्सिद्धि । इडभावे तु वृद्धिर्भवति, सलोपस्तु न इति 'अगौप्सीत्' सिद्धयति ।

१—इस प्रकार हलन्त धातुओं मे एक सौ तीन धातु अनुदात्त हैं । २—स्वरत्यादि (स्वरति, सूति, सूयति, धूञ्) एवं ऊदित् धातु से परे वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इट का आगम होता है । ३—इडादि सिच् परे रहते हलन्त को वृद्धि नहीं होती है ।

झलो झलि ८। २। २६॥ [1]झल परस्य सस्य लोप स्याज्झलि। अगौप्ताम्। अगौप्सु। अगौप्सी। अगौप्तम्। अगौप्त। अगौप्सम्। अगौप्स्व। अगौप्स्म। अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत्। **क्षि क्षये।** क्षयति। चिक्षाय। चिक्षियतु। चिक्षियु। 'एकाच' इतीण्निषेधे प्राप्ते—

अगौप्ताम—गुप धातोर्लुङि, तस्य तसि, तस्थस्थ-०' इति तसस्तामादेशे 'च्लि लुङि इति च्लौ तस्य सिचि, अनुबन्धलोपे, लुङ्लङलङ्-०' इत्यडागमेऽनुबन्ध लोपे 'स्वरतिसूति-०' इति इडभावे 'झलो झलि इति सलोपे, वदव्रज-इति वृद्धौ तत्सिद्धि।

गुप धातो रूपाणि—

लटि—गोपायति गोपायत, गोपायन्ति। गोपायसि, गोपायथ, गोपायथ। गोपायामि, गोपायाव गोपायाम। **लिटि**—गोपायाञ्चकार, गोपायाञ्चक्रतु, गोपायाञ्चक्रु। गोपायाञ्चकथ गोपायाञ्चक्रथु, गोपायाञ्चक्र। गोपायाञ्चकार-गोपायाञ्चकर गोपायाञ्चकृव गोपायाञ्चकृम। एवम् गोपायामास, गोपायाम्बभूव इत्यादयोऽपि बोध्या। **आयाभावे**—जुगोप जुगुपतु जुगुपु। जुगोपिथ जुगोप्थ जुगुपथु, जुगुप। जुगोप, जुगुपिव जुगुप्व, जुगुपिम-जुगुप्म। **लुटि**—गोपायिता गोपिता-गोप्ता, गोपायितारौ-गोपितारौ-गोप्तारौ, गोपायितार-गोपितार-गोप्तार। गोपायितासि-गोपितासि-गोप्तासि, गोपायितास्थ गोपितास्थ-गोप्तास्थ, गोपायितास्थ-गोपितास्थ-गोप्तास्थ। गोपायितास्मि-गोपितास्मि-गोप्तास्मि, गोपायितास्व-गोपितास्व-गोप्तास्व, गोपायितास्म-गोपितास्म-गोप्तास्म। **लृटि**-गोपायिष्यति-गोपिष्यति-गोप्स्यति, गोपायिष्यत गोपिष्यत गोप्स्यत, गोपायिष्यन्ति-गोपिष्यन्ति गोप्स्यन्ति। गोपायिष्यसि-गोपिष्यसि-गोप्स्यसि गोपायिष्यथ-गोपिष्यथ-गोप्स्यस्थ, गोपायिष्यथ-गोपिष्यथ-गोप्स्यथ। गोपायिष्यामि-गोपिष्यामि-गोप्स्यामि, गोपायिष्याव-गोपिष्याव गोप्स्याव गोपायिष्याम-गोपिष्याम गोप्स्याम। **लोटि**—गोपायतु-गोपायतात् गोपायताम्, गोपायन्तु। गोपाय-गोपायतात् गोपायतम् गोपायत। गोपायानि, गोपायाव, गोपायाम। **लङि**—अगोपायत् अगोपायताम् अगोपायन्। अगोपाय अगोपायतम्, अगोपायत। अगोपायम्, अगोपायाव, अगोपायाम। **विधिलिङि**—गोपायेत्, गोपायेताम् गोपायेयु। गोपाये, गोपायेतम्, गोपायेत। गोपायेयम्, गोपायेव, गोपायेम। **आशीर्लिङि**—गोपाय्यात्-गुप्यात्, गोपाय्यास्ताम्-गुप्यास्ताम्, गोपाय्यासु-गुप्यासु। गोपाय्या-गुप्या गोपाय्यास्तम्-गुप्यास्तम्,

१—झल् परे रहते झल् से परे जो सकार उसका लोप होता है।

कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ७ । २ । १३ ॥ [1]क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात् ।

अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम ७ । २ । ६१ ॥ [2]उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासो नित्याऽनिट ततस्थल इण्न स्यात् ।

उपदेशेऽत्वत ७ । २ । ६२ ॥ [3]उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्याऽनिट परस्य थल इण् न स्यात् ।

ऋतो भारद्वाजस्य ७ । २ । ६३ ॥ [4]तासौ नित्याऽनिट ऋदन्तादव थलो नेट् भारद्वाजस्य मतेन । तेनाऽन्यस्य स्यादेव ।

अयमत्र सङ ग्रह —

अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृड् नित्याऽनिट क्राद्यन्यो लिटि सेड भवेत् ॥

गोपाय्यास्त गुप्यास्त । गोपाय्यासम्–गुप्यासम्, गोपाय्यास्व–गुप्यास्व, गोपाय्यास्म–गुप्यास्म । **लुङि**—अगोपायीत्–अगोपीत्–अगौप्सीत् अगोपायिष्टाम्–अगोपिष्टाम्–अगौप्ताम्, अगोपायिषु अगोपिषु अगौप्सु । अगोपायी अगोपी अगौप्सी अगोपायिष्टम् अगोपिष्टम् अगौप्तम्, अगोपायिष्ट अगोपिष्ट अगौप्त । अगोपायिषम् अगोपिषम् अगौप्सम्, अगोपायिष्व अगोपिष्व अगौप्स्व अगोपायिष्म अगोपिष्म अगौप्स्म । **लङि**—अगोपायिष्यत्-अगोपिष्यत् अगोप्स्यत्, अगोपायिष्यताम् अगोपिष्यताम् अगोप्स्यताम् अगोपायिष्यन् अगोपिष्यन्–अगोप्स्यन् । अगोपायिष्य अगोपिष्य अगोप्स्य अगोपायिष्यतम् अगोपिष्यतम्–अगोप्स्यतम् अगोपायिष्यत अगोपिष्यत-अगोप्स्यत । अगोपायिष्यम् अगोपिष्यम् अगोप्स्यम् अगोपायिष्याव-अगोपिष्याव

१—क्रादियों से परे हो लिट् को इट नहीं होता, अन्य अनिट धातुओं से परे भी लिट को इट होता है। २—उपदेश मे जो अज त धातु तास् परे नित्य अनिट हो उससे परे थल को नित्य इट नहीं होता ३—उपदेश मे जो अकारवान् धातु, तास परे नित्य अनिट् हो उसको थल् परे रहते इट् नहीं होता है। ४—तास् प्रत्यय परे रहते नित्य ही अनिट् जो ऋदन्त धातु उसीको थल प्रत्यय परे रहते भारद्वाज के मत से इट नहीं होता है। अर्थात अन्य धातुओं को तो होता ही है। ५—अजन्त जैसे क्षि, जि नी–इत्यादि अथवा अकारवान् जैसे प्रच्छ् भ्रस्ज्, त्यज् भस्स् इत्यादि जो धातु वह तास (अथात् लुट लकार मे) अनिट् हो तब भी उसको थल् मे विकल्प से इट् होता है जो धातु ह्रस्व ऋकारा त जैसे हृ, हृ आदि जिनको तास् में इट् भी नहीं होता है, उससे थल मे इट नहीं होता है। (व मान्ि मे तो होना ही है)। क्रादि (कृसृभृ आदि) से लिट मे कहीं भी इट् नहीं होता है, कृसृभ-सूत्र में पठित धातुओं से भिन्न धातु से लिट् परे रहते इट् होता ही है।

चिक्षयिथ-चिक्षेथ । चिक्षियथु । चिक्षिय । चिक्षाय-चिक्षय । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेष्यति । क्षयतु । अक्षयत् । क्षयेत् ।

अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घ ७ । ४ । २५ । [1]अजन्ताङगस्य दीर्घ स्याद्यादौ प्रत्यये परे न तु कृत्सार्वधातुकयो । क्षीयात् ।

सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु ७ । २ । १ ॥ [2]इगन्ताङगस्य वृद्धि स्यात् परस्मैपदपरे सिचि । अक्षैषीत् । अक्षेष्यत् । **तप** सन्तापे । तपति । तताप । तेपतु । तेपु । तेपिथ, ततप्थ । तेपिव । तेपिम । तप्ता । तप्स्यति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अतप्स्यत् । **क्रमु** पादविक्षेपे ।

वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलष ३ । १ । ७० ॥ [3]एभ्य श्यन्वा स्यात् कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप ।

क्रम परस्मैपदेषु ७ । ३ । ३६ ॥ [4]क्रमेर्दीर्घ स्यात् परस्मैपदे शिति । क्राम्यति क्रामति । चक्राम । क्रमिता । क्रमिष्यति । क्राम्यतु-क्रामतु । अक्राम्यत्-अक्रामत् । क्राम्येत्-क्रामेत् । क्रम्यात् । अक्रमीत् । अक्रमिष्यत् । **पा** पाने ।

अगोप्स्याव अगोपायिष्याम-अगोपिष्याम अगोप्स्याम ।

चिक्षयिथ—क्षि धातोर्लिटि, तस्य सिपि, तस्य च परस्मैपदानाम्—इति थलि, अनुबन्धलोपे, लिटि धातो इति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये, ततो भारद्वाजमतेन इडागमेऽनुबन्धलोपे 'चिक्षयिथ' इति । मतान्तरे 'अचस्तास्वत्'—इति तन्निषेधे गुणे च 'चिक्षेथ' इति ।

क्राम्यति, क्रामति—पादविक्षेपार्थक–उकारेत्संज्ञक–क्रम् धातोर्लटि, तस्य तिप्यनुबन्धलोपे 'वा भ्राश—०' इति विकल्पेन श्यनि, 'क्रम परस्मैपदेषु' इति दीर्घे 'क्राम्यति' इति । श्यनोऽभावे 'कर्तरि शप' इति शपि, अनुबन्धलोपे, दीर्घे च 'क्रामति' इति । लोटि, लङि, विधिलिङि च समानक्रम । अनेनैव धातुना 'आक्रमण' शब्दस्य निष्पत्ति ।

१—यकारादि प्रत्यय पर मे रहे तो अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है कृत्सार्वधातुक को छोडकर । २—परस्मैपद-परक सिच् पर मे हो तो इगन्त अङ्ग की वृद्धि होती है । क्रमु-धातु पैर से चलने अर्थ मे । ३—कर्त्रर्थक सार्वधातुक पर में हो तो इन (भ्राश, भ्लाश् आदि) धातुओं से श्यन् प्रत्यय होता है । ४—परस्मैपद सम्बन्धी शित् पर मे हो तो क्रम धातु को दीर्घ होता है । पा-धातु पानी, रस आदि के पीने के अर्थ में ।

पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छ-पश्यच्छधौशीयसीदाः ७ । ३ । ७८ ॥ [1]पादीनां पिबादयः स्युरित्सञ्ज्ञकश-कारादौ प्रत्यये । पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः । पिबति ।

आत औ णलः ७ । १ । ३४ ॥ [2]आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात् । पपौ ।

आतो लोप इटि च ६ । ४ । ६४ ॥ [3]अजाद्योरार्धधातुकयोः—क्ङि-दिटोः परयोरातो लोपः स्यात् । पपतुः । पपुः । पपिथ–पपाथ । पपथुः । पप । पपौ । पपिव । पपिम । पाता । पास्यति । पिबतु । अपिबत् । पिबेत् ।

एर्लिङि ६ । ४ । ६७ ॥ [4]घुसञ्ज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्ध-धातुके किति लिङि । पेयात् । गातिस्थेति सिचो लुक् । अपात् । आपाताम् ।

पिबति—पानार्थक 'पा' धातोर्लटि, तिपि अनुबन्धलोपे 'पाघ्राध्मा–०' इति 'पा' इत्यस्य पिबादेशे, शप्यनुबन्धलोपे 'पिबति' इति ।

अपुः—पा धातोर्लुङि तस्य ति–प्रत्यये, 'लुङ्लङ–०' इत्यडागमेऽनुबन्धलोपे, 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'च्लेः सिच्' इति सिच्यनुबन्धलोपे, 'गातिस्था–०' इति सिचो लुकि, 'आतः' इति झेर्जुसि, अनुबन्धलोपे, 'उस्यपदान्तात्' इति पररूपे, सस्य रुत्वे विसर्गे च 'अपुः' इति ।

'पा' धातो रूपाणि—

लटि—पिबति, पिबतः, पिबन्ति । पिबसि पिबथः, पिबथ । पिबामि पिबावः, पिबामः । **लिटि**—पपौ, पपतुः, पपुः । पपिथ–पपाथ पपथुः, पप । पपौ, पपिव, पपिम । **लुटि**—पाता, पातारौ, पातारः । पातासि, पातास्थः, पातास्थ । पाता-स्मि पातास्वः, पातास्मः । **लृटि**—पास्यति, पास्यतः, पास्यन्ति । पास्यसि, पास्यथः, पास्यथ । पास्यामि, पास्यावः, पास्यामः । **लोटि**—पिबतु–पिबतात्, पिबताम्, पिबन्तु । पिब–पिबतात्, पिबतम्, पिबत । पिबानि, पिबाव, पिबाम । **लङि**—अपिबत् अपिबताम्, अपिबन् । अपिबः, अपिबतम्, अपिबत । अपिबम्, अपिबाव, अपिबाम । **विधिलिङि**—पिबेत्, पिबेताम्, पिबेयुः । पिबेः, पिबेतम्, पिबेत । पिबेयम्, पिबेव, पिबेम । **आशीर्लिङि**—पेयात् पेयास्ताम्, पेयासुः । पेयाः,

---

१—इत्सञ्ज्ञक शकारादि प्रत्यय पर मे रहे तो पा घ्रा आदि धातुओं को पिब, जिघ्र आदि आदेश होते हैं । २—आदन्त धातु से परे णल् को औकार आदेश होता है । ३—अजादि कित्, ङित् आर्धधातुक इट परे रहते आकार का लोप होता है । ४—आर्धधातुक कित् ङित् पर मे हो तो घुसञ्ज्ञक एवं मा स्था आदि धातुओं को एत्व होता है ।

आत ३ । ४ । ११० ॥ [1]सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस स्यात ।

उस्यपदान्तात् ६ । १ । ९६ ॥ [2]अपदान्तादकारादुसि परे पररूपमेकादेश स्यात । **ग्लै** हर्षक्षये । ग्लायति ।

आदेच उपदेशेऽशिति ६ । १ । ४५ ॥ उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्त्व स्यान्न तु शिति । जग्लौ । ग्लाता । ग्लास्यति । ग्लायतु । अग्लायत् । ग्लायेत् ।

वाऽन्यस्य सयोगादे ६ । ४ । ६८ ॥ [4]घुमास्थादेरन्यस्य सयोगादेर्धातोरात एत्त्व वा स्यादाधधातुके किति लिडि । ग्लेयात–ग्लायात् ।

यमरमनमाता सक् च ७ । ७३ ॥ [5]एषा सक स्यादेभ्य सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु । अग्लासीत् । अग्लास्यत् । ह्वृ कौटिल्ये । ह्वरति ।

पेयास्तम्, पेयास्त । पेयासम् पेयास्व, पेयास्म । **लुङि**—अपात अपाताम् अपु । अपा , अपातम्, अपात । अपाम्, अपाव अपाम । **लङि**—अपास्यत अपास्यताम्, अपास्यन् । अपास्य अपास्यतम्, अपास्यत । अपास्यम्, अपास्याव, अपास्याम ।

अग्लासीत—ग्लै धातोलुडि, तस्य तिप्यनुबन्धलोपे, आत्वे 'लुङलङ–०' इति अडागमेऽनुबन्धलोपे, 'च्लि लुडि इति च्लौ च्ले सिच' इति सिचि, अनुबन्धलोपे 'अस्तिसिचोऽपृक्ते इतीटि, अनुबन्धलोपे यमरमनमाता सक च' इति सकि इडागमे च कृते 'इट ईटि' इति सलोपे, इतश्चेति 'ति'—निष्ठेकारस्य लोपे 'अग्ला सीत' इति ।

'ग्लै' धातो रूपाणि—

लटि—ग्लायति, ग्लायत , ग्लायन्ति । ग्लायसि, ग्लायथ , ग्लायथ । ग्लायामि ग्लायाव ग्लायाम । **लिटि**—जग्लौ, जग्लतु , जग्लु । जग्लाथ–जग्लिथ, जग्लथु , जग्ल । जग्लौ, जग्लिव, जग्लिम । **लुटि**—ग्लाता ग्लातारौ, ग्लातार । ग्लातासि, ग्लातास्थ , ग्लातास्थ । ग्लातास्मि ग्लातास्व , ग्लातास्म । **लटि**—ग्ला

१—सिच् का लोप हो जाने पर अकारा त धातु से ही झि के स्थान मे जुस् होता है । २—अपदा त अकार से उस परे रहते पूर्व पर के स्थान मे पररूप एकादेश होता हैं । ग्लै–ग्लानि अर्थ में ३–उपदेश अवस्था मे एजन्त जो धातु उसके एच के स्थान मे (आत्व) होता है, शित् परे हो तो नहीं होता है । ४–आर्धधातुक कित्, लिङ् पर में हो तो घु, मा स्था आदि से भिन्न संयोगादि धातु के आकार को एकार विकल्प से होता है । ५—परस्मैपद में यम्, रम्, नम् एवं आद न्त धातु से सक् का आगम होता है और सिच् से इट् भी होता है । ह्वृ–टेढा व्यवहार करने मे ।

ऋतश्च संयोगादेर्गुण ७।४।१०॥ [1]ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुण स्याल्लिटि। उपधाया वृद्धि। जह्वार। जह्वरतु। जह्वरु। जह्वथ। जह्वरथु। जह्वर। जह्वार—जह्वर। जह्वरिव। जह्वरिम। ह्वर्ता।

ऋद्धनो स्ये ७।२।७०॥ [2]ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट् स्यात्। ह्वरिष्यति। ह्वरतु। अह्वरत्। ह्वरेत्।

गुणोर्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९॥ [3]अर्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुण स्याद्यकि यादावार्धधातुके लिङि च। ह्वर्यात्। अह्वार्षीत्। अह्वरिष्यत्। श्रु श्रवणे।

श्रुव शृ च ३।१।७४॥ [4]श्रुव शृ इत्यादेश स्यात् श्नुप्रत्ययश्च। शृणोति।

सार्वधातुकमपित् १।२।४॥ [5]अपित्सार्वधातुक ङिद्वत् स्यात्। शृणुत।

हुश्नुवो सार्वधातुके ६।४।८७॥ [6]जुहोते श्नुप्रत्ययान्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य चाऽसंयोगपूर्वोवर्णस्य यण स्यादजादौ सार्वधातुके। शृण्वन्ति। शृणोषि। शृणुथ। शृणुथ। शृणोमि।

स्यति, ग्लास्यत ग्लास्यन्ति। ग्लास्यसि, ग्लास्यथ, ग्लास्यथ। ग्लास्यामि, ग्लास्याव ग्लास्याम। **लोटि**—ग्लायतु, ग्लायताम्, ग्लायन्तु। ग्लाय—ग्लायतात, ग्लायतम्, ग्लायत। ग्लायानि, ग्लायाव, ग्लायाम। **लङि**—अग्लायत अग्लायताम्, अग्लायन्। अग्लाय अग्लायतम् अग्लायत। अग्लायम् अग्लायाव, अग्लायाम्। **विधिलिङि**—ग्लायेन्, ग्लायेताम्, ग्लायेयु। ग्लाये ग्लायेतम् ग्लायेत। ग्लायेयम्, ग्लायेव, ग्लायेम। **आशीर्लिङि**—ग्लेयात्–ग्लायात् ग्लेयास्ताम्–ग्लायास्ताम्, ग्लेयासु–ग्लायासु। ग्लेया–ग्लाया ग्लेयास्तम्–ग्लायास्तम्, ग्लेयास्त–ग्लायास्त। ग्लेयासम् ग्लायासम्, ग्लेयास्व–ग्लायास्व, ग्लेयास्म–ग्लायास्म। **लुङि**—अग्लासीत् अग्लासिष्टाम्, अग्लासिषु। अग्लासी, अग्लासिष्टम्, अग्लासिष्ट। अग्लासिषम्, अग्लासिष्व अग्लासिष्म। **लृङि**—अग्लास्यत् अग्लास्यताम् अग्लास्यन्। अग्लास्य, अग्लास्यतम्, अग्लास्यत। अग्लास्यम् अग्लास्याव अग्लास्याम।

१—लिट् परे रहते ऋदन्त संयोगादि अङ्ग को गुण होता है। २—ऋदन्त धातु एवं हन् धातु से परे 'स्य' को इट का आगम होता है। ३—यक् या यकारादि आर्धधातुक लिङ् पर मे हो तो 'ऋ' एवं संयोगान्त ऋदन्त धातु से गुण होता है। श्रु=सुनने में। ४—श्रु के स्थान मे 'शृ' आदेश और श्नु प्रत्यय भी होता है। ५—पित् से भिन्न सार्वधातुक ङिद्वत (ङित् के समान) होता है। ६—अजादि सार्वधातुक पर में हो तो 'हु' धातु एवं श्नु–

लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६ । ४ । १०७ ॥ [1]असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा स्यात् म्वोः परयोः । शृण्वः–शृणुवः । शृण्मः–शृणुमः । शुश्राव । शुश्रुवतुः । शुश्रुवुः । शुश्रोथ । शुश्रुवथुः । शुश्रुव । शुश्राव–शुश्रव । शुश्रुव । शुश्रुम । श्रोता । श्रोष्यति । शृणोतु शृणुतात् । शृणुताम् । शृण्वन्तु ।

उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ६ । ४ । १०६ ॥ [2]असंयोगपूर्वो यः प्रत्ययोकारस्तदन्तादङ्गात्परस्य हेर्लुक् स्यात् । शृणु शृणुतात् । शृणुतम् । शृणुत । गुणाऽवादेशौ । शृणवानि । शृणवाव । शृणवाम । अशृणोत् । अशृणुताम् । अशृण्वन् । अशृणोः । अशृणुतम् । अशृणुत । अशृणवम् । अशृण्व-अशृणुव । अशृण्म-अशृणुम । शृणुयात् । शृणुयाताम् । शृणुयुः ।

शृण्वः–शृणुवः—श्रु धातोर्लटि तस्य 'तिप्तस–' इति वसादेशे 'श्रुवः शृ च' इति श्रुवः 'शृ' आदेशे श्नु प्रत्यये च, 'लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः' इति विकल्पे नोकारलोपे 'शृण्वः' इति । लोपाभावे 'शृणुवः' इति ।

शृणु—श्रु धातोर्लोटि, तस्य तिप्तस–इति सिपि, 'श्रुवः शृ च' इति श आदेशे श्नु प्रत्यये च कृते 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्ह्यादेशे, 'उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्' इति हेर्लुकि 'शृणु' इति ।

'श्रु' धातोः रूपाणि—

लटि—शृणोति, शृणुतः, शृण्वन्ति । शृणोषि, शृणुथः, शृणुथ । शृणोमि, शृण्वः–शृणुवः, शृण्मः–शृणुमः । **लिटि**—शुश्राव, शुश्रुवतुः, शुश्रुवुः । शुश्रोथ, शुश्रुवथुः, शुश्रुव । शुश्राव–शुश्रव, शुश्रुव, शुश्रुम । **लुटि**—श्रोता, श्रोतारौ, श्रोतारः । श्रोतासि, श्रोतास्थः, श्रोतास्थ । श्रोतास्मि, श्रोतास्वः, श्रोतास्मः । **लृटि**—श्रोष्यति, श्रोष्यतः, श्रोष्यन्ति । श्रोष्यसि, श्रोष्यथः, श्रोष्यथ । श्रोष्यामि, श्रोष्यावः, श्रोष्यामः । **लोटि**—शृणोतु शृणुतात्, शृणुताम्, शृण्वन्तु । शृणु शृणुतात्, शृणुतम्, शृणुत । शृणवानि, शृणवाव-शृणवाम । **लङि**—अशृणोत् अशृणुताम्, अशृण्वन् । अशृणोः, अशृणुतम् अशृणुत । अशृणवम्, अशृणुव अशृण्व, अशृण्म अशृणुम । **विधिलिङि**—शृणुयात्, शृणुयाताम्, शृणुयुः । शृणुयाः, शृणुयातम्,

---

प्रत्ययान्त जो अनेकाच् अङ्ग तदवयव असंयोगपूर्वक उवर्ण को यण आदेश होता है ।

१—म (मकार) या व (वकार) प्रत्यय पर में रहे तो असंयोगपूर्वक प्रत्यय के उकार का लोप विकल्प से होता है । २—असंयोगपूर्वक प्रत्यय के उकारान्त अंग से परे जो 'हि' उसका लोप होता है ।

शृणुया । शृणुयातम् । शृणुयात । शृणुयाम् । शृणुयाव । शृणुयाम । श्रूयात् । अश्रौषीत् । अश्रोष्यन् । **गम्लृ** गतौ ।

इषुगमियमा छ ७ । ३ । ७७ ॥ [1]एषा छ स्यात्-शिति । गच्छति । जगाम ।

गमहनजनखनघसा लोप क्ङित्यनङि ६ । ४ । ९८ ॥ [2]एषामुपधाया लोप स्यादजादौ क्ङिति न त्वङि । जग्मतु । जग्मु । जगमिथ-जगन्थ । जग्मथु । जग्म । जगाम—जगम । जग्मिव । जग्मिम । गन्ता ।

गमेरिट् परस्मैपदेषु ७ । २ । ५८ ॥ [3]गमे परस्य सादेरार्धधातुकस्येट स्यात् परस्मैपदेषु । गमिष्यति । गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् ।

शृणुयात । शृणुयाम्, शृणुयाव, शृणयाम । **आशीर्लिङि**—श्रूयात्, श्रूयास्ताम्, श्रूयासु । श्रूया श्रूयास्तम्, श्रूयास्त । श्रूयासम्, श्र्यास्व, श्रूयास्म । **लुङि**—अश्रौषीत् अश्रौष्टाम्, अश्रौषु । अश्रौषी, अश्रौष्टम्, अश्रौष्ट । अश्रौषम्, अश्रौष्व अश्रौष्म । **लङि**—अश्रोष्यत् अश्रोष्यताम् अश्रोष्यन् । अश्रोष्य, अश्रोष्यतम्, अश्रोष्यत । अश्रोष्यम्, अश्रोष्याव अश्रोष्याम ।

गच्छति—गम् धातोर्लटि तस्य तिपि, अनुबन्धलोपे शपि, अनुबन्धलोपे, 'इषुगमि—०' इति छादेशे तत छे च इति तुगागमेऽनुबन्धलोपे, श्चुत्वे 'गच्छति' इति ।

जग्मतु—लकारेत्सञ्ज्ञक गम् धातोर्लिटि, तस्य तसादेशे, तस्य च 'परस्मैपदानाम्—०' इति अतुसि, लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति धातोर्द्वित्वे, 'गम्-गम् अतुस' इति स्थितेऽभ्यासादिकार्ये, 'कुहोश्चु' इति गकारस्य जकारे, गमहनजन इति उपधाकारस्य लोपे सस्य रुत्वे विसर्गे च 'जग्मतु' इति ।

'गम' धातो रूपाणि—

लटि—गच्छति, गच्छत, गच्छन्ति । गच्छसि, गच्छथ, गच्छथ । गच्छामि, गच्छाव, गच्छाम । **लिटि**—जगाम, जग्मतु, जग्मु । जगमिथ जगन्थ, जग्मुथ, जग्म । जगाम जगम, जग्मिव, जग्मिम । **लुटि**—गन्ता, गन्तारौ, गन्तार । गन्तासि, गन्तास्थ । गन्तास्थ । गन्तास्मि, गन्तास्व, गन्तास्म । **लृटि**—गमिष्यति, गमिष्यत, गमिष्यन्ति । गमिष्यसि, गमिष्यथ, गमिष्यथ । गमिष्यामि, गमिष्याव, गमिष्याम ।

१—शित् पर मे रहे तो इष, गम्, यम्—धातुओं को 'छ' आदेश होता है । २—अजादि कित्, ङित् प्रत्यय पर में रहे तो गम, हन्, जन् खन् और घस् की उपधा का लोप होता है, अङ् पर मे हो तो नहीं होता है । ३—परस्मैपद मे गम् धातु से परे सादि आर्धधातुक को इट् का आगम होता है ।

पुषादिद्युताद्लृदित परस्मैपदेषु ३ । १ । ५५ ॥ [१]श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेल्ृ दितश्च परस्य च्लेरङ स्यात् परस्मैपदेषु । अगमत् । अगमिष्यत् ।

॥ इति परस्मैपदिन ॥

अथात्मनेपदिनः ।

एध वृद्धौ ।

टित आत्मनेपदाना टेरे ३ । ४ । ७९ ॥ [२]टितो ल्स्यात्मने पदाना टेरेत्व स्यात् । एधते ।

आतो ङित ७ । २ । ८१ ॥ [३]अत परस्य ङितामाकारस्य इय स्यात् । एधेते । एधन्ते ।

थास से ३ । ४ । ८० ॥ [४]टितो लस्य थास से स्यात् । एधसे । एधेथे । एधध्वे । अतो गुणे । एधे । एधावहे । एधामहे ।

इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ ३ । १ । ३६ ॥ [५]इजादिर्यो धातुगुरुमान् ऋच्छत्यन्तस्तत आम् स्याल्लिटि ।

लोटि—गच्छतु–गच्छतात्, गच्छताम् गच्छन्तु । गच्छ गच्छतात् गच्छतम्, गच्छत । गच्छानि गच्छाव गच्छाम । **लङि**—अगच्छत् अगच्छताम् अगच्छन् । अगच्छ, अगच्छतम्, अगच्छत । अगच्छम् अगच्छाव अगच्छाम । **विधिलिङि**—गच्छेत्, गच्छेताम् गच्छेयु । गच्छे, गच्छेतम्, गच्छेत । गच्छेयम्, गच्छेव, गच्छेम । **आशीर्लिङि**—गम्यात्, गम्यास्ताम् गम्यासु । गम्या, गम्यास्तम्, गम्यास्त । गम्यासम्, गम्यास्व गम्यास्म । **लङि**—अगमत्, अगमताम्, अगमन् । अगम, अगमतम्, अगमत । अगमम्, अगमाव, अगमाव । **लङि**—अगमिष्यत् अगमिष्यताम् अगमिष्यन् । अगमिष्य, अगमिष्यतम्, अगमिष्यत । अगमिष्यम्, अगमिष्याव, अगमिष्याम ।

१–परस्मैपद मे श्यन् विकरण पुषादि, द्युतादि तथा लृदित् धातुओं से परे च्लि को 'अङ्' आदेश होता है । इति परस्मैपदिन । एध=वृद्धि-बढने मे । २—टकार इत्संशक लकार सम्बन्धी आत्मनेपदके टि को एत्व होता है । ३—अत् से परे ङित्सम्बन्धी आकार को इय आदेश होता है । ४—टित् लकार के स्थान में जो 'थास्' उसको से' आदेश होता है । ५—ऋच्छ् धातु से भिन्न जो गुरुमान् (गुरु) इजादि धातु उससे आम् होता है लिट् परे रहते । (बहुव्रीहि समास के दो भेद होते हैं । तद्गुणसविज्ञान बहुव्रीहि, अतद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि । जैसे—'लम्बकर्णमानय' यह प्रथम का उदाहरण है । 'दृष्टसागरमानय' यह द्वितीय का) 'आम्प्रत्ययवत्' भी द्वितीय का उदाहरण है उसी को बताते हैं कि—

आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य १ । ३ । ६३ ॥ [1]आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसविज्ञानो बहुव्रीहिः । [2]आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मने पद स्यात् ।

लिटस्तझयोरेशिरेच् ३ । ४ । ८१ ॥ [3]लिडादेशयोस्तझयोरेश इरेजित्येतावादेशौ स्त । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे ।

इण॰ षीध्वलुङ्लिटा धोऽङ्गात् ८ । ३ । ७८ ॥ [4]इण्णन्तादङ्गात्परेषा षीध्वलुङ्लिटा धस्य ढ स्यात् । एधाञ्चकृढ्वे । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । एधाम्बभूव । एधामास । एधिता । एधितारौ । एधितार । एधितासे । एधितासाथे ।

धि च ८ । २ । २५ ॥ [5]धादौ प्रत्यये परे सस्य लोप स्यात् । एधिताध्वे ।

एधाञ्चक्रे—एध धातोर्लिटि इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ' इति आमि, आम' इति लिटो लुकि, 'एध आम्' इति स्थिते, 'कृञ्चानुप्रयज्यते लिटि इति लिटपरक कृञोऽनुप्रयोगे, 'लिटस्तझयोरेशिरेच' इति एशि, अनुबन्धलोपे, 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति 'कृ' इत्यस्य द्वित्वे 'उरत्' इति अत्वे रपरे च कृते हलादिशेषे 'एध आम् क कृ ए' इति जाते, 'कुहोश्चु' इति पूवककारस्य चकारे, अनुस्वारे, परसवण, यणि च कृते 'एधाञ्चक्रे' इति ।

एधाञ्चकृढ्वे—'एध' धातोर्लिटि 'इजादेश्च गुरुमतो—' इत्यामि, आम इति लिटो लुकि, 'कृञ्चानु—' इति लिटपरककृञोऽनुप्रयोगे, कृञो ञित्वादुभयपदे प्राप्ते 'आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य' इति नियमेन लिट स्थाने आत्मनेपदसञ्ज्ञक ध्वमादेशे, 'लिटि धातो' इति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये, 'टित आत्मनेपदाना टेरे' इति टेरेत्वे, 'इण षीध्वम्—इति धस्य ढकारे, मकारस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते 'एधाञ्चकृढ्वे' इति ।

१—आम् प्रत्यय हो जिससे ऐसा अतद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि (यहाँ जानना चाहिये) है । २—आम् प्रकृतिक (एधादि धातु) के तुल्य अनु (पश्चात्) प्रयुज्यमान (प्रयोग किये जाने वाले) कृञ् से भी आत्मनेपद होता है । ३—लिट् के स्थान मे आदेशरूपी 'त' को 'एश्' एवं 'झ' को इरेच् आदेश होते है । ४—इण् अन्त अङ्ग से परे षी ध्वम् तथा लुङ लिट् सम्बन्धी धकार को ढकार होता है । ५—धकारादि प्रत्यय पर मे हो तो सकार का लोप होता है ।

ह एति ७ । ४ । ५२ ॥ [1]तासस्त्यो सस्य ह स्यादेति परे । एधिताहे । एधितास्वहे । एधितास्महे । एधिष्यते । एधिष्येते । एधिष्यन्ते । एधिष्यसे । एधिष्येथे । एधिष्यध्वे । एधिष्ये । एधिष्यावहे । एधिष्यामहे ।

आमेत ३ । ४ । ९० ॥ [2]लोट एकारस्य आम् स्यात् । एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् ।

सवाभ्या वाऽमौ ३ । ४ । ९१ ॥ [3]सवाभ्या परस्य लाडेन क्रमाद्वाऽमो स्त । एधस्व । एधेथाम् । एधध्वम् ।

एत ऐ ३ । ४ । ९३ ॥ [4]लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात् । एधै । एधावहै । एधामहै । आटश्च । ऐधत । ऐधेताम् । ऐधन्त । ऐधथा । ऐधेथाम् । ऐधध्वम् । ऐधे । ऐधावहि । ऐधामहि ।

लिङ सीयुट् ३ । ४ । १०२ ॥ [[5]लिङादेशाना सीयुडागम स्यादात्मनेपदे] । सलोप । एधेत । एधेयाताम् ।

झस्य रन् ३ । ४ । १०५ ॥ [6]लिङो झस्य रन् स्यात् । एधेरन् । एधेथा । एधेयाथाम् । एधेध्वम् ।

इटोऽत् ३ । ४ । १०६ ॥ [7]लिङादेशस्य इटोऽत्स्यात् । एधेय । एधेवहि । एधेमहि ।

सुट् तिथो ३ । ४ । १०७ ॥ [8]लिङस्तकारथकारयो सुट स्यात् । यलोप । आर्धधातुकत्वात्सलोपो न । एधिषीष्ट । एधिषीयास्ताम् । एधिषीरन् । एधिषीष्ठा । एधिषीयास्थाम् । एधिषीध्वम् । एधिषीय । एधिषीवहि । एधिषीमहि । ऐधिष्ट । ऐधिषाताम् ।

एधस्व—एध धातोर्लोटि तस्य थास् प्रत्यये, तस्य च थास से' इति से' आदेशे, 'कर्तरि शप' इति शपि, अनुबन्धलोपे, 'सवाभ्या वामौ इति एकारस्य वकारे 'एधस्व' इति ,

एधे—एध धातोर्लोटि तस्य इडादेशेऽनुबन्धलोपे कर्तरि शप' इति शपि

१—एकार पर मे रहे तो तास प्रत्यय और अस धातु सम्बन्धी स' को ह' आदेश होता है । २—लोट् सम्बन्धी एकार को आम् आदेश होता है । ३—सकार, वकार से परे लोट् सम्बन्धी एकार को क्रम से व और म आदेश होता है । ४—लोट् सम्बन्धी उत्तम पुरुष के एकार को ऐकार होता है । ५—लिङ् से सीयुट् का आगम होता है आत्मनेपद मे । ६—लिङ् सम्बन्धी 'झ' के स्थान मे रन्' होता है । ७—लिङादेश इट् को अत् आदेश होता है ।
9 ८—लिङ् सम्बन्धी तकार, थकार से सुट का आगम होता है ।

आत्मनेपदेष्वनत ७ । १ । ५ ॥ [1]अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्य अदित्यादेश स्यात्। ऐधिषत। ऐधिष्ठा । ऐधिषाथाम्। ऐधिढवम्। ऐधिषि । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि । ऐधिष्यत। ऐधिष्येताम्। ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथा । ऐधिष्येथाम्। ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये । ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि । **कमु** कान्तौ ।

कमेर्णिङ् ३ । १ । ३० ॥ [2]कमेर्णिङ् स्यात्स्वार्थे। ङित्त्वात्तङ। कामयते ।

अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ६ । ४ । ५५ ॥ [3]आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु–एषु णेरयादेश स्यात्। कामयाञ्चक्रे। आयादय इति णिङ वा। चकमे। चकमाते। चकमिरे। चकमिषे। चकमाथे। चकमिध्वे। चकमे। चकमिवहे। चकमिमहे। कामयिता–कमिता। कामयितासे। कामयिष्यते, कमिष्यते। कामयताम्। अकामयत। कामयेत्। कामयिषीष्ट।

विभाषेट ८ । ३ । ७९ ॥ [4]इण परो य इट तत परेषा षीध्वलुङ्-लिटा धस्य वा ढ स्यात्। कामयिषीढवम्, कामयिषीध्वम्। कमिषीष्ट। कमिषीध्वम्।

णिश्रिद्रुस्रुभ्य कर्तरि चङ् ३ । १ । ४८ ॥ [5]ण्यन्तात् श्र्यादिभिश्च च्लेश्चङ स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे। 'अ कामि अ त' इति स्थिते—

णेरनिटि ६ । ४ । ५१ ॥ [6]अनिडादावाधधातुके परे णेर्लोप स्यात्।

अनुबन्धलोपे, 'टित आत्मने–०' इति टेरेत्वे, 'एत ऐ' इति एकारस्य—ऐकारे, वद्धौ च एधै इति ।

ऐधिढवम–एध धातोर्लुङि तस्य 'तिप्तस ०' इति ध्वमि, 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'च्ले सिच' इति सिचि अनुबन्धलोपे, 'आडजादीनाम्' इति आटि, 'आटश्च' इति वद्धौ, 'आधधातुक–०' इतीटि, 'धि च' इति सस्य लोपे, 'इण षीध्वम्–०' इति धस्य ढकारे 'ऐधिढ्वम' इति ।

१—अकार से परे नहीं हो ऐसा जो झ' उसके स्थान मे अत् आदेश होता है। कमुं=इच्छा करने अर्थ में। २—स्वार्थ मे कम् धातु से णिङ् प्रत्यय होता है। ३—आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु, इष्णु आदि प्रत्यय परे रहते णि' के स्थान मे 'अय' आदेश होता है। ४—इण् से परे जो इट् उससे परे षीध्वं या लुङ् लिट् सम्बन्धी धकार उसको ढकार विकल्प से होता है। ५—कर्त्रर्थक लुङ पर में हो तो ण्यन्त से तथा श्रि, द्रु, स्रु धातुओं से परे च्लि को चङ् आदेश होता है। ६—जिसके पहले इट् न हो ऐसा आर्धधातुक पर में हो तो णि का लोप होता है।

णौ चङ्युपधाया ह्रस्व ७।४।१॥ [1]चङ परे णौ यदङ्ग तस्योपधाया ह्रस्व स्यात् ।

चङि ६।१।११॥ [2]चङि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाच प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य ।

सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ७।४।९३॥ [3]चङपरे णौ यदङ्ग तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव काय स्याण्णावग्लोपेऽसति ।

सन्यत ७।४।७९॥ [4]अभ्यासस्याऽत इत् स्यात् सनि ।

दीर्घो लघो ७।४।९४॥ [5]लघोरभ्यासस्य दीर्घ स्यात् सन्वद्भावविषये । अचीकमत । णिङभावपक्षे—[6]***कमेश्च्लेश्चङ वाच्य** । अचकमत । अकामयिष्यत–अकमिष्यत । अय गतौ । अयते ।

अचीकमत—लुप्तानुबन्धक–इच्छार्थक–'कम्' इत्यस्मात् 'आयादय आर्धधातुके वा' इति नियमेन 'कमेर्णिङ' इति वकल्पिके णिङि, 'अत उपधाया इति वृद्धौ, 'कामि इत्यस्य 'सनाद्यन्ता – इति धातुत्वेन लुङि, तस्य त' आदेशे, लुङलङ्– इत्यडागमेऽनुबन्धलोपे, च्लि लुङि' इति च्लौ, णिश्रिद्रुस्रुभ्य –०' इति चङि, अनुबन्धलोपे, णेरनिटि' इति–इकारलोपे, 'णौ चङ्युपधाया –०' इति उपधाह्रस्वे 'चङि' इति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये, 'सन्वल्लघुनि–' इति सन्वद्भावे, 'सन्यत ' इतीत्वे, 'दीर्घो लघो इति दीर्घे 'अचीकमत इति ।

'कम' धातो रूपाणि—

लटि—कामयते, कामयेते, कामय ते । कामयसे, कामयेथे, कामयध्वे । कामये कामयावहे, कामयामहे । **लिटि**—कामयाञ्चक्रे–चकमे, कामयाञ्चक्राते चकमात काम याञ्चक्रिरे चकमिरे । कामयाञ्चकृषे–चकमिषे, कामयाञ्चक्राथे चकमाथे कामयाञ्चकृढ्वे चकमिध्वे । कामयाञ्चक्रे–चकमे, का याञ्चकृवहे चकमिवहे, कामयाञ्चकृमहे चकमिमहे । **लुटि**—कामयिता कमिता, कामयितारौ कमितारौ, कामयितार

१—चङ्परक णि पर मे हो तो अङ्ग की उपधा को ह्रस्व होता है। २—चङ् पर रहे तो अभ्यास से भिन्न जो धातु का अवयव प्रथम एकाच् उसको द्वित्व होता है और अजादि धातु के द्वितीय एकाच को द्वित्व होता है। ३—णि परे रहते यदि अक् का लोप न हुआ हो तो चङ्परक णि परे जो अङ्ग, उसका जो लघुपरक अभ्यास, उसको सन्वद्भाव (सन् की तरह कार्य) होता है। ४—सन् पर में हो तो अभ्यास के 'अकार' को 'इकार' होता है। ५—सन्वद्भाव के विषय में लघु अभ्यास को दीर्घ होता है। ६—कम् धातु से परे च्लि को चङ् आदेश होता है।

उपसर्गस्यायतौ ८ । २ । १९ ॥ [1]अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् । प्लायते । पलायते ।

दयायासश्च ३ । १ । ३७ ॥ [2]दय अय आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि । अयाञ्चक्रे । अयिता । अयिष्यते । अयताम् । आयत । अयेत । अयिषीष्ट । विभाषेट । अयिषीढ्वम्–अयिषीध्वम् । आयिष्ट । आयिढ्वम्—आयिध्वम् । आयिष्यत ॥ द्युत दीप्तौ । द्योतते ।

द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् ७ । ४ । ६७ ॥ [3]अनयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात् । दिद्युते ।

कमितारः । कामयितासे कमितासे, कामयितासाथे कमितासाथे, कामयिताध्वे कमिताध्वे । कामयिताहे–कमिताहे, कामयितास्वहे–कमितास्वहे, कामयितास्महे–कमितास्महे । **लृटि**—कामयिष्यते कमिष्यते, कामयिष्येते-कमिष्येते कामयिष्यन्ते कमिष्यन्ते । कामयिष्यसे कमिष्यसे कामयिष्येथे-कमिष्येथे कामयिष्यध्वे कमिष्यध्वे । कामयिष्ये-कमिष्ये, कामयिष्यावहे–कमिष्यावहे कामयिष्यामहे–कमिष्यामहे । **लोटि**—कामयताम्, कामयेताम् कामयन्ताम् । कामयस्व कामयेथाम्, कामयध्वम् । कामये कामयावहै, कामयामहै । **लङि**—अकामयत, अकामयेताम् अकामयन्त । अकामयथाः, अकामयेथाम् अकामयध्वम् । अकामये, अकामयावहि अकामयामहि । **विधिलिङि**—कामयेत, कामयेयाताम्, कामयेरन् । कामयेथाः, कामयेयाथाम्, कामयेध्वम् । कामयेय, कामयेवहि, कामयेमहि । **आशीर्लिङि**—कामयिषीष्ट–कमिषीष्ट, कामयिषीयास्ताम् कमिषीयास्ताम्, कामयिषीरन्–कमिषीरन् । कामयिषीष्ठाः कमिषीष्ठाः, कामयिषीयास्थाम् कमिषीयास्थाम्, कामयिषीढ्वम्–कामयिषीध्वम् कमिषीध्वम् । कामयिषीय-कमिषीय, कामयिषीवहि कमिषीवहि, कामयिषीमहि कमिषीमहि । **लुङि**—अचीकमत-अचकमत, अचीकमेताम्–अचकमेताम्, अचीकमन्त-अचकमन्त । अचीकमथाः–अचकमथाः, अचीकमेथाम्–अचकमेथाम् अचीकमध्वम्–अचकमध्वम् । अचीकमे–अचकमे, अचीकमावहि–अचकमावहि, अचीकमामहि–अचकमामहि । **लृङि**—अकामयिष्यत–अकमिष्यत, अकामयिष्येताम्–अकमिष्येताम्, अकामयिष्यन्त अकमिष्यन्त । अकामयिष्यथाः–अकमिष्यथाः अकामयिष्येथाम्–अकमिष्येथाम्, अकामयिष्यध्वम्—अकमिष्यध्वम् । अकामयिष्ये–अकमिष्ये,

१–अय धातु हो पर मे जिसके ऐसे उपसर्ग के रेफ का लकार होता है । २–लिट परे रहते दय् अय् आस धातुओं मे आम् होता है । ३–द्युत एवं स्वप् धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है ।

द्युद्भ्यो लुङि १ । ३ । ९१ ॥ [1]द्युतादिभ्यो लुङ परस्मैपद वा स्यात् । पुषादीत्यङ । अद्युतत्-अद्योतिष्ट । अद्योतिष्यत । एवम् **श्विता** वर्णे । **ञिमिदा** स्नेहने । **ञिष्विदा** स्नेहनमोचनयो । मोहनयोरित्येके । **ञिक्ष्विदा** चेत्येके । **रुच** दीप्तावभिप्रीतौ च । **घुट** परिवतने । **शुभ** दीप्तौ । **क्षुभ** सञ्चलने । **णभ तुभ** हिसायाम् । **स्रसु ध्वसु भ्रसु** अवस्रसने । **ध्वसु** गतौ च । **स्रम्भु** विश्वासे । **वृतु** वत्तने । वतते । ववृते । वर्तिता ।

वृद्भ्य स्यसनो १ । ३ । ९२ ॥ [2]वृतादिभ्य पञ्चभ्य परस्मैपद वा स्यात्स्ये सनि च ।

न वृद्भ्यश्चतुभ्य ७ । २ । ५९ ॥ [3]वृतुवृधुशृधुस्यन्दूभ्य सकारादेराध-धातुकस्येण न स्यात् तङानयोरभावे । वत्स्यति–वर्तिष्यते । वर्तताम् । अव तत । वर्तेत । वर्तिषीष्ट । अवर्तिष्ट । अवत्स्यत्-अवर्तिष्यत । **दद** दाने । ददते ।

न शसददवादिगुणानाम् ६ । ४ । १२६ ॥ [4]शसेददेवकारादीना गुण-शब्देन विहितश्च योऽकारस्तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न स्त । दददे । दददाते । दददिरे । ददिता । ददिष्यते । ददताम् । अददत । ददेत । ददिषीष्ट । अद-दिष्ट । अददिष्यत । **त्रपूष** लज्जायाम् । त्रपते ।

तफलभजत्रपश्च ६ । ४ । १२२ ॥ [5]एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च । त्रेपे । त्रपिता, त्रप्ता । त्रपिष्यते, त्रप्स्यते ।

अकामयिष्यावहि–अकमिष्यावहि, अकामयिष्यामहि–अकमिष्यामहि ।

वत्स्यति—उकारेत्सञ्ज्ञक वत्–धातोर्लुटि, अनुबन्धलोपे, 'स्यतासी ललुटो' इति स्यप्रत्यये आधधातुकस्येड वलादेरिति प्राप्तस्येटो 'न वद्भ्यश्चतुभ्य' इति निषेधे, 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'उरत्' इति रपरे च कृते वत्स्यति' इति । आत्मने पदप्रयोगे तु इड भवत्येव, तेन 'वर्तिष्यते' इति ।

१—द्युतादि से परे लुङ को परस्मैपद विकल्प से होना है। रुच=प्रकाश तथा मन को अच्छा लगना। घुट=एक ही पदार्थ का बारम्बार घर्षण करना। क्षुभ=अपने स्वभाव से विरुद्ध व्यापार करना, जैसे क्षुब्ध व्याकुल। यह लोकप्रसिद्ध है। स्रंस, भ्रंस ध्वंस–नीचे गिरना। वृत =सत्ता। २–स्य या सन् प्रत्यय पर में रहे तो वृत्–आदि पाँच धातुओं से परस्मैपद विकल्प से होता है। ३–तङ् और आन से भिन्न स्थल में वृत्, वृध्, शृध् स्यन्द् धातुओं से परे सकारादि आर्धधातुक से इट् का आगम नहीं होता है। दद=दान, देने अर्थ में। ४—शस–दद् एव वकारादि धातुओं एवं गुण शब्द से किया गया जो अकार उसको एत्व तथा अभ्यास लोप कार्य नहीं होते हैं। त्रप=लज्जा अर्थ में। ५–कित् लिट् एवं इट् सहित थल् परे हो तो तॄ,

त्रपताम् । अत्रपत । त्रपेत । त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट । अत्रपिष्ट, अत्रप्त । अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत ।

॥ इत्यात्मनेपदिन ॥

अथोभयपदिनः

श्रिञ् सेवायाम् । श्रयति–श्रयते । शिश्राय–शिश्रिये । श्रयिता । श्रयिष्यति–श्रयिष्यते । श्रयतु, श्रयताम् । अश्रयत् अश्रयत । श्रयेत् श्रयेत । श्रीयात् श्रयिषीष्ट । चङ । अशिश्रियत्, अशिश्रियत । अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत ।

भृञ भरणे । भरति, भरते । बभार । बभ्रतु । बभ्रु । बभर्थ । बभृव । बभृम । बभ्रे । बभृषे । भर्तासि, भर्तासे । भरिष्यति, भरिष्यते । भरतु, भरताम् । अभरत्, अभरत । भरेत्, भरेत ।

रिङ शयग्लिङ्क्षु ७ । ४ । २८ ॥ [1]शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतः रिङादेश स्यात् । रीङि प्रकृते रिङविधानसामर्थ्याद्दीर्घो न । भ्रियात् ।

उश्च १ । २ । १२ ॥ [2]ऋवर्णात्परौ झलादी लिङसिचो कितौ स्तस्तङि । भृषीष्ट । भृषीयास्ताम् । भृषीरन् । अभार्षीत् । अभार्ष्टाम् । अभार्षु । अभार्षी । अभार्ष्टम् । अभार्ष्ट । अभार्षम् । अभार्ष्व । अभार्ष्म ।

ह्रस्वादङ्गात् ८ । २ । २७ ॥ [3]सिचो लोप स्याज्झलि । अभृत । अभृषाताम् । अभरिष्यत्, अभरिष्यत । **हृञ्** हरणे । हरति, हरते । जहार,

---

अशिश्रयत—श्रियो लुङि तस्य तिपि 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'णिश्रिद्रुस्रुभ्य कर्तरि चङ' इति च्लेश्चङि अनुबन्धलोपे, 'चङि' इति श्रि' इत्यस्य द्वित्वे, अभ्यासादिकार्ये, 'लुङलङ–०' इति अडागमेऽनुबन्धलोपे 'अचिश्नुधातु–०' इत्यादिना–इयङि अनुबन्धलोपे 'इतश्च' इति तिप इकारस्य लोपे 'अशिश्रियत्' इति ।

जहार—हरणार्थक हृधातोर्लिटि तस्य तिपि 'परस्मैपदानाम्'–०

फल, भज त्रप धातुओं के अकार को एत्व एव अभ्यासलोप होता है । इत्यात्मनेपदिन । श्रिञ्=सेवा अर्थ मे । भृञ=भरण पोषण अर्थ मे ।

१—शकार यक् एवं यकारादि अर्धधातुक लिङ् पर मे हो तो ऋकार को रिङ आदेश होता है । २—आत्मनेपद मे झलादि लिङ् और सिच , कित् सज्ञक होते हैं । ३–झल् पर मे हो तो ह्रस्वान्त अङ्ग से परे जो सिच् उसका लोप होता है । हृञ्=चोरी–डाँका अर्थ मे ।

जह्र । जहृथ । जह्रिव । जह्रिम । जह्रिषे । हर्तासि, हर्तासे । हरिष्यति, हरिष्यते । हरतु, हरताम् । अहरत्, अहरत । हरेत्, हरेत । ह्रियात्, हृषीष्ट । हृषीयास्ताम् । अहार्षीत्, अहृत । अहरिष्यत्, अहरिष्यत ।

धृञ् धारणे । धरति, धरते । **णीञ्** प्रापणे । नयति । नयते । **डुपचष्** पाके । पचति, पचते । पपाच । पेचिथ, पपक्थ । पक्तासि, पक्तासे ।

भज सेवायाम् । भजति, भजते । बभाज, भेजे । भक्तासि, भक्तासे । भक्ष्यति, भक्ष्यते । अभाक्षीत्, अभक्त । अभक्षाताम् । [1]**यज** देवपूजासङ्गति करणदानेषु । यजति, यजते ।

लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ६ । १ । १७ ॥ [2]वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्याल्लिटि । इयाज ।

वचिस्वपियजादीनां किति ६ । १ । १५ ॥ [3]वचिस्वप्योयजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात् किति । ईजतुः । ईजुः । इयजिथ, इयष्ठ । ईजे । यष्टा ।

इति णल्यनुबन्धलोपे लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे, पूर्वोऽभ्यासः उरत्' इति ऋवर्णस्याकारे रपरे च कृते, 'हलादिः शेषः' इति हल्लोपे, 'कुहोश्चुः' इत्यभ्यास हकारस्य झकारे, 'अभ्यासे चर्च' इति चर्त्वे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ रपरे च कृते 'जहार' इति ।

इयाज—यज धातोः परोक्षे लिटि, तस्य स्थाने तिपि, तिपो णलि अनुबन्धलोपे लिटि धातोरनभ्यासस्य इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेष च कृते, 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' इत्यभ्यासयकारस्य सम्प्रसारणे, 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे, 'अत उपधायाः' इत्युपधावृद्धौ कृते 'इयाज' इति ।

ईजतुः—यज धातोर्लिटि तस्य तसि, तसोऽतुसि च कृते, 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे प्राप्ते 'सम्प्रसारणं तदाश्रयञ्च कार्यं बलवत्' इति न्यायेन पूर्वं 'वचिस्वपियजादीनां किति' इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च कृते, द्वित्वाभ्यासादिकार्ये, सवर्णदीर्घे, सस्य रुत्वे विसर्गे च 'ईजतुः' इति ।

धृञ्=धारण करने अर्थ में । णीञ्=ले जाने ढोने अर्थ में । पच=पकाने, रसोई आदि बनाने अर्थ में । भज=सेवा करने में ।

१—यज=पूजा सत्सङ्गति करना दान देना । २—लिट् लकार पर में हो तो वच्यादि और ग्रह्यादि धातुओं के अभ्यास का सम्प्रसारण होता है । ३—कित् परे रहते वच्, स्वप् और यज् आदि धातुओंको सम्प्रसारण होता है ।

षढो कः सि ८।२।४१॥ [1]षस्य ढस्य च कः स्यात्सकारे। यक्ष्यति, यक्ष्यते। इज्यात्, यक्षीष्ट। अयाक्षीत्, अयष्ट। **वह** प्रापणे। वहति, वहते। उवाह। ऊहतु। ऊहु। उवहिथ।

झषस्तथोर्धोऽधः ८।२।४०॥ [2]झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधाते।

ढो ढे लोपः ८।३।१३॥ [3][ढस्य लोपः स्याड्ढे परे]।

सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२॥ [4]अनयोरवर्णस्य ओत्स्याड्ढलोपे। उवोढ। ऊहे। वोढा। वक्ष्यति। अवाक्षीत्। अवोढाम्। अवाक्षुः। अवाक्षीः। अवोढम्। अवोढ। अवाक्षम्। अवाक्ष्व। अवाक्ष्म। अवोढ। अवक्षाताम्। अवक्षत। अवोढाः। अवक्षाथाम्। अवोढ्वम्। अवक्षि। अवक्ष्वहि। अवक्ष्महि।

॥ इति तिङन्ते भ्वादयः ॥



उवोढ—वह् धातोर्लिटि लिटस्सिपि थलि, 'लिटि धातोरनभ्यासस्य इति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये, 'होढः' इति हस्य ढत्वे, 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति थस्य धत्वे, 'ष्टुना ष्टुः' इति ष्टुत्वेन धस्य ढकारे, 'ढो ढे लोपः' इति पूर्वढकारस्य लोपे, 'सहिवहोरोदवर्णस्य' इति वकारोत्तरवर्त्यकारस्य—ओकारे, लिटयभ्यासस्योभयेषाम्' इति पूर्ववकारस्य सम्प्रसारणे, 'सम्प्रसारणाच्चेति' पूर्वरूपे 'उवोढ' इति।

वोढा—वह धातोर्लुटि तस्य तिप्यनुबन्धलोपे, 'स्यतासी ललुटोः' इति तासि, 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' इति तिपो डादेशे, 'चुटू' इति डकारस्येत्सञ्ज्ञाया 'तस्य लोपः' इति लोपे, डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपे, 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे, 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति तकारस्य धकारे, 'ष्टुना ष्टुः' इति ष्टुत्वेन धस्य ढत्वे, 'ढो ढे लोपः' ढलोपे, 'सहिवहोरोदवर्णस्य वकारोत्तरवर्त्यकारस्य ओकारे 'वोढा' इति।

इति भ्वादिप्रकरणम्।



१—सकार पर में हो तो ष और ढ को क होता है। वह=ढोने ले जाने अर्थ मे। २—झष् से परे तकार थकार को धकार होता है, धा धातु को छोडकर। ३—ढकार पर मे हो तो ढकार का लोप होता है। ४—ढकार के लोप होने पर सह् और वह् धातु के अकार को ओकार होता है।

[भ्वादिप्रकरण समाप्त]



अथ तिङन्तेऽदादिप्रकरणम्

अद भक्षणे ।

अदिप्रभृतिभ्य शप २।४।७२॥ [1][एभ्य परस्य शपो] लुक् स्यात् । अत्ति । अत्त । अदन्ति । अत्सि । अत्थ । अत्थ । अद्मि । अद्व । अद्म ।

लिट्यन्यतरस्याम् २।४।४० [2]अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि । जघास । उपधालोप ।

शासिवसिघसीना च ८।३।६०॥ [3]इणकुभ्या परस्यैषा सस्य ष स्यात् । घस्य चर्त्वम् । जक्षतु । जक्षु । जघसिथ । जक्षथु । जक्ष । जघास, जघस । जक्षिव । जक्षिम । आद । आदतु । आदु ।

इडत्यर्त्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६॥ [4]अद्, ऋ, व्येञ एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात् । आदिथ । अत्ता । अत्स्यति । अत्तु, अत्तात् । अत्ताम् । अदन्तु ।

हुझल्भ्यो हेर्धि ६।४।१०१॥ [5]होझलन्तेभ्यश्च हेर्धि स्यात् । अद्धि अत्तात् । अत्तम् । अत्त । अदानि । अदाव । अदाम ।

अद सर्वेषाम् ७।३।१००॥ [6]अद परस्याऽपृक्तसार्वधातुकस्य अट स्यात्सर्वमतेन । आदत् । आत्ताम् । आदन् । आद । आत्तम् । आत्त । आदम् । आद्व । आद्म । अद्यात् । अद्याताम् । अद्यु । अद्यात् । अद्यास्ताम् । अद्यासु ।

उपधालोप—'गमहनजनखनघसा लोप क्ङित्यनङि' इति सूत्रेणेत्यथ । **जक्षतु**—अद्धातोर्लिटि तस्य तिप्तसादिना तसि, तस्य च 'परस्मपदाना–०' इति–अतुसि 'लिट्यन्यतरस्याम्' इति वैकल्पिके 'घस्लृ आदेशे, अनुबन्धलोपे, द्वित्वे, अभ्यासकार्ये, 'गमहनजन–' इति–उपधालोपे, जघ्स अतुस' इति स्थिते, घस्य चर्त्वेन ककारे, 'शासिवसिघसीना च' इति धातुसकारस्य षकारे, क्षसयोगे 'क्ष', प्रत्ययसकारस्य रुत्वे विसर्गे च कृते 'जक्षतु' इति । पक्षे 'आदतु' । अस्मिन् प्रयोगे 'अद अतुस' इत्यवस्थायाम् द्वित्वेऽभ्यासकार्ये, 'अत आदे' इति दीर्घे,

---

१—अदादि गण मे पढ़े गये धातुओं से जो शप उसका लुक् (लोप) होता है । २—लिट् लकार में अद् को घस्लृ आदेश विकल्प से होता है । ३—इण् (इ, उ) कवग (क ख, ग, घ, ङ) से परे शास, वस् एवं घस् सम्बन्धी सकार को षकार होता है । ४—अद्, ऋ, व्येञ् धातुओं से परे थल् को नित्य इट् का आगम होता है । ५—हु धातु एवं झलन्त धातुओं से परे हि के स्थान में धि आदेश होता है । ६—सभी आचार्यों के मत से अद् धातु

लुङसनोर्घस्लृ २ । ४ । ३७ ॥ [1]अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च । लृदित्त्वादङ् । अघसत् । आत्स्यत् । **हन** हिंसागत्यो । हन्ति ।

अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६ । ४ । ३७ ॥ [2]अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोप स्याज्झलादौ किति ङिति परे। यमि रमि-नमि-गमि हनि-मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशा । तनु क्षणु क्षिणु ऋणु तृणु घृणु वनु मनु तनोत्यादय । हत । घ्नन्ति । हसि । हथ । हथ । हन्मि । हन्व । हन्म । जघान । जघ्नतु । जघ्नु ।

अभ्यासाच्च ७ । ३ । ५५ ॥ [3]अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्व स्यात् । जघनिथ—जघन्थ । जघ्नथु । जघ्न । जघान–जघन । जघ्निव । जघ्निम । हन्ता । हनिष्यति । हन्तु–हतात् । हताम् । घ्नन्तु ।

हन्तेज ६ । ४ । ३६ ॥ [4]हन्तेर्जादेश स्याद् धौ परे ।

असिद्धवदत्राभात् ६ । ४ । २२ ॥ [5]इत ऊर्ध्वमापादसमाप्तेराभीयम् । समानाश्रये तस्मिन्कर्तव्ये तदसिद्ध स्यात् । इति जस्याऽसिद्धत्वान्न हेर्लुक । जहि–हतात् । हतम् । हत । हनानि । हनाव । हनाम । अहन् । अहताम् । अघ्नन् । अहन् । अहतम् । अहत । अहनम् । अहन्व । अहन्म । हन्यात् । हन्याताम् । हन्यु ।

आर्धधातुके २ । ४ । ३५ ॥ [6]इत्यधिकृत्य ।

शेष समान कायम् ।

जहि—हन् धातोर्लोटि, तस्य सिपि, 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्हित्वे, 'हन्तेज ' इति हन् इत्यस्य जादेशे, 'अतो हे ' इति हेर्लुकि प्राप्ते 'असिद्धवदत्राभात्' इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक 'जहि' इति ।

से परे अपृक्त सार्वधातुक को अट् का आगम होता है ।

१—अद् को घस्लृ आदेश होता है लुङ् एव सन् परे रहते । २—झलादि कित् या ङित् पर मे हो तो अनुनासिकान्त मे जो अनुदात्तोपदेश एव वन्, तन् आदि धातुओं के अनुनासिक का लोप होता है । ३—अभ्यास से परे हन् धातु के हकार को कुत्व होता है । ४—हि (प्रत्यय) परे रहते हन् धातु को 'ज' आदेश होता है ५—इस (६।४।२२) सूत्र से लेकर छठे अध्याय की समाप्ति तक के सभी सूत्र "आभीय" हैं । समान निमित्तक आभीय कार्य के करने मे समान निमित्तक आभीय कार्य असिद्ध होता है । ६—'आर्धधातुके' यह अधिकार सूत्र है, अर्थात् [४।२।४२] से आगे इसका अधिकार चलता है ।

हनो वध लिङि २ । ४ । ४२ ॥

लुङि च २ । ४ । ४३ ॥ [1]हनो वधादेश स्याल्लिङि लुङि च । वधादेशोऽदन्त । आधधातुके इति विषयसप्तमी । तेन आर्धधातुकोपदेशेऽकारान्तत्वादतो लोप । वध्यात् । वध्यास्ताम् । आदेशस्याऽनेकाच्त्वादेकाच इतीण्निषेधाऽभावादिट् । अतो हलादेरिति वृद्धौ प्राप्तायाम्—

अच परस्मिन् पूर्वविधौ १ । १ । ५७ ॥ [2]परनिमित्तोऽजादेश स्थानिवत्स्यात् स्थानिभूतादच पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इत्यल्लोपस्य स्थानिवत्त्वेनोपधात्वाऽभावान्न वृद्धि । अवधीत् । अहनिष्यत ॥ यु मिश्रणाऽमिश्रणयो ।

हन–हिंसागत्यो । लटि—हन्ति, हत , घ्नन्ति । हसि, हथ , हथ । हन्मि, हन्व , हन्म । **लिटि**—जघान, जघ्नतु , जघ्नु । जघनिथ–जघन्थ जघ्नथु , जघ्न । जघान, जघ्निव जघ्निम । **लुटि**—हन्ता हन्तारौ, हन्तार । हन्तासि, हन्तास्थ , हन्तास्थ । हन्तास्मि, हन्तास्व , हन्तास्म । **लृटि**—हनिष्यति हनिष्यत , हनिष्यन्ति । हनिष्यसि, हनिष्यथ हनिष्यथ । हनिष्यामि हनिष्याव , हनिष्याम । **लोटि**—हन्तु–हतात्, हताम्, घ्नन्तु । जहि–हतात्, हतम्, हत । हनानि, हनाव, हनाम । **लङि**—अहन्, अहताम्, अघ्नन् । अहन्, अहतम्, अहत । अहनम्, अहन्व, अहन्म । **विधिलिङि**—हन्यात्, हन्याताम्, हन्यु । हन्या हन्यातम्, हन्यात । हन्याम्, हन्याव, हन्याम । **आशीर्लिङि**—वध्यात्, वध्यास्ताम्, वध्यासु । वध्या , वध्यास्तम्, वध्यास्त । वध्यासम्, वध्यास्व, वध्यास्म । **लुङि**—अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषु । अवधी , अवधिष्टम्, अवधिष्ट । अवधिषम्, अवधिष्व, अवधिष्म । **लङि**—अहनिष्यत्, अहनिष्यताम् अहनिष्यन् । अहनिष्य , अहनिष्यतम्, अहनिष्यत । अहनिष्यम् अहनिष्याव, अहनिष्याम ।

१—लिङ या लुङ् लकार परे रहते हन् धातु को वध आदेश होता है । वध' आदेश अदन्त है । 'आर्धधातुके' यह विषय–सप्तमी है (आर्धधातुक के विषय मे अथ है) इसलिए आर्धधातुक के उपदेशावस्था मे जो अकार उसका (अतो लोप) से लोप होता है । २—स्थानिभूत अच् से पूर्व दृष्ट से कोई विधिकाय करना हो तो, पर को निमित्त मानकर अच् के स्थान मे हुआ आदेश स्थानी के तुल्य होता है । [वधादेशोऽदन्त इसका—यथार्थ निष्कर्ष यह है कि वधादेश हो जाने पर धातु अनेकाच् होता है अत 'अवधीत्' मे एकाच –सूत्र से इट् का निषेध नहीं होता किन्तु इट् हो जाता है और इडादि सिच् मिलने के कारण 'अतो हलादे –' सूत्र से वृद्धि प्राप्त होती है परन्तु 'अतो लोप ' से हुए अल्लोप का स्थानिवद्भाव होने से नहीं होती अर्थात् इडादि सिच् परे नहीं मिलता है] ।

उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७ । ३ । ८९ ॥ [१]लुग्विषये उतो वृद्धिः स्यात् पिति हलादौ सार्वधातुके, नत्वभ्यस्तस्य । यौति । युतः । युवन्ति । यौषि । युथः । युथ । यौमि । युवः । युमः । युयाव । यविता । यविष्यति । यौतु–युतात् । अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । युयात् । इह उतो वृद्धिर्न, भाष्ये पिच्च ङिन्न, ङिच्च पिन्नेति व्याख्यानात् । युयाताम् । युयुः । यूयात् । यूयास्ताम् । यूयासुः । अयावीत् । अयविष्यत । **या** प्रापणे । याति । यातः । यान्ति । ययौ । याता । यास्यति । यातु । अयात् । अयाताम् ।

लङः शाकटायनस्यैव ३।४।१११ ॥ [२]आदन्तात्परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात् । अयुः–अयान् । यायात् । यायाताम् । ययुः । यायात् । यायास्ताम् । यायासुः । अयासीत् । अयास्यत । **वा** गतिगन्धनयोः । **भा** दीप्तौ । **ष्णा** शौचे । **श्रा** पाके । **द्रा** कुत्सायां गतौ । **प्सा** भक्षणे । **रा** दाने । **ला** आदाने । **दाप्** लवने । **पा** रक्षणे । **ख्या** प्रकथने । अयं सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः । **विद** ज्ञाने ।

विदो लटो वा ३ । ४ । ८३ ॥ [३]वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः । वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद । विद्व । विद्म । पक्षे-वेत्ति । वित्तः । विदन्ति ।

उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ३ । १ । ३८ ॥ [४]एभ्यो लिटि आम्वा स्यात् । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः । विदाञ्चकार–विवेद । वेदिता । वेदिष्यति ।

विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ३ । १ । ४१ ॥ [५]वेत्तेर्लोटि आम्, गुणाऽभावो, लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते ।

१—हलादि पित् सार्वधातुक परे में हो तो लुक् के विषय में उकार को वृद्धि होती है, अभ्यस्त को छोड़कर (नहीं) । या=ढोना, पहुँचाना, जाना । २—आदन्त धातु से परे लङ् सम्बन्धी झि को जुस् होता है विकल्प से । वा=जाना, हिंसा करना आदि ('उत्साहने च, हिंसायां सूचने चापि गन्धने' इत्यमरः) । भा=दीप्ति, प्रकाश । ष्णा=स्नान आदि से पवित्र होना । श्रा=पकाना । द्रा=निन्दित गमन आदि । प्सा=भोजन । रा=देना । ला=ग्रहण करना (लेना) । दाप्=फसल आदि का काटना । पा=रक्षा करना । विद=ज्ञान करना (जानना) । ३—विद् धातु से परे लट् सम्बन्धी परस्मैपदों को णल्–आदि आदेश विकल्प से होते हैं । ४—लिट् परे में हो तो उष, विद्, जागृ धातुओं से 'आम्' विकल्प से होता है । ५—लोट् परे रहते विद् धातु से आम् होता है, और गुण का अभाव, लोट का लुक् तथा विकल्प से लोट् परक कृधातु का अनुप्रयोग निपातन से करते हैं ।

तनादिकृञ्भ्य उः ३ । १ । ७९ ॥ [1]तनादेः कृञश्च उप्रत्ययः स्यात् । शपोऽपवादः । गुणः । विदाङ्करोतु ।

अत उत्सार्वधातुके ६ । ४ । ११० ॥ [2]उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति । विदाङ्कुरुतात् । विदाङ्कुरुताम् । विदाङ्कुर्वन्तु । विदाङ्कुरु । विदाङ्करवाणि । अवेत् । अवित्ताम् । अविदुः ।

दश्च ८ । २ । ७५ ॥ [3]धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे रुर्वा स्यात् । अवेः–अवेत् । विद्यात् । विद्याताम् । विद्युः । विद्यात् । विद्यास्ताम् । अवेदीत् । अवेदिष्यत् ।

विदाङ्कुरुतात्—ज्ञानार्थक विद् धातोर्लोटि विदाङ्कुर्वन्त्वित्ति आम् प्रत्यये, गुणाभावे लोटो लुकि लोडन्तकृञोऽनुप्रयोगे विद् आम् कृ लोट्' इति स्थिते, लोटस्तिबादेशे, एरुरित्युत्वे, शप प्रबाध्य तनादि कृञ्भ्य उः' इति–उप्रत्यये, तस्यार्धधातुकत्वे, गुणे, तुह्योस्तातङ्ङादिना तातङि, 'अत उत्सार्वधातुके इति ककारोत्तराकारस्यात्वे मकारस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते तत्सिद्धिः ।

विदाङ्कुर्वन्तु––विद् धातोर्लोटि, विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् इति वैकल्पिकेन लोट्यामि, गुणाभावे लोटि लुकि, लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगे च कृते 'विद् + आम् + कृ + लोट्' इति स्थिते, लटो झि––आदेशे 'तनादि कृञ्भ्य उः' इति उकारे, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे, रपरे, 'झोऽन्तः' इति झस्यान्तादेशे, एरुरिति उत्वे, 'अत उत्सार्वधातुके' इति कृञोऽकारस्योकारे इको यणचि' इति यणि, मकारस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते तत्सिद्धिः ।

विद् ज्ञाने—लटि––वेत्ति, वित्तः, विदन्ति । वेत्सि, वित्थः, वित्थ । वेद्मि, विद्वः, विद्मः । **पक्षे––**वेद वेदतुः, वेदुः । वेत्थ, वेदथुः, वेद । वेद, विद्व, विद्म । **लिटि—**विदाञ्चकार विदाञ्चक्रतुः, विदाञ्चक्रुः । विदाञ्चकर्थ, विदाञ्चक्रथुः, विदाञ्चक्र । विदाञ्चकार—विदाञ्चकर, विदाञ्चकृव, विदाञ्चकृम । **पक्षे––**विवेद, विविदतुः, विविदुः । विवेदिथ, विविदथुः, विविद । विवेद, विविदिव, विविदिम । **लुटि–**वेदिता, वेदितारौ वेदितारः । वेदितासि, वेदितास्थः, वेदितास्थ । वेदितास्मि, वेदितास्वः, वेदितास्मः । **लृटि—**वेदिष्यति, वेदिष्यतः, वेदिष्यन्ति । वेदिष्यसि, वेदिष्यथः, वेदिष्यथ । वेदिष्यामि, वेदिष्यावः, वेदिष्यामः । **लोटि––**विदाङ्करोतु–

---

[1]—तनादि धातु और कृञ् धातु से परे 'उ' प्रत्यय होता है । [2]—कित्, ङित् सार्वधातुक पर हो तो उप्रत्ययान्त कृञ् धातु के अकार को उकार होता है । [3]—सिप परे रहते पदान्त दकार को 'रु' विकल्प से होना है ।

अस् भुवि अस्ति ।

श्नसोरल्लोप ६ । ४ । १११ ।। [१]श्नस्याऽस्तेश्चाऽतो लोप स्यात्सावधातुके क्ङिति । स्त । सन्ति । असि । स्थ । स्थ । अस्मि । स्व । स्म ।

उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्पर ८ । ३ । ८७ ।। [२]उपसर्गेण प्रादुसश्चाऽस्ते सस्य ष स्याद्यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रनिषन्ति । प्रादुषन्ति । यच्पर किम् ? अभिस्त ।

अस्तेर्भू २ । ४ । ५२ ।। [३][अस्तेर्भू इत्यादेश स्यात्] । आर्धधातुके । बभूव । भविता । भविष्यति । अस्तु स्तात् । स्ताम् । सन्तु ।

घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६ । ४ । ११९ ।। [४]घोरस्तेश्च एत्व स्याद्धौ परे अभ्यासलोपश्च । एत्वस्याऽसिद्धत्वाद्धेर्धि । श्नसोरित्यल्लोप । तातङ्पक्षे एत्व न, परेण तातङा बाधात् । एधि-स्तात् । स्तम् । स्त । असानि ।

विदाङ्कुरुतात्, विदाङ्कुरुताम्–विदाङ्कुर्वन्तु । विदाङ्कुरु विदाङ्कुरुतात्, विदाङ्कुरुतम्, विदाङ्कुरुत । विदाङ्करवाणि, विदाङ्करवाव, विदाङ्करवाम । **लङि**—अवेत्, अवित्ताम् अविदु । अवे, अवित्तम्, अवित्त । अवेदम्, अविद्व, अविद्म । **विधिलिङि**—विद्यात्, विद्याताम्, विद्यु । विद्या, विद्यातम्, विद्यात । विद्याम्, विद्याव, विद्याम । **आशीर्लिङि**—विद्यात्, विद्यास्ताम्, विद्यासु । विद्या, विद्यास्तम्, विद्यास्त । विद्यासम्, विद्यास्व, विद्यास्म । **लुङि**—अवेदीत् अवेदिष्टाम्, अवेदिषु । अवेदी, अवेदिष्टम्, अवेदिष्ट । अवेदिषम्, अवेदिष्व अवेदिष्म । **लृङि**—अवेदिष्यत्, अवेदिष्यताम् अवेदिष्यन् । अवेदिष्य, अवेदिष्यतम् अवेदिष्यत । अवेदिष्यम्, अवेदिष्याव, अवेदिष्याम ।

एधि—सत्तार्थकाद् अस धातोर्लोटि लोट सिपि, 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्ह्यादेशे, शपि, तस्य लुकि, 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' धातोरेत्वे, श्नसोरल्लोप इत्यकारलोपे, असिद्धवदत्राभादिति नियमेन 'हुझल्भ्यो हेर्धि' इत्येतद्दृष्ट्या एत्वस्यासिद्धत्वात्-हेर्धित्वे तत्सिद्धि । हेस्तातङादेशपक्षे घ्वसोरित्येत्व न भवति, तातङादेशस्य पर

१—सार्वधातुक कित्, ङित् परे रहते श्न एवं अस् के अकार का लोप होता है । २—यकार या अच् पर मे हो तो उपसर्ग इण् से परे और प्रादुस् से परे अस् धातु के सकार को षकार होता है । ३–आर्धधातुक परे रहते 'अस्' धातु को 'भू' 'आदेश' होता है । ४–हि पर में हो तो घुसंज्ञक धातु एवं अस् धातु को एत्व होता है, और अभ्यास का लोप भी होता है ।

असाव । असाम । आसीत् । आस्ताम् । आसन् । स्यात् । स्याताम् । स्यु । भूयात् । अभूत् । अभविष्यत् ।

इण् गतौ । एति । इत ।

इणो यण् ६ । ४ । ८१ ॥ [1][इणो यण स्यात्] अजादौ प्रत्यये परे। यन्ति ।

अभ्यासस्याऽसवर्णे ६ । ४ । ७८ ॥ [2]अभ्यासस्य इवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि । इयाय ।

दीर्घ इण किति ७ । ४ । ६९ ॥ [3]इणोऽभ्यासस्य दीर्घ स्यात्किति लिटि । ईयतु । ईयु । इययिथ-इयेथ । एता । एष्यति । एतु । ऐत् । ऐताम् । आयन् । ईयात् ।

एतेर्लिङि ७।४।२४॥ [4]उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्व स्यादाधधातुके किति लिङि । निरियात् । [5]**उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्** । अभीयात् । अण किम् ? समेयात् ।

त्वेन बाधकत्वात्, 'श्नसोरल्लोप', इत्यकारलोपे 'स्तात्' इति ।

आसीदित्यत्र—'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इतीट बोध्य ।

इयाय—इत्यत्र इ शब्दस्य द्वित्वे, वार्णादाङ्ग बलीय इति न्यायेन सवणदीर्घं बाधित्वा परस्य (द्वितीयस्य) इकारस्य वद्धौ, पूर्वेकारस्य च—इयङादेशेन तत्सिद्धि ।

ईयतु—गत्यथक—इण्धातोर्लिटि, लिटस्तसि, तसोऽतुसि, 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे, तत 'इणो यण' इति परस्येकारस्य यणि 'दीघ इण किति' इति—अभ्यासेकारस्य दीर्घे, सस्य रुत्वे, विसर्गे च 'ईयतु' इति सिद्धम् ।

इण =गमन करना ।

१—अजादि प्रत्यय पर में हो तो इण् धातु को यण् होता है । २—असवर्ण (भिन्न) अच् पर में हो तो अभ्यास के इवर्ण—उवर्ण को इयङ्—उवङ् आदेश होते हैं । ३—कित् लिट् परे रहते इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ होता है। ४—आर्धधातुक कित् लिङ् पर मे हो तो उपसर्ग से परे जो इण् धातु सम्बन्धी अण् उसको ह्रस्व होता है । ५—दोनों के आश्रयण के कारण 'अन्तादिवच्च' नहीं प्रवृत्त होता।

(निष्कर्ष यह है कि सूत्र मे अण् के विधान में उपसर्ग तथा इण् धातु दोनों का आश्रय लिया गया है, अत अन्तादिवच्च नहीं लगेगा)।

इणो गा लुङि २ । ४ । ४५ ॥ [1][इणो गादेश स्याल्लुङि]। गातिस्थेति सिचो लुक् । अगात् । ऐष्यत् । **शीङ्** स्वप्ने ।

शीङ सार्वधातुके गुण ७ । ४ । २१ ॥ [2][शीडो गुण स्यात्साव-धातुके]। क्ङिति चेत्यस्यापवाद । शेते । शयाते ।

शीङो रुट् ७ । १ । ६ ॥ [3]शीङ परस्य झादेशस्याऽतो रुडागम स्यात् । शेरते । शेषे । शयाथे । शेध्वे । शये । शेवहे । शेमहे । शिश्ये । शिश्याते । शिश्यिरे । शयिता । शयिष्यते । शेताम् । शयाताम् । अशेत । अशयाताम् । अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयिषीष्ट । अशयिष्ट । अश-यिष्यत ।

इङ् अध्ययने । इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरत । अधीते । अधी-याते । अधीयते ।

गाङ लिटि २ । ४ । ४९ ॥ [4]इङो गाङ स्याल्लिटि । अधिजगे । अधि-जगाते । अधिजगिरे । अध्येता । अध्येष्यते । अधीताम् । अधीयाताम् ।

अगात्—इण् धातोर्लुङि, लुङस्तिपि अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ च्ले सिजिति सिचि, अनुबन्धलोपे, 'इणो गा लुङि' इति इणो गा आदेशे 'लुङ्लङ्–' इत्यडागमे, तकारलोपे गतिस्थेति सिचो लुकि 'अगात्' इति ।

शेरते—शयनार्थक शीङ् धातोर्लटि तस्य झ प्रत्यये कर्तरि शप' इति शपि, 'अदिप्रभृतिभ्य -' इति शपो लुकि, आत्मनेपदेष्वनत ' इति झस्याति, 'शीङो रुट' इति रुडागमेऽनुबन्धलोपे, टित आत्मनेपदाना टेरे' इत्येत्वे, सार्वधातुकार्धधातुकयो रिति गुणे 'शेरते' इति ।

अधिजगे—अध्ययनार्थक-अधिपूर्वक इङ्धातोर्लिटि, लिटस्तप्रत्यये, 'गाङ लिटि' इतीङो गाङादेशेऽनुबन्धलोपे, लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति गा' इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासत्वे, ह्रस्व ' इत्यचो ह्रस्वे, 'कुहोश्चु ' इति गकारस्य जकारे, 'लिटस्त-झयोरेशिरेच्' इति तस्यशादेशे, आतो लोप इटि च' इति गा' उत्तरवर्त्याकारस्य लोपे 'अधिजगे' इति ।

अधिजगिरे—अधि-उपपद इङ् धातोर्लिटि, तस्य झ प्रत्यये 'अधि इ झ'

१—लुङ् लकार मे इण् धातु को 'गा' आदेश होना है । शीङ्=शयन करना । २—सार्व धातुक परे रहते शीङ धातु को गुण होता है । ३—शीङ् धातु से परे झ के स्थान में जो अत् आदेश उसको रुट् का आगम होता है । इङ्=पढना । ४—लिट् लकार में इङ् धातु को गङ आदेश होना है ।

अधीयताम् । अधीष्व । अधीयाथाम् । अधीध्वम् । अध्ययै । अध्ययावहै । अध्ययामहै । अध्यैत । अध्यैयाताम् । अध्यैयत । अध्यैथा । अध्यैयाथाम् । अध्यैध्वम् । अध्यैयि । अध्यैवहि । अध्यैमहि । अधीयीत । अधीयीताम् । अधीयीरन् । अध्येषीष्ट ।

विभाषा लुङलृङो २ । ४ । ५० ॥ [1]इङो गाङ् वा स्यात् ।

गाङ कुटादिभ्योऽञ्णिन्डित् १ । २ । १ ॥ [2]गाङादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णित प्रत्यया ङित स्यु ।

घुमास्थागापाजहातिसा हलि ६ । ४ । ६६ ॥ [3]एषामात ईत्स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके । अध्यगीष्ट—अध्यैष्ट । अध्यगीष्यत—अध्यैष्यत ।

इति जाते, 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' इति झस्येरेचि अनुबन्धलोपे, 'गाङ लिटि' इतीङो गाङादेशेऽनुबन्धलोपे लिटि धातोरिति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये, कुहोश्चु' इति अभ्यासगकारस्य जकारे, 'आतो लोप —' इत्याकारलोपे 'अधिजगिरे इति ।

अध्ययै—अधिपूर्वक- इङधातोर्लोटि तत्स्थाने इटि 'अधि इ इट' इति स्थिते, 'टित आत्मनेपदाना टेरे' इति टेरेत्वे, 'एत ऐ' इति ऐ' आदेशे आडागमे वृद्धौ, शपि, शपो लुकि, इङ धातोर्गुणायादेशयोरुपसर्गस्येकारस्य यणि अध्यय इति ।

अध्यगीष्ट—अध्युपपद-इङधातोर्लुङि, तत्स्थाने त प्रत्यये अटयनुबन्धलोपे, 'विभाषा लुङलङो' इति इङस्थाने वैकल्पिकेन गाङादेशेऽनुबन्धलोपे, च्लौ, च्ले सिच्यनुबन्धलोपे अधि अ गा स् त' इति जाते 'गाङ कुटादिभ्यो-' इति सिचो ङित्वे 'घुमास्था- इत्यनेनाकारस्येकारे 'इको यणचि' इति यणि, 'आदेश प्रत्यययो' इति सस्य षत्वे, ष्टुना ष्टुरिति ष्टुत्वे च कृते 'अध्यगीष्ट' इति ।

इङ—अध्ययने लटि—अधीते, अधीयाते, अधीयते । अधीषे, अधीयाथे, अधीध्वे । अधीये, अधीवहे, अधीमहे । **लिटि**—अधिजगे, अधिजगाते, अधिजगिरे । अधिजगिषे, अधिजगाथे, अधिजगिध्वे । अधिजगे, अधिजगिवहे अधिजगिमहे । **लुटि**—अध्येता, अध्येतारौ अध्येतार । अध्येतासे, अध्येतासाथ, अध्येताध्वे । अध्येताहे, अध्येतास्वहे, अध्येतास्महे । **लृटि**—अध्येष्यते अध्येष्येते, अध्येष्यन्ते । अध्येष्यसे अध्येष्येथे, अध्येष्यध्वे । अध्येष्ये, अध्येष्यावहे, अध्येष्यामहे । **लोटि**—

१—लुङ वा लृङ् लकार पर मे हो तो इङ् धातु को गाङ् आदेश होता है, विकल्प से ।
२—गाङ आदेश और कुटादि धातुओं से परे ञित णित से भिन्न प्रत्यय ङिद्वत् होते हैं ।
३—हलादि कित् ङित् आर्धधातुक पर मे हो तो घुसंज्ञक धातु, मा, स्था, गा, पा, हा और
10 सो (षोऽन्तकर्मणि) धातुओं के आकार को ईकार होता है ।

दुह प्रपूरणे। दोग्धि। दुग्ध। दुहन्ति। धोक्षि। दुग्धे। दुहाते। दुहते। धुक्षे। दुहाथे। धुग्ध्वे। दुहे। दुह्वहे। दुह्महे। दुदोह—दुदुहे। दोग्धासि—दोग्धासे। धोक्ष्यति—धोक्ष्यते। दोग्धु-दुग्धात्। दुग्धाम्। दुहन्तु। दुग्धि-दुग्धात्। दुग्धम्। दुग्ध। दोहानि। दोहाव। दोहाम। दुग्धाम्। दुहाताम्। दुहताम्। धुक्ष्व। दुहाथाम्। धुग्ध्वम्। दोहै। दोहावहै। दोहामहै। अधोक। अदुग्धाम्। अदुहन्। अदोहम्। अदुग्ध। अदुहाताम्। अदुहत। अधुग्ध्वम्। दुह्यात्—दुहीत।

लिङ्सिचावात्मनेपदेषु १।२।११॥ [1]इक्समीपाद्धल परो झलादी लिङ् सिचौ कितौ स्तस्तङि। धुक्षीष्ट।

अधीताम् अधीयाताम्, अधीयताम्। अधीष्व अधीयाथाम् अधीध्वम्। अध्ययै, अध्ययावहै, अध्ययामहै। **लङि**—अध्यैत, अध्ययाताम्, अध्ययत। अध्यथा, अध्यैयाथाम् अध्यैध्वम्। अध्यैयि, अध्यवहि, अध्यैमहि। **विधि लि०**—अधीयीत, अधीयीताम्, अधीयीरन्। अधीयीथा, अधीयीथाम्, अधीयीध्वम्। अधीयीय, अधीयीवहि अधीयीमहि। **अशिर्लिङि**—अध्येषीष्ट अध्येषीयास्ताम्, अध्येषीरन्। अध्येषीष्ठा अध्येषीयास्थाम् अध्येषीढ्वम्। अध्येषीय अध्येषीवहि, अध्येषीमहि। **लुङि**—अध्यगीष्ट अध्यगीषाताम्, अध्यगीषत। अध्यगीष्ठा, अध्यगीषाथाम्, अध्यगीढ्वम्। अध्यगीषि, अध्यगीष्वहि, अध्यगीष्महि। **पक्षे**—अध्यैष्ट, अध्यैषाताम्, अध्यैषत। अध्यैष्ठा, अध्यैषाथाम् अध्यैढ्वम्। अध्यैषि, अध्यैष्वहि, अध्यैष्महि। **लृङि**—अध्यगीष्यत, अध्यगीष्येताम् अध्यगीष्यन्त। अध्यगीष्यथा, अध्यगीष्येथाम्, अध्यगीष्यध्वम्। अध्यगीष्ये, अध्यगीष्यावहि, अध्यगीष्यामहि। **पक्षे**—अध्यैष्यत अध्यैष्येताम्, अध्यैष्यन्त। अध्यैष्यथा, अध्यैष्येथाम्, अध्यैष्यध्वम्। अध्यैष्ये, अध्यैष्यावहि, अध्यैष्यामहि।

धुक्षीष्ट—प्रपूरणार्थक दुह् धातोर्लिङि तत्स्थाने 'त' प्रत्यये, 'लिङ सीयुट्' इति सीयुटि, अनुबन्धलोपे, 'सुट् तिथो' इति सुडागमेऽनुबन्धलोपे 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वो' इति भष्भावेन दकारस्य धकारे, 'धुह् सी-य स त' इति स्थिते 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे, 'दादेर्धातोर्घ' इति हस्य घत्वे, 'खरि च'

दुह=दुहना।

१—(आत्मनेपद) परे रहते इक् समीप हल् से परे झलादि लिङ् और सिच् कित्संज्ञक होते हैं।

शल इगुपधानिटः क्सः ३ । १ । ४५ ॥ [1]इगुपधो यः शलन्तस्तस्माद-निटश्च्लेः क्सादेशः स्यात् । अधुक्षत् ।

लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मने पदे दन्त्ये ७ । ३ । ७३ ॥ [2]एषां क्सस्य लुग्वा स्याद्दन्त्ये तङि । अदुग्ध—अधुक्षत ।

क्सस्याऽचि ७ । ३ । ७२ ॥ [3]अजादौ तङि क्सस्य लोपः स्यात् । अधुक्षाताम् । अधुक्षन्त । अदुग्धाः—अधुक्षथाः । अधुक्षाथाम् । अधुग्ध्वम्-अधुक्षध्वम् । अधुक्षि । अदुह्वहि-अधुक्षावहि । अदुह्महि-अधोक्ष्यत् । अधोक्ष्यत । एवं-**दिह** उपचये ।

लिह आस्वादने । लेढि । लीढः । लिहन्ति । लेक्षि । लीढे । लिहाते । लिहते । लिक्षे । लिहाथे । लीढ्वे । लिलेह-लिलिहे । लेढासि-लेढासे । लेक्ष्यति-लेक्ष्यते । लेढु—लीढात् । लीढाम् । लिहन्तु । लीढि । लेहानि । लीढाम् । अलेट—अलेड् । अलिक्षत् । अलीढ-अलिक्षत । अलेक्ष्यत् । अलेक्ष्यत ।

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ।

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३ । ४ । ८४ ॥ [4]ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युः ब्रुवश्चाऽऽहादेशः । आह । आहतुः । आहुः ।

आहस्थः ८ । २ । ३५ ॥ [5][आहस्थकारादेशः स्यात्–] झलि परे । चर्त्वम् । आत्थ । आहथुः ।

ब्रुव ईट् ७ । ३ । ९३ ॥ [6]ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात् । ब्रवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रूते । ब्रुवाते । ब्रुवते ।

इति चर्त्वेन घस्य कत्वे 'आदेशप्रत्यययोः' इति द्वयोः सकारयोः षत्वे, कषयोः संयोगे क्षकारे, 'ष्टुनाष्टुः' इति ष्टुत्वे 'धुक्षीढ्' इति ।

१–इगुपध (इक् हो उपधा में जिसके ऐसा) जो शलन्त धातु, उससे परे अनिट् च्लि को 'क्स' आदेश होता है । २–दन्त स्थानीय तङ् (आत्मनेपद) पर हो तो दुह् , दिह् , लिह् , गुह् धातुओं के क्स का लोप होता है विकल्प से । ३—अजादि आत्मनेपद पर हो तो क्स का लोप होता है । दिह=वृद्धि । लिह=चूसना । ब्रूञ् =स्पष्ट बोलना । ४—ब्रूञ् धातु से परे लट् के स्थान में जो तिबादि पांच तिप-तस् झि सिप्-थस्' हैं उनको णल्-अतुस् आदि पाँच आदेश विकल्प से होते हैं और ब्रू के स्थान मे आह् आदेश भी होता है । ५—झल् पर में हो तो आह के हकार को थकार होता है । ६—ब्रूञ् धातु से परे हलादि पितको ईट् का आगम होता है ।

ब्रुवो वचि २।४।५३॥ [1]आर्धधातुके। उवाच। ऊचतुः। ऊचुः। उवचिथ–उवक्थ। ऊचे। वक्ता। वक्तासि-वक्तासे। वक्ष्यति–वक्ष्यते। ब्रवीतु–ब्रूतात्। ब्रूताम्। ब्रुवन्तु। ब्रूहि। ब्रवाणि। ब्रूताम्। ब्रवै। अब्रवीत्। अब्रूत। ब्रूयात्। ब्रुवीत। उच्यात्। वक्षीष्ट।

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३।१।५२॥ [2]एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्।

वच उम् ७।४।२०॥ [3][वच उमागमः स्यात्–] अङि परे। अवोचत्–अवोचत। अवक्ष्यत्–अवक्ष्यत। [ग० सू०] [4]**चर्करीतञ्च**। चर्करीतमिति यङ्लुगन्तस्य सञ्ज्ञा, तददादौ बोध्यम्। **ऊर्णुञ्** अच्छादने।

ऊर्णोतेर्विभाषा ७।३।९०॥ [5][ऊर्णोतेः –] वा वृद्धिः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके। ऊर्णौति-ऊर्णोति। ऊर्णुतः। ऊर्णुवन्ति। ऊर्णुते। ऊर्णुवाते। उर्णुवते। [6]**ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्**।

न न्द्राः संयोगादयः ६।१।३॥ [7]अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति। नुशब्दस्य द्वित्वम्। ऊर्णुनाव। ऊर्णुनुवतुः। ऊर्णुनुवुः।

विभाषोर्णोः १।२।३॥ [8]इडादिप्रत्ययो वा ङित्स्यात्। ऊर्णुनुविथ। ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता–ऊर्णविता। ऊर्णुविष्यति–ऊर्णविष्यति। ऊर्णौतु–ऊर्णोतु। ऊर्णवानि। ऊर्णवै।

नुशब्दस्य द्वित्वमिति—नु शब्द एवात्र, णत्वेन 'णु' इति श्रूयते। तथाहि–नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु। सकारजश्शकारश्चेद्षाट्टवर्गस्तवर्गजः॥ अस्यायमर्थः–धात्ववयवझलि परे कुत्रचिदनुस्वारः कुत्रचित्पञ्चमवर्णो ङ् ञ् आदिः दृश्यते तौ द्वावपि नकारजौ। अनुस्वारो यथा स्रंसु, भ्रंसु, ध्वंसु इत्यादिषु। पञ्चमो यथा–शङ्क-अञ्च–लुण्ठ–मन्थ–तृम्फषु। चकारे परे यः शकारः 'ओव्रश्चू' इत्यादौ दृश्यते स श्चुत्वनिष्पन्नः सकारजः। रेफषकाराभ्यां परष्टवर्गस्तवर्गजः। यथा 'ऊर्णु' इत्यत्र रेफात्परः, 'ष्टु' 'ष्ठा' इत्यादौ षात्परः तवर्गजष्टवर्गः।

१—आर्धधातुक के विषय में ब्रूञ् धातु को वच् आदेश होता है। २—अस्, वच् और ख्या धातुओं से परे च्लि को अङ आदेश होता है। ३—अङ प्रत्यय पर में हो तो वच् को उम् का आगम होता है। ४—चर्करीत यह यङ्लुगन्त की सञ्ज्ञा है। उसको अदादि में जानना चाहिये। ऊर्णुञ्=आच्छादन, ढँकना। ५—हलादि पित् सार्वधातु पर हो तो ऊर्णुञ् धातु को वृद्धि विकल्प से होती है। ६—ऊर्णुञ् धातु में आम् प्रत्यय नहीं होता है। ७—अच् से परे जो संयोगादि न, द, र, उनको द्वित्व नहीं होता है। ८—ऊर्णुञ् धातु से परे इडादि प्रत्यय विकल्प से ङित् होते हैं।

गुणोऽपृक्ते ७।३।९१॥ [1]ऊर्णोतेर्गुणः स्यादपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके। वृद्ध्यपवादः। और्णोत्। और्णोः। ऊर्णुयात्। ऊर्णुयाः। ऊर्णुवीत। ऊर्णूयात्। ऊर्णुविषीष्ट।

ऊर्णोतेर्विभाषा ७।२।६॥ [2]इडादौ सिचि परस्मैपदे परे वा वृद्धिः स्यात्। पक्षे गुणः। और्णावीत्—और्णुवीत्—और्णवीत्। और्णाविष्टाम्—और्णुविष्टाम्—और्णविष्टाम्। और्णाविष्ट—और्णुविष्ट—और्णविष्ट। और्णुविष्यत्। और्णविष्यत्। और्णुविष्यत–और्णविष्यत।

॥ इत्यदादिप्रकरणम् ॥



अथ जुहोत्यादिप्रकरणम्

हु दानाऽदनयोः।

ऊर्णुविषीष्ट—अकारेत्संज्ञक ऊर्णु धातोराशिष्यर्थे लिङि, तत्स्थाने 'त' प्रत्यये, 'लिङः सीयुट्' इति सीयुडागमेऽनुबन्धलोपे, 'सुट् तिथोः' इति सुटि अनुबन्धलोपे 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इतीटि, 'विभाषोर्णोः' इति विकल्पेन ङित्वे, ङित्पक्षे ङित्वेन गुणाभावे, अचि श्नुधातु इत्युवङि, सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे च 'ऊर्णुविषीष्ट' इति। ङित्वाभावे 'सार्वधातुकार्ध–' इति गुणेऽवादेशे सकारयोः षत्वे च कृते 'ऊर्णविषीष्ट' इति।

और्णावीत–और्णवीत—अकारेत्संज्ञकाच्छादनार्थक 'ऊर्णु' धातोर्लुङि, तिपि, च्लि लुङि इति च्लौ, 'च्लेः सिचि' इति सिच् अनुबन्धलोपे, आडजादीनामित्याटि, आटश्चेति वृद्धौ कृतायाम् 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इटि तथा 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति ईटि, अनुबन्धलोपे, इतश्चेतीकारलोपे 'ऊर्णु इ स ई त्' इति दशायाम् 'इट ईटि' इति सलोपे ऊर्णोतेर्विभाषा' इति वैकल्पिके वृद्धिपक्षे यथाप्राप्तावादिकार्ये 'और्णावीत्' इति। 'विभाषोर्णोः' इति विकल्पेन ङित्वपक्षे उवङादेशे 'और्णुवीत्' इति। ङित्वाभावपक्षे गुणेऽवादेशे च कृते 'और्णवीत्' इति।

इति अदादिप्रकरणम्।



१—अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक पर हो तो ऊर्णुञ् धातु को गुण होता है। २—इडादि सिच् परस्मैपद पर हों तो ऊर्णुञ् धातु को वृद्धि विकल्प से होती है।

इत्यदादिप्रकरणम्।



हु=हवन तथा भोजन अर्थ में।

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २।४।७५॥ [1][एभ्यः परस्य–] शपः श्लुः स्यात्।

श्लौ ६।१।१०॥ [2]धातोर्द्वे स्तः। जुहोति। जुहुतः।

अदभ्यस्तात् ७।१।४॥ [3][अभ्यस्तात्परस्य–] झस्याऽत्स्यात्। हुश्नुवोरिति यण्। जुह्वति।

भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३।१।३९॥ [4]एभ्यो लिट्याम्वा स्यादामि श्लाविव कार्यञ्च। जुहवाञ्चकार–जुहाव। होता। होष्यति। जुहोतु–जुहुतात्। जुहुताम्। जुह्वतु। जुहुधि। जुहवानि। अजुहोत्। अजुहुताम्।

जुसि च ७।३।८३॥ [5]इगन्ताङ्गस्य गुणः स्यादजादौ जुसि। अजुहवुः। जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। अहोष्यत्। **ञिभी भये।** बिभेति।

जुहुधि—हु धातोर्लोटि, तस्य सिपि, अनुबन्धलोपे, कर्तरि शबिति शपि, जुहोत्यादिभ्यः श्लुरिति शपः श्लौ, 'श्लौ' इति धातोर्द्वित्वे कुहोश्चुरिति हस्य झकारे, 'अभ्यासे चर्च' इति जकारे, सेर्ह्यपिच्चेति सेर्ह्यादेशे, हुझल्भ्यो हेर्धिरिति हेर्धित्वे कृते 'जुहुधि' इति।

अजुहवुः—हुधातोर्लङि तत्स्थाने 'झि' प्रत्यये, कर्तरि शबिति शपि, जुहोत्यादिभ्यः श्लुरिति श्लौ, श्लौ' इति धातोर्द्वित्वे' कुहोश्चुरिति हस्य झकारे, 'अभ्यासे चर्च' इति चर्त्वेन जकारे, सिजभ्यस्तविदिभ्यश्चेति झेर्जुसि, जुसि चेति गुणे, एचोऽयवायावः इत्यवादेशे, सस्य रुत्वे विसर्गे च 'अजुहवुः' इति।

हुदानाऽदनयोः। लटि—जुहोति जुहुतः, जुह्वति। जुहोषि, जुहुथः, जुहुथ। जुहोमि, जुहुवः, जुहुमः। **लिटि**–जुहवाञ्चकार, जुहवाञ्चक्रतुः, जुहवाञ्चक्रुः। जुहवाञ्चकथ, जुहवाञ्चक्रथुः, जुहवाञ्चक्र। जुहवाञ्चकार–जुहवाञ्चकर, जुहवाञ्चकृव, जुहवाञ्चकृम। **पक्षे**–जुहाव, जुहुवतुः, जुहुवुः। जुहविथ—जुहोथ, जुहुवथुः, जुहुव। जुहाव–जुहव, जुहुविव, जुहुविम। **लुटि**–होता, होतारौ, होतारः। होतासि होतास्थः, होतास्थ। होतास्मि, होतास्वः, होतास्मः। **लृटि**–होष्यति, होष्यतः, होष्यन्ति। होष्यसि, होष्यथः, होष्यथ। होष्यामि, होष्यावः, होष्यामः। **लोटि**–जुहोतु जुहुतात् जुहुताम्, जुह्वतु। जुहुधि–जुहुतात्, जुहुतम्, जुहुत। जुहवानि,

---

१—जुहोत्यादि गण में पढ़े गये धातुओं से परे शप् का श्लु (लोप) होता है। २—श्लु के विषय में धातु को द्वित्व होता है। ३—अभ्यस्त संज्ञावाले धातु से परे झ के स्थान में अत् होता है। ४—लिट् लकार में भी, ह्री, भृ, हु–इन धातुओं से आम् होता है विकल्प से और आम् परे रहते धातु को श्लु की तरह कार्य होता है। ५—अजादि जुस् पर हो तो इगन्त अङ्ग को गुण होता है। ञिभी=भयभीत होना।

भियोऽन्यतरस्याम् ६ । ४ । ११५ ॥ [1]इकारो वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके । बिभित –बिभीत बिभ्यति । बिभयाञ्चकार—बिभाय । भेता । भेष्यति । बिभेतु । बिभितात्–बिभीतात् । अबिभेत् । बिभीयात्–बिभियात । भीयात । अभैषीत् । अभेष्यत ।

ह्री लज्जायाम् । जिह्रेति । जिह्रीत । जिह्रियति । जिह्रयाञ्चकार–जिह्राय । ह्रेता । ह्रेष्यति । जिह्रेतु । अजिह्रेत । जिह्रीयात । ह्रीयात । अह्रेषीत । अह्रेष्यत् ।

पॄ पालनपूरणयो ।

अर्तिपिपर्त्योश्च ७ । ४ । ७७ ॥ [2]अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेश स्यात् श्लौ । पिपर्ति ।

उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७ । १ । १०२ ॥ [3]अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ॠत् तदन्तस्याङ्गस्य उत् स्यात् ।

हलि च ८ । २ । ७७ ॥ [4]रेफवान्तस्य धातोरुपधाता इको दीर्घ स्या-

---

जुहवाव, जुहवाम । लङि–अजुहोत्, अजुहुताम्, अजुहवु । अजुहो, अजुहुतम्, अजुहुत । अजुहवम्, अजुहुव, अजुहुम । वि० लि०–जुहुयात्, जुहुयाताम्, जुहुयु । जुहुया, जुहुयातम्, जुहुयात । जुहुयाम्, जुहुयाव, जुहुयाम । आ० लि०–हूयात्, हूयास्ताम्, हूयासु । हूया, हूयास्तम् हूयास्त । हूयासम्, हूयास्व, हूयास्म । लुङि–अहौषीत्, अहौष्टाम्, अहौषु । अहौषी, अहौष्टम्, अहौष्ट । अहौषम्, अहौष्व, अहौष्म । लृङि–अहोष्यत्, अहोष्यताम्, अहोष्यन् । अहोष्य, अहोष्यतम्, अहोष्यत । अहोष्यम्, अहोष्याव, अहोष्याम ।

बिभीतात–आदिर्ञिटुडव इति 'ञि' इत्सञ्ज्ञक भयार्थक भी धातोर्लोटि तत्स्थाने तिपि शपि 'जुहोत्यादिभ्य' श्लौ, इति 'श्लौ' इति धातोर्द्वित्वे अभ्यासाधिकार्ये, भस्य च बकारे, 'भियोऽन्यतरस्याम्' इति वैकल्पिकह्रस्वोकारे 'एरु' इति—इकारस्योकारे, 'तुह्योस्तातङ–' इति 'तु' इत्यस्य 'तातङ्' आदेशे, अनुबन्धलोपे, 'बिभितात्' इति । इत्वाभावे 'बिभीतात् इति ।

१—हलादि कित्–ङित् सार्वधातुक परे रहते 'भी' धातु को इकार अन्तादेश विकल्प से होता है । ह्री=लज्जा । पॄ=रक्षा तथा पूर्ति । २—श्लु के विषय में 'ऋ' और 'पॄ' धातु के अभ्यास को इकार अन्तादेश होता है । ३—अङ्ग का अवयव ओष्ठस्थानिक वर्ण पूर्वमें हो, ऐसे ॠकारान्त अङ्ग को उकार अन्तादेश होता है । ४—हल् पर हो तो रेफान्त और वान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ होता है ।

ङ्खलि पिपूत । पिपुरति । पपार ।

शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ७।४।१२॥ [1]एषा लिटि ह्रस्वो वा स्यात् । पप्रतु ।

ऋच्छत्यॄताम् ७ । ४ । ११ ॥ [2]तौदादिकऋच्छेऋधातोॠता च गुण स्याल्लिटि । पपरतु । पपरु ।

वॄतो वा ७ । २ । ३८ ॥ [3]वृङवृञभ्यामॄदन्ताच्चेतो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि । परीता-परिता । परीष्यति—परिष्यति । पिपतु । अपिप । अपिपूर्ताम् । अपिपरु । पिपूर्यात् । पूर्यात् । अपारीत् ।

सिचि च परस्मैपदेषु ७ । २ । ४० ॥ [4]अत्रेटो न दीघ । अपारिष्टाम् । अपरीष्यत्-अपरिष्यत् । **ओहाक** । त्यागे । जहाति ।

जहातेश्च ६ । ४ । ११६ ॥ [5]इत्स्यात्वाद्वा क्ङिति सावधातुके । जहित ।

ई हल्यघो ६ । ४ । ११३ ॥ [6]श्नाभ्यस्तयोरात ईत् स्यात् सावधातुके क्ङिति हलि न तु घो । जहीत ।

पिपूत—पॄधातोलटि, तस्य स्थाने तसि शपि, जुहोत्यादिभ्य श्लुरिति श्लौ, श्लाविति धातोर्द्वित्वे पूर्वाभ्यासत्वे, 'उरत्' इति ऋवणस्यात्वे रपरे, हलादि शेष इति हलो लोपे, अर्तिपिपर्त्योश्चेति अभ्यासस्येकारान्तादेशे 'उदोष्ठ्यपूवस्य इत्युकारे रपरे च कृते, हलि चेति सूत्रेण दीर्घे, सस्य रुत्वे विसर्गे च पिपूत इति ।

पॄ पालनपूरणयो—(**लटि**) पिपर्ति पिपूत , पिपुरति । पिपर्षि, पिपूथ पिपूथ । पिपर्मि, पिपूव , पिपूम (**लिटि परे वैकल्पिकह्रस्वविधानाद् ह्रस्वे यण् क्रियते** । पक्षे च ऋच्छत्यॄतामिति गुणो विधीयते तेन पप्रतु—पपरतु इत्यादि सिद्धयति) । **लिटि**—पपार, पप्रतु पपरतु , पप्रु पपरु । पपरिथ, पप्रथु पपरथु , पप्र पपर । पपार-पपर, पप्रिव पपरिव, पप्रिम पपरिम । लुटि लटि च वॄतो वेति वैकल्पिको दीर्घो भवति तेन परिता परीता, परिष्यति—परीष्यति इति । एवरूपेण सवपुरुषेषु दीघ ।

१—लिट् लकार मे 'शॄ , दॄ प धातुओं को हस्व होता है, विकल्प से । २—लिट् लकार में तौदादिक 'ऋच्छ्' और ऋकारान्त धातुओं को गुण होता है । ३—लिट् से भिन्न लकार में वृङ् , वृञ तथा ॠदन्त धातु से परे इट् को दीर्घ होता है विकल्प से । ४—परस्मैपद सम्बन्धी सिच् पर हो तो इट् को दीर्घ नहीं होता है । ओहाक छोडना । ५—हलादि कित् ङित्-सावधातुक पर हो तो हा धातु को इकार अन्तादेश होता है विकल्प से । ६—हलादि कित् ङित् सावधातुक पर हो तो श्ना-प्रत्यय और अभ्यस्त संज्ञक धातु के आकार के स्थान में ईकार होता है, घुसंज्ञक धातु को छोडकर ।

श्नाभ्यस्तयोरातः ६ । ४ । ११२ ॥ [1]अनयोरातो लोपः स्यात् क्ङिति सार्वधातुके । जहति । जहौ । हाता । हास्यति । जहातु-जहितात्-जहीतात् ।

आ च हौ ६ । ४ । ११७ ॥ [2]जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ । जहाहि-जहिहि-जहीहि । अजहात् । अजहुः ।

लोपो यि ६ । ४ । ११८ ॥ [3]जहातेरालोपः स्याद्यादौ सार्वधातुके । जह्यात् । एर्लिङि । हेयात् । अहासीत् । अहास्यत् । **माङ्** माने शब्दे च ।

भृञामित् ७ । ४ । ७६ ॥ [4]भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ । मिमीते । मिमाते । मिमते । ममे । माता । मास्यते । मिमीताम् । अमिमीत । मिमीत । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत । **ओहाङ्** गतौ । जिहीते । जिहाते । जिहते । जहे । हाता । हास्यते । जिहीताम् । अजिहीत । जिहीत । हासीष्ट । अहास्त । अहास्यत । **डुभृञ्** धारणपोषणयोः । बिभर्ति । बिभृतः । बिभ्रति । बिभृते । बिभ्राते । बिभ्रते । बिभराञ्चकार-बभार । बभर्थ । बभृव । बिभराञ्चक्रे । बभ्रे । भर्तासि-भर्तासे । भरिष्यति-

---

जहाहि—ओकार-ककारेत्संज्ञक हा धातोर्लोटि, तस्य सिपि कर्तरि शबिति शपि, सेर्ह्यपिच्चेति सेर्हित्वे, जुहोत्यादिभ्यः श्लुरिति शपः श्लौ, श्लाविति धातोः ('हा' इत्यस्य) द्वित्वे, अभ्यासत्वे, ह्रस्वः इति ह्रस्वे, कुहोश्चुरिति हस्य झत्वे, 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जकारे, 'आ च हौ' इति सूत्रेणाऽऽकारे सति 'जहाहि' इति । चकारादिदीतौ भवतः इति 'जहिहि-जहीहि' इति रूपद्वयं भवति । अतएव 'जहाहि-जहिहि जहीहि राममार्याम्' इति काव्यप्रयोगः ।

बिभर्ति—डुकारञकारेत्संज्ञक भृधातोर्लटि, तस्य स्थाने तिपि, कर्तरि शपि, जुहोत्यादिभ्यः श्लुरिति शपः श्लौ, 'श्लौ' इति धातोर्द्वित्वे, अभ्यासत्वे, 'भृञामित्' इत्यभ्यास-ऋकारस्येकारे, 'भि भृ ति' इति स्थिते 'अभ्यासे चर्च' इति-अभ्यास भकारस्य बकारे, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणे रपरे च कृते 'बिभर्ति' इति ।

१—कित् या ङित् सार्वधातुक पर हो तो 'श्ना'निष्ठ एवं अभ्यस्त संज्ञक धातु के आकार का लोप होता है । २—हि पर हो तो हा धातु को आकार और (चकारात्) इकार एवं ईकार अन्त आदेश होते हैं । ३—यकारादि सार्वधातुक पर हो तो हा धातु के आकार का लोप होता है । माङ्—किसी वस्तु का माप करना शब्द करना । ४—श्लु के विषय मे भृञ्, माङ् ओहाङ्—इन तीनों धातुओं के अभ्यास को इकार अन्तादेश होता है । ओहाङ्=जाना । डुभृञ्=धारण तथा पोषण करना ।

भरिष्यते । बिभर्तु । बिभराणि । बिभताम् । अबिभ । अबिभताम् । अबिभरु । अबिभृत । बिभयात् । बिभ्रीत । भ्रियात् । भृषीष्ट । अभार्षीत् । अभृत । अभरिष्यत् । अभरिष्यत । **डुदाञ्** दाने । ददाति । दत्त । ददति । दत्ते । ददाते । ददते । ददौ । ददे । दातासि । दातासे । दास्यति । दास्यते । ददातु ।

दाधा ऽघ्वदाप् १ । १ । २० ॥ [1]दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसञ्ज्ञका स्युर्दाप्दैपौ विना । घ्वसोरित्येत्त्वम् । देहि । दत्तम् । अददात् । अदत्त । दद्यात् । ददीत । देयात् । दासीष्ट । अदात् । अदाताम् । अदु ।

स्थाघ्वोरिच्च १ । २ । १७ ॥ [2]अनयोरिदन्तादेश स्यात् सिच्च कित्स्यादात्मनेपदे । अदित ।अदास्यत्। अदास्यत। **डुधाञ्** धारणपोषणयो । दधाति ।

दधस्तथोश्च८ । २ । ३८ ॥ [3]द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धातोबशो भष् स्यात्तथो स्ध्वोश्च परत । धत्त । दधति । दधासि । धत्थ । धत्थ । धत्ते । दधाते । दधते । धत्से । धद्ध्वे । **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** । धेहि । अद-

---

अबिभ—भृधातोलङि, तस्य सिपि, अनुबन्धलोपे, शपि, तस्य श्लौ, तथा श्लाविति द्वित्वे, लुङ्लङ्-इत्यडागमेऽनुबन्धलोपे, द्वित्वाभ्यासादिकार्ये, 'अभ्यासे चच इति भस्य बत्वे, 'भृञामित्' इत्यभ्यासऋकारस्येकारे, गुणे रपरे 'इतश्च' इति तिपनिष्ठेकारस्य लोपे, हलङ्यादिना सोर्लोपे, रेफस्य विसर्गे च कृते 'प्रबिभ ' इति । अबिभरुरित्यत्र सव पूव प्रयोगवत्केवल सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' इति झेजुसि, जकारस्य लोपे, सस्य रुत्वविसर्गौ चेति विशेष ।

देहि—दानाथक दा धातोर्लोटि तत्स्थाने सिपि, कतरि शबिति शपि, जुहोत्यादिभ्य श्लुरिति शप श्लौ, 'दाधाघ्वदाप' इति धातोघुसञ्ज्ञाया 'श्लौ' इति धातोर्द्वित्वे, अभ्यासादिकार्ये, सेह्यपिच्चेति सेर्ह्यादेशे, 'द दा हि' इति स्थिते, घुसञ्ज्ञात्वेन धातोराकारस्य 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' इति एत्वेऽभ्यासलोपे च कृते 'देहि' इति ।

डुदाञ्=देना ।

१—दाप और दैप् धातु को छोड़कर दा—रूप एवं धा—रूप धातुओं की घु—संज्ञा होती है। २—आत्मपदेन मे स्था—धातु और घु—संज्ञक धातु को इकार अन्तादेश होता है एवं सिच् भी कित् संज्ञक हो जाता है। डुधाञ् =धारण तथा पोषण रक्षण करना। ३—त या थ एवं स या ध्व पर हों तो द्विरुक्त (द्वित्व किये गये) झषन्त धातु के बश् को भष् होता है। णिजिर् =पवित्र करना, पोषण—रक्षण करना ।

धात् । अधत्त । दध्यात् । दधीत । धेयात् । धासीष्ट । अधात् । अधित । अधास्यत् । अधास्यत । **णिजिर्** शौचपोषणयो । ॐ[1] **इर इत्संज्ञा वाच्या ।**

णिजां त्रयाणां गुण श्लौ ७ । ४ । ७५ ॥ [2]णिजविज्विषामभ्यासस्य गुण स्यात् श्लौ । नेनेक्ति । नेनिक्त । नेनिजति । नेनिक्ते । निनेज । मिनिजे । नेक्ता । नेक्ष्यति । नेक्ष्यते । नेनेक्तु । नेनिग्ध ।

नाऽभ्यस्तस्याऽचि पिति सार्वधातुके ७ । ३ । ८७ ॥ [3][अभ्यस्तस्याचि पिति सावधातुके] उदूपधगुणो न स्यात् । नेनिजानि । नेनिक्ताम् । अनेनेक् । अनेनिक्ताम् । अनेनिजु । अनेनिजम् । अनेनिक्त । नेनिज्यात् । नैनिजीत । निज्यात् । निक्षीष्ट ।

इरितो वा ३ । १ । ५७ ॥ [4]इरितो धातोश्च्छेरड वा स्यात्परस्मैपदेषु । अनिजत् । अनैक्षीत् । अनिक्त । अनेक्ष्यत् । अनेक्ष्यत ।

॥ इति जुहोत्यादय ॥



अथ दिवादिप्रकरणम्

[5]**दिवु** क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ।

दिवादिभ्य श्यन् ३ । १ । ६९ ॥ [6][एभ्य श्यन् स्यात्कर्त्रर्थे सावधातुके परे] । शपोऽपवाद । हलि चेति दीघ । दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् । एव **षिवु** तन्तुसन्ताने । **नृती** गात्रविक्षेपे । नृत्यति । ननत । नर्तिता ।

१—इर् की 'इत्संज्ञा' कहनी चाहिये । २—श्लु के विषय में णिज् विज् एवं विष् धातुओं के अभ्यास को गुण होता है । ३—अजादि पित्सार्वधातुक पर हो तो, अभ्यस्तसंज्ञक धातु को लघूपध गुण नहीं होता है । ४—परस्मैपद में इरित् (इर् इत्संज्ञक) धातु से परे च्लि को अङ् विकल्प से होता है ।

॥ इति जुहोत्यादिप्रकरणम् ॥



५—दिवु=खेलना, जय की इच्छा, व्यवहार करना, चमकना, स्तुति करना, प्रसन्न होना मदमत्त होना, शयन करना, इच्छा करना, गमन करना (गति शब्द से ज्ञान, गमन प्राप्ति अर्थ सभी जगह जानना, प्रकरणानुसार अर्थ सङ्गत करना चाहिये) । ६—कर्त्रर्थक सार्वधातुक पर हो तो दिवादि-गण पठित धातुओं से श्यन् प्रत्यय होता है । यह शप् का बाधक है । षिवु=सिलाई करना, सूतों का विस्तार प्रसार करना । नृती=नाचना ।

सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृत ७ । २ । ५७ ॥ [1]एभ्य परस्य सिज्भिन्नस्य सादेराधधातुकस्येड वा स्यात् । नर्तिष्यति-नर्त्स्यति । नत्यतु । अनृत्यत । नृत्येत । नृत्यात । अनर्तीत् । अनर्तिष्यत—अनर्त्स्यत् । **त्रसी** उद्वेगे । वा भ्राशेति श्यन्वा । त्रस्यति-त्रसति । तत्रास ।

वा जॄभ्रमुत्रसाम् ६ । ४ । १२४ ॥ [2]एषा किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा स्त । त्रेसतु -तत्रसतु । त्रेसिथ-तत्रसिथ । त्रसिता । **शो** तनूकरणे ।

ओत श्यनि ७ । ३ । ६१ ॥ लोप स्यात् श्यनि । श्यति । श्यत । श्यन्ति । शशौ । शशतु । शाता । शास्यति ।

विभाषा घ्राधेट्शाच्छास २ । ४ । ७८ ॥ [4]एभ्यस्सिचो लुग्वा स्यात्, परस्मैपदे परे । अशात् । अशाताम् । अशु । इटसकौ । अशासीत् । अशासिष्टाम् । **छो** छेदने । छ्यति । **षो**ऽन्तकमणि । स्यति । ससौ [सेयात्, असात्] । असासीत । **दो अवखण्डने** । द्यति । ददौ । देयात । अदात । **व्यध** ताडने ।

ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीना ङिति च ६ । १ । १६ ॥ [5]एषा सम्प्रसारण स्यात्किति डिति च । विध्यति । विव्याध । विविधतु । विविधु । विव्यधिथ विव्यद्ध । व्यद्धा । व्यत्स्यति । विध्येत । विध्यात । अव्यात्सीत । **पुष** पुष्टौ । पुष्यति । पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टा । पोक्ष्यति । पुषादीत्यङ् । अपुषत् । **शुष** शोषणे । शुष्यति । शुशोष । अशुषत । **णश** अदशने । नश्यति । ननाश । नेशतु ।

१—कृत, चृत, छृद, तृद नृत—धातुओं से परे सिच् भिन्न सादि आधधातुकों को इट का आगम होता है विकल्प से । त्रसी=उद्विग्न होना, घबडाना, डरना । २—कित् लिट् एव सेट् थल् परे रहते जॄ, भ्रमु त्रस् धातुओं को एत्व तथा अभ्यास का लोप होता है विकल्प से । शो=पतला करना, तीक्ष्ण करना । ३—श्यन् प्रत्यय पर हो तो ओकार का लोप होता है । ४—परस्मैपद परे रहते घ्रा, धेट्, शो, छो षो-धातुओंसे परे सिच का लोप होता है विकल्प से । छो-काटना । षो=नाश करना । दो=काटना । व्यध=मारना, दुःख देना । ५—कित्, डित् पर हो तो ग्रह्, ज्या वेञ्, व्यध्, वश व्यच्, व्रश्च्, प्रच्छ, भ्रस्ज्-धातुओं को सम्प्रसारण होता है । पुष=मजबूत करना । शुष=सूखना-सुखाना । णश=नष्ट होना, नहीं दिखायी देना।

रधादिभ्यश्च ७ । २ । ४५ ॥ [1][रध् , नश्, तृप् , दृप् , द्रुह् , मुह , ष्णुह , ष्णिह्] एभ्यो वलाद्याध धातुकस्य वेट् । नेशिथ ।

मस्जिनशोर्झलि ७ । १ । ६० ॥ [2]नुम् स्यात । ननष्ठ । नेशिव-नेश्व । नेशिम-नेश्म । नशिता नष्टा । नशिष्यति–नङ्क्ष्यति । नश्यतु । अनश्यत् । नश्येत् । नश्यात् । अनशत् । **षूङ्** प्राणिप्रसवे । सूयते । सुषुवे । क्रादिनियमादिट । सुषुविषे । सुषुविवहे । सुषुविमहे । सविता सोता । **दूङ्** परितापे । दूयते । **दीङ्** क्षये । दीयते ।

दीङो युडचि क्ङिति ६ । ४ । ६३ ॥ [3]दीङ परस्याऽजादे क्ङित आर्धधातुकस्य युट् स्यात् । [4]**ॐवुग्युटावुवङ्यणो सिद्धौ वक्तव्यौ ।** दिदीये ।

मीनातिमिनोतिदीङा ल्यपि च ६ । १ । ५० ॥ [5]एषामात्व स्याल्ल्यपि, चादशित्येज्निमित्ते । दाता । दास्यति । [6]**ॐस्थाघ्वोरिस्त्वे दीङ प्रतिषेध ।** अदास्त । **डीङ्** विहायसा गतौ । डीयते । डिड्ये । डयिता । **पीङ्** पाने । पीयते । पेता । अपेष्ट । **माङ्** माने । मायते । ममे । **जनी** प्रादुर्भावे ।

'नेशिथ ननष्ठ'—अत्र—इट्पक्षे 'नश् नश' इति द्वित्वे कृते, रधादिभ्यश्चेति वैकल्पिके इटि कृते एत्वाभ्यासलोपौ भवत इति 'नेशिथ' इत्यस्य सिद्धि । इडभावे नत्वाभ्यासलोपौ । 'मस्जिनशोर्झलि' इति नुमि, तस्यानुस्वारे, व्रश्चेत्यादिना शस्य षत्वेन 'ननष्ठ' इत्यस्य सिद्धि ।

दिदीये—दीङ् क्षये धातोर्लिटि आत्मनेपदत्वात्तप्रत्यये, धातोर्द्वित्वेऽभ्यासादि कार्ये, लिटस्तझयोरिति एत्वे कृते, 'दि दी ए' इति स्थिते, 'दीङो युडचि' इति युटि, युटोऽसिद्धत्वेन 'एरनेकाच–' इति यणि प्राप्ते—आह (वुग्युटावुवङ्यणो सिद्धौ वक्तव्यौ) इति युट सिद्धत्वेनाचपरत्वाभावान्न यण् 'दिदीये' इति ।

१–रधादि (रध् , नश् , तृप , दृप् द्रुह, मुह् , ष्णुह् , ष्णिह्) धातुओं से परे वलादि आर्धधातुक को इट् होता है विकल्प से । २—झल् पर हो तो मस्ज् तथा नश् धातु को नुम् का आगम होता है । षूङ्=पैदा करना, जमाना । दूङ्=दुःखी होना । दीङ्=नाश होना, कम होना । ३—दीङ् धातु से परे अजादि कित्, ङित् आर्धधातुक को युट् का आगम होता है । ४–उवङ् या यण् करना हो तो वुक् तथा युक् सिद्ध ही कहना चाहिये (रहता है) । ५–ल्यप् प्रत्यय पर हो तो मीञ्, मिञ्, एवं दीङ् धातुओं को आत्व होता है, चकारात्–शित् से भिन्न एज्–निमित्तक प्रत्यय परे रहते भी आत्व होता है । ६—'स्थाघ्वोरिच्च' सूत्र से प्राप्त इत्व दीङ् धातु को नहीं होता । डीङ्=आकाश मार्ग से जाना । पीङ्=पीना । माङ्=नापना । जनी=प्रकट होना, उत्पन्न होना ।

ज्ञाजनोर्जा ७ । ३ । ७९ ॥ [1]अनयोजदिश स्याच्छिति । जायते । जज्ञे । जनिता । जनिष्यते ।

दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३ । १ । ६१ ॥ [2]एभ्यश्च्लेश्चिण वा स्यादेकवचने तशब्दे परे ।

चिणो लुक् ६ । ४ । १०४ ॥ [3]चिण परस्य [तशब्दस्य] लुक् स्यात ।

जनिवध्योश्च ७ । ३ । ३५ ॥ [4]अनयोरुपधाया वृद्धिन स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । अजनि–अजनिष्ट । **दीपी** दीप्तौ । दीप्यते । दिदीपे । अदीपि–अदीपिष्ट । **पद** गतौ । पद्यते । पदे । पत्ता । पत्सीष्ट ।

चिण ते पद ३ । १ । ६० ।[5] पदश्च्लेश्चिण् स्यात्तशब्दे परे । अपादि । अपत्साताम् । अपत्सत । **विद** सत्तायाम् । विद्यते । वेत्ता ।

जायते—जन् धातोर्लटि, तत्स्थाने त प्रत्यये, कर्तरि शबपवादश्यनो दिवादिभ्य' श्यनिति श्यनि, अनुबन्धलोपे, 'ज्ञाजनोर्जा' इति 'जा' आदेशे, टित आत्मनेपदानाम्–इत्येत्वे 'जायते' इति ।

जज्ञे—जन् धातोर्लिटि त–प्रत्यये, धातोर्द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये, लिटस्तझयोरित्येत्वे, 'ज जन् ए' इति स्थिते, गमहनजनखन–०' इत्युपधालोपे कृते 'स्तो श्चुना श्चु' इति श्चुत्वे 'जज्ञे' इति ।

अजनि—जन् धातोर्लुङि, तस्य तप्रत्यये, 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'दीपजन–०' इति च्लेश्चिणि, अनुबन्धलोपे, 'लुङ–' इत्यडागमेऽनुबन्धलोपे 'अजन् इ त' इति स्थिते, 'चिणो लुक' इति तलोपे, 'अत उपधाया' इति प्राप्तायां वृद्धया 'जनिवध्योश्च' इति निषेधे 'अजनि' इति ।

अपादि—पद् धातोर्लुङि त–प्रत्यये, 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'लुङ्लङ्–०' इत्यडागमेऽनुबन्धलोपे, च्लौ, सिचमप्रबाध्य 'चिण् ते पद' इति च्लेश्चिणि, अनुबन्धलोपे, 'चिणो लुकि' इति तलोपे, 'अत उपधाया' इति वृद्धौ कृतायां 'अपादि' इति ।

१—ञित् पर हो तो ज्ञा और जन् धातु को 'जा' आदेश होता है । २—एकवचन 'त' शब्द पर हो तो दीप, जन, बुध, पूरी, तायि, प्यायि धातुओं से परे च्लि को चिण् होना है विकल्प से । ३—चिण् से परे जो 'त' उसका लोप होता है । ४—चिण् , ञित, या कृत् प्रत्यय पर हो तो जन् और वध् धातु के उपधा रूप अच् को वृद्धि नहीं होती है । दीपी=प्रकाश होना । पद=जाना । ५—'त' शब्द पर हो तो पद धातु से परे च्लि को चिण् होता

अवित्त । **बुध** अवगमने । बुध्यते । बोद्धा । भोत्स्यते । भुत्सीष्ट । अबोधि-अबुद्ध । अभुत्साताम् । **युध** सम्प्रहारे । युयुधे । योद्धा । अयुद्ध । **सृज** विसर्गे । सृज्यते । ससृजे । ससृजिषे ।

सृजिदृशोर्झल्यमकिति ६ । १ । ५८ ॥ [1]अनयोरमागम स्याज्झलादाव किति । स्रष्टा । स्रक्ष्यते । सृक्षीष्ट । असृष्ट । असृक्षाताम् । **मृष** तितिक्षायाम् । मष्यति—मृष्यते । ममर्ष । ममर्षिथ । ममृषिषे । मर्षितासि । मर्षितासे । मर्षिष्यति—मर्षिष्यते ।

णह बन्धने । नह्यति । नह्यते । ननाह । नेहिथ-ननद्ध । नेहे । नद्धा । नत्स्यति । अनात्सीत—अनद्ध ।

॥ इति दिवादिप्रकरणम ॥

— ० —

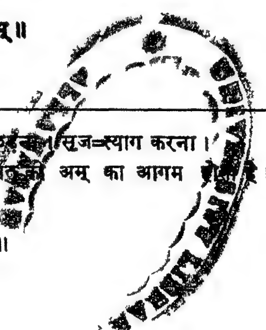
अवित्त—विद् धातोर्लुङ्, तस्य तप्रत्यये, च्लौ, च्ले सिजादेशेऽनुबन्धलोपे, अडागमेऽनुब धलोपे, लिङसिचाविति सिच कित्वेन क्ङिति चेति गुणाभावे, 'झलो झलि' इति सलोपे, खरि चेति चर्त्वे, दस्य तकारे 'अवित्त' इति ।

अबोधि—बुध धातोर्लुङि, तस्य तप्रत्यये, च्लि लुङीति च्लौ, अडागमे, अनुबन्धलोपे, 'दीपजन–' इति च्लेश्चिणि, अनुबन्धलोपे, 'चिणो लुक' इति 'त' प्रत्ययस्य लोपे, पुगन्तलघूपधस्येति गुणे 'अबोधि' इति ।

सृज विसर्गे—यद्यप्यत्र धात्वर्थो विसगस्त्यागरूपो निर्दिष्टस्तथापि उद्–विपूवक सृजधातोरेव सोऽर्थोऽत एवाहमुत्सृजे 'विसृजे' इति प्रयोग । केवलस्य तु निर्माणमथ ।

॥ इति दिवादिप्रकरणम् ॥

— ०ः—



है । विद=होना रहना । बुध=जानकारी होना । युध=लड़ना । सृज=त्याग करना ।

१—कित् भिन्न झलादि पर हो तो सृज्, दृश् धातु को अम् का आगम होता है । मृष–सहना, बरदाश्त करना । णह–बाधना ।

॥ इति दिवादिप्रकरणम् ॥

अथ स्वादिप्रकरणम्

षुञ् अभिषवे।

स्वादिभ्य श्नु ३।१।७३॥ [1][स्वादिभ्य श्नु स्यात्कत्रर्थे सावधातुके परे]। शपोऽपवाद। सुनोति। सुनुत। हुश्नुवोरिति यण्। सुन्वन्ति। सुन्व–सुनुव। सुनुते। सुन्वाते। सुन्वते। सुन्वहे–सुनुवहे। सुषाव–सुषुवे। सोता। सुनु। सुनवानि। सुनवै। सुनुयात। सूयात्।

स्तुसुधूञ्भ्य परस्मैपदेषु ७।२।७२॥ [2]एभ्यस्सिच इट स्यात्परस्मैपदेषु। असावीत्। असोष्ट। **चिञ्** चयने। चिनोति। चिनुते।

विभाषा चे ७।३।५८॥ [3]अभ्यासात्परस्य कुत्व वा स्यात्सनि लिटि च। चिकाय—चिचाय। चिक्ये–चिच्ये। अचैषीत। अचेष्ट।

स्तृञ् आच्छादने। स्तृणोति। स्तृणुते।

शपूर्वा खय ७।४।६१॥ [4]अभ्यासस्य शपूर्वा खय शिष्यन्तेऽन्ये हलो लुप्यन्ते। तस्तार। तस्तरतु। तस्तरे। गुणोर्तीति गुण। स्तर्यात्।

ऋतश्च सयोगादे ७।२।४३॥ [5]ऋदन्तात्सयोगादे परयोर्लिङ्सिचोरिड वा स्यात्तडि। स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट। अस्तरिष्ट–अस्तृत। **धूञ्** कम्पने। धूनोति। धूनुते। दुधाव। स्वरतीति वेट। दुधविथ-दुधोथ।

श्र्युक किति ७।२।११॥ [6]श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न स्यात। परमपि स्वरत्यादिविकल्प बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भ-

---

सुनुव –सुन्व —अत्र 'लोपश्चास्यान्यतरस्याम् ०' इति उकारलोपो वैकल्पिक। **चिञ** चयने। **लटि**—चिनोति चिनुते, इत्यादि। विभाषा चेरिति कुत्वस्य विकल्पेन **लिटि** चिचाय-चिकाय, चिच्ये चिक्ये इति।

तस्तरतुरित्यत्र ऋतश्च सयोगादेरिति गुण। **पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसाम**

षुञ्=स्नान करना, सोमलता को कूटना, मदिरा बनाना।

१—कर्त्रथक सावधातुक पर हो तो स्वादिगण पठित धातुओ से 'श्नु' प्रत्यय होता है। २—परस्मैपद मे स्तु, सु, धूञ्–धातुओं से परे सिच को इट् का आगम होता है। चिञ्=एकत्र करना। ३—सन् एवं लिट् पर हो तो अभ्यास से परे चिञ् धातु को कुत्व विकल्प से होता है। स्तृञ्=ढाँकना। ४—अभ्यास के शर्–पूवक खयों का शेष होता है, अन्य हल् लुप्त हो जाते हैं। ५—तङ (आत्मनेपद) परे रहते ऋदन्त संयोगादि धातु से परे लिङ् और सिच् को इट् का आगम होता है। धूञ्=कम्पन। ६—गित्

सामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते, क्रादिनियमान्नित्यमिट । दुधुविव । दुधुवे । अधावीत । अधविष्ट-अधोष्ट । अधविष्यत्—अधोष्यत । अधविष्यताम्—अधोष्यताम् । अधविष्यत-अधोष्यत ।

॥ इति स्वादिप्रकरणम् ॥



अथ तुदादिप्रकरणम्

तुद व्यथने ।

तुदादिभ्य श ३ । १ । ७७ ॥ [1][तुदादिभ्य श स्यात्कत्रर्थे सार्वधातुके परे] शपोऽपवाद । तुदति । तुदते । तुतोद । तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । अतौत्सीत । अतुत्त । **णुद** प्रेरणे । नुदति । नुदते । नुनोद । नोत्ता

र्थ्यादित्यस्यायमर्थो यत् 'प्राप्तौ सत्या निषध' इति नियमेन इड्विधायकसूत्राणि पठित्वैव तन्निषेधवचनानि पठनीयानि किन्तु पाणिनिना-अष्टाध्याय्यामिण्निषेधका येव प्राक पठितानि, तदनु तद्विधायकानि—इति विध्यपेक्षया निषधाना बलीयस्त्व सूचितम् । अत एव परमपि स्वरत्यादिविकल्प बाधित्वा प्रकृतसूत्रेण निषेध प्राप्तो भवतीत्यथ ।

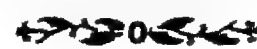
धूञ कम्पने—लटि–धूनोति, धनुते इत्यादि । **लिटि**—दुधाव–दुधुवे इत्यादि । **लुटि**—स्वरत्यादिनेडविकल्पेन धोता—धविता । **लृटि**—धविष्यति, धोष्यति । पक्षे धविष्यते, धोष्यते इत्यादि । **लोटि**—धूनोतु, पक्षे धूनुताम्–इत्यादि । **लङि**—अधनोत्, पक्षे अधनुत इत्यादि । **वि० लि०**—धूनुयात् पक्षे धून्वीत इत्यादि । **आ० लि०**—धूयात् पक्षे धविषीष्ट–धोषीष्ट–इत्यादि । **लुङि**—अधावीत, पक्षे अधविष्ट–अधोष्ट इत्यादि । **लृङि**—अधविष्यत्–अधोष्यत् । पक्षे अधविष्यत अधोष्यत इत्यादि ।

॥ इति स्वादिप्रकरणम् ॥



या क्ति पर में हो तो श्रिञ् धातु और एकाच् उगन्त धातु को इट् नहीं होता है ।

॥ इति स्वादिप्रकरणम् ॥



तुद=कष्ट देना ।

१—कत्रर्थक सार्वधातुक पर हो तो तुदादिगण पठित धातुओं से 'श' प्रत्यय होता है ।

11 णुद=प्रेरणा करना ।

भ्रस्ज पाके । ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । सस्य श्चुत्वेन श । शस्य जश्त्वेन ज । भृज्जति । भृज्जते ।

भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम् ६ । ४ । ४७ ॥ [1]भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके । मित्वादन्त्यादचः परः । स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः । बभर्ज । बभर्जतुः । बभर्जिथ–बभर्ष्ठ । बभ्रज्जतुः । बभ्रज्जिथ । स्कोरिति सलोपः । व्रश्चेति षः । बभ्रष्ठ । बभर्जे-बभ्रज्जे । भर्ष्टा-भ्रष्टा । भर्क्ष्यति भ्रक्ष्यति । [2]**क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन ।** भृज्ज्यात् । भृज्ज्यास्ताम् । भृज्ज्यासुः । भर्क्षीष्ट–भ्रक्षीष्ट । अभार्क्षीत-अभ्राक्षीत । अभर्ष्ट-अभ्रष्ट । **कृष** विलेखने । कृषति । कृषते । चकर्ष । चकृषे ।

मित्वादन्त्यादिति—यद्यय 'रम्' आगमस्तदा रोपधयोः स्थाने न स्यात् यदि चादेशस्तदान्त्यादचः परो न स्यादित्याशङ्का (विवाद) परिहारार्थं समाधत्ते—मित्वादित्यादि ।

क्ङितीति— भ्रस्जेराशीर्लिङि परत्वात्सम्प्रसारणं बाधित्वा रमागमे भर्ज्यादिति स्यादत आह—क्ङितीति । रमागमस्यावकाशः भर्ष्टा, भर्क्ष्यति–इति । सम्प्रसारणस्यावकाशः इज्यात् उच्यात्–इति । सम्प्रसारणं भवति पूर्वविप्रतिषेधेनेति भावः ।

भ्रस्ज धातोर्लिटि थलि चत्वारि रूपाणि–भ्रस्जधातोर्लिटि तत्स्थाने थलि 'लिटि धातोः—' इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'हलादिः शेषः' इति रसजानां लोपे, 'अभ्यासे चर्च' इति भस्य बत्वे, अजन्तोऽकारवान् वा' इति नियमेन वैकल्पिके इटि, अनुबन्धलोपे, 'भ्रस्जो रोपधयो –०' इति वैकल्पिके रमि–अनुबन्धलोपे, 'स्कोः संयोगाद्यो' इति सलोपे 'बभर्जिथ' इति । व्रश्चेति षत्वे, ष्टुना ष्टुरिति ष्टुत्वे च कृते 'बभर्ष्ठ' इति । रमभावपक्षे इटि सस्य श्चुत्वेन शकारे, शस्य च जश्त्वेन जकारे, बभ्रज्जिथ इति । इडभावे स्कोरिति सलोपे, व्रश्चेति जकारस्य शकारे, ष्टुना ष्टुरिति ष्टुत्वेन थकारस्य ठकारे 'बभ्रष्ठ' इति ।

भर्क्षीष्ट—भ्रस्जधातोराशिषि लिङि तप्रत्यये, लिङः सीयुडिति सीयुटि अनुबन्धलोपे, सुट् तिथोरिति सुटयनुबन्धलोपे, लोपो व्योरिति यलोपे, 'भ्रस्ज सी स्

भ्रस्ज=पकाना, भूनना ।

१—आर्धधातुक पर हो तो भ्रस्ज धातु के रेफ और उपधा के स्थान में रम् का आगम होता है विकल्प से । २—कित् या ङित् पर हो तो रमागम को बाध कर पूर्वविप्रतिषेध से सम्प्रसारण ही होता है । कृष=हल जोतना, खेती करना ।

अनुदात्तस्य चदुपधस्यान्यतरस्याम् ६ । १ । ५९ ॥ [1]उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याऽम्वा स्याज्झलादावकिति । क्रष्टा-कर्ष्टा । कृक्षीष्ट । [2]**स्पृशमृशकृषतृपदृपा च्लेः सिज्वा वाच्यः** । अक्राक्षीत्-अकार्क्षीत्-अकृक्षत् । अकृष्ट । अकृक्षाताम । अकृक्षत । क्सपक्षे-अकृक्षत । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त । **मिल** सङ्गमे । मिलति मिलते । मिमेल । मेलिता । अमेलीत । **मुच्लृ** मोचने ।

शे मुचादीनाम् ७ । १ । ५९ ॥ [3]मुच् लिप्-विद्-लुप् सिच् कृत-खिद्-पिशा मुम् स्यात शे परे । मुञ्चति । मुञ्चते । मोक्ता । मुच्यात् । मुक्षीष्ट । अमुचत । अमुक्त । अमुक्षाताम् । **लुप्लृ** छेदने । लुम्पति । लुम्पते । लोप्ता । अलुपत । अलुप्त । **विद्लृ** लाभे । विन्दति । विन्दते । विवेद-विविदे । व्याघ्रभूतिमते सेट । वेदिता । भाष्यमतेऽनिट । परिवेत्ता । **षिच** क्षरणे । सिञ्चति । सिञ्चते ।

त' इति स्थिते, भ्रस्जो- इति, वैकल्पिके रमि, अनुबन्धलोपे व्रश्चेति जस्य षत्वे, 'षढो कः सि' इति षकारस्य ककारे, आदेशप्रत्यययो' इति सीयुट् सकारस्य षत्वे ष्टुत्वे च कृते 'भर्क्षीष्ट' इति । रमभावे 'भ्रक्षीष्ट' इति ।

क्रष्टा—कृष धातोर्लुटि तस्य तिपि 'स्यातासी–' इति तासि–अनुबन्धलोपे, 'लुटः प्रथमस्य–' इति डादेशे, डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपे, अनुदात्तस्य चदुपधस्यान्यतरस्याम्' इति 'अमि' अनुबन्धलोपे, 'इको यणचि' इति यणि, ष्टुना ष्टुरिति ष्टुत्वे च कृते 'क्रष्टा' इति । अमभावे गुणे कृते 'कर्ष्टा' इति ।

कृष धातोर्लुङि परस्मैपदे त्रीणि रूपाणि—कृष धातोर्लुङि, तत्स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे, च्लि लुङीति च्लौ, च्ले नित्य सिजादेशे प्राप्ते, 'स्पृशमृश–' इति वार्तिकबलेन वैकल्पिके सिजादेशेऽनुबन्धलोपे, ' लुङ्लङ्–०' इत्यडागमेऽनुबन्धलोपे, 'अनुदात्तस्य चदुपधस्य–' इति 'अमागमे' अनुबन्धलोपे, 'अ क्र अ ष् स ति' इति स्थिते, यणि, षढो कः सि' इति षस्य ककारे, आदेशप्रत्यययो' इति षत्वे, 'अस्ति सिचोऽपृक्ते' इतीडागमे, अनुबन्धलोपे, वदव्रजेति वृद्धौ कषसयोगात् क्षकारे जाते,

---

१—कित् से भिन्न झलादि पर हो तो उपदेश मे अनुदात्त जो ऋदुपध धातु उसको अम् का आगम विकल्प से होता है । २—स्पृश् , मृश् कृष् तृप् , दृप्-धातुओं से परे च्लि को सिच् विकल्प से होता है । मिल=समागम । मुच्लृ=छोड़ना, त्याग करना । ३—'श' पर हो तो मुचादि (मुच् , लिप् , विद् लुप् , सिच् , कृत, खिद्, पिश्) धातुओं से नुम् का आगम होता है । लुप्लृ=काटना, लुप्त करना । विद्लृ=प्राप्त करना । सिच्=सींचना ।

लिपिसिचिह्वश्च ३।१।५३॥ [1]एभ्यश्च्लेरङ स्यात। असिचत्।

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३।१।५४॥ [2]लिपिसिचिह्व परस्य च्लेरङ वा [स्यात तङि]। असिचत-असिक्त। **लिप** उपदेहे। उपदेहो वृद्धि। लिम्पति। लिम्पते। लेप्ता। अलिपत। अलिपत। अलिप्त।

॥ इत्युभयपदिन ॥

कृती छेदने। कृन्तति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति-कर्त्स्यति। अकर्तीत। **खिद** परिघाते। खिदति। चिखेद। खेत्ता। **पिश** अवयवे। पिशति। पेशिता। **ओव्रश्चू** छेदने। वृश्चति। वव्रश्च। वव्रश्चिथ–वव्रष्ठ। व्रश्चिता–व्रष्टा। व्रश्चिष्यति-व्रक्ष्यति। वृश्च्यात्। अव्रश्चीत्–अव्राक्षीत्। **व्यच** व्याजीकरणे। विचति। विव्याच। विविचतु। व्यचिता। व्यचिष्यति। विच्यात्। अव्यचीत्-अव्याचीत्। व्यचे कुटादित्वमनसीति तु नेह प्रवर्तते, अनसीति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात्। **उछि** उञ्छे। उञ्छति। 'उञ्छ कणश आदान कणिशाद्यर्जन शिलम्' इति यादव।

'अक्राक्षीत्' इति। अमभावे अकार्क्षीत्' इति। सिजभावे क्सकृते 'अकृक्षत्' इति। 'अकृष्ट' इत्यत्र लिङसिचौ कितावित्ति कित्वादम् न भवतीति।

कर्तिष्यति कर्त्स्यति—अत्र सेऽसिचि–' इति–इडविकल्प।

वव्रष्ठ—अत्र श्चुत्वस्यासिद्धत्वात्स्कोरिति सयोगादिलोपे, व्रश्चेति षत्वे च कृते तत्सिद्धि।

अव्याचीत—व्यच धातोर्लुङि तिपि, अडागमेऽनुबन्धलोपे, 'च्लि लुङि' इति च्लौ, तस्य सिजादेशेऽनुबन्धलोपे 'आर्धधातु–०' इति इडागमेऽनुबन्धलोपे 'अस्ति-सिचोऽपृक्ते' इतीट्यनुबन्धलोपे, 'इट ईटि' इति सस्य लोपे, अतो हलादेरिति वा वृद्धौ सवर्णदीर्घे च कृते 'अव्याचीत्' इति। वृद्ध्यभावे 'अव्यचीत्' इति।

व्यचे कुटादित्वमिति—अत्रानसीति पर्युदास। तथा च असभिन्ने असदृशे प्रत्यये परे व्यचे कुटादित्वमित्यर्थ। एवञ्च 'गाङकुटादिभ्य–०' इति तासादेर्ङिद्वद्भावे ग्रहिज्येति सम्प्रसारणे 'विचिता' इति स्यादिति चेन्न सादृश्यस्य कृत्वेन ग्रहणात्, तथा च असभिन्न–कृत्प्रत्यये परे एव तत्प्रवृत्तिरिति भाव।

१—लिप, सिच एवं ह्वेञ धातु से परे च्लि को अङ होता है। २—तङ् पर हो तो लिप सिच् और ह्वेञ धातु से परे च्लि को अङ विकल्प से होता है।

कृती=काटना, अलग अलग करना। खिद=दुःख देना दुःखी होना। पिश=चूर्ण करना कुछ भी अनेक बार करना। व्यच्=बहाना करना, ठगना। उछि=कणों को एकत्र करना।

ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु । ऋच्छति । ऋच्छत्यृतामिति गुण । द्विहल्ग्रहणस्याऽनेकहलुपलक्षणत्वान्नुट । आनच्छ । आनच्छतु । ऋच्छिता । **उज्झ** उत्सर्गे । उज्झति ।

लुभ विमोहने । लुभति ।

तीषसहलुभरुषरिष ७ । २ । ४८ ॥ [1]इच्छत्यादे परस्य तादेराधधातुकस्येड वा स्यात् । लोभिता-लोब्धा । लोभिष्यति । **तृप तृम्फ** तृप्तौ । तृपति । ततप । तर्पिता । अतर्पीत् । तृम्फति । ॐ[2]**शे तृम्फादीना नुम्वाच्य** । आदिशब्द प्रकारे । तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादय । ततृम्फ । तृफ्यात् । **मृड पृड** सुखने । मडति । पडति । **शुन** गतौ । शुनति । **इषु** इच्छायाम् । इच्छति । एषिता एष्टा । एषिष्यति । इष्यात् । ऐषीत् । **कुट** कौटिल्ये । गाङ्कुटादीति ङित्त्वम् । चुकुटिथ । चुकोट-चुकुट । कुटिता । **पुट** सश्लेषणे । पुटति । पुटिता । **स्फुट** विकसने । स्फुटति । स्फुटिता ।

स्फुर स्फुल सञ्चलने । स्फुरति स्फुलति ।

स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्य ८ । ३ । ७६ ॥ [3]षत्व वा स्यात् । नि स्फुरति-नि ष्फुरति । **णू** स्तवने । परिणूतगुणोदय । नुवति । नुनाव । नुविता । **टुमस्जो** शुद्धौ । मज्जति । ममज्ज । ममज्जिथ । मस्जिनशोरिति नुम् । ॐ[4]**मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्य** । सयोगादिलोप । ममङ्क्थ । मङ्क्ता । मङ्क्ष्यति । अमाङ्क्षीत् अमाङ्क्ताम् । अमाङ्क्षु । **रुजो** भङ्गे । रुजति । रोक्ता । रोक्ष्यति । अरौक्षीत् । **भुजो** कौटिल्ये । रुजिवत् । **विश** प्रवेशने । विशति । **मृश** आमशने । आमशन स्पश । **अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतर-**

ऋच्छ=गति इन्द्रियों की निश्चेष्टता स्तब्धता तथा मूर्तिभाव, कठिनाई । उज्झ=छोड़ना। लुभ=विमोहित होना (करना)।

१—इच्छत्यादि (इष , सह् , लुभ् , रुष् , रिष्)-धातुओं से परे तादि आर्धधातुक के विकल्प स इट् होता है । २—श पर हो तो तृम्फादि (नुम्वान् तृम्फसदृश) धातुओं को नुम् का आगम होता है । मृड, पृड=सुखी होना । शुन=गति । इषु=अभिलाषा करना । कुट=कुटिलता करना, धोखा देना । पुट=दो या अनेक को सयुक्त करना । स्फुट=खिलना, विकसित होना । स्फुर, स्फुल=अंगों का फड़कना जान आना । ३—निर् , नि वा वि उपसर्ग से परे स्फुर और स्फुल धातु के सकार को षत्व होता है, विकल्प से । णु=प्रशस्त गुणों का वर्णन करना (स्तुति करना) । मस्ज=शुद्ध होना डुबकी लगना, इत्यादि । ४—मस्ज धातु के अन्त्य से पूर्व में नुम् होता है (कहना चाहिये) । रुज=तोड़ना, दु खी करना (होना) । भुज=टेढ़ा होना, धोखा देना । विश=प्रवेश करना (होना) । मृश=स्पर्श करना, छूना ।

स्याम । अम्राक्षीत्-अमार्क्षीत्-अमृक्षत् । **षद्लृ** विशरणगत्यवसादनेषु । सीदतीत्यादि । **शद्लृ** शातने ।

शदे शित १ । ३ । ६० ॥ [1]शिद्भाविनोऽस्मात्तडानौ स्त । शीयते । शीयताम् । अशीयत । शीयेत । शशाद । शत्ता । शत्स्यति । अशदत् । अशत्स्यत् ।

कॄ विक्षेपे ।

ॠत इद्धातो ७ । १ । १०० ॥ [2]ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात् । किरति । चकार । चकरतु । चकरु । करीता–करिता । कीर्यात् ।

किरतौ लवने ६ । १ । १४० ॥ [3]उपात्किरते सुट स्याच्छेदने । उपस्किरति । **अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट कात् पूर्व इति वक्तव्यम्** । उपास्किरत् । उपचस्कार ।

हिंसायां प्रतेश्च ६ । १ । १४१ ॥ [4][उपात्प्रतेश्च] किरते सुट स्याद्धिंसायाम् । उपस्किरति । प्रतिस्किरति । **गॄ** निगरणे ।

अचि विभाषा ८ । २ । २१ ॥ [5]गिरते रेफस्य लो वा स्यादजादौ प्रत्यये । गिरति गिलति । जगार-जगाल । जगरिथ । गरीता-गरिता । गलीता-गलिता । **प्रच्छ** ज्ञीप्सायाम् । ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । पृच्छति । पप्रच्छ । पप्रच्छतु । प्रष्टा । प्रक्ष्यति । अप्राक्षीत् । **मृङ्** प्राणत्यागे ।

म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च १ । ३ । ६१ ॥ [6]लुङ्लिङो शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र । रिङ् । इयङ । म्रियते । ममार । मर्ता । मरिष्यति । मृषीष्ट । अमृत । **पृङ्** व्यायामे । प्रायेणाऽय व्याङ् पूर्व । व्याप्रियते । व्यापप्रे । व्यापप्राते । व्यापरिष्यते । व्यापृत । व्यापृषाताम् । **जुषी** प्रीतिसेवनयो । जुषते । जुजुषे । **ओविजी** भयचलनयो । प्रायेणायमुत्पूर्व उद्विजते ।

षद्लृ=अलग होना (भडकना) गति, दु खी होना । शद्लृ=तीक्ष्ण करना, छीलना ।

१—शिद्भावी शद् धातु से आत्मनेपद होता है । कॄ=फेंकना । २—ॠदन्त धातु के अंग को इत् होता है । ३—छेदन (काटने) अर्थ में उप से परे 'क' धातु को सुट् का आगम होता है । ४—हिंसा अथ मे उप और प्रति से परे 'कॄ' धातु को सुट का आगम होता है । गॄ=निगलना । ५—अजादि प्रत्यय पर हो तो 'गॄ' धातु के रेफ को लकार होता है विकल्प से । प्रच्छ-पूछना । मृङ्=मरना । ६—केवल लुङ या शित पर हो तो 'मृङ्' धातु से आत्मनेपद होता है, अन्यत्र नहीं । पृङ्=उद्योग (यत्न) करना । जुषी=प्रेम करना सेवा करना । ओविजी=डरना, काँपना ।

विज इट १ । २ । ६२ ॥ [1]विज पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत्स्यात् । उद्विजिता ।

॥ इति तुदादिप्रकरणम् ॥



अथ रुधादि-प्रकरणम्

रुधादिभ्य श्नम ३ । १ । ७८ ॥ [2]शपोऽपवाद । रुणद्धि । **श्नसोरल्लोप ।** रुन्ध । रुन्धन्ति । रुणत्सि । रुन्ध । रुन्ध । रुणध्मि । रुन्ध्व । रुन्ध्म । रुन्धे । रुधाते । रुन्धते । रुन्त्से । रुन्धाथे । रुन्ध्वे । रुन्धे । रुन्ध्वहे । रुन्ध्महे । रुरोध–रुरुधे । रोद्धासि रोद्धासे । रोत्स्यति–रोत्स्यते । रुणद्धु-रुन्धात । रुन्धाम् । रुन्धन्तु । रुन्धि । रुणधानि । रुणधाव । रुणधाम । रुन्धाम् । रुन्धाताम् । रुन्धताम् । रुन्त्स्व । रुणधै । रुणधावहै । रुणधामहै । अरुणत–अरुणद् । अरुन्धाम् । अरुन्धन् । अरुण –अरुणत–अरुणद् । अरुन्ध । अरुन्धाताम् । अरुन्धत । अरुन्धा । रुन्ध्यात-रुन्धीत । रुध्यात–रुत्सीष्ट । अरुधत्-अरौत्सीत । अरुद्ध । अरुत्साताम् । अरुत्सत । अरोत्स्यत-अरोत्स्यत । **भिदिर्** विदारणे । **छिदिर्** द्वैधीकरणे । **युजिर** योगे । **रिचिर्** विरेचने । रिणक्ति-रिङ्क्ते । रिरेच । रेक्ता । रेक्ष्यति । अरिणक् । अरिचत्–अरैक्षीत् । अरिक्त । **विचिर्** पृथग्भावे । विनक्ति विङ्क्ते । **क्षुदिर्** सम्पेषणे । क्षुणत्ति-क्षुन्ते । क्षोत्ता । अक्षुदत्–अक्षौत्सीत्–अक्षुत्त । **उछृदिर्** दीप्तिदेवनयो । छृणत्ति–छृन्ते । चच्छद । सेऽसिचीति वेट । चच्छृदिषे–चच्छृत्से । छर्दिष्यति–छर्त्स्यति । अच्छृदत्–अच्छर्दीत् । अच्छर्दिष्ट । अच्छर्दिष्यत् । **उतृदिर** हिसानादरयो । तणत्ति–तन्ते । **कृती** वेष्टने । कृणत्ति । **तृह हिसि** हिंसायाम् ।

१—विज् धातु से परे इडादि प्रत्यय ङित् सदृश होता है ।

॥ इति तुदादिप्रकरणम् ॥



रुध–रोकना ।

२—कत्रर्थक सार्वधातुक पर हो तो रुधादि–गण–पठित धातुओं से श्नम् प्रत्यय होता है । भिदिर्=चीरना–फाडना । छिदिर्=दो टुकडा करना । युजिर्=दो या अनेक को एक मे जोडना । रिचिर=अधिक टट्टी होना । विचिर्=अलग होना । क्षुदिर=अच्छी तरह पीसना । उच्छृदिर्=चमकना, खेलना । उतृदिर=मारना, अनादर करना । कृती=चारों ओर से घेरना । तृह–हिंसि=मारना, दु ख देना ।

तृणह इम् ७ । ३ । ९२ ॥ [1]तृह श्नमि कृते इमागम स्याद्धलादौ पिति । तृणेढि । तण्ढ । ततर्ह तर्हिता । अतृणेट ।

श्नान्नलोप ६ । ४ । २३ ॥ [2]श्नम परस्य नस्य लोप स्यात् । हिनस्ति । जिहिंस । हिंसिता ।

तिप्यनस्ते ८ । २ । ७३ ॥ [3]पदान्तस्य सस्य द स्यात्तिपि न त्वस्ते । ससजुषोरुरित्यस्यापवाद । अहिनत् अहिनद् । अहिंस्ताम् । अहिंसन् ।

सिपि धातो रुर्वा ८ । २ । ७४ ॥ [4]पदान्तस्य धातो सस्य रु स्याद्वा [सिपि] । पक्षे द । अहिन –अहिनत्–अहिनद् । **उन्दी** क्लेदने । उनत्ति । उन्त । उन्दन्ति । उन्दाञ्चकार । औनत् । औनद् । औन्ताम् । औन्दन् । औन –औनत् । औनदम् । **अञ्जू** व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । अनक्ति । अङ्क्त । अञ्जन्ति । आनञ्ज । आनञ्जिथ–आनङ्क्थ । अञ्जिता–अङ्क्ता । अङ्ग्धि । अनजानि । आनक् ।

अञ्जे सिचि ७ । २ । ७१ ॥ [5]अञ्जे सिचो नित्यमिट स्यात् । आञ्जीत् । **तञ्चू** सङ्कोचने । तनक्ति । तञ्चिता तङ्क्ता । **ओविजी** भयचलनयो । विनक्ति । विङ्क्त । विज इडिति ङित्त्वम् । विविजिथ । विजिता । अविनक । अविजीत् । **शिष्लृ** विशेषणे । शिनष्टि । शिष्ट । शिंषन्ति । शिनक्षि । शिशेष । शिशेषिथ । शेष्टा । शेक्ष्यति । हेर्धि । शिण्ड्ढि । शिनषाणि । अशिनट् ।

शिण्ढि—लकारेत्सक शिष धातोर्लोटि तस्य सिपि अनुबन्धलोपे 'रुधादिभ्य –' इति श्नम्यनुबन्धलोपे, सेर्ह्यपिच्चेति सेर्ह्यादेशे— शिनष् हि इति स्थिते, हुझल्भ्यो हेर्धि ' इति हेर्धित्वे, ष्टुत्वेन धस्य ढकारे, नस्यानुस्वारे, षस्य जश्त्वेन डकारे, परसवर्णेनानुस्वारस्य णकारे, 'झरो झरि' इति डस्य पाक्षिके लोपे 'शिण्ढि' इति । लोपाभावे तु 'शिण्ड्ढि' इति ।

अशिनट—शिष् धातोर्लङ तिप–श्नम्—अट्–इकारलोपादिषु कृतेषु अशि

१—हलादि पित् पर हो तो 'तृह' धातु से श्नम् करने पर इम् का आगम होता है। २—श्नम् से परे नकार का लोप होता है। ३—तिप् पर हो तो अस् धातु को छोडकर पदान्त सकार को दकार होना है। ४—सिप् पर हो तो पदान्त 'स' को रु' होना है विकल्प से। उन्दी=आर्द्र करना (भिगोना) । अञ्जू=प्रकाश करना, मर्दन करना, सौन्दर्य, गति । ५—अञ्जू धातु से परे जो सिच् उसको नित्य इट् होता है। ओविजी=भय करना, उद्विग्न होना, काँपना ।

(अन्य मध्य के धातु प्रसिद्ध हैं, अब आगे प्रसिद्ध शब्दों का अर्थ नहीं दिया जायगा ।) भुज=रक्षा करना भोजन करना।

शिष्यात् । अशिषत् । एव **पिष्लृ** सञ्चूणने । **भञ्जो** आमदने । **श्नान्नलोप** । भनक्ति । बभञ्जिथ–बभङक्थ । भङ्क्ता । भङ्ग्धि । अभाङक्षीत् । **भुज** पालनाभ्यवहारयो । भुनक्ति । भोक्ता । भोक्ष्यति । अभुनक ।

भुजोऽनवने १ । ३ । ६६ ॥ [1]तडानौ स्त । ओदन भुङ्क्ते । अनवने किम् ? मही भुनक्ति । ञि **इन्धी** दीप्तौ । इन्धे । इन्धाते । इन्त्से । इन्ध्वे । इन्धाञ्चक्रे । इन्धिता । इन्धाम् । इन्धाताम् । इनधै । ऐन्ध । ऐन्धाताम् । ऐन्धा । **विद** विचारणे । विन्ते । वेत्ता ।

॥ इति रुधादिप्रकरणम् ॥



अथ तनादि-प्रकरणम्

तनु विस्तारे ।

तनादिकृञ्भ्य उ ३ । १ । ७९ ॥ [2][तनादे कृञश्च उप्रत्यय स्यात्क-त्रर्थे सावधातुके परे] । शपोऽपवाद । तनोति–तनुते । ततान–तने । तनि-

---

नष त् इति स्थिते, 'झला जशोऽन्ते' धातो षस्य डकारे 'अशिनड्', 'वावसाने' इति चर्त्वेन डकारस्य टकारे 'अशिनट इति ।

पिष्ल सचूणने—पिनष्टि । पिपेष । पेष्टा । पेक्ष्यति । पिनष्टु । अपिनट । पिष्यात् । पिष्यात । अपिषत् । अपेक्ष्यत् ।

भुजोऽनवने—अवन रक्षण, तद्भिन्ने अर्थे भुज् धातोरात्मनेपद स्यात् । तेन रक्षणेऽर्थे पृथ्वी भुनक्ति (रक्षति) इति परस्मैपदम् । भोजने–'ओदन द्विदलञ्च भुङ्क्ते' (खादति) इत्यात्मनेपदम् ।

॥ इति रुधादिप्रकरणम् ॥



१—रक्षा से भिन्न अर्थात् भोजन अर्थ मे भुज धातु से तङ् और आन होते हैं । अथात आत्मनेपद होता है ।

॥ इनि रुधादिप्रकरणम् ॥



तनु=फैलना ।

२—कर्त्रर्थक सावधातुक पर हो तो तनादि–गण–पठित तथा कृञ धातु से 'उ' प्रत्यय होता है।

तासि–तनितासे। तनिष्यति—तनिष्यते। तनोतु–तनुताम्। अतनोत् अत-नुत। तनुयात्–तन्वीत। तन्यात्–तनिषीष्ट। अतानीत–अतनीत्।

तनादिभ्यस्तथासो २।४।७९॥ [1]तनादे सिचो वा लुक स्यात्त-थासो। अतत-अतनिष्ट। अतथा–अतनिष्ठा। अतनिष्यत्–अतनिष्यत।

षणु दाने। सनोति-सनुते।

ये विभाषा ६।४।४३॥ [2]जनसनखनामात्व वा स्याद्यादो ङ्क्ति। सायात्-सन्यात्।

जनसनखना सञ्झलो ६।४।४२॥ [3]एषामाकारोऽन्तादेश स्यात् सनि झलादौ क्ङिति। असात–असनिष्ट। असाथा–असनिष्ठा। **क्षणु** हिंसा-याम्। क्षणोति-क्षणुते। ह्म्यन्तेति न वृद्धि। अक्षणीत्–अक्षत–अक्षणिष्ट। अक्षथा–अक्षणिष्ठा। **क्षिणु च**। उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा। क्षेणोति–क्षिणोति। क्षेणिता। अक्षेणीत्–अक्षित–अक्षेणिष्ट। **तृणु** अदने। तृणोति–तर्णोति। तृणुते–तर्णुते।

डुकृञ् करणे। करोति।

अत उत्सावधातुके ६।४।११०॥ [4]उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उ स्यात्। कुरुत।

न भकुर्छुराम ८।२।७९॥ [5]भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात्। कुर्वन्ति।

नित्य करोते ६।४।१०८॥ [6]करोते प्रत्ययोकारस्य नित्य लोप स्यान्म्वो परयो। कुव। कुम। कुरुते। चकार–चक्रे। कर्तासि। कर्त्तासे। करिष्यति–करिष्यते। करोतु। कुरुताम्। अकरोत्। अकुरुत।

ये च ६।४।१०९॥ [7]कृञ उलोप स्याद्यादौ प्रत्यये। कुर्यात्–कुर्वीत। क्रियात्–कृषीष्ट। अकार्षीत्–अकृत। अकरिष्यत्–अकरिष्यत।

१—त या थास् प्रत्यय पर हो तो तनादि धातु से परे सिच का लोप विकल्प से होता है। २—यकारादि कित् या ङित् पर रहे तो जन्, सन्, खन्–धातुओं को आत्व होता है। ३—सन् पर हो और झलादि कित् या ङित् पर हो तो जन्, सन्, खन्–धातुओं को आकार अन्तादेश होता है। तृणु=खाना। डुकृञ्=करना। ४—कित् ङित् सार्वधातुक पर हो तो उ प्रत्ययान्त कृञ् धातु के अकार को उकार होता है। ५—भसंज्ञक कुर् (कृ) और छुर की उपधा को दीर्घ नहीं होता है। ६—वकार या मकार पर हो तो 'कृ' धातु के प्रत्ययरूप उकार का नित्य ही लोप हो जाता है। ७—यकारादि प्रत्यय पर हो तो 'कृ' धातु के उकार का लोप हो जाता है।

सम्परिभ्या करोतौ भूषणे ६ । १ । १३७ ॥

समवाये च ६ । १ । १३८ ॥ [1]सम्परिपूवस्य करोते सुट स्यात् भूषणे सङ्घाते चार्थे । सस्करोति । अलङ्करोतीत्यथ । सस्कुवन्ति । सङ्घीभवन्तीत्यथ । सम्पूवस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट, 'सस्कृत भक्षा' इति ज्ञापनात् ।

उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ६ । १ । १३९ ॥ [2]उपात्कृत्र सुट् स्यादेष्वर्थेषु, चात्प्रागुक्तयोरथयो । **प्रतियत्नो** गुणाऽऽधानम् । विकृतमेव **वैकृत**–विकार । **वाक्याध्याहार**–आकाङ क्षितैकदेशपूरणम् । उपस्कृता कन्या । उपस्कृता ब्राह्मणा । एधोदकस्योपस्कुरुते । उपस्कृत भुङ्क्ते । उपस्कृत ब्रूते । **वनु** याचने । वनुते । ववने । **मनु** अवबोधने । मनुते । मेने । मनिता । मनिष्यते । मनुताम् । अमनुत । मन्वीत । मनिषीष्ट । अमत–अमनिष्ट । अमनिष्यत ।

॥ इति तनादय ॥



अथ क्र्यादि-प्रकरणम्

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ।

क्र्यादिभ्य श्ना ३ । १ । ८१ ॥ [3][एभ्य श्ना स्यात्कत्रर्थे सावधातुके परे] । शपोऽपवाद । क्रीणाति । **ई हल्यघो** । क्रीणीत । **श्नाभ्यस्तयोरात** । क्रीणन्ति । क्रीणासि । क्रीणीथ । क्रीणीथ । क्रीणामि । क्रीणीव । क्रीणीम । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते । क्रीणीषे । क्रीणाथे । क्रीणीध्वे । क्रीणे । क्रीणीवहे । क्रीणीमहे । चिक्राय । चिक्रियतु । चिक्रियु । चिक्रयिथ चिक्रेथ । चिक्रिये । क्रेता । क्रेष्यति-क्रेष्यते । क्रीणातु-क्रीणीतात् । क्रीणीताम् । अक्रीणात्-अक्रीणीत । क्रीणीयात्-क्रीणीत । क्रीयात्-क्रेषीष्ट । अक्रैषीत्-अक्रेष्ट । अक्रेष्यत्—अक्रेष्यत । **प्रीञ्** तपणे कान्तौ च । प्रीणाति-प्रीणीते । **श्रीञ** पाके । श्रीणाति-श्रीणीते । मीञ हिसायाम् ।

१—भूषण एवं संघात अथ मे सं एवं परि पूर्वक 'कृ' धातु को सुट् का आगम होता है । २—प्रतियत्न (अनेक यत्न) वैकृत (विकारभाव) वाक्याध्याहार (उपेक्षित वाक्य को अन्यत्र से लाना)–इन अर्थों में उससे परे 'कृ' को सुट का आगम होता है ।

॥ इति तनादिप्रकरणम् ॥



डुक्रीञ्=खरीदना, बेंचना, अदल बदल करना । ३—कत्रर्थक सावधातुक पर हो तो क्र्यादि धातुओं से 'श्ना' प्रत्यय होता है । प्रीञ्=तृप्ति तथा शोभा । श्रीञ्=पकना, पकाना ।

हिनुमीना ८।४।१५॥ [1]उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य ण स्यात्। प्रमीणाति–प्रमीणीते। मीनातीत्यात्वम्। ममौ। मिम्यतु। ममिथ-ममाथ। मिम्ये। माता। मास्यति। मीयात्–मासीष्ट। अमासीत्। अमासिष्टाम्। अमास्त। **षिञ्** बन्धने। सिनाति। सिनीते सिषाय-सिष्ये। सेता। **स्कुञ्** आप्लवने।

स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ३।१।८२॥ [2][एभ्यः श्नुः स्यात्] चात् श्ना। स्कुनोति–स्कुनाति। स्कुनुते–स्कुनीते। चुस्काव। चुस्कुवे। स्कोता। अस्कौषीत्–अस्कोष्ट। स्तन्भ्वादयश्चत्वारः सौत्राः। सर्वे रोधनार्थाः परस्मैपदिनः।

हलः श्नः शानज्झौ ३।१।८३॥ [3]हलः परस्य श्नः शानजादेशः स्याद्धौ परे। स्तभान।

जॄस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ३।१।५८॥ [4]एभ्यः च्लेरङ् वा स्यात्।

स्तन्भेः ८।३।६७॥ [5]स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात्। व्यष्टभत्। अस्तम्भीत्। **युञ्** बन्धने। युनाति–युनीते। योता। **क्नूञ्** शब्दे। क्नूनाति। क्नूनीते। क्नविता। **द्रूञ्** हिंसायाम्। द्रूणाति–द्रूणीते। **दॄ** विदारणे। दृणाति–दृणीते। **पूञ्** पवने।

प्वादीनां ह्रस्वः ७।३।८०॥ [6]पूञ् लूञ्-स्तॄञ्-कॄञ्-धूञ्-शॄ-पॄ वॄ-भॄ-मॄ दॄ जॄ झॄ धॄ-नॄ-कॄ ॠ गॄ-ज्या-री-ली-व्ली-वृञ् प्लीनां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः

स्तभान—स्तम्भ धातोर्लोट्, सिप, हि–आदिषु कृतेषु 'स्तम्भुस्तुम्भु–०' इति सूत्रेण श्नाप्रत्ययपक्षे (श्नाकृते) स्तभ ना हि इति स्थिते, ना शब्दस्य 'हलः श्नः– इति शानजादेशे, अनुबन्धलोपे, शित्वात्सार्वधातुकत्वे, अपित्वेन ङित्वे, 'अनिदिताम्–' इति नलोपे, अतो हेरिति हेर्लुकि 'स्तभान' इति।

१—उपसर्ग मे स्थित (रेफ षकार रूपी) निमित्त से परे हिनु एवं मीना के नकार को णकार होता है। स्कुञ्=उछलना–कूदना। २—स्तन्भु, स्तुम्भु, स्कम्भु, स्कुम्भु–इन धातुओं से पर 'श्नु' प्रत्यय होता है, चकारात् 'श्ना' प्रत्यय भी होता है। ३—हि पर हो तो हल से परे 'श्ना' को शानच् आदेश होता है। ४–जॄ, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु एवं श्वि–इन धातुओं से परे च्लि को अङ् विकल्प से होता है। ५—सौत्र (सूत्र पठित) स्तन्भ् धातु के सकार को षकार होता है। दॄ=फाड़ना। पूञ्=पवित्र करना, होना। ६—शित् प्रत्यय पर हो तो पूञ्–आदि चौबीस धातुओं को ह्रस्व होता है। लूञ्=

स्यात् । पुनाति–पुनीते । पविता । **लूञ** छेदने । लुनाति–लुनीते । **स्तॄञ्** आच्छादने । स्तृणाति । शपूर्वा खय । तस्तार । तस्तरतु । तस्तरु । तस्तरे । स्तरीता-स्तरिता । स्तृणीयात् । स्तृणीत । स्तीर्यात् ।

लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ७ । २ । ४२ ॥ [1]वृङ्वृञ्भ्यामृृदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा स्यात्तङि ।

न लिङि ७ । २ । ३९ ॥ [2]वॄत इटो लिङि न दीर्घ । स्तरिषीष्ट । उश्चेति कित्त्वम् । स्तीर्षीष्ट । सिचि च परस्मैपदेषु । अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् । अस्तारिषु । अस्तरीष्ट–अस्तरिष्ट–अस्तीष्ट । **कॄञ्** हिसायाम् । कृणाति कृणीते । चकार–चकरे । **वॄञ्** वरणे । वृणाति–वणीते । ववार–ववरे । वरिता–वरीता । उदोष्ठ्येत्युत्वम् । वूर्यात् । वरिषीष्ट–वृर्षीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवरिष्ट–अवरीष्ट–अवूष्ट । **धूञ** कम्पने । धुनाति–धुनीते । धविता–धोता । अधावीत् । अधविष्ट–अधोष्ट । **ग्रह** उपादाने । गृह्णाति । गृह्णीते । जग्राह । जगहे ।

ग्रहोऽलिटि दीघ ७ । २ । ३७ ॥ एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि । ग्रहीता । गह्णातु । हल श्न शानज्झाविति श्न शानजादेश । गृहाण । गह्यात् । ग्रहीषीष्ट । ह्म्यन्तेति न वद्धि । अग्रहीत् । अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट । अग्रहीषाताम् । **कुष** निष्कर्षे । कुष्णाति । कोषिता । **अश**–भोजने । अश्नाति । आश । अशिता । अशिष्यति । अश्नातु । अशान । **मुष** स्तेये । मोषिता । मुषाण । **ज्ञा** अवबोधने । जज्ञौ । **वृङ्** सम्भक्तौ । वृणीत ।

गृहाण— ग्रह धातोर्लोटि, सिपि, सेह्यपिच्चेति सेर्ह्यादेशे, 'क्र्यादिभ्य श्ना' इति शबपवादक श्ना—प्रत्यये, ङित्वाद् ग्रहिज्येत्यादिना सम्प्रसारणे, 'हल श्न' शानज्झौ इति शानजादेशेऽनुबन्धलोपे, नस्य णत्वे, हेर्लुकि च कृते गृहाण इति ।

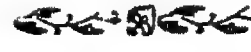
ग्रहीषीष्टेत्यत्र—'न लिङि' इति दीर्घनिषेधस्तु न, 'वॄतो वा' इत्यस्यैव स बाधक इति नियमात् । एवमेवाग्रहीष्टामित्यत्र 'सिचि च परस्मैपदेषु' इति निषेधो

काटना । स्तॄञ्=ढँकना ।

१–तङ् पर रहते वृङ, वृञ् एवं ॠदन्त धातुओं से परे लिङ् सिच् को विकल्प से इट् का आगम होता है । २—लिङ् पर मे हो तो वृञ्, वृङ्, और ॠदन्त धातु से किये गये इट् को दीर्घ नहीं होता है । वॄञ्-विवाह या यज्ञादि में पति या ऋत्विक् आदि के रूप में स्वीकार करना । ग्रह=ग्रहण करना । ३—लिट् लकार पर में न हो तो, एकाच् ग्रह् धातु से

ववृढवे । वरिता-वरीता । अवरीष्ट अवरिष्ट-अवृत ।

॥ इति क्र्यादय ॥



अथ चुरादयः

चुर स्तये ।

सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवमवणचूणचुरादिभ्यो णिच् ३ । १ । २५ ॥ [1]एभ्यो णिच स्यात् । चूर्णान्तेभ्य प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहण प्रपञ्चाथम् । चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे । पुगन्तेति गुण । सनाद्यन्ता इति धातुत्वम् । तिप्शबादि । गुणाऽयादेशौ । चोरयति ।

णिचश्च १ । ३ । ७४ ॥ [2]णिजन्तादात्मनेपद स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले । चोरयते । चोरयामास । चोरयिता । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । णिश्रीति चङ् । णौ चङीति ह्रस्व । चङीति द्वित्वम् । हलादि शेप । दीर्घो लघोरित्यभ्यासस्य दीघ । अचूचुरत् । अचूचुरत । **कथ** वाक्यप्रबन्धे । अल्लोप ।

ऽपि नेति बाध्यम् । अश्नातीत्यत्र 'शात्' इति निषेधात् श्चुत्व न ।

॥ इति क्र्यादिप्रकरणम् ॥



अचूचुरत—चुर् इत्यस्मात्, 'सत्यापपाश–' इति णिच्यनुबन्धलोपे 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'चोरि' इत्यस्य 'सनाद्यन्ता–' इति धातुत्वाल्लुङि लुङस्तिप्यनुबन्धलोपे, लुङ्लङ्–इत्यडागमेऽनुबन्धलोपे, च्लि लुङि इति च्लौ, णिश्रिद्रुस्रुभ्य –' इति च्लेश्चङि अनुबन्धलोपे, इतश्चेति तिप इकारलोपे, 'णेरनिटि' इति णेर्लोपे, 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्व ' इत्युपधाह्रस्वे, 'चङि' इति द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये, दीर्घो लघो ' इत्यनेन अभ्यासस्य दीर्घे 'अचूचुरत्' इति । तङि 'अचूचुरत' इति ।

विहित इट् को दीर्घ होता है ।

॥ इति क्र्यादिप्रकरणम् ॥



चुर=चोरी करना ।

१—सत्याप, पाश, रूप, वीणा, श्लोक, सेना, लोम त्वच वर्म, वर्ण इन प्रातिपदिकों से और चुरादि–गण–पठित धातुओं से णिच् प्रत्यय होता है, स्वार्थ मे । २–क्रिया का फल यदि कर्तृगामी (कर्ता मे ही समाप्त होनेवाला) हो तो णिच्प्रत्ययान्त धातु से आत्मनेपद होता है । कथ=कहना ।

अच परस्मिन्पूर्वविधौ १ । १ । ५७ ॥ [1]अल्विध्यथमिदम् । परनिमित्तोऽजादेश स्थानिवत्स्यात्स्थानिभूतादच पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इति स्थानिवत्त्वात् नोपधावृद्धि । कथयति । अग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावौ न । अचकथत् ।

गण सख्याने । गणयति ।

ई च गण ७ । ४ । ९७ ॥ [2]गणयतेरभ्यासस्य ईत्स्याच्चङ परे णौ, चादत् । अजीगणत् । अजगणत् ।

॥ इति चुरादय ॥



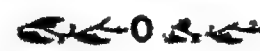
अच परस्मिन्नित्यस्यार्थसमन्वय —'कथयति' इत्यत्र पर णिच, तन्निमित्तोऽजादेशोऽकारस्य लोपरूप , स स्थानिवत् । स्थानिभूतोऽच थकारोत्तराकारस्तत पूर्वत्वेन दृष्ट ककारोत्तराकारस्तस्य विधिवद्धिरूपस्तस्मिन् कर्तव्ये—इति वृत्तिसमन्वय ।

अग्लोपित्वादिति—'सन्वल्लघुनि' इति सन्वद्भावस्तत्रैव यत्र णिनिमित्तकोऽग्लोपो न, अत्र तु 'अतो लोप ' णिनिमित्तक इति ।

अचकथत—कथ इत्यस्मात् सत्यापपाशेति णिचि, धातुत्वेन लुङि, तिपि अडागमे, च्लौ कृते णिश्रिद्रु–' इति च्लेश्चडि, अनुबन्धलोपे, 'अतो लोप ' इति थकारोत्तरवत्यकारलोपे, णेर्लोपे, 'चङि' इति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये, कुहोश्चुरिति कस्य चर्त्वे च कृते 'अचकथत्' इति ।

अजीगणत—इत्यत्र केवल 'ई च गण ' इत्येव विशेष । अन्यत्सर्व समानम् । अदन्तत्वाभावादतो लोपोऽपि न ।

॥ इति चुरादिप्रकरणम् ॥



१—स्थानिभूत अच् से पूर्व दृष्ट को विधि (कार्य) करना हो तो पर को निमित्त मानकर होने वाला जो अच् के स्थान मे आदेश है वह स्थानिवत् होता है । गण=गिनना, संख्याओं का संकलन करना । २—चङ्परक णि' पर हो तो गण' धातु के अभ्यास को इकार होता है, चकारात् अकार भी होता है ।

॥ इति चुरादिप्रकरणम् ॥



अथ ण्यन्तप्रक्रिया

स्वतन्त्र कर्ता १।४।५४॥ [1]क्रियाया स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थ कर्ता स्यात्।

तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५॥ कर्तु प्रयोजको हेतुसज्ञ कर्तृसज्ञश्च स्यात्।

हेतुमति च ३।१।२६॥ [3]प्रयोजकव्यापारे प्रेपणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्। भवन्त प्रेरयति—भावयति।

ओ पुयणज्यपरे ७।४।८०॥ [4]सनि परे यदङ्ग तदवयवाभ्यासोकारस्य इत्स्यात् पवर्ग-यण-जकारेष्ववर्णपरेषु परत। अबीभवत्। **ष्ठा** गतिनिवृत्तौ।

हेतुमतीति— हेतु = कर्तु प्रयोजकोऽस्त्यत्र (व्यापारे) इति हेतुमान् = प्रयोजकव्यापारस्तस्मिन् वाच्ये धातो (भूवादयो धातव, सनाद्यन्ता—धातव इति सूत्रद्वयविहित धातु सज्ञकेभ्य) णिच प्रत्ययो भवति एतदेवाह—प्रयोजकव्यापारे इति।

भवन्त प्रेरयतीति—एव ज्ञेयम्—देवदत्तो भवति, यज्ञदत्त प्रेरयति इत्यर्थे यज्ञदत्तो देवदत्त भावयति इति। अत्र देवदत्त प्रयोज्यो यज्ञदत्तश्च प्रयोजक। एव देवदत्तो भवति, भवन्त त यज्ञदत्त राजदत्तौ '**भावयत**' इति। एव देवदत्तो भवति, चैत्र-मैत्र-कृष्णा प्रेरयन्ति—इत्यर्थे भवन्त देवदत्त चैत्रमैत्रकृष्णा '**भावयन्ति**' इति। स भवति त्व प्रेरयसि—इत्यर्थे त त्व भावयसि। एवमेव सर्ववचनेषु सर्वलकारेषु च प्रत्यया भवन्तीति बोध्यम्। अत्र प्रयोज्यकर्तु स्वतन्त्र कर्तेति प्राप्ता कर्तृसज्ञा प्रबाध्य 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ' इति सूत्रेण कर्मसज्ञाया 'कर्मणि द्वितीया' इति द्वितीया क्रियते। तथा चैवमेव सर्वेषा धातूना विग्रहे क्रम ज्ञेय।

अबीभवत—'भू' इत्यस्माद्धेतुमति चेति णिच्यनुबन्धलोपे सनाद्यन्तेति धातुत्वे

१—क्रिया (कार्य) मे स्वतन्त्रता से विवक्षित जो अर्थ वह कर्तृ संज्ञक होता है। जैसे— देवदत्त पढता है' यहाँ पठन रूप क्रिया मे देवदत्त कर्ता' है इसी प्रकार सभी जगह जानना। २—कर्ता का प्रयोजक (प्रेरणा करने वाला) हेतुसज्ञक तथा कर्तृसंज्ञक भी होता है। जैसे देवदत्त पढता है यज्ञदत्त प्रेरणा करता है तो यहाँ यज्ञदत्त उसके पढने में हेतु भी हो रहा है। ३—प्रयोजक प्रेरणा करनेवाले के व्यापार मे प्रेरणा अध्येषणा—आदि कोई वाच्य हों तो धातु से णिच् प्रत्यय होता है। ४—अवर्णपरक पवर्ग, यण् या जकार पर हो तो सन् परे रहते अङ्गावयव अभ्यास के उकार को इकार आदेश होता है। ष्ठा चलने से रुकना, ठहरना खडा होना, बैठना।

[1]अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्याता पुड णौ ७ । ३ । ३६ ॥ स्थापयति ।

तिष्ठतेरित् ७ । ४ । ५ ॥ [2]उपधाया इदादेश स्याच्चड परे णौ । अतिष्ठिपत् । **घट** चेष्टायाम् ।

मिता ह्रस्व ६ । ४ । ९२ ॥ [3]घटादीना ज्ञपादीना चोपधाया ह्रस्व स्याण्णौ । घटयति । **ज्ञप** ज्ञाने ज्ञापने च । ज्ञपयति । अजिज्ञपत् ।

॥ इति ण्यन्तप्रक्रिया ॥



अथ सन्नन्तप्रक्रिया ।

धातो कमण समानकर्तृकादिच्छाया वा ३ । १ । ७ ॥ [4]इषिकमण इषिणैककर्तृकाद्धातो सन्प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् । **पठ** व्यक्ताया वाचि ।

लुङ, तिप, अट, च्लि—आदिषु कृतेषु 'णिश्रिद्रु—' इति च्लेश्चङि—अनुबन्धलोपे, णेरनिटीति णेर्लोपे चङीति द्वित्वेऽभ्यासत्वे ह्रस्व इति ह्रस्वे, अभ्यासे चर्चेति भकारस्य बकारे अबुभू अति' इति स्थिते वद्धावादेशे, 'णौ चङि— इति ह्रस्वे, 'सन्वल्लघुनि—' इति सन्वद्भावे 'ओ पुयणज्यपरे इति अभ्यासोकारस्येत्वे, दीर्घो लघोरित्यभ्यासस्य दीर्घे, इतश्चेति तिप इकारलोपे 'अबीभवत्' इति ।

अतिष्ठिपत—'ष्ठा इत्यस्य 'धात्वादे ष स ' इति षस्य सत्वे, निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय इति ठकारस्यापि निवृत्तौ 'स्था इत्यस्मात् हेतुमति च' इति णिच्यनुबन्धलोपे, धातुसंज्ञाया लुङ तिप अट च्लि—आदिषु कृतेषु—'अर्तिह्री व्ली—' इत्यादिना पुक्यनुबन्धलोपे, 'णिश्रिद्रुस्रुभ्य —' इति च्लेश्चङ्यनुबन्धलोपे, तिष्ठतेरिदिति—उपधाया इकारे, णेर्लुकि, 'चङि' इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादि शेष बाधित्वा 'शर्पूर्वा खय' इति थशेषे, अभ्यासस्य चर्त्वे, 'आदेशप्रत्यययो ' इति षत्वे च कृते 'अतिष्ठिपत्' इति ।

॥ इति ण्यन्तप्रक्रिया ॥



इषिकमण—धातोरर्थाद्धातुमात्रात् सन् प्रत्ययो भवतीच्छायाम् । कीदृशाद्

१—णि पर मे हो तो अर्ति, ह्री, व्ली री क्नूयी, क्ष्मायी, एवं आदन्तधातुओं को पुक् का आगम होता है । २—चङ्परक णि पर हो तो स्था धातु की उपधा के स्थान में इकार होता है । ३—णि पर हो तो घटादि एवं ज्ञपादि धातुओं की उपधा को ह्रस्व होता है ।

॥ इति ण्यन्तप्रक्रिया ॥



12 ४—इच्छारूपी क्रिया का कर्म होता हुआ इच्छारूपी क्रिया का कर्ता ही कर्ता हो जिसका

सन्यङो ६ । १ । ९ ॥ [1]सन्नन्तस्य यङन्तस्य च धातोरनभ्यासस्य प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । सन्यत । पठितुमिच्छति पिपठिषति । कमण किम् ? गमनेनेच्छति । समानकतृकात् किम् ? शिष्या पठन्त्वितीच्छति गुरु । वा ग्रहणद्वाक्यमपि । लुङ् सनोघस्लृ ।

स स्यार्धधातुके ७ । ४ । ४९ ॥ [2]सस्य त स्यात्सादावार्धधातुके । अत्तुमिच्छति जिघत्सति । 'एकाच' इति नेट ।

अज्झनगमा सनि ६ । ४ । १६ ॥ [3]अजन्ताना हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि ।

इको झल १ । २ । ९ ॥ [4]इगन्ताज्झलादि सन् कित् स्यात् । ऋृत इद्धातो । कतुमिच्छति चिकीषति ।

सनि ग्रहगुहोश्च ७ । २ । १२ ॥ [5]ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण न स्यात् । बुभूषति ।

॥ इति सन्नन्तप्रक्रिया ॥



धातो ? इषिकमण इच्छाक्रिया कमभूतात्, पुनश्च इच्छाकतृकतृकात् । यथा—'पठितुमिच्छति' इति विग्रहे इच्छाक्रियाकम–पठनम्, इच्छाक्रियाकर्ता–चत्रादि स एव पठनस्यापि । पठनेनेच्छतीत्यत्र पठनस्येच्छाकमत्वाभावात् सन् प्रत्ययो न । एव शिष्या पठन्त्वितीच्छति गुरुरित्यत्र शिष्याणा पठनकतृत्वाद् गुरुश्चेच्छाकतृत्वात्समानकतृत्वाभावान्न सन् ।

पिपठिषति—पठितुमिच्छतीति विग्रहे 'धातो कमण –' इत्यादिना पठे सन् प्रत्यये सन्यङो' इति 'पठ' इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये 'सन्यत' इतीत्वे, 'सनाद्यन्ता –०' इति सन्नन्तस्य धातुत्वे लट–तिप–शप्–पररूपादिषु कृतेषु सस्य षत्वे 'पिपठिषति' इति ।

बुभूषति—भवितुमिच्छतीति विग्रहे 'धातो कमण –' इति सनि, आर्धधातुक-

ऐसे धातु से सन् प्रत्यय होता है विकल्प से इच्छारूपी अर्थ गम्यमान हो तब । पठ=पढना ।

१—सन्नन्त एव यङन्त धातुओं के प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है तथा अजादि धातुओं के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है । पिपठिषति–पढना चाहता है । २—सादि आर्धधातुक पर हो तो सकार के स्थान मे तकार होता है । जिघत्सति=भक्षण करना चाहता है । ३—झलादि सन् प्रत्यय पर हो तो अजन्त धातु हन् धातु, एव अजादेश गम् धातु को दीर्घ होता है । ४—इगन्त (इक् है अन्त में जिसके ऐसे) धातु से परे झलादि सन् कित होता है । चिकीषति=करना चाहता है । ५—ग्रह्, गुह्, एवं उगन्त धातु से परे सन् को

अथ यङन्तप्रक्रिया ।

धातोरेकाचो हलादे क्रियासमभिहारे यङ् ३ । १ । २२ ॥ [1]पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ स्यात् ।

गुणो यङलुको ७ । ४ । ८२ ॥ [2]अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि परत । ङिदन्तत्वादात्मनेपदम् । पुन पुनरतिशयेन वा भवति बोभूयते । बोभूयाञ्चक्रे । अबोभूयिष्ट ।

नित्य कौटिल्ये गतौ ३ । १ । २३ ॥ [3]गत्यर्थात्कौटिल्य एव यङ् स्यान्न तु क्रियासमभिहारे ।

दीर्घोऽकित ७ । ४ । ८३ ॥ [4]अकित ऽभ्यासस्य दीर्घ स्याद्यङ्यङ्लुको । कुटिल व्रजति-वाव्रज्यते ।

स्येड वलादेरिति प्राप्तस्येट सनि ग्रहगुहोश्चेति निषेधे, इको झलीति कित्वेन गुणस्यापि निषेधे, सन्यङोरिति द्वित्वेऽभ्यासत्वे ह्रस्वे, अभ्यासे चर्चेति चर्त्वे, जश्त्वे, सस्य षत्व बुभूष इत्यस्य सनाद्यन्तेति धातुसज्ञाया लट–तिप्–शप्–पररूपादिषु कृतेषु 'बुभूषति' इति ।

॥ इति सन्नन्तप्रक्रिया ॥



बोभूयते—अतिशयेन पुन पुनर्वा भवतीति विग्रहे भूधातो 'धातोरेकाचो–' इति यङि 'सन्यङो' इति द्वित्वे, अभ्यासत्वेऽभ्यासस्य ह्रस्वे जश्त्वे, 'गुणो यङलुको' इति गुणे च कृते 'बोभूय' इत्यस्य धातुसज्ञाया ङित्वादात्मनेपदत्वेन तप्रत्यये, शबादिकार्ये कृते 'बोभूयते' इति । स्मार स्मारमितिवत् 'बोभूयते' इत्यस्य द्वित्व तु न 'उक्तार्थानामप्रयोग' इति न्यायेन यङा उक्तत्वात् ।

इट् नहीं होता है । बुभूषति=होना चाहता है ।

॥ इति सन्नन्तप्रक्रिया ॥



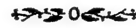
१—पौन पुन्य (बारम्बार) भृश (अत्यधिक) अर्थ द्योत्य (गम्यमान) हो तो एकाच् हलादि धातु से यङ् प्रत्यय होता है । २—यङ् पर हो या यङ्लुक् का विषय हो तो अभ्यास को गुण होता है । बोभूयते=बारम्बार या अत्यन्त हो रहा है । ३—गत्यर्थक धातुओं से कौटिल्य (टेढ़े) अर्थ से ही यङ् प्रत्यय होता है, क्रियासमभिहार (बारम्बार) करने अर्थ मे नहीं होता । ४—यङ् प्रत्यय पर हो या यङ्लुक् का विषय हो तो कित् भिन्न अभ्यास को दीर्घ होता है । वाव्रज्यते=टेढ़ा जा रहा है ।

यस्य हल ६ । ४ । ४९ ॥ [1]यस्येति सघातग्रहणम् । हल परस्य य-शब्दस्य लोप स्यादाधधातुके । आदे परस्य । अतो लोप । वाव्रजाञ्चक्रे । वाव्रजिता ।

रीगृदुपधस्य च ७ । ४ । ९० ॥ [2]ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ यङ्लुको । वरीवृत्यते । वरीवृताञ्चक्रे । वरीवर्तिता ।

क्षुभ्नादिषु च ८ । ४ । ३९ ॥ [3]णत्व न । नरीनृत्यते । जरीगृह्यते ।

॥ इति यङन्तप्रक्रिया ॥



अथ यङ्लुक्प्रक्रिया ।

यङोऽचि च २ । ४ । ७४ ॥ [4]यङोऽचि प्रत्यये लुक स्यात्, चकारात्त विनाऽपि क्वचित् । अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति । प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वम् । अभ्यासकायम् । धातुत्वाल्लडादय । शेषात्कतरीति परस्मैपदम् । चकरीत चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक् ।

यङो वा ७ । ३ । ९४ ॥ [5]यङलुगन्तात्परस्य हलादे पित सावधातुकस्येड् वा स्यात् । भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङलुकि भाषाया न, 'बोभूतु तेतिक्ते' इति छन्दसि निपातनात् । बोभवीति—बोभोति । बोभूत ।

बोभवीति–बोभोति—अतिशयेन पुन पुनर्वा भवतीति विग्रहे भूधातो 'धातोरेकाच – इति यङि, द्वित्वापेक्षयान्तरङ्गत्वात्पूर्वं यङोऽचि चेति यङो लुकि, प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वमाश्रित्य 'भू' इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये कृते बोभू' इत्यस्य धातुसज्ञाया लटि, शेषात्कतरीति सहकारेण लट परस्मैपदमिति परस्मैपदे तिपि, शपि, यङ्लुग्बोधक 'चकरीत' शब्दस्यादादिपाठाच्छपो लुकि, 'यङो वा' इति—

१—आधधातुक पर हो तो हल् से परे 'य' शब्द का लोप होता है । २—यङ् पर हो या यङ्लुक का विषय हो तो ऋदुपधक (ऋत् उपधा वाले) धातु के अभ्यास को रीक् आगम होता है । वरीवृत्यते=बार-बार या अत्यन्त वर्तता है । ३—क्षुभ्नादिगण पठित धातुओं के नकार को णकार होता है । नरीनृत्यते=बारबार या अत्यन्त नाचता है । जरीगृह्यते=बारम्बार या अत्यन्त ग्रहण करता है ।

॥ इति यङन्तप्रक्रिया ॥



४—अच् प्रत्यय पर हो तो यङ् का लोप होता है, चकारात्—कहीं-कहीं अच् प्रत्यय के बिना भी लोप होता है । ५—यङ् लुगन्त से परे हलादि पित् सार्वधातुक को ईट्

अदभ्यस्तात् । बोभुवीति । बोभवाञ्चकार । बोभवामास । बोभविता । बोभविष्यति । बोभवीतु-बोभोतु-बोभूतात् । बोभूताम् । बोभुवतु । बोभूहि । बोभवानि । अबोभवीत्-अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभवु । बोभूयात् । बोभूयाताम् । बोभूयु । बोभयात् । बोभूयास्ताम् । बोभूयासु । गातिस्थेति सिचो लुक । यडो वेतीटपक्षे गुण बाधित्वा नित्यत्वाद् वुक । अबोभूवीत्-अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभूवु । अबोभविष्यत् ।

॥ इति यङलुक्प्रक्रिया ॥



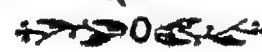
अथ नामधातवः ।

सुप आत्मन क्यच ३ । १ । ८ ॥ [1]इषिकमण एषितु सम्बन्धिन सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच प्रत्ययो वा स्यात् ।

ईडविकल्पे गुणावादेशयो कृतयो बोभवीति' इति । ईडभावे बोभोति' इति । अत्र 'भूसुवोस्तिडि' इति गुणनिषेधस्तु न 'बोभोतु' इति छन्दसि गुणस्य निपातनेन लोके यडलुकि गुणस्येष्टत्वात् ।

अबोभूवीत्—भूधातोरेकाच-' इति यङि, यडो लुकि, प्रत्ययलक्षणेन सन्यडोरिति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये, अभ्यासगुणे, ततो धातुसज्ञाया लुङि, अटि, च्लौ, सिचि कृते गातिस्थेति सिचो लुकि यडो वा' इति वैकल्पिके 'ईटि' अनुबन्धलोपे, नित्यत्वाद् गुण बाधित्वा 'भुवो वुग्लुङ्लिटो' इति वुक्यनुबन्धलोपे, इतश्चेति तिप इकारलोपे 'अबोभूवीत्' इति । ईडभावे गुणे च कृते 'अबोभोत्' इति ।

॥ इति यङ्लुक्प्रक्रिया ॥



इषिकमण इत्यादि—इच्छाक्रियाकर्तृसम्बन्धिन इच्छाक्रियाकर्मीभूतात्सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच् प्रत्ययो भवतीति स्पष्टार्थ । समन्वयो यथा—आत्मन पुत्रमिच्छति इत्यत्र पुत्रम्' सुबन्तमिच्छा-कर्तृ तथा इच्छाक्रियाकर्म च, तत्र द्वितीयान्तात्क्यच् । यत्र तु परस्य पुत्रमिच्छतीति विग्रहस्तत्र पुत्रस्य परसम्बन्धित्वात् क्यच न ।

विकल्प से होना है । बोभवीति=बारम्बार या उत्तम प्रकार से हो रहा है ।

॥ इति यङ्लुक्प्रक्रिया ॥



१—इष् (इषु इच्छायाम्) धातु का कर्म और इच्छा करनेवाले का सम्बन्धी जो सुबन्त उससे इच्छा अर्थ में क्यच् प्रत्यय होता है विकल्प से ।

सुपो धातुप्रातिपदिकयो. २ । ४ । ७२ ॥ [1]एतयोरवयवस्य सुपो लुक ।

क्यचि च ७ । ४ । ३३ ॥ [2]अवणस्य ईत्स्यात् । आत्मन पुत्रमिच्छति पुत्रीयति ।

न क्ये १ । ४ । १५ ॥ [3]क्यचि क्यङि च नान्तमेव पद नाऽन्यत् । नलोप । राजीयति । नान्तमेवेति किम् ? वाच्यति । हलि च । गीयति । पूयति । धातोरित्येव । नेह—दिवमिच्छति दिव्यति ।

क्यस्य विभाषा ६ । ४ । ५० ॥ [4]हल परयो क्यचक्यङोर्लोपो वाऽऽर्धधातुके । आदे परस्य । अतो लोप । तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न । समिधिता । समिध्यिता ।

काम्यच्च ३ । १ । ९ ॥ [5]उक्तविषये काम्यच स्यात् । पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रकाम्यति । पुत्रकाम्यिता ।

उपमानादाचारे ३ । १ । १० ॥ [6]उपमानात्कमण सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच् । पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम् । विष्णूयति द्विजम् । ❀[7]**सर्वप्रातिपदिकेभ्य क्विब्वा वक्तव्य** । अतो गुणे । कृष्ण इवाचरति कृष्णति ।

एव पुत्रेणेच्छतीत्यत्रापि न पुत्रस्येच्छाकमत्वाभावात् ।

पुत्रीयति—आत्मन पुत्रमिच्छति–इति लौकिकविग्रहे 'पुत्र अम् इत्यस्मात् सुप आत्मन क्यच' इति क्यचि अनुबन्धलोपे, सनाद्यन्तेति धातुत्वे सुपो धातु प्रातिपदिकयोरिति सुपो (अमो) लुकि, 'क्यचि च' इति–ईत्वे, धातुत्वाल्लट–तिप–शबादिषु कृतेषु 'पुत्रीयति' इति ।

१—धातु एव प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लोप होता है । २—क्यच् प्रत्यय पर हो तो अवण को 'ईकार' आदेश होता है । पुत्रीयति=अपने वास्ते पुत्र की इच्छा करता है । ३—क्यच् या क्यङ् प्रत्यय पर हो तो नान्त की पदसज्ञा होती है अन्य की नहीं । गीयति= अपने लिये वाणी चाहता है । पूर्यति=अपने लिये पू (नगरी, गाँव) चाहता है । दिव्यति= अपने लिये स्वर्ग चाहता है । ४—आर्धधातुक पर हो तो हल् से परे जो क्यच् उसका लोप विकल्प से होता है । समिध्यति=अपने लिये लकडी चाहता है । ५—उक्त विषय में (इष् धातु का कर्म हो, इच्छा कर्ता का सम्बन्धी हो तद्वाचक सुबन्त से इच्छा अथ में) क्यच् प्रत्यय होता है । पुत्रकाम्यति—अपने वास्ते पुत्र चाहता है । ६—उपमानवाचक कर्म संज्ञक सुबन्त से आचार अर्थ में क्यच प्रत्यय होता है । पुत्रीयति छात्रम्=शिष्य को पुत्र के समान मानता है । विष्णूयति द्विजम्—ब्राह्मण को विष्णु की तरह मानता है । ७—प्रातिपदिकमात्र से आचार अर्थ में विकल्प से क्विप् प्रत्यय होता है । कृष्णति=कृष्ण

स्व इवाचरति स्वति । सस्वौ ।

अनुनासिकस्य क्विझलो क्ङिति ६ । ४ । १५ ॥ [1]अनुनासिकान्तस्योपाधाया दीघ स्यात्क्वौ झलादौ च क्ङिति । इदमिवाचरति इदामति । राजेव राजानति । पन्था इव पथीनति ।

कष्टाय क्रमणे ३ । १ । १४ ॥ [2]चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ स्यात् । कष्टाय क्रमते कष्टायते । पाप कर्तुमुत्सहत इत्यर्थ ।

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्य करणे ३ । १ । १७ ॥ [3]एभ्य कर्मभ्य करोत्यर्थे क्यङ स्यात् । शब्द करोति शब्दायते । [ग सू] [4]**तत्करोति तदाचष्टे**—इति णिच । [5]**प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च** । प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच स्यात्, इष्ठे यथा—प्रातिपदिकस्य पुवद्भाव रभाव-टिलोप-विन्मतुब्लोपयणादिलोप—प्रस्थस्फाद्यादेश—भसञ्ज्ञास्तद्वण्णावपि स्यु । इत्यल्लोप । घट करोत्याचष्टे वा—घटयति ।

॥ इति नामधातव ॥



पुवद्भावरभावेत्यादि—उदाहरणानि—पुवद्भावस्य—पटवीमाचष्टे पटयति भसञ्ज्ञाया अपि इदमेव । रभावस्य—दढमाचष्टे द्रढयति । टिलोपस्य-पटुमाचष्टे पटयति । विनो लुकि—स्रग्विणमाचष्टे स्रजयति । मतुब्लुकि—श्रीमन्त करोति श्राययति । यणादिलोपे-स्थूलमाचष्टे स्थवयति, दूर करोति दवयति । प्रादेशस्य—प्रियमाचष्टे प्रापयति । स्थादेशस्य—स्थिर करोति स्थापयति । स्फादेशस्य—स्फिरमाचष्टे स्फापयति ।

क समान आचरण करता है । स्वति=अपने सदृश मानता है ।

१—क्विप् और झलादि कित् ङित् पर हो तो अनुनासिकान्त की उपधा को दीघ होता है । इदामति=इसके समान व्यवहार करता है । राजानति—राजा जैसा व्यवहार करता है । पथीनति-मार्ग सा मानता है । २—चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से उत्साह अथ में क्यङ् प्रत्यय होता है । कष्टायते पाप करना चाहता है । ३—क्रमवाचक शब्द, वैर कलह, अभ्र, कण्व, मेघ-शब्दों से 'करोति' अर्थ मे क्यङ् प्रत्यय होता है । ४—द्वितीयान्त से 'करोति' एवं 'आचष्टे' अर्थ में णिच् प्रत्यय होता है । ५—प्रातिपादिक मे धात्वर्थ में 'णिच्' प्रत्यय होता है, वह बहुलता से इष्ठवत् होता है । (इष्ठन् प्रत्यय के पर रहने पर जो काय होते हैं वे णिच् पर रहते भी होते हैं) ।

॥ इति नामधातव ॥



अथ कण्ड्वादयः ।

कण्ड्वादिभ्यो यक् ३ । १ । २७ ॥ [1]एभ्यो धातुभ्यो नित्य यक स्या त्स्वार्थे । **कण्डूञ** गात्रविघषणे । कण्डूयति । कण्डूयते–इत्यादि ।

॥ इति कण्डवादयः ॥



अथात्मनेपदप्रक्रिया ।

कतरि कमव्यतिहारे १ । ३ । १४ ॥ [2]क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मने पदम् । व्युतिलुनीते । अन्यस्य योग्य लवनमन्य करोतीत्यथ ।

न गतिहिंसार्थेभ्य १ । ३ । १५ ॥ [3]व्यतिगच्छन्ति । व्यतिघ्नन्ति ।

नेर्विश १ । ३ । १७ ॥ [2]निविशते ।

परिव्ययेभ्य क्रिय १ । ३ । १८ ॥ [4]परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते ।

विपराभ्या जे १ । ३ । १९ ॥ [5]विजयते । पराजयते ।

समवप्रविभ्य स्थ १ । ३ । २२ ॥ [6]सन्तिष्ठते । अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ।

अपह्नवे ज्ञ १ । ३ । ४४ ॥ [7]शतमपजानीते । अपलपतीत्यथ ।

अकमकाच्च १।३।४५ ॥ [8]सर्पिषो जानीते । सर्पिषोपायेन प्रवर्तते इत्यथ ।

उदश्चर सकमकात् १ । ३ । ५३ ॥ [9]धममुच्चरते । उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यथ ।

न गतिहिंसार्थेभ्य—गत्यथकेभ्यो हिंसार्थेभ्यश्च कमव्यतिहारे आत्मनेपद न ।

१—कण्ड्वादिगणपठित धातुओं से स्वाथ मे 'यक्' प्रत्यय नित्य ही होता है ।

॥ इति कण्डवादय ॥



२—क्रिया का विनिमय (अदल–बदल) द्योत्य (गम्यमान) हो तो, धातु से कर्ता अथ मे आत्मनेपद होता है। ३—गत्यर्थक एव हिसाथक धातुओं से कर्मव्यतिहार अथ मे आत्मनेपद नहीं होता है । ४— नि' उपसर्ग से युक्त विश् धातु से आत्मनेपद होता है । ३—परि वि या अव उपसर्ग पूवक क्रीञ् धातु से आत्मनेपद होता है । ५—वि या परा उपसर्ग से युक्त 'जि' धातु से आत्मनेपद होता है । ६—सम्, अव, प्र, वि उपसर्ग से युक्त स्था धात से आत्मनेपद होता है । ७—अपह्नव (छिपाने) अर्थ में ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है । शतमपजानीते–सौ रुपया छिपा रहा है । ८—अकर्मक ज्ञा धातु से भी आत्मनेपद होता है । सर्पिषो जानीते–घी के बहाने से प्रवृत्त हो रहा है । ९—उत् पूवक सकर्मक चर् धातु से आत्मनेपद होता है ।

समस्तृतीयायुक्तात् १ । ३ । ५४ ॥ [1]रथेन सञ्चरते ।

दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे १ । ३ । ५५ ॥ [2]सम्पूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्त स्यात्, तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे । दास्या सयच्छते कामी ।

पूर्ववत्सन १ । ३ । ६२ ॥ [3]सन पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्य सन्नन्ताद प्यात्मनेपद स्यात् । एदिधिषते ।

हलन्ताच्च १ । २ । १० ॥ [4]इक्समीपाद्धल परो झलादि सन् कित्स्यात् । निविविक्षते ।

गन्धनाऽवक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञ १ । ३ । ३२ ॥ [5]**गन्धन**—सूचनम् । उत्कुरुते । सूचयतीत्यथ । **अवक्षेपण**—भत्सनम् । [6]श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते । भत्सयतीत्यथ [7]हरिमुपकुरुते । सेवत इत्यथ । [8]परदारान्प्रकुरुते । तेषु सहसा प्रवर्तते । [9]एधो दकस्योपस्कुरुते । गुणमाधत्ते । [10]कथा प्रकुरुते । प्रकथयतीत्यथ । [11]शत प्रकुरुते । धर्माथ विनियुङ्क्ते । एषु किम् ? कट करोति ।

भुजोऽनवने १।३।६६ ॥ [12]ओदन भुङ्क्ते । अनवने किम् ? मही भुनक्ति ।

। इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ॥



समस्तृतीयायुक्तात—तृतीयान्तेन युक्तात्सम्पूर्वाच्चरतेरात्मनेपद स्यात् ।

गन्धनेति—गन्धनाद्यर्थेषु कृञ आत्मनेपद स्यात् ।

॥ इत्यात्मनेपदक्रिया ॥



१—तृतीयान्त से युक्त सम्-पूर्वक चर् धातु से आत्मनेपद होता है । रथेन सञ्चरते= रथ से घूमता है । २—तृतीया विभक्ति चतुर्थी के अर्थ मे यदि प्रयुक्त हो तो उस तृतीयान्त से युक्त सम्-पूर्वक दाण् धातु से आत्मनेपद होता है । दास्या संयच्छते कामी=कामुक मनुष्य दासी को धन दे रहा है । ३—सन् से पूर्व जो धातु उसके तुल्य सन्नन्त से भी आत्मनेपद होता है । एदिधिषते-बढना चाहता है । ४—इक के समीप हल् से झलादि सन् प्रत्यय कित् सज्ञक होता है । निविविक्षते-प्रविष्ट होना चाहता है । ५-गन्धन (चुगुलखोरी) अवक्षेपण (भय देना), सेवन, साहसिक्य (बलात्कार), प्रतियत्न (गुणग्राहकता) प्रकथन उपयोग (धर्माथदानादि) अर्थों में कृ धातु से आत्मनेपद होता है । उत्कुरुते–चुगुली करता है । ६—बाज (अन्य) पक्षीपर झपटता है । ७—हरि की सेवा करता है । ८—दूसरे की स्त्री के साथ बलात्कार करता है । ९—काठ जल का गुण लेता है । १०—कथा कहता है । ११—सौ या सैकड़ों रुपया धर्मार्थ करता है । १२-भुज् धातु से भोजन अर्थ में आत्मनेपद होता है ।

॥ इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ॥



अथ परस्मैपदप्रक्रिया ।

अनुपराभ्यां कृञः १ । ३ । ७९ ॥ [1][अनुपराभ्यां कृञः] कर्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात् । अनुकरोति । पराकरोति ।

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १ । ३ । ८० ॥ [2]क्षिप प्रेरणे । स्वरितेत् । अभिक्षिपति ।

प्राद्वहः १ । ३ । ८१ ॥ [3]प्रवहति ।

परेर्मृषः १ । ३ । ८२ ॥ [4]परिमृषति ।

व्याङ्परिभ्यो रमः १ । ३ । ८३ ॥ [5]रमु क्रीडायाम् । विरमति ।

उपाच्च १ । ३ । ८४ ॥ यज्ञदत्तमुपरमति । [6]उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् ।

॥ इति परस्मैपदप्रक्रिया ॥ इति पदव्यवस्था ॥



अनुपराभ्यामिति—आभ्यां कृञः परस्मैपदं स्यात् ।

अभिप्रति—इत्यादिभ्यः परस्मात् क्षिपः परस्मैपदं स्यात् ।

परेर्मृष इति—परिपूर्वान्मृषते परस्मैपदं स्यात् ।

व्याङ्परीति—एभ्यो रमते परस्मैपदं स्यात् ।

विरमति—विपूर्वक-रम्-धातोर्लटि, तस्य व्याङ्परिभ्य इति परस्मैपदे कृते तिप्-शबादिना तस्य सिद्धिः । **उपाच्चेति**—उपाद्रमते परस्मैपदं स्यात् ।

॥ इति परस्मैपदप्रक्रिया ॥



१—क्रिया का फल कर्ता में जाय और गन्धनावक्षेपण—आदि कोई अर्थ गम्यमान हो तो अनु या परा उपसर्ग से युक्त कृ धातु से परस्मैपद होता है । २—अभि, प्रति या अति पूर्वक क्षिप् धातु से परस्मैपद होता है । अभिक्षिपति=फेंकता है । ३—प्र उपसर्ग से परे वह् धातु से परस्मैपद होता है । प्रवहति=बहता है । ४—परि उपसर्ग से परे मृष् धातु से परस्मैपद होता है । परिमृषति=सहन करता है । ५—वि, आङ् या परि उपसर्ग से परे रम् धातु से परस्मैपद होता है । ६—उप उपसर्ग से परे रम् धातु से परस्मैपद होता है ।

॥ इति परस्मैपदप्रक्रिया ॥



अथ भावकर्मप्रक्रिया ।

भावकर्मणो १।३।१३ ॥ [1][भावे कर्मणि च धातो] र्लस्यात्मनेपदम् ।

सार्वधातुके यक् ३ । १ । ६७ ॥ [2]धातोर्यक् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके । **भावः**—क्रिया । सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याऽभावात्प्रथमः पुरुषः । तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वे द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि, किं त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः । त्वया मया अन्यैश्च भूयते । बभूवे ।

स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६ । ४ । ६२ ॥ [3]उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाऽङ्-

---

इदमत्र ध्येयम्—एतावत्पर्यन्तं धातुभ्यः कर्तरि लकारानभिधायेदानीमकर्मकेभ्यो भावे सकर्मकेभ्यः कर्मणि च लकारं विधातुं प्रकरणस्यारम्भः ।

भावकर्मणो—भावे कर्मणि च यो लस्तस्यात्मनेपदम् स्यात् ।

भाव इति—नन्वकर्मकधातुभ्यो भावे 'ल' क्रियते, तत्र भावपदार्थः क इति चेत् ? भावः क्रिया भावना व्यापार इति पर्यायशब्दाः । ननु सर्वेषां धातूनां क्रियावाचित्वाद्धातुमात्रस्य भावरूपोऽर्थः, स च धातुनैव लब्धः, पुनस्तदर्थे लकारविधानं किमर्थमिति चेच्छृणु—यो हि भावो धातुनोच्यते स एव लकारेणानूद्यते न तु लकारस्य तद्भिन्नभावोऽर्थः । ननु भावे लकारे प्रथममध्यमोत्तमपुरुषमध्ये कस्य प्रयोग इति चेच्छृणवन्तु । तिङ्वाच्यकारकवाचिनोर्युष्मदस्मदोः सत्त्वे एव मध्यमोत्तमयोः प्रयोगः, भावे तु तिङ्वाच्यकारकाभावेन तयोर्न प्रयोगः । तर्हि प्रथमपुरुषस्यैव सर्वाणि वचनानि भवेयुरितीदमपि न, तेनानूद्यमानस्य भावस्याद्रव्यरूपत्वाद् द्वित्वाद्यभावात्प्रथमपुरुषस्यापि द्विवचन–बहुवचने न स्याताम् । एकवचनस्याभावस्तु तु न शङ्क्यम्, भावे प्रत्यये सर्वत्रौत्सर्गिकैकवचनस्य स्वीकारात् । तथा च भावे लकारे कृते 'कर्ता' अनुक्तो भवतीति कर्तरि तृतीया, सर्वलकारेषु प्रथमपुरुषैकवचनञ्च । यथोदाहरणम् त्वया मया अन्यैश्च भूयते इति । कर्मणि लकारे तु कर्मण उक्तत्वात्तत्र प्रथमा, कर्तुश्चानुक्तत्वात्तत्र तृतीया, परन्तु कर्मणोऽनुसारेणैव सर्वेषां पुरुषाणां वचनानाञ्च प्रयोगः, यथा—चैत्र आनन्दमनुभवतीति 'चैत्रेणानन्दोऽनुभूयते' । चैत्रस्त्वामनुभवतीति 'चैत्रेण त्वमनुभूयसे' मैत्रो मामनुभवतीति 'मैत्रेणाहमनुभूये' इत्यादि ।

१—भाव एवं कर्म में प्रत्यय होने पर धातु के लकार को आत्मनेपद होता है। २—भाव या कर्म वाची सार्वधातुक पर हो तो धातु से यक् प्रत्यय होता है। ३–लकार यदि भाव

गकार्यं वा स्यात्स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च। चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद्वृद्धिः। भाविता-भविता। भाविष्यते-भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट-भविषीष्ट।

चिण् भावकर्मणोः ३।१।६६॥ [1]च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे। अभावि। अभाविष्यत। अभविष्यत।

अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात्सकर्मकः। अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्-अन्वभविषाताम्। णिलोपः। भाव्यते। भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे। चिण्वदिट्। आभीयत्वेनाऽसिद्धत्वाण्णिलोपः। भाविता-भावयिता। भाविष्यते-भावयिष्यते। अभाव्यत। भाव्येत। भाविषीष्ट-भावयिषीष्ट। अभावि। अभाविषाताम्-अभावयिषाताम्। बुभूष्यते। बुभूषाञ्चक्रे। बुभूषिता। बुभूषिष्यते। बोभूय्यते। बोभूयते। अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः। स्तूयते विष्णुः। स्ताविता-स्तोता। स्ताविष्यते-स्तोष्यते। अस्तावि। अस्ताविषाताम्-अस्तोषाताम्।

भाविता भविता—भूधातोर्भावे लुटि, तस्य तादेशे, स्यतासीति तासि 'भू तास त' इति स्थिते, 'स्यसिच-' इति चिण्वद्भावे, तासेरिडागमे च, चिण्वद्भावाद् वृद्धावादेशे च 'भावि तास त' इति जाते तस्य डादेशे, टिलोपे 'भाविता' इति। चिण्वद्भावाभावपक्षे 'आर्धधातुकस्य—' इतीटि गुणादि कृते 'भविता' इति।

भाव्यते इति—अत्रेदं ध्येयम्—अकर्मधातुभ्यो यत्र हेतुमण्णिच् तत्र णिजन्तावस्थाया प्रयोज्यस्य 'गतिबुद्धि०' इति कर्मत्व, प्रयोजकस्य कर्तृत्वम्। एवञ्च ण्यन्त्य-कर्मकाणां सकर्मकत्वम् तत्र प्रयोज्यकर्मणि प्रत्यये तस्य प्रथमान्तता, प्रयोजकस्य तृतीयान्तता। यथा—'देवदत्तो यज्ञदत्तं भावयति' 'देवदत्तेन यज्ञदत्तो भाव्यते'। चैत्रस्त्वां भावयति-चैत्रेण त्वं भाव्यसे। चैत्रो मां भावयति चैत्रेणाहं भाव्ये इत्यादि।

भाविता-भावयिता—ण्यन्ताद् भावयतेः कर्मणि लुटि त-तासादि कार्ये कृते

या कर्म में हुआ हो और स्य, सिच्, सीयुट् या तास् प्रत्यय पर हों तो, उपदेश में जो अच तदन्त जो धातु उनको एवं हन्, ग्रह्, दृश्-धातुओं को विकल्प से चिण्वत् 'चिण के सदृश' अङ्गकार्य होता है एवं स्यादियों को इट् का आगम भी होता है।

१—भाव-कर्म-वाची 'त' शब्द पर हो तो च्लि के स्थान में चिण् होता है। अनुभूयते =अनुभव किया जाता है।

ऋ गतौ । गुणोऽर्तीति गुणः । अर्यते । **स्मृ** स्मरणे । स्मर्यते । सस्मरे । उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट् । आरिता—अर्ता । स्मारिता—स्मर्ता । अनिदिताmिति नलोपः । स्रस्यते । इदितस्तु नन्द्यते । सम्प्रसारणम्—इज्यते ।

तनोतेर्यकि ६ । ४ । ४४ ॥ [1][तनोतेर्यकि] आकारोऽन्तादेशो वा स्यात् । तायते-तन्यते ।

तपोऽनुतापे च ३ । १ । ६५ ॥ [2]तपश्च्लेश्चिण न स्यात् कर्मकर्तर्यनुतापे च । अन्वतप्त पापेन । घुमास्थेतीत्त्वम् । दीयते । धीयते । ददे ।

आतो युक् चिण्कृतोः ७ । ३ । ३३ ॥ [3]आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । दायिता दाता । दायिषीष्ट दासीष्ट । अदायिषाताम् । भज्यते ।

भञ्जेश्च चिणि ६ । ४ । ३३ ॥ [4]नलोपो वा स्यात् । अभाजि—अभञ्जि । लभ्यते ।

विभाषा चिण्णमुलोः ७ । १ । ६९ ॥ [5]लभेर्नुमागमो वा स्यात् । अलम्भि—अलाभि ।

॥ इति भावकर्मप्रक्रिया ॥

'भावि तास त' इति स्थिते, 'स्यसिचसीयुट' इति चिण्वद्भावे इटि च कृते 'भावि इ तास त' इति दशायाम् असिद्धवदत्राभादिति चिण्वदिटोऽसिद्धत्वेनेटपरत्वाभावात् णेरनिटीति णेर्लोपे, 'लुटः प्रथमस्य—' इति डादेशे टिलोपे च कृते 'भाविता' इति । चिण्वद्भावपक्षे 'आर्धधातुकस्य—' इति—इट्यनुबन्धलोपेऽत्र पक्षे णिलोपाभावे गुणायादेशयोः कृतयोः 'भावयिता' इति ।

उपदेशग्रहणादिति—अयम्भावः ऋधातोर्लुटि 'ऋ तास् त' इति स्थिते परत्वात् 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे कृतेऽजन्तत्वाभावाच्चिण्वद्भावो न स्यादिति न शङ्क्यम्, उपदेशे 'ऋ' इत्यस्याजन्तत्वेन सम्प्रति हलन्तत्वेऽपि तस्य प्रवृत्तेः ।

॥ इति भावकर्मप्रक्रिया ॥

१—यक् प्रत्यय पर हो तो तन् धातु को आकार अन्तादेश होता है, विकल्पसे । २—कर्मकर्तृ 'कर्म ही हो कर्ता जिसमें ऐसे' या अनुताप अर्थ गम्यमान रहने पर तप् धातु से परे जो च्लि उसको चिण् नहीं होता है । ३—चिण् एवं ञित् णित् या कृत् प्रत्यय पर हो तो आदन्त धातुओं को युक् का आगम होता है । ४—चिण् पर हो तो भञ्ज् धातु के नकार का लोप विकल्प से होता है । ५—चिण् या णमुल् प्रत्यय पर हो तो लभ् धातु को नुम् का आगम होता है, विकल्प से ।

॥ इति भावकर्मप्रक्रिया ॥



अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया ।

[1]यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात्कर्तरि भावे च लकारः ।

कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ३ । १ । ८७ ॥ [2]कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत्स्यात् । कार्यातिदेशोऽयम् । तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः । पच्यते फलम् । भिद्यते काष्ठम् । अपाचि । अभेदि । भावे तु—भिद्यते काष्ठेन ।

॥ इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥



अथ लकारार्थप्रक्रिया ।

अभिज्ञावचने लृट् ३ । २ । ११२ ॥ [1]स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने

कर्मकर्तृप्रक्रिया—इदमत्र ध्येयम्—यत्र कर्तृकरणाधिकरणकर्मकारकाणामेकस्मिन्नेव पच्—आदिधातुप्रयोगे सम्मेलनं (प्रयोगो) दृश्यते यथा चैत्रो वह्निना स्थाल्यां तण्डुलं पचति इति, तत्र चैत्रस्य कर्तृत्वाविवक्षायां तथा करणादीनामेव कर्तृत्वविवक्षायां 'वह्निः पचति', स्थाली पचति', 'तण्डुलः पचति', इतिवत्प्रयोगाः । अनुभवविरोधात्सम्प्रदानापादानयोस्तु न कदापि कर्तृत्वविवक्षेति विशेषः ।

॥ इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥



सामान्यतो लकारार्थाः प्रतिपादिताः किन्तु कतिपयानां लकाराणां विशेषार्थप्रदर्शनाय लकारार्थप्रक्रिया ।

१—जब कर्म ही कर्ता के रूप से कहा जाय 'कहना चाहें' तब वे सकर्मक धातु भी अकर्मक हो जाते हैं, अतः 'अकर्मक हो जाने से' उनसे भी कर्ता एवं भाव में लकार होता है । २—कर्म में स्थित जो क्रिया उसके साथ तुल्यक्रियावाला कर्ता कर्मवत् 'कर्म के सदृश' होता है । इस प्रकरण का अर्थ यह है—कर्म में ही कर्तृत्व की इच्छा । जैसे—पच्यते फलम्=फल स्वयं पकता है, यहाँ कर्म में कर्तृत्व बुद्धि की गयी है । 'कालेन फलं पच्यते' इस दशा में फल कर्म था, यहाँ 'स्वयमेव' कर्ता हो गया । भिद्यते काष्ठम्=काठ स्वयं फटता है । यह भी पूर्ववत् है ।

॥ इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥



१—स्मृतिबोधक शब्द धातु के उपपद 'पद के समीप' रहे तो भूत अनद्यतन अर्थ में

धातोर्लृट्। लङोऽपवादः। **वस** निवासे। स्मरसि कृष्ण! गोकुले वत्स्यामः। एवं 'बुध्यसे'—'चेतयसे' इत्यादिप्रयोगेऽपि।

न यदि ३।२।११३॥ [1]यद्योगे उक्तं न। अभिजानासि कृष्ण! यद्वने अभुञ्ज्महि?

लट् स्मे ३।२।११८॥ [2]लिटोऽपवादः। यजति स्म युधिष्ठिरः।

वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा ३।३।१३१॥ [3]वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः। कदाऽऽगतोऽसि? अयमागच्छामि, अयमागमं वा। कदा गमिष्यसि? एष गच्छामि, गमिष्यामि वा।

हेतुहेतुमतोर्लिङ् ३।३।१५६॥ [4][हेतुहेतुमतोर्लिङ्] वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति। भविष्यत्येवे-

---

स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः—वस धातोर्लङि प्राप्ते 'अभिज्ञावचने लृट्' इति लृटि, तस्य मस्प्रत्यये, स्यतासीति स्यप्रत्यये, 'सः स्यार्धधातुके' इति सस्य तत्वे 'अतो दीर्घो यञि' इति दीर्घे, मसो सस्य रुत्वे विसर्गे च उक्तरूपं सिद्ध्यति।

यजतिस्म युधिष्ठिरः—यज्धातोर्लिटि प्राप्ते 'लट् स्मे' इति लटि तत्स्थाने तिबादि कृते यजतिस्म' इति। **लट् स्मे**–स्मशब्दयोगे लट् स्यात्।

हेतुहे मतो—हेतुः करणं, हेतुमत्कार्यं, तयोर्गम्यमानत्वे भविष्यत्यर्थे लिङ् वा स्यात्पक्षे लट्।

धातु से लृट लकार होता है। हे कृष्ण! स्मरण करते हो कि हम सब गोकुल में रहा करते थे।

१—स्मृति बोधक पद उपपद हो तो यद् शब्द के योग मे धातु से लृट् लकार नहीं होता है। हे कृष्ण! क्या स्मरण कर रहे हो? जो कि हमलोगोंने वन मे खाया था। २—लिट् के विषय 'भूतकाल' में स्म के योग मे धातु से लट् लकार होता है। लिट् का बाधक है। युधिष्ठिर ने यज्ञ किया था। ३—'वर्तमाने' सूत्र के अधिकार मे जो प्रत्यय जिस धातु से कहे गये हैं, वे सभी उसी धातु से वर्तमान के समीप भूत एवं भविष्यत् अर्थ में विकल्प से भी होते हैं। 'अर्थात् वर्तमान काल के समीपवर्ती भूत तथा भविष्यत्काल मे वैकल्पिक ऐच्छिक प्रयोग हो सकते हैं। जैसे भूतकाल में प्रश्न–कदागतोऽसि=कब आये हो? उत्तर–अयमागच्छामि–यह अभी आया हूँ। भविष्य में–कदा गमिष्यसि=कब जाओगे? एष गच्छामि=अभी जाऊँगा, जा रहा हूँ। ४—हेतु 'कारण' हेतुमत् फल, कार्य। अर्थात् कार्य–कारण–भाव अर्थ में वर्तमान जो धातु उससे भविष्यत् अर्थ में लिङ् लकार विकल्प से होता है। कृष्णं

ष्यते। नेह-**हन्तीति** पलायते। विधिनिमन्त्रणेति लिङ। **विधि** प्रेरण भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवतनम्। यजेत। **निमन्त्रण**-नियोगकरणम्, आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादे प्रवतनम्। इह भुञ्जीत। **आमन्त्रण** कामचारानुज्ञा। इहाऽऽसीत। **अधीष्ट** सत्कारपूवको व्यापार। पुत्रमध्यापयेद्भवान्। **सम्प्रश्न** सम्प्रधारणम्। कि भो वेदमधीयीय उत तकम्? **प्राथन** याच्ञा। भो भोजन लभेय। एव लोट।

॥ इति लकाराथप्रक्रिया ॥ इति तिङन्तप्रकरणम ॥



अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया।

धातो ३। १। ९१॥ [1]आततीयाध्यायसमाप्तेर्ये प्रत्ययास्ने धातो परे स्यु। कृदतिङिति कृत्सञ्ज्ञा।

वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३। १। ९४॥ [2]अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्त विना।

कृत्या ३। १। ९५॥ [3]ण्वुलतचावित्यत प्राक कृत्यसञ्ज्ञा स्यु।

कतरि कृत् ३। ४। ६७॥ [4]कृत्प्रत्यय कतरि स्यात्। इति प्राप्ते—

तयोरेव कृत्यक्तखलर्था ३। ४। ७०॥ [5]एते भावकमणोरेव स्यु।

तव्यत्तव्यानीयर ३। १। ९६॥ [6]धातोरेते प्रत्यया स्यु। एधितव्यम्, एधनीय त्वया। भावे औत्सर्गिकमेकवचन क्लीबत्व च। चेतव्यश्च

एधितव्यम—अत्रेदम्बाध्यम्-त्वमेधस्व ऐधथा वा त्वया एध्यताम्-एध्येत वा त्वया एधितव्यम्-एधनीयम् वते सर्वे लिङलोटकृत्यप्रत्यया समानार्थप्रतिपादका। अत्र एध धातोरकमकत्वाद् भावे 'तयोरेव कृत्य-०' इति नियमात् 'तव्यत्तव्या-०'

नमेच्चेत्सुख यायात्= यदि श्रीकृष्ण को नमस्कार करेगा तो सुख पावेगा।

॥ इति लकारार्थप्रक्रिया ॥ ॥ इति तिङन्तप्रकरणम् ॥



१—'धातो' सूत्र से लेकर तृतीय अध्याय की समाप्ति तक जितने प्रत्यय होंगे वे धातु से परे होवें 'होते हैं'। २—इस धातो सूत्र के अधिकार मे असमानरूप जो अपवाद प्रत्यय वह उत्सर्ग का बाधक विकल्प से होता है, स्त्रियां' सूत्र के अधिकार मे कहे गये को छोड़कर। ३—'ण्वुल्तृचौ' सूत्र से पूर्व के प्रत्ययों की कृत्य' संज्ञा होती है। ४—कृत् प्रत्यय कता मे होता है। ५—कृत्य, क्त एवं खलर्थ-प्रत्यय भाव एवं कर्म में ही होते हैं। ६—तव्यत्, तव्य एवं अनीयर् प्रत्यय धातु से होते हैं। एधितव्यम्, एधनीयम्=बढ़ने योग्य, बढना

यनीयो वा धमस्त्वया। ❀[1]केलिमर उपसख्यानम। पचेलिमा माषा। पक्तव्या इत्यथ। [2]भिदेलिमा सरला। भेत्तव्या इत्यथ। कमणि प्रत्यय।

[3]**कृत्यल्युटो बहुलम ३। ३। ११३॥**

क्वचित्प्रवृत्ति क्वचिदप्रवृत्ति क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधान बहुधा समीक्ष्य चतुर्विध बाहुलक वदन्ति॥

स्नात्यनेनेति स्नानीय चूणम्। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्र।

अचो यत् ३। १। ९७॥ [4]अजन्ताद्धातोयत्। चेयम्।

ईद्यति ६। ४। ३५॥ [5]यति परे आत ईत्स्यात्। देयम्। ग्लेयम्।

पोरदुपधात् ३। १। ९८॥ [6]पवर्गान्ताददुपधाद्यत्स्यात्। ण्यतोऽपवाद। शप्यम्। लभ्यम्।

एतिस्तुशास्वृदृजुष क्यप् ३। १। १०९॥ [7]एभ्य क्यप् स्यात्।

इनि तव्यप्रत्यये, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वन सु अम् आदि कृते उक्तरूपस्य सिद्धि। अत्रैकवचनमौत्सर्गिकम्। सामान्ये नपुसकमिति नपुसकम्।

चेयम—त्व चिनु त्वया चीयताम्—इति वाक्ये त्वया चेयम्' इति। **देयम**—दा धातो 'अचो यत्' इति यति—तकारलोपे, 'ईद्यति इति धातोराकारस्य—ईत्वे सावधातुकाधधातुकयो' इति गुणे विभक्तिकार्ये च देयम् इति। **'एतिस्तु'**—इण गतौ, ष्टुञ स्तुतौ, शासु अनुशिष्टौ, वञ वरणे, दृङ् आदरे जुषी प्रीतिसेवनयो रित्येभ्य क्यप् स्यात्।

चाहिये। चेतव्य, चयनीय =एकत्र करने योग्य इकट्ठा करना चाहिये।

१—केलिमर् प्रत्यय धातु से होना है— ऐसा कहना चाहिये'। पचेलिमा माषा =उडद पकाने के योग्य हैं। २—देवदारु कटाने लायक है। ३—कृत्य एव ल्युट् प्रत्यय बहुलता मे होते हैं। बाहुलक चार प्रकार का होता है'—कहीं प्रवृत्ति का होना सूत्रका लगना' कहीं अप्रवृत्त होना, कहीं विकल्प से होना कहीं भिन्न विधान का हो जाना इत्यादि विधि के विधान को अनेक प्रकार से देखकर बहुलता को चार प्रकार से कहते हैं। स्नानीयं चूणम्=स्नान करने योग्य चूर्ण। दानीयो विप्र =दान देने योग्य ब्राह्मण। ४—अजन्त धातु से यत् प्रत्यय होना है। चेयम्=चुनने लायक। ५—यत् प्रत्यय पर हो तो आदन्त धातु क आकार को इकार आदेश होता है। देयम्=देने लायक। ग्लेयम्=दु ख होने लायक। ६—अदुपध (अकार है उपधा मे जिसके ऐसे) पवगान्त धातु से यत् प्रत्यय होता है। शप्यम्—शाप देने योग्य। लभ्यम्—प्राप्त करने योग्य। ७—इण् स्तु शास् वृ दृ एवं जुष् धातु से क्यप् प्रत्यय होना है।

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६ । १ । ७१ ॥ इत्य । स्तुत्य । **शासु** अनुशिष्टौ ।

शास इदङ्हलो ६ । ४ । ३४ ॥ [२]शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ ङ्किति । शिष्य । वृत्य । आदृत्य । जुष्य ।

मृजेर्विभाषा ६ । १ । ११३ ॥ [३]मजे क्यब्वा स्यात् । मृज्य ।

ऋहलोण्यत् ३ । १ । १२४ ॥ [४]ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोण्यत् । कायम् । हायम् । घायम् ।

चजो कुघिण्यतो ७।३।५२॥ [५]चजो कुत्व स्याद्धिति ण्यति च परे ।

मृजेवृद्धि ७ । २ । ११४ ॥ [६]मृजेरिको वृद्धि स्यात्सावधातुकाध-धातुकयो । माग्य ।

भोज्य भक्ष्ये ७ । ३ । ६९ ॥ [७]भोग्यमन्यत् ।

॥ इति कृत्यप्रक्रिया ॥



शिष्य —शास धातो एतिस्तुशास्व—' इति क्यप्यनुबन्धलोपे, शास इदङहलो इति—उपधाया इत्वे, शासिवसि—' इति सस्य षत्वे, विभक्तिकार्ये च 'शिष्य ' इति । **माग्य** —मृज धातो ऋहलाण्यत् इति ण्यति, चजो कु—' इति कुत्वेन जकारस्य गकारे, मृजेवद्धि इति वद्धौ, ततो विभक्तिकार्ये 'माग्य इति ।

॥ इति कृत्यप्रक्रिया ॥



१–पित् एव कृत् प्रत्यय पर हो तो ह्रस्व को तुक् का आगम होता है । इत्य =जाने लायक । स्तुत्य =स्तुति करने लायक । २–अङ पर हो या हलादि कित् या ङित् पर हो तो शास् धातु की उपधा को इकार आदेश होता है । शिष्य =शासन करने शिक्षा देने योग्य । वृत्य =वनने लायक । आदृत्य =आदर करने लायक । जुष्य =सेवा के लायक । ३–मृज धातु मे क्यप प्रत्यय होता है विकल्प मे । मृग्य =शुद्धि करने लायक । ४–ऋवर्णान्त एवं हलन्त धातु से ण्यत् प्रत्यय होता है । कार्यम्=करने योग्य । हायम्=हरण करने योग्य । धायम्=धारण करने योग्य । ५–ञित् या णित् प्रत्यय पर हो तो च एव ज को कुत्व होना है । ६–सार्वधातुक पर हो तो मृज् धातु के इक् को वृद्धि होती है । मार्ग्य –शोधन योग्य । ७–भक्षण के अर्थ मे 'भोज्यम्' ऐसा कुत्व भाव' निपातन होता है । अन्य अर्थ में भोग्यम्' ऐसा होता है ।

॥ इति कृत्यप्रक्रिया ॥



अथ पूर्वकृदन्तम्

ण्वुलतृचौ ३ । १ । १३३ ॥ [1]धातोरेतौ स्त । कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे ।

युवोरनाकौ ७ । १ । १ ॥ [2]'यु' 'वु' एतयोरनाऽकौ स्त । कारक । कर्ता ।

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यच ३ । १ । १३४ ॥ नन्द्यादेल्यु, ग्रह्यादेर्णिनि, पचादेरच् स्यात् । नन्दयतीति नन्दन । जनमदयतीति जनादन । लवण । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । पचादिराकृतिगण ।

इगुपधज्ञाप्रीकिर क ३ । १ । १३५ ॥ [4]एभ्य क स्यात् । बुध । कृश । ज्ञ । प्रिय । किर ।

आतश्चोपसर्गे ३ । १ । १३६ ॥ [5]प्रज्ञ । सुग्ल ।

गेहे क ३ । १ । १४४ ॥ [6]गेहे कर्तरि ग्रहे क स्यात् । गहम् ।

कर्मण्यण् ३ । २ । १ ॥ [7]कर्मण्युपपदे धातोरण प्रत्यय स्यात् । कुम्भ करोतीति कुम्भकार ।

पुसि करोतीति कारक, स्त्रिया कारिका नपुसके कारकम्, करोतीति कर्ता, स्त्रीलिङ्गे कर्त्री, नपुसके कर्तृ—इति विशेष ।

कारक—कृ धातो 'ण्वुलतृचौ' इति ण्वुल्यनुबन्धलोपे, युवोरनाकौ इति 'वु' इत्यस्य अकि णित्वाद् वृद्धौ (आर्) विभक्तिकार्ये च कृते कारक इति । **नन्दन**—'टुनदि समृद्धौ' इत्यस्य धातोर्णिलोपे, नन्दिग्रहेत्यादिना ल्युकृतेऽनुबन्धलोपे, 'युवोरनाकौ इत्यनादेशे विभक्तिकार्ये 'नन्दन' इति । लुनातीति **लवण**—लूञ् छेदने क्र्यादि । अत्र निपातनाण्णत्वम् । गृह्णातीति **ग्राही** । ग्रह उपादाने । तिष्ठतीति **स्थायी**—ष्ठा गतिनिवृत्तौ । मन्त्रयते—इति **मन्त्री**—मत्रि गुप्तभाषणे चुरा० । बुध्यते इति **बुध**—बुध अवगमने दिवा० । कृश्यतीति **कृश**—कृश तनूकरणे दि० । जानातीति **ज्ञ** । प्रीणातीति **प्रिय** । किरतीति **किर** । गृह्णाति धान्यादिकमिति **गृहम्** । कुम्भ करोतीति कुम्भकार ।

१—धातु से ण्वुल् एवं तृच् प्रत्यय होते हैं, कर्ता अर्थ मे'। २—यु को अन एवं वु को अक आदेश होते हैं। कारक—कर्ता=करनेवाला। ३—नन्द्यादि धातु से ल्यु, ग्रह्यादि से णिनि एव पचादि धातु से अच् प्रत्यय होता है। ४—इगुपध धातु एव ज्ञा, प्री, कृ-धातुओं से क' प्रत्यय होता है। ५—उपसर्ग युक्त आदन्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है। ६—गेह गृह' यदि कर्ता हो तो ग्रह् धातु से 'क' प्रत्यय होता है। ७—कर्म उपपद=पद के समीप कर्म कारक' हो तो धातु से अण् प्रत्यय होता है। कुम्भकार=कुम्हार।

आतोऽनुपसर्गे कः ३ । २ । ३ ॥ [1]आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात्कमण्युपपदे कः स्यात् । अणोऽपवादः । आतो लोप इटि च । गोदः । धनदः । कम्बलदः । अनुपसर्गे किम् ? गोसन्दायः । [2]**मूलविभुजादिभ्यः कः** । मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः । आकृतिगणोऽयम् । महीध्रः । कुध्रः ।

चरेष्टः ३ । २ । १६ ॥ [3]अधिकरण उपपदे । कुरुचरः ।

भिक्षासेनादायेषु च ३ । २ । १७ ॥ [4]भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायेति ल्यबन्तम् । आदायचरः ।

कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३ । २ । २० ॥ [5]एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात् ।

अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ८ । ३ । ४६ ॥ [6]आदुत्तरस्याऽनव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः स्यात्करोत्यादिषु परेषु । यशस्करी विद्या । श्राद्धकरः । वचनकरः ।

एजेः खश् ३ । २ । २८ ॥ [7]ण्यन्तादेजेः खश् स्यात् ।

अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ६ । ३ । ६७ ॥ [8]अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात्खिदन्ते परे न त्वव्ययस्य । शित्त्वाच्छबादि । जनमेजयतीति जनमेजयः ।

गा ददातीति–**गोदः** । कम्बलं ददातीति–**कम्बलदः** । धनं ददातीति–**धनदः** । कुरुषु देशेषु चरति–गच्छतीति **कुरुचरः** । अत्र 'चरेष्टः' इति टप्रत्यये तस्येत्संज्ञालोपयोः सुपो लुकि प्रातिपदिकत्वेन सौ, तस्य रुत्वे, विसर्गे च '**कुरुचरः**' इति । भिक्षां चरतीति–**भिक्षाचरः** । आदाय=गृहीत्वा चरतीति=**आदायचरः** । यशः करोतीति **यशस्करी** । श्राद्धं करोतीति **श्राद्धकरः** । वचनं करोतीति **वचनकरः** ।

जनमेजयः–जनान् (दुष्टान् साधून् वा) एजयति कम्पयति इति लौकिके

१—उपसर्ग से भिन्न कर्म उपपद रहते आदन्त धातु से क प्रत्यय होता है। २—मूलविभुजादिगण पठित धातुओं से क प्रत्यय होता है। महीध्र, कुध्र=पर्वत। ३—अधिकरण उपपद रहते चर् धातु से ट प्रत्यय होता है। ४—भिक्षा सेना या आदाय रूप उपपद रहते चर् धातु से ट प्रत्यय होता है। ५—हेतु ताच्छील्य या आनुलोम्य अर्थ द्योत्य हो तो कृ धातु से ट प्रत्यय होता है। ६—समास कर्तव्यता में कृ, कमि, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा या कर्णी शब्द पर हो तो अवर्ण से परे अव्यय भिन्न विसर्ग को नित्य सकार आदेश होता है। ७—ण्यन्त एज् धातु से खश् प्रत्यय होता है। ८—खित् प्रत्ययान्त धातु पर हो तो अरुष्, द्विषत् एवं अजन्त को मुम् का आगम होता है, किन्तु अव्यय को छोड़कर।

प्रियवशे वदः खच् ३ । २ । ३८ ॥ [1]प्रियवद । वशवद ।

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३ । २ ७५ ॥ [2]मनिन् क्वनिप वनिप विच् एते प्रत्यया धातो स्यु ।

नेड वशि कृति ७ । २ । ८ ॥ [3]वशादे कृत इण न स्यात् । **शॄ** हिसायाम् । सुशर्मा । प्रातरित्वा ।

विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् ६ । ४ । ४१ ॥ [4]अनुनासिकस्याऽऽत्स्यात् । विजायते इति विजावा । **ओणृ** अपनयने । अवावा । विच् । **रुष रिष** हिसायाम् । रोट । रेट । सुगण ।

क्विप च २ । २ । ७६ ॥ [5]अयमपि दृश्यते । उखास्रत् । पणध्वत् । वाहभ्रट ।

विग्रहे ण्यन्ताद् एज धातो एजि इत्यस्माद् एजे खश' इति खश प्रत्यये ऽनुबन्धलोप शित्वात्सार्वधातुकत्वे शपि, गुणेऽयादेशे पररूपे च जनशब्देन सह समासे विभक्तेर्लुकि, अरुर्द्विष–' इति पूर्वपदस्य मुमागमे जनमेजय शब्दात्सौ, तस्य रुत्वे विसर्गे च 'जनमेजय ' इति ।

प्रियवद —प्रियम् वदतीति विग्रहे 'प्रियवशे वद खच्' इति खच्यनुबन्धलोपे, 'सुपो धातु–' इति सुपो लुकि, 'अरुर्द्विषद–' इति मुम्यनुबन्धलोपे, मोऽनुस्वारे विभक्तिकार्ये च कृते प्रियवद ' इति । एव वश वदतीति वशवद ' इति ।

सुशर्मा—सु–पूर्वक हिंसार्थक शॄ धातो 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति मनिन्यनुबन्धलोपे, आर्धधातुक शेष ' इत्यार्धधातुकत्वेन सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणे, रपरे, 'आर्धधातुकस्येड्–' इति प्राप्तस्येटो 'नेड् वशि कृति' इति निषेधे 'सुशर्मन्' इत्यस्मात् प्रातिपदिकत्वेन सौ, उपधादीर्घे, सोर्लोपे नलोपे च कृते 'सुशर्मा' इति । एव प्रातरेति गच्छतीति **प्रातरित्वा** । 'उखाया ' (पात्रात्) स्रसते' इति 'उखास्रत्' । अत्र 'अनिदिताम्' इति नलोप । 'वसु स्रसु–०' इति दत्व चर्त्वं च । एव पर्णात् ध्वसते 'पणध्वत्' इत्यादि ज्ञेयम् । वाहात् भ्रशते 'वाहभ्रट्' इत्यत्र व्रश्चेति षत्वे जश्त्वे, चर्त्वादिना तस्य सिद्धि ।

१—प्रिय या वश उपपद हो तो वद् धातु से खच् प्रत्यय होता है। २—धातु से मनिन्, क्वनिप् , वनिप् एवं विच् प्रत्यय होते हैं। ३—वशादि कृत् को इट् का आगम नहीं होता है। सुशर्मा=अच्छा हिंसक। प्रातरित्वा=सबेरे जानेवाला। ४—विट् या वन् प्रत्यय पर रहे तो अनुनासिक के स्थान में आकार आदेश होता है। ५—धातु से क्विप् प्रत्यय भी (देखा जाता) होता है।

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३ । २ । ७८ ॥ [1]अजात्यर्थे सुपि धातोर्णि निस्ताच्छील्ये द्योत्ये । उष्णभोजी ।

मन ३ । २ । ८२ ॥ [2]सुपि मन्यतेर्णिनि स्यात् । दर्शनीयमानी ।

आत्ममाने खश्च ३ । २ । ८३ ॥ स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यते सुपि खश स्यात् । चाण्णिनि । पण्डितम्मन्य । पण्डितमानी ।

खित्यनव्ययस्य ६ । ३ । ६६ ॥ [4]खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्व । ततो मुम् । कालिम्मन्या ।

करण यज ३ । २ । ८५ ॥ [5]करणे उपपदे भूतार्थे यजेर्णिनि स्यात्क र्तरि । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी ।

दृशे क्वनिप् ३ । २ । ९४ ॥ [6]कर्मणि भूते । पार दृष्टवान्—पारदृश्वा ।

राजनि युधि कृञ ३ । २ । ९५ ॥ [7]क्वनिप्स्यात् । युधिरन्तर्भावित ण्यर्थ । राजान योधितवान् राजयुध्वा । राजकृत्वा ।

उष्णभोजी—उष्ण भुङ्क्ते तच्छील इति वा विग्रह सुप्यजातौ–' इति णिन्यनुबन्धलोपे, पुगन्तेति गुणे, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वेन सौ, सौ च' इत्यनेनो पधादीर्घे सोर्लोपे, नलोपे च कृते 'उष्णभोजी' इति ।

पण्डितम्मन्य—आत्मान पण्डित मन्यते इति विग्रहे आत्ममाने खश्चेति खश्यनुबन्धलोपे, दिवादिभ्य श्यनिति श्यन्यनुबन्धलोपे, 'अरुर्द्विषद—' मुमि–उभावितौ लोपयोश्च कृतयो प्रातिपदिकसंज्ञाया विभक्तिकार्ये च कृते 'पण्डितम्मन्य' इति । खश्चेति चकाराण्णिनिस्तत्पक्षे 'पण्डितमानी' इति । आत्मान कालीम्मन्यते '**कालिम्मन्या** । अत्र सर्व पूर्ववत्, केवल काली' निष्ठ ईकारस्य ह्रस्वेन इकार इति विशेष । स्त्रीत्वाट्टाप् । **राजनि युधि कृञ**—राजन् शब्दे उपपदे युध्यते क्वनिप् स्यात् । **राजयुध्वा**–राजान योधितवान् इति विग्रहे 'राजनि युधि कृञ' इति क्व निप्यनुबन्धलोपे, प्रातिपदिकत्वेन सौ, उपधादीर्घे सोर्लोपे च कृते 'राजयुध्वा' इति ।

१–जातिवाचक से भिन्न सुबन्त उपपद रहते ताच्छील्य अर्थ मे धातु से णिनि प्रत्यय होता है । २—सुबन्त उपपद रहते मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है । ३—सुबन्त उपपद रहते स्वकर्म मनन 'अहङ्कार' मे वर्तमान मन् धातु से खश् प्रत्यय होता है, चकारात्–णिनि प्रत्यय भी होता है । ४—खिदन्त पर हो तो अव्यय से भिन्न पूर्वपद को ह्रस्व होता है । ५—करण उपपद हो एवं भूतकालिक अर्थ गम्यमान हो तो यज से णिनि प्रत्यय कर्ता मे होता है । ६–कर्म उपपद रहते भूत काल अर्थ मे दृश धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है । ७—कर्म संज्ञक राजन् शब्द उपपद हो तो भूत काल अर्थ मे युध् एवं कृञ धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है ।

[1]**सहे च ३ । २ । ९६ ॥** कर्मणीति निवृत्तम्। सह योधितवान् सह युध्वा । सहकृत्वा ।

[2]**सप्तम्यां जनेर्डः ३ । २ । ९७ ॥**

तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६ । ३ । १४ ॥ ङेरलुक । सरसिजम् । सरोजम् ।

उपसर्गे च सञ्ज्ञायाम ३ । २ । ९९ ॥ [4]'प्रजा स्यात्सन्ततौ जने ।'

क्तक्तवतू निष्ठा १ । १ । २६ ॥ [5]एतौ निष्ठासञ्ज्ञौ स्त ।

निष्ठा ३ । २ । १०२ ॥ [6]भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र तयोरवेति भावकर्मणो क्त । कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतु । उकावितौ । स्नात मया । स्तुतस्त्वया विष्णु । विश्व कृतवान् विष्णु ।

रदाभ्या निष्ठातो न पूर्वस्य च द ८ । २ । ४२ ॥ [7]रदाभ्या परस्य निष्ठातस्य न स्यात् निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोदस्य च । शॄ हिंसायाम् । ॠत इत् । रपर । णत्वम् । शीर्ण । भिन्न । छिन्न ।

'सहे च' । सहशब्दोपपदादन्तर्भावितण्यर्थाद्युध्यते क्वनिप स्यात् ।

सप्तम्यां जनेर्ड—सप्तम्यन्ते उपपदे जन्धातोर्ड स्यात् ।

तत्पुरुषे कृति—तत्पुरुषे समासे कृदन्ते उपपदे सप्तम्या अलुग्वा स्यात् । **सरसिजम्**—सरसि जातमिति विग्रहे 'सप्तम्यां जनेर्ड' इति डप्रत्यये चुटू इतीत्सञ्ज्ञाया तस्य लोपे च कृते, उपपदसमासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो धातुप्रातिपदिकयो इति प्राप्तस्य सुपो लोपस्य 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति निषेधेन ङेरलुकि डित्वाट्टि लोपे प्रातिपदिकसञ्ज्ञाया विभक्तिकार्ये च कृते 'सरसिजम्' इति । पक्षे ङेर्लोपे तु सस्य रुत्वोत्वादिकृते सरोजम्' इति ।

उपसर्गे च सञ्ज्ञायाम—उपसर्गे उपपदे जनेर्ड स्यात् सञ्ज्ञायाम् । अभेदि इति भिन्न –इरित्सञ्ज्ञक भिद्धातो 'निष्ठा' इति क्तप्रत्यये ककारस्येत्सञ्ज्ञालोपयो रदाभ्या निष्ठात इति तकारदकारयोर्नकारे कृते, कृत्तद्धितेति प्रातिपदित्वेन सौ तस्य रुत्वे

१—सह उपपद रहने पर भी युध धातु से क्वनिप प्रत्यय होता है । २—सप्तम्यन्त उपपद हो तो जन् धातु से ड प्रत्यय होता है । ३—तत्पुरुष समास मे कृत्प्रत्ययान्त उत्तर पद पर हो तो बहुलता विकल्प से सप्तमी एकवचन (ङि) का अलुक् 'लोपाभाव' होता है । ४—उपसर्ग उपपद रहते सञ्ज्ञा अर्थ मे जन् धातु से ड प्रत्यय होता है । ५—क्त एव क्तवतु प्रत्यय निष्ठा-सञ्ज्ञक होते हैं । ६—भूतकालार्थ वृत्ति धातु से निष्ठा सञ्ज्ञक प्रत्यय होते है । ७—रेफ एवं दकार से परे निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है तथा निष्ठा की अपेक्षा पूर्व मे वर्तमान धातु-सम्बन्धी दकार को भी नकार होता है ।

सयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ८ । २ । ४३ ॥ [1]निष्ठातस्य न स्यात् । द्राण । ग्लान ।

ल्वादिभ्य ८ । २ । ४४ ॥ [2]एकविंशतेर्लूञादिभ्य प्राग्वत् । लून । **ज्या** धातु । ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् ।

हल ६ । ४ । २ ॥ [3]अङ्गावयवाद्धल पर यत्सम्प्रसारण तदन्तस्य दीर्घ । जीन ।

ओदितश्च ८ । २ । ४५ ॥ [4]**भुजो**–भुग्न । **टुओश्वि**–उच्छून ।

शुष क ८ । २ । ५१ ॥ [5]निष्ठातस्य क । शुष्क ।

पचो व ८ । २ । ५२ ॥ [6]पक्व । **क्षै क्षये** ।

क्षायो म ८ । २ । ५३ ॥ [7]क्षाम ।

निष्ठाया सेटि ६ । ४ । ५२ ॥ [8]णेर्लोप । भावित । भावितवान् । **दृह** हिंसायाम् ।

विसर्गे च कृते 'भिन्न' इति । 'छिन्न' इत्यत्र छिदिर द्वैधीकरणे धातु । अच्छेदीति विग्रह ।

सयोगादेरिति–स्योगादेरादन्तस्य यण्वतो धातो परस्य निष्ठातस्य नत्वम् । 'अद्रासीत् इति **द्राण** । अत्र 'निष्ठा' इति क्त प्रत्यये सयोगादेरातो–' इति तस्य नकारादेशे नकारस्य णत्वे, प्रातिपदिकसज्ञाया विभक्तिकार्ये च कृते 'द्राण' । द्रा कुत्सायाम् । अग्लासीत्–इति **ग्लान** । ग्लै हृष क्षये । अलावि इति **लून** । लूञ छेदने । अज्यासीत्–इति **जीन** । अभौक्षीत् **भुग्न** । भुजो कौटिल्ये । उदश्वत्–इति **'उच्छून'** । टुओश्वि गतिवृद्धयो । अशुषत् इति **शुष्क'** । शुष शोषणे । अपाचि इति **'पक्व'** । अक्षासीत्—इति **'क्षाम'** । क्षै क्षये । अत्र निष्ठातकारस्य मकार । देवदत्तो यज्ञदत्तमबीभवत् देवदत्तेन यज्ञदत्तोऽभावि इत्यर्थे **'भावित'** इति । अत्र भावयतेर्निष्ठा सूत्रेण क्त प्रत्यये इडागमे निष्ठाया सेटि' इति णेर्लोपे च सिद्ध्यति रूपम् ।

१–सयोगादि यणवान्–आकारा त–धातु से परे निष्ठा सम्बन्धी तकार को नकार आदेश होता है । २–लूञादि इक्कीस धातुओं से परे निष्ठासम्बन्धी तकार को नकार होता है । ३–अङ्गावयव हल् से परे जो सम्प्रसारण तदन्त को दीर्घ होता है । ४—ओदित् धातु से परे भी निष्ठा के तकार को नकार होता है । ५—शुष धातु से परे निष्ठा के तकार को 'क' आदेश होता है । ६—पच धातु से परे निष्ठा के तकार को वकार 'व' आदेश होता है । ७—क्षै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकार होता है । ८—सेट् इटसहित निष्ठासंज्ञक प्रत्यय पर हो तो णि का लोप होता है ।

दृढ स्थूलबलयो ७ । २ । २० ॥ [1]स्थूले बलवति च निपात्यते ।

दधातेर्हि ७ । ४ । ४२ ॥ [2]तादौ किति । हितम् ।

दो दद् घो ७ । ४ । ४६ ॥ [3]घुमज्ञकस्य 'दो' इत्यस्य 'दथ' स्यात् किति । चत्वम् । दत्त ।

लिट कानज्वा ३ । २ १०६ ॥

क्वसुश्च ३ । २ । १०७ ॥ [4]लिट कानच् क्वसुश्च वा स्त । तङानावात्मनपदम् । चक्राण ।

म्वोश्च ८ । २ । ६५ ॥ [5]मान्तस्य धातोनत्व म्वो परत । जगन्वान् ।

लट शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३ । २ । १२४ ॥ [6]अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्त । शबादि । पचन्त चत्र पश्य ।

आने मुक ७ । २ । ८२ ॥ [7]अदन्ताऽङ्गस्य मुगागम स्यादाने परे । पचमान चेत्र पश्य । लडित्यनुवतमाने पुनर लड्ग्रहणात्प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित् । सन् द्विज ।

विदे शतुवसु ७ । १ । ३६ ॥ [8]वेत्ते परस्य शतुवसुरादेशो वा । विदन् । विद्वान् ।

तौ सत् ३ । २ १२७ ॥ [9]तौ = शतृशानचौ सत्सज्ञौ स्त ।

लृट सद्वा ३ । ३ । १४ ॥ [10][लट शतृशानचौ वा स्त] व्यवस्थित विभाषेयम् । तेनाऽप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयो सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् । करिष्यन्त करिष्माण पश्य ।

दृढ इति । स्थूले बलवति चार्थे दढ इति निपात्यते । **दधातेर्हि** –तादौ किति दधातेर्हि स्यात् । अधायि इति **हितम** । जगामेति **'जगन्वान** । अत्र क्वसुप्रत्यय । **पचन्त चैत्रम्** इति—एवमेव पचता चैत्रेण पचते चैत्राय इत्यादयोऽपि बोध्या । किन्त्वत्र

१—स्थूल एवं बलवान् अथ में दृढ' ऐसा निपातन से सिद्ध' होता है । २—तादि कित पर हो तो धा धातु को हि आदेश होता है । ३—तादि कित् पर हो तो घुसज्ञक दा धातु को दथ् आदेश होता है । ४—लिट के स्थान मे कानच एव क्वसु प्रत्यय विकल्प से होते है । ५—मकार या वकार पर हो तो मान्त धातु को नकार आदेश होता है । ६—अप्रथमान्त के साथ सामानाधिकरण्य (एकाधिकरण्य) हो तो लट के स्थान मे शतृ एवं शानच प्रत्यय होते हैं । ७-आन पर हो तो अदन्त अङ्ग को मुम् का आगम होना है । ८-विद् धातु से पर शतृ के स्थान मे वसु आदेश विकल्प से होता है । ९- शतृ एव शानच् सत्' सज्ञक होते हैं । १०—यहाँ के लृट् के स्थान मे सत् सज्ञक (शतृ-शानच) प्रत्यय विकल्प से होते हैं ।

आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३ । २ । १३४ ॥ [1]क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणा प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ।

तृन् ३ । २ । १३५ ॥ कर्ता कटान् ।

जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ३ । २ । १५५ ॥

षः प्रत्ययस्य १ । ३ । ६ ॥ [4]प्रत्ययस्याऽऽदिः ष इत्संज्ञः स्यात् । जल्पाकः । भिक्षाकः । कुट्टाकः । लुण्टाकः । वराकः । वराकी ।

सनाशंसभिक्ष उः ३ । २ । १६८ ॥ [5]चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः ।

भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् ३ । २ । १७७ ॥ [6]विभ्राट् । भाः ।

राल्लोपः ६ । ४ । २१ ॥ [7]रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति । धूः । विद्युत् । ऊर्क् । पूः । दृशिग्रहणस्याऽपकर्षाज्जवतेर्दीर्घः । जूः । ग्रावस्तुत् ।

लटः शतृ-शानचौ पाक्षिकौ, पाकक्रियाकर्तृ सामानाधिकरण्यादिति ध्येयम् ।

आक्वेरिति—अर्थाधिकारोऽयम् एतदारभ्य 'भ्राजभास—' इति-एतच्छास्त्र पर्यन्तप्रत्यया यथायथमेष्वर्थेषु बोध्याः । **'जल्पभिक्ष'** इति-एभ्यः षाकन् प्रत्ययः स्यात् । जल्पतीति **'जल्पाकः'**। जल्प व्यक्तायां वाचि । भिक्षते तच्छीलो **'भिक्षाकः'**। भिक्ष भिक्षायाम् । कुट्टतीति **'कुट्टाकः'**। कुट्ट छेदने । लुण्टतीति **'लुण्टाकः'**। लुटि स्तेये ।

'भ्राजभास इत्यादि—विभ्राजते इति **'विभ्राट्'**। टुभ्राज दीप्तौ । भासते इति **'भाः'**। भास दीप्तौ । धुवतीति **'धूः'**। धुर्वी हिंसायाम् । विद्योतते इति **'विद्युत्'**। द्युत दीप्तौ । ऊर्जतीति **'ऊर्क्'**। ऊर्ज बलप्राणनयोः । पिपर्त्तीति 'पूः'। पॄ पालनपूरणयोः । जु गताविति सौत्रो धातुः । ग्रावाणः स्तौति इति **'ग्रावस्तुत्'**। अत्र ग्रावन् शब्दपूर्वः ष्टुञ स्तुतौ धातुः । **दृशिग्रहणस्येति**- अन्येभ्योऽपि दृश्यते इत्यग्रिमसूत्राद् दृशिग्रहणमपकृष्यते । तेन जुधातोः क्विप दीर्घश्च भवत इति भावः ।

१—यहाँ से क्विप् प्रत्यय पर्यन्त कहे जाने वाले सभी प्रत्यय तच्छील आदि अर्थों में होते हैं (जानना चाहिये)। २—तच्छील अर्थों में धातुओं से तृन् प्रत्यय होते हैं। ३—जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, एवं वृङ् धातु से तच्छीलादि अर्थों में षाकन् प्रत्यय होता है। ४—प्रत्यय के आदि में रहने वाला षकार 'इत्' संज्ञक होता है। अर्थात् इत्संज्ञा होने से 'तस्य लोपः' से उसका लोप हो जाता है। ५—सन्नन्त धातु एवं आशंस् तथा भिक्ष् धातु से 'उ' प्रत्यय होता है। ६—भ्राज् आदि (सूत्रोक्त) धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है। ७—क्विप् एवं झलादि कित्, ङित् पर हो तो रेफ से परे छ् एवं व् का लोप होता है।

*क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च[1]। वक्तीति वाक्।

च्छ्वोः शूडनुनासिके च ६।४।१९॥ [2]सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् 'श' 'ऊठ' इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति। पृच्छतीति प्राट्। आयतं स्तौतीति आयतस्तूः। कटं प्रवते कटप्रूः। जूरुक्तः। श्रयति हरिं श्रीः।

दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ३।२।१८२॥ [3]दाबादेः ष्ट्रन् स्यात् करणेऽर्थे। दात्यनेन दात्रम्। नेत्रम्।

तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ७।२।९॥ [4]एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण् न। शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्त्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्री।

दाम्नीति—दाप् लवने **दात्रम्**। णीञ् प्रापणे **नेत्रम्**। शसु हिंसायां **शस्त्रम्**। यु मिश्रणामिश्रणयोः **योत्रम्**। युजिर् योगे **योक्त्रम्**। ष्टुञ् स्तुतौ **स्तोत्रम्**। तुद व्यथने **तोत्त्रम्**। षिञ् बन्धने **सेत्रम्**। षिच् क्षरणे **सेक्त्रम्**। मिह सेचने (मूत्रकरणे) **मेढ्रम्**। पत पतने **पत्रम्**। दश दशने **दंष्ट्रा**। णह बन्धने **नद्ध्री**। **ति–तु–त्र–त–थ–सि–सु–सर–क–स–इत्येतेषु** कृत्प्रत्ययेषु इडागमो न भवति। 'ति' इति क्तिन्–क्तिचोर्ग्रहणम् 'क्तिन् क्तिच'—दीप्तिः। 'तु' इत्यौणादिकः 'तुन्' प्रत्ययः 'सेतु'–'सक्तु' इति। 'त्र' इति दाम्नीत्यादिना विहितः 'ष्ट्रन्'। 'दात्रम्–पात्रम्' इत्यादि। 'त' इत्यौणादिकः 'तन्' प्रत्ययः–'हस्त' इत्यादि। औणादिकस्यैव तशब्दस्य ग्रहणम् न तु कृदन्तस्य। तेन कृति 'हसितम्' इत्येव भवति। 'थ' इत्यौणादिकः 'क्थन्' हथ, कुष्ठम्, काष्ठम् इत्यादि। 'सि' इत्यौणादिकः 'क्सि' प्रत्ययः–'कुक्षि' इत्यादि। 'सु' इति 'इषेः क्सु'–'इक्षु' इति। 'सर' इति अशेः सरः–अक्षरम् इति। 'क' इत्यौणादिकः 'कन्' प्रत्ययः–शुल्क' इति। 'स' इति इत्यौणादिकः 'स' प्रत्ययः–'वत्स' इति। तितुत्रेष्वग्रहादीनामिति वक्तव्यम् इति सूत्रापवादवार्ति

१—वच् प्रच्छ् आदि (सूत्रोक्त) धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है, एवं (उपाधा को) दीर्घ तथा सम्प्रसारण का अभाव भी होता है। २—अनुनासिक एवं क्विप् या झलादि कित्, ङित् पर हो तो तुक्–विशिष्ट छ् तथा व को क्रम से श् तथा ऊठ् आदेश होते हैं। ३—करण अर्थ में दाप, नी, शस् यु, युज् ष्टु तुद्, षिञ् षिच् मिह्, पत् दश णह्–इन धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय होता है। ४—ति, तु–आदि (सूत्रोक्त) इन दस कृत्प्रत्ययों को इट् नहीं होता।

अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्र ३ । २ । १८४ ॥ [1][अर्त्यादिभ्य इत्रन् स्यात्करणेऽर्थे] अरित्रम् । लवित्रम् । धुवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ।

पुव सञ्ज्ञायाम ३ । २ । १८५ ॥ [2][करणे पुव इत्रन् स्यात्सज्ञायाम्] पवित्रम् ।

॥ इति पूवकृदन्तम ॥



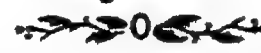
अथोणादयः

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥ १ ॥ [3]करोतीति कारु । वातीति वायु । पायुगुदम् । जायुरौषधम् । मायु पित्तम् । स्वादु । साध्नोति परकायमिति साधु । आशु शीघ्रम् ।

उणादयो बहुलम् ३ । ३ । १ ॥ [4]एते वतमाने सज्ञाया च बहुल स्यु । केचिदविहिता अप्यूह्या ।

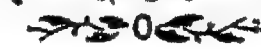
[5]सज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च तत परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥

॥ इत्युणादय ॥



कारम्भात् निगृहीतिरित्यादाविण्निषेधो न । **'अर्तिलूधू इत्यादि—'अरित्रम्'** । ऋ गतौ । लवित्रम्'—लूञ छेदने । 'धुवित्रम् —धूञ् विधूनने । 'सवित्रम्'—षू प्रेरणे । खनित्रम् —खनु अवदारणे । 'सहित्रम्'—षह मषणे । चरित्रम्'—चर गतिभक्षणयो ।

॥ इति पूर्वकृदन्तम् ॥



केचिदविहिता अप्यूह्या —इति—कथमूह्या ? इति प्रश्ने प्रतिपादयति **सज्ञा-**

१—करण (साधन) अर्थ मे ऋ लू धू, सू खन्, सह्, चर् धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है। २—पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय होता है सज्ञा मे (सिद्ध होने पर यदि संज्ञा बोधित होवे) ।

॥ इति पूवकदन्तम् ॥



३—कृ वा पा जि, मि स्वद्, साध एवं अश–धातु से उण् प्रत्यय होता है। ४—वर्तमान काल मे उणादि प्रत्यय विकल्प से होते हैं। ५—संज्ञा शब्दों में (जैम डित्थ डवित्थ आदि) जो किसी के वाचक हैं किन्तु सिद्ध नहीं हो पाते ऐसे शब्दों मे धातु के रूप का और उसके बाद प्रत्यय का ऊहापोह करना चाहिये, जो संकेत हो। **कार्यादिति** । किद

अथोत्तरकृदन्तम् ।

तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३ । ३ । १० ॥ [1]क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः । मान्तत्वादव्ययत्वम् । कृष्णं द्रष्टुं याति । कृष्णं दर्शको याति ।

कालसमयवेलासु तुमुन् ३ । ३ । १६७ ॥ [2]कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् स्यात् । कालः समयो वेला वा भोक्तुम् ।

भावे ३ । ३ । १८ ॥ [3]सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् । पाकः ।

अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९ ॥ [4]कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात् ।

घञि च भावकरणयोः ६ । ४ । २७ ॥ [5]रञ्जेर्नलोपः स्यात् । रागः । अनयोः किम् ? रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः ।

स्विति । अस्यायमभिप्रायः—संज्ञासु संज्ञाशब्देषु धातुरूपाणि प्रकल्प्य ततः परं प्रत्ययाः कल्पनीयाः । तथा प्रत्ययेष्वपि गुणवृद्धिसम्प्रसारणतदभावादिकार्यानुसारेण ञित्वं ङित्वञ्चेत्याद्यनुबन्धं जानीयात्, एतदेवोणादिषु शासनयोग्यमिति ज्ञेयम् । यथा—'ऋफिडः' इति संज्ञाशब्दः, अत्र 'ऋ' धातुः प्रकृतिः ततो फिड् प्रत्ययः, अत्र गुणाभावदर्शनाच्च प्रत्ययस्य कित्वमित्याद्यूह्यते ॥ इत्युणादयः ॥

द्रष्टुम्—अत्र 'अव्ययकृतो भावे' इति भावे प्रत्ययः । कृन्मेजन्तः इत्यव्ययत्वम् । इरित्संज्ञकः दृश धातोः 'तुमुन् ण्वुलौ' इति तुमुन्यनुबन्धलोपे सृजिदृशोः—' इत्यमागमे यणि च कृते तत्सिद्धिः । **दर्शकः**—इत्यत्र तुमुन्ण्वुलौ इति ण्वुल्यनुबन्धलोपे 'वु इत्यस्य युवोरनाकौ' इत्यकादेशे विभक्तिकार्ये च कृते दर्शकः' इति । अत्र 'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः' इति षष्ठ्याः प्रतिषेधो ज्ञेयः । **पाकः** । पचनं' पाकः इत्यत्र 'भावे' इति घञि—अनुबन्धलोपे अत उपधायाः' 'इति वृद्धौ, कुत्वे, विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धिः ।

घञि चेति—भावे करणे च यो घञ् तस्मिन्परे रञ्जेनस्य लोपः स्यात् ।

रागः—'रञ्जनम्' रज्यतेऽनेन' इति वा विग्रहे अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्'

होने से गुण नहीं होता है अतः गुणाभावादि कार्य के अनुसार ककार आदि अनुबन्ध भी समझना । यही उणादि में अनुशासन है ॥ इत्युणादयः ॥

१–क्रियार्थक क्रिया उपपद हो तो भविष्यत् अर्थ में धातु से तुमुन् एवं ण्वुल् प्रत्यय होता है । २–कालार्थक उपपद होवे तो धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है । ३–(भाव के दो भेद हैं—१–सिद्धावस्थापन्न, २–साध्यावस्थापन्न) सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ वाच्य हो तो धातु से घञ् प्रत्यय होता है । ४–कर्ता से भिन्न कारक में घञ् प्रत्यय होता है, संज्ञा अर्थ गम्यमान हो तब । ५–भाव या करण अर्थ में विहित घञ् प्रत्यय पर हो तो रञ्ज् धातु के नकार का लोप होता है।

निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च क ३। ३। ४१॥ [1]एषु चिनोतेघञ् आदेश्च ककार। **उपसमाधान** राशीकरणम्। निकाय। काय। गोमयनिकाय।

एरच ३। ३। ५६॥ [2]इवर्णान्तादच। चय। जय।

ॠदोरप ३। ३। ५७॥ ॠवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाऽप्। कर। गर। यव। लव। स्तव। पव। [4]**घञर्थे कविधानम्**। प्रस्थ। विघ्न।

[5]**ड्वित क्त्रि** ३। ३। ८८॥ **क्त्रेमम् नित्यम्** ४। ४। २०॥ [6]क्त्रि-प्रत्ययान्तान्मप्स्यान्निवृत्तेऽर्थे। पाकेन निवृत्त पक्त्रिमम्। **डुवप**—उप्त्रिमम्।

टिवतोऽथुच २। ३। ८९॥ [7][टिवतोऽथुच स्याद्भावे] **टुवेपृ** प्रकम्पने। वेपथु।

यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३। ३। ९०॥ [8]यज्ञ। याच्ञा। यत्न। विश्न। प्रश्न। रक्ष्ण।

इति घञि–अनुबन्धलोपे, घञि च भावकर्मणो' इति नलोपे वृद्धौ कुत्वे विभक्त्यादि कार्ये च कृते तत्सिद्धि। चीयतेऽस्मिन्नस्थ्यादिकमिति **काय**–शरीरम्। 'चयन' 'चीयतेऽसौ' वा **चय**। जयन **जय** इत्यादि। प्रतिष्ठन्ते धा यादिकमत्र अनेनेति वा **प्रस्थ**–परिमाणभेद। प्रतिष्ठन्ते जना अत्रेति विग्रहे प्रस्थो ज्ञेय। अत्राधिकरणे क। आलोपादि।

विघ्न—विघ्नन्तीति मनास्यत्रेति घञर्थे क-प्रत्यये गमहनेत्युपधालोपे, होहन्तेरिति कुत्वम्। **डिवत क्त्रि**—डिवतो धातो क्त्रि स्याद् भावे। वापेन निवृत्त **उप्त्रिमम**। वेपन वेपथु। **यजयाचेत्यादि**—भावेऽकर्त्तरि च कारके यजादिभ्यो नङ् स्यात्। इज्यते, यजनम् इति वा **यज्ञ** यज धातो 'यजया–०' इति नङि ङकार लोपे, श्चुत्वेन नकारस्य ञकारे, सयोगेन जञोर्ज्ञे विभक्तिकार्ये च कृते यज्ञ इति। याचन **याच्ञा**। यतन यत्न। विच्छन **विश्न**। प्रच्छन **प्रश्न**। रक्षण **रक्ष्ण**।

१—निवास, चिति, शरीर एवं उपसमाधान अर्थों मे चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय होता है, चकारात्–चिञ् धातु के आदि चकार का ककार आदेश भी होता है। २—इवर्णान्त धातु से अच् प्रत्यय होता है। ३—ॠवर्णान्त तथा उवर्णान्त धातु से अप् प्रत्यय होता है। ४—घञर्थ मे 'क' प्रत्यय होता है। ५—ड्वित (डु इत्सञ्ज्ञक) धातु से क्त्रि प्रत्यय होता है। ६—निवृत्त (सिद्ध) अर्थ मे, क्त्रि–प्रत्ययान्त धातु से मप् प्रत्यय होता है। ७—टिवत् (टु-इत्सञ्ज्ञक) धातु से अथुच् प्रत्यय में होता है। ८—यज्, याच्, विच्छ, प्रच्छ् एव रक्ष धातु से नङ् प्रत्यय होता है।

स्वपो नन् ३ । ३ । ९१ ॥ [1]स्वप्न ।

उपसर्गे घो कि ३ । ३ । ९२ ॥ [2]प्रधि । उपधि ।

स्त्रियां क्तिन् ३ । ३ । ९४ ॥ [3]स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात् । घञोऽपवाद । कृति । स्तुति । [4]***ॠल्वादिभ्य क्तिन्निष्ठावद्वाच्य ।** तेन नत्वम् । कीर्णि । गीर्णि । लूनि । धूनि । पूनि । [5]**सम्पदादिभ्य क्विप् ।** सम्पत् । विपत् । आपत् । [6]**क्तिन्नपीष्यते ।** सम्पत्ति । विपत्ति । आपत्ति ।

ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च ३ । ३ । ९७ ॥ [7]एते निपात्यन्ते ।

ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च ६ । ४ । २० ॥ [8]एषामुपधावकारयोरूठ् स्यादनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति । अत क्विप् । जू । तू । स्रू । ऊ । मू ।

इच्छा ३ । ३ । १०१ ॥ [9]इषेर्निपातोऽयम् ।

अ प्रत्ययात् ३ । ३ । १०२ ॥ [10]प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्य स्त्रियामकार प्रत्यय स्यात् । चिकीर्षा । पुत्रकाम्या ।

गुरोश्च हल ३ । ३ । १०३ ॥ [11]गुरुमतो हलन्तात्स्त्रियामकार प्रत्यय स्यात् । ईहा ।

स्वपन **स्वप्न** । **'उपसर्गे–'** इति उपसर्गे उपपदे घुसंज्ञकाद् धातो कि प्रत्ययो भवति भावे अकर्तरि कारके च । प्रधीयते इति **प्रधि** । उपधीयते इति **उपधि** –अनयो किल्वादालोप । करण **कृति** । स्तूयतेऽनया, स्तवन वा **स्तुति** । (अग्रेऽपि प्राय एवमेव विग्रहो ज्ञेय) । **ॠल्वादिभ्य** –इति–ॠकारान्ताल्ल्वादिभ्यश्च पर क्तिन् प्रत्यय निष्ठावद् भवतीति भाव । **इच्छेति**—इषेर्भावे शप्रत्ययो यगभावश्च निपात्यते । एषणम् **इच्छा** । कर्तुमिच्छा **चिकीर्षा** । कर्तुमिच्छति चिकीर्षति

१—स्वप् धातु से नन् प्रत्यय होता है । २—उपसर्ग उपपद होवे तो घुसंज्ञक धातु से 'कि' प्रत्यय होता है । ३—स्त्रीलिङ्गभाव द्योत्य हो तो धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है । ४—ॠल्वादि से विहित क्तिन् प्रत्यय निष्ठा की तरह होता है । ५—सम्पदादियों से क्विप् होता है । ६—(भाव में तथा कर्तृभिन्न कारक में) सम्पदादियों से क्तिन् प्रत्यय भी होता है । ७—ऊति–यूति–जूति–साति–हेति तथा कीर्ति—ये निपातन से सिद्ध होते हैं । ८—अनुनासिक और क्विप् या झलादि कित्, ङित् पर हो तो ज्वर–त्वर स्रिवि–अवि–मव–धातुओं के उपधा एवं वकार को ऊठ् होता है । ९—इष् धातु से 'इच्छा' ऐसा निपातन होता है । (अर्थात् इष् धातु से भाव में 'श' प्रत्यय तथा यक का अभाव भी निपातन से होता है) १०—प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय होता है । ११—गुरुमान् हलन्त धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अकार प्रत्यय होता है ।

ण्यासश्रन्थो युच् ३।३।१०७ ॥ [1]अकारस्यापवाद । कारणा। हारणा।

[2]**नपुसके भावे क्त ३ । ३ । ११४ ॥**

ल्युट् च ३ । ३ । ११५ ॥ [3]हसितम्। हसनम्।

पुसि सज्ञाया घ प्रायेण ३ । ३ । ११८ ॥ [4]**छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ६ । ४। ९६ ॥** द्विप्रभृत्युपसर्गस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे। दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन दन्तच्छद । आकुर्वन्त्यस्मिन्नित्याकर ।

अवे तॄस्त्रोर्घञ् ३।३।१२० ॥ [6]अवतार कूपादे । अवस्तारो जवनिका।

हलश्च ३ । ३ । १२१ ॥ [7]हलन्ताद्घञ्। घापवाद । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति राम । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्ग ।

ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३ । ३ । १२६ ॥ [8]करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम्। एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल्। तयोरेवेति भावे कर्मणि च। **कृच्छ्रे**--दुष्कर कटो भवता। **अकृच्छ्रे**–ईषत्कर । सुकर ।

[9]**आतो युच् ३ । ३ । १२८ ॥** खलोऽपवाद । ईषत्पान सोमो भवता। दुष्पान । सुपान ।

इति विग्रहे 'चिकीर्ष इत्यस्मात् अ प्रत्ययात् इति अप्रत्यये, अतो लोपेनाकारलोपे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे अजाद्यतष्टाप' इति टाप्यनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धि । **अप्रत्ययस्यापवाद इति** । अ प्रत्ययात् – गुरोश्च हल ' इति प्राप्तस्य अ प्रत्ययस्यापवाद ।

ल्युट च— क्तो ल्युट नपुसके भावे स्त्रिया क्तिन्नादयो यत ।
अतो घञजप पुसि परिशेषादिति स्थिति ॥

दुष्कर—दुस पूर्वक कृधातो 'ईषद्दुस्सुषु' इति खल्यनुबन्धलोपे, 'सार्वधातुकार्धधातुकयो ' इति गुणे रपरे, उपसर्गसकारस्य षत्वे विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धि । **आतो युच्**–आदन्ताद्धातोर्युच स्यादीषदादिषूपपदेषु। ईषत्पीयते इति–'**ईषत्पान**'।

१—ण्यन्त धातुओं तथा आस्, श्रन्थ–धातुओं मे युच् प्रत्यय होता है। २—नपुसक लिङ्ग में भाव मे धातु स 'क्त' प्रत्यय होता है। ३—ल्युट् प्रत्यय भी होता है। ४—पुंल्लिङ्ग मे, सज्ञा मे धातु से 'घ' प्रत्यय बहुलता से होता है। ५—द्विप्रभृति उपसर्ग से रहित छादि धातु को ह्रस्व होता है, घ प्रत्यय पर हो तब । ६—पुंल्लिङ्ग मे संज्ञा मे अव उपपद रहते स्तृ धातु से घञ् प्रत्यय होता है (करण तथा अधिकरण अर्थ मे)। ७—करण तथा अधिकरण अर्थ में हलन्त धातु से घञ् प्रत्यय होता है। ८—कृच्छ्र (दुःखार्थक), अकृच्छ्र (सुखार्थक) ईषत्, दुस्, सु, ये (कोई) उपपद हों तो धातु से खल् प्रत्यय होता है। ९—ईषत्–आदि कोई उपपद हों तो आदन्त धातु से युच् प्रत्यय होता है।

अलङ्खल्वो प्रतिषेधयो प्राचा क्त्वा ३ । ४ । १८ ॥ [1]प्रतिषेधार्थयोर लङ्खल्वोरुपपदयो क्त्वा स्यात् । प्राचा ग्रहण पूजार्थम् । अमैवाव्ययेनेति नियमान्नोपपदसमास । दे दद्धो । अल दत्त्वा । घुमास्थेतीत्त्वम् । पीत्वा खलु । अलङ्खल्वो किम् ? मा कार्षीत् । प्रतिषेधयो किम् ? अलङ्कार ।

समानकर्तृकयो पूर्वकाले ३ । ४ । २१ ॥ [2]समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयो पूर्वकाले विद्यमानाद्धातो क्त्वा स्यात् । भुक्त्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति ।

न क्त्वा सेट् १ । २ । १८ ॥ सेट् क्त्वा किन्न स्यात् । शयित्वा । सेट् किम् ? कृत्वा ।

रलो व्युपधाद्धलादे सश्च १ । २ । २६ ॥ [4]इवर्णोवर्णोपधाद्धलादे रलन्तात्परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्त । द्युतित्वा-द्योतित्वा । लिखित्वा-लेखित्वा । व्युपधात्किम् ? वर्तित्वा । रल किम् ? सेवित्वा । हलादे किम् ? एषित्वा । सेट किम् ? भुक्त्वा ।

उदितो वा ७ । २ । ५६ ॥ [5]उदित परस्य क्त्व इड वा । शमित्वा शान्त्वा । देवित्वा-द्यूत्वा । दधातेर्हि । हित्वा ।

[6]**जहातेश्च क्त्वि ७ । १ । ४३ ॥** हित्वा । हाङस्तु हात्वा ।

प्राचामिति । अयम्भाव –अव्ययकृतो भावे इति वचनात् क्त्वा प्रत्ययो भावे, स च ल्युट–प्रत्ययस्य बाधक , वा सरूपन्यायेनैव विकल्पेन सिद्धे प्राचा ग्रहण व्यर्थ मित्यत आह–प्राचा ग्रहणम् पूजार्थम्–इति ।

अमैवेति—एव (नियमसूत्रार्थ) अमैव तुल्यविधान यदुपपद तदेवाव्ययेन सह समस्यते इति । अत्र तु न 'अम्' किन्तु क्त्वा । अत समासाभाव इति । **शान्त्वेत्यत्र**–अनुनासिकस्य क्विझलोरिति दीर्घ । **'शान्त्वा'**– शमु उपशमे' इति । **'द्यूत्वा'**—इत्यत्र च्छ्वोः शूडनुनासिके चेत्यूठ ।

जहातेश्च—ओहाक धातोर्ह्यादेश स्यात् क्त्वा प्रत्यये परे । **'हित्वा'**— हा'

१—निषेधवाची अल या खलु उपपद हो तो क्त्वा प्रत्यय होता है प्राचीनों के मत से । २—समान एककर्तृक धात्वर्थों मे पूर्वकालिकी क्रिया मे वर्तमान जो धातु उससे क्त्वा प्रत्यय होता है । ३—इट्-सहित क्त्वा कित् नहीं होता है । ४—इवर्ण या उवर्ण हो उपधा मे जिसके ऐसे रलन्त धातुओं से परे इट्-सहित क्त्वा एवं सन् विकल्प से कित् होते हैं । ५—उदित् धातुओं से परे क्त्वा को इट् विकल्प से होता है । ६—क्त्वा प्रत्यय पर हो तो

14 ओहाक् धातु को हि आदेश होता है ।

समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७ । १ । ३७ ॥ [1]अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेश स्यात् । तुक । प्रकृत्य । अनञ् किम् ? अकृत्वा ।

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३ । ४ । २२ ॥ [2]आभीक्ष्ण्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च ।

नित्यवीप्सयो ८ । १ । ४ ॥ [3]आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये वीप्सायां च पदस्य द्वित्व स्यात् । आभीक्ष्ण्य तिङन्तेष्वव्ययसञ्ज्ञककृदन्तेषु च । स्मार-स्मार नमति शिवम् । स्मृत्वा-स्मृत्वा । पाय पायम् । भोज भोजम् । श्राव-श्रावम् ।

अन्यथैवकथमित्थसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३ । ४ । २७ ॥ [4]एषु कृञो णमुल् स्यात्सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवभूतश्चेत् कृञ । व्यर्थत्वात्प्रयोगानह इत्यर्थ । अन्यथाकारम् । एवङ्कारम् । कथङ्कारम् । इत्थङ्कार भुङ्क्ते । सिद्धेति किम् ? शिराऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते ।

॥ इति कृदन्तप्रक्रिया ॥

अथ विभक्त्यर्थाः

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २ । ३ । ४६ ॥ [5]निय-

---

इत्यस्मात् समानकर्तृकया –' इति क्त्वा प्रत्यये, ककारलोपे, 'जहातेश्च क्त्वि' इति ह्यादेशे 'हित्वा' इति । दधातेर्हित्वेऽपि 'हित्वा' इति ।

पूर्वविषये इति—समानकर्तृकयो पूर्वकालिकक्रियावृत्तेर्धातोर्णमुल्स्याद् आभीक्ष्ण्ये – पौन पुन्ये द्योत्ये । पायम्पायमित्यत्र 'आतो युक–' इति युक ।

इत्युत्तरकृदन्तप्रकरणम् ।

प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्ग च परिमाणञ्च वचनञ्च तानि प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि तान्येवत मात्रम्, तस्मिन् 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे' इति विग्रह । अत्र वचनशब्दान्ते द्वन्द्वे कृते मात्रान्तरयोर्नित्यसमासवचन क्लीबत्वञ्चेति । मयूरव्यसकादित्वात्समास । पदसमुदायो वाक्यम् । तथा च वाक्यार्थज्ञाने पदार्थ

१—अव्यय पूर्वपद में हो तो नञ् से भिन्न समास में क्त्वा को ल्यप् आदेश होता है । २—आभीक्ष्ण्य 'पौन पुन्य' अर्थ द्योत्य हो तो क्त्वा के विषय में णमुल् प्रत्यय होता है । ३—अभीक्ष्ण्य तथा वीप्सा अर्थ द्योत्य हो तो पद को द्वित्व होता है । ४—अन्यथा, एवं कथ,-या इत्थं उपपद हो तो कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है, सिद्धाप्रयोग (सिद्ध है अप्रयोग ऐसा कृञ् हो तब) अर्थात् कृञ का प्रयोग व्यर्थ होवे तो णमुल् होता है ।

॥ इति कृदन्तप्रक्रिया ॥

५—नित्य=व्यापक उपस्थिति है जिसकी उसको प्रातिपदिकार्थ कहते हैं ।

नोपस्थितिक प्रातिपदिकार्थ । [1]मात्रशब्दस्य प्रत्येक योग । प्रातिपदिकार्थ मात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा स्यात् । प्रातिपदिकार्थमात्रे–उच्चै , नीचै , कृष्ण , श्री , ज्ञानम् । लिङ्गमात्रे–तट , तटी, तटम् । परिमाणमात्रे–द्रोणो व्रीहि । वचन सङ्ख्या । एक , द्वौ, बहव ।

सम्बोधने च २ । ३ ४७ ॥ [2]प्रथमा स्यात् । हे राम ! इति प्रथमा ।

कर्तुरीप्सिततम कर्म १ । ४ । ४९ ॥ [3]कर्तु क्रियया आप्तुमिष्टतम कारक कर्मसंज्ञ स्यात् ।

कर्मणि द्वितीया २ । ३ । २ ॥ [4]अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात् । हरि भजति । अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा–हरि सेव्यते । लक्ष्म्या सेवित ।

अकथितञ्च १ । ४ । ५१ ॥ [5]अपादानादिविशेषैरविवक्षित कारक कर्मसंज्ञ स्यात् ।

ज्ञान कारणमित्यत आह **नियतेति** । नियता उपस्थितियस्यासौ नियतोपस्थितिक. । यस्मिन् प्रातिपदिके उच्चारिते यस्यार्थस्य नियमेन भान स **'प्रातिपदिकार्थ.'** । तन्मात्रे प्रथमा इत्यर्थ । यथा—उच्चैरित्युच्चारिते उच्चाधिकरणस्य, नीचैरित्यत्र अधोऽधिकरणस्य, कृष्ण ' इत्यत्र पुस्त्वविशिष्टवासुदेवरूपार्थस्य, श्री इत्यत्र स्त्रीत्व विशिष्टलक्ष्मीरूपार्थस्य, ज्ञानमित्यत्र क्लीबत्वविशिष्टात प्रकाशरूपस्य च भानम् । तस्मात्तेषु तेऽर्था नियतोपस्थितिका । तत्रार्थे (प्रातिपदिकार्थे) प्रथमा ।

मात्रशब्दस्येति—द्वन्द्वादौ द्वन्द्वान्ते च श्रूयमाण पद प्रत्येकमभिसम्बद्ध्यते इति ।

'कर्तुरीप्सिततम कर्म' इत्यस्य समन्वयो हरि भजति इति (देवदत्त इति शेष) । अत्र देवदत्त कर्ता, तद्वृत्तिक्रिया प्रीत्यनुकूलव्यापाररूपा, तया (क्रियया) आप्तु सम्ब ध्रु मिष्टतमम् इच्छोद्देश्य हरिपदरूप कारक तस्य कर्मसज्ञा । ततश्च कर्मणि द्वितीयेति द्वितीया । एव ग्राम गच्छ नीत्यत्र ग्राम सत्रागा अया भवतु–इत्यादिषु तत्तद्रूपच्छा तत्र तत्रोहनीया । **अकथित च**— पादान सम्प्रदान अधिकरणत्वरूपेणा विवक्षित कर्मत्वेन विवक्षित कारक कर्मसज्ञामित्यर्थ. ।

१—मात्र शब्द का प्रत्येक से योग है । प्रातिपदिकार्थमात्र मे लिङ्ग आदि के आधिक्य मे परिमाण मात्र में तथा सख्यामात्र से प्रथमा विभक्ति होती है । २–सम्बोधन अर्थ म प्रथमा विभक्ति होती है । ३—कर्ता के क्रिया द्वारा प्राप्त करने के लिए अत्यन्त इष्ट (अभिलषित) कारक कर्म–संज्ञक होता है । ४—जिसमे प्रत्यय होता है वह उक्त है, (जिसमें प्रत्यय नहीं होता वह अनुक्त कहा जाता है) अनुक्त कर्म मे द्वितीया विभक्ति होती है । ५—अपादान

[1]दुह्याच्पचदण्डरुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथमुषाम् ।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥ १ ॥

[2]गां दोग्धि पयः । [3]बलिं याचते वसुधाम् । [अविनीतं विनयं याचते] । [4]तण्डुलानोदनं पचति । [5]गर्गान् शतं दण्डयति । [6]व्रजमवरुणद्धि गाम् । [7]माणवकं पन्थानं पृच्छति । [8]वृक्षमवचिनोति फलानि । [9]माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा । [10]शतं जयति देवदत्तम् । [11]सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । [12]देवदत्तं शतं मुष्णाति । [13]ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा । **अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा ।** [14]बलिं भिक्षते वसुधाम् । [15]माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्तीत्यादि । इति द्वितीया ।

ननु 'गृहे धान्यं निक्षिपति' इत्यादौ गृहादेरपि कर्मत्वापत्तिरत आह—**दुह्याच्** इति—दुहादीनां द्वादशानां नीप्रभृतीनाञ्च धातूनां यत्कर्म तत्सम्बन्धी योऽर्थस्तत्रापादनत्वाद्यविवक्षायां कर्मत्वविवक्षायामेव कर्मसंज्ञा नान्यत्रेति । 'गोः सकाशात् पयः दोग्धि' इत्यर्थे गां दोग्धि पयः इति । 'बलेः सकाशात् वसुधां याचते' इत्यर्थे बलिं याचते वसुधाम् । तण्डुलानामोदनं पचतीत्यर्थे तण्डुलानोदनं पचति । गर्गेभ्यः शतं दण्डयतीत्यर्थे गर्गान् शतं दण्डयति । 'व्रजे गामवरुणद्धि' इत्यर्थे व्रजमवरुणद्धि गाम् । 'माणवकाद् माणवकाय वा पन्थानं पृच्छति' इत्यर्थे 'माणवकं पन्थानं पृच्छति' । एवमेवाग्रेऽपि सर्वमूह्यम् ।

अर्थनिबन्धनेयमिति—दुहादीनां धातूनां येऽर्थास्तद्वाचकधातुमात्रनिमित्तिकेयं संज्ञेत्यर्थः । पाकगमनादिक्रियायां यः पदार्थः स्वातन्त्र्येण वक्त्रा विवक्षितः, विवक्षा च इयं क्रिया अनेन कर्तव्येति रूपेण तदा स अर्थः कर्तृसंज्ञः । अतएव 'स्थाली पचति' इत्यादयोऽपि प्रयोगा भवन्ति ।

सम्प्रदान आदि विशेषों से अविवक्षित कारक कर्म संज्ञक होता है ।

१—दुह्, याच्-आदि मुष् पर्यन्त बारह धातुओं तथा नी प्रभृति चार धातुओं के मुख्य कर्म के साथ क्रिया में सम्बध्यमान कारक अकथित होता है, अर्थात् इन्हीं धातुओं के मुख्य कर्म के योग में अपादानादि विशेषों से अविवक्षित कारक की कर्मसंज्ञा होता है । (ऐसा परिगणन है) २—गौ से दूध दूहता है । ३—राजा बलि से पृथ्वी माँगता है । ४—चावलों का भात बनाता है । ५—गर्गों से सौ रुपया दण्ड लेता है । ६—व्रज में गौ को रोकता है । ७—लड़के से रास्ता पूँछता है । ८—वृक्ष से फल चुनता है । ९—बच्चे को धर्म का उपदेश करता है । १०—देवदत्त से सौ रुपया जीतता है । ११—अमृत के लिए क्षीरसागर का मथता है । १२—देवदत्त से सौ रुपया चुराता है । १३—गाँव में बकरी को ले जाता है । १४—राजा बलि से पृथ्वी माँगता है । १५—बच्चे के लिए (बच्चे को) धर्म बता रहा है ।

✓**स्वतन्त्रः कर्ता** १।४।५४॥ [1]क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

साधकतमं करणम् १।४।४२॥ [2]क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात्।

कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८॥ [3]अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्। रामेण बाणेन हतो बाली। इति तृतीया।

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२॥ [4]दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्।

चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३॥ [5][सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात्] विप्राय गां ददाति।

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च २।३।१६॥ [6]एभिर्योगे चतुर्थी। हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो हरिरलं, प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि। इति चतुर्थी।

ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४॥ [7]अपायो–विश्लेषस्तस्मिन्साध्ये यद् ध्रुवम्=अवधिभूतं कारकं तदपादानं स्यात्।

प्रकृष्टेति—यद्व्यापारादनन्तरं क्रियायाः फलनिष्पत्तिस्तत्प्रकृष्टम्। **करणं हि**—

क्रियायाः फलनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम्।
विवक्ष्यते यदा तत्र करणं तत्तथा स्मृतम्॥

'कर्मणा यमभि०–' इति। कर्ता क्रियामात्रस्य कर्मणा सह सम्बन्धुं यं पदार्थमभिप्रैति स सम्बन्धोद्देश्यः सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्। अतो द्विजाय धनं ददातीतिवत् देवदत्तो यज्ञदत्ताय वार्तां (हितं) कथयतीत्यादिप्रयोगाः सङ्गच्छन्ते।

विश्लेष इति—विश्लेषो विभागानुकूलव्यापारस्तस्मिन् साध्ये जननीये यद्

१—क्रिया (कार्य) में स्वतन्त्रता से विवक्षित अर्थ–(विषय मनुष्य या पदार्थ) कर्तृ-संज्ञक होता है अर्थात् उसे कर्त्ता कहते हैं। २—क्रिया की सिद्धि में जो अत्यन्त उपकारक हो उसकी करण संज्ञा होती है। ३—अनभिहित (अनुक्त) कर्ता एवं करण में तृतीया विभक्ति होती है। राम ने बाण से बाली को मारा—यहाँ राम कर्ता है, बाण साधन–करण है इत्यादि। ४—दाता दानरूपी (दा धातु के) कर्म से जिसको सम्बन्धित करना चाहे, करे, वह सम्प्रदान–संज्ञक होता है। ५—सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है। ६—नमः–स्वस्ति–स्वाहा–स्वधा–अलम्–वषट् इनके योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। ७—अपाय=विश्लेष=विभाग

अपादाने पञ्चमी २ । ३ । २८ ॥ [1][अपादने पञ्चमी स्यात्]। ग्रामादायाति । धावतोऽश्वात्पततीत्यादि । इति पञ्चमी ।

षष्ठी शेषे २ । ३ । ५० ॥ [2]कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्त स्वस्वामिभावादि सम्बन्ध शेषस्तत्र षष्ठी । राज्ञ पुरुष । कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षाया षष्ठ्येव । सता गतम् । सर्पिषो जानीते । मातु स्मरति । एधो दकस्योपस्कुरुते । भजे शम्भोश्चरणयो । **इति षष्ठी ।**

आधारोऽधिकरणम् १ । ४ । ४५ ॥ [3]कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधार कारकमधिकरण स्यात् ।

सप्तम्यधिकरणे च २ । ३ । ३६ ॥ [4]अधिकरणे सप्तमी स्यात्, चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्य । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते । स्थाल्या पचति । मोक्षे इच्छास्ति । सर्वस्मिन्नात्मास्ति । वनस्य दूरे अन्तिके वा ।

॥ इति सप्तमी । इति विभक्त्यर्था ॥

ध्रुवमुदासीन तादृशव्यापारानाश्रय तदपादानसज्ञ स्यात् । तथा च विभागजनक व्यापारानाश्रयत्वे सति विभागाश्रयत्वमपादानत्वम् इति ।

मातु स्मरति — मातर स्मरति—इत्यर्थे 'अधीगर्थदयेषा कर्मणि' इति कर्मणि षष्ठ्या मातु स्मरति इति । आध्रियतेऽस्मिन्नित्याधार स च कस्येत्याकाङ्क्षाया क्रियायाम् इति लभ्यते । तथाहि साक्षाद् व्यापाररूपक्रियाया आधार कर्ता फलरूपाया आधार कर्म । ताभ्या बाधात् परम्परया क्रियाधारस्यैतत्सज्ञा एवञ्च 'कटे आस्ते' इत्यत्र कर्ता चैत्रादिस्तन्निष्ठास्ति क्रियाया परम्परयाधारस्य कटस्याधिकरणसज्ञा । स्थाल्या पचतीत्यत्र साक्षाद् विक्लित्तेराधारस्तण्डुलस्तदाधारभूता स्थाली, परम्परया विक्लित्तेराधार । अन्यत्राप्येवमेवाह्यम् । सर्वस्मिन्नात्मास्ति— 'आधारोऽधिकरणम्' इति सर्वेत्यस्याधिकरणसज्ञाया 'सप्तम्यधिकरणे' इति सप्तमीविभक्तौ च तत्सिद्धि । सर्वासा कारकविभक्तीनामेकत्र मेलनमधोलिखितश्लोके द्रष्टव्यम्—

(अलग २) होने मे कूटस्थभूत (वहीं ठहरा हुआ) कारक अपादान संज्ञक होता है।

१—अपादान मे पञ्चमी विभक्ति होती है। २—कारक तथा प्रातिपदिकार्थ से भिन्न जो स्व-स्वामिभावादि (अपनापन या स्वामी सम्बन्धी आदि) सम्बन्ध को शेष कहते हैं उस (शेष) मे षष्ठी विभक्ति होती है। ३—कर्ता और कर्म के द्वारा तन्निष्ठ (कर्तृ-कर्म-निष्ठ) क्रिया का आधार जो कारक उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। ४—अधिकरण में सप्तमी

अथ समासाः

तत्रादौ केवलसमास । [1]'समास' पञ्चधा । तत्र समसन समास । स च विशेष-सज्ञाविनिर्मुक्त **केवलसमास** प्रथम ॥ १ ॥ प्रायेण पूर्वपदार्थ-प्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीय ॥ २ ॥ प्रायेणोत्तरपदाथप्रधान-स्तत्पुरुष स्तृतीय । तत्पुरुषभेद -कमधारय । कमधारयभेदो द्विगु ॥ ३ ॥ प्रायेणा न्यपदाथप्रधानो **बहुव्रीहिश्चतुर्थ** ॥ ४ ॥ प्रायेणोभयपदाथप्रधानो **द्वन्द्व** पञ्चम ॥ ५ ॥

समर्थ पदविधि २ । १ । १ ॥ [2]पदसम्बन्धी यो विधि स समर्थाश्रितो बोध्य ।

प्राक्कडारात्समास २ । १ । ३ ॥ [3]'कडारा कर्मधारये' इत्यत प्राक 'समास' इत्यधिक्रियते ।

रामो राजमणि सदा विजयते राम रमेश भजे,
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नम ।
रामान्नास्ति परायण परतर रामस्य दासोऽस्म्यहम्,
रामे चित्तलय सदा भवतु मे भो राम ! मामुद्धर ॥

॥ इति कारकप्रकरणम् ॥

प्रकृतसमासप्रकरणे प्राय एष नियमोऽपि स्मरणीय —

चकारबहुलो द्वन्द्व स चासौ कमधारय ।
यस्य येषा बहुव्रीहि शेषास्तत्पुरुषा स्मृता ॥ इति ॥

विभक्ति होती है । चकारात्-दूर तथा समीप अर्थ में भी ।

॥ इति कारकप्रकरणम् ॥

१—समास—दो या अनेक पदों के सम्मिलित होने का नाम समास है । उस (समास) के प्रधान पाँच भेद होते हैं—१-केवल समास । २-अव्ययीभाव । ३-तत्पुरुष । ४-बहुव्रीहि । ५-द्वन्द्व । अव्ययीभावादि विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्त समास केवल-समास नामक होता है । जिस समास में पूर्व (प्रथम) पदार्थ (पद का अर्थ विषय) प्रधान होता है वह 'अव्ययीभाव' संज्ञक समास है । जिसमें उत्तर पदार्थ प्रधान हो, वह 'तत्पुरुष' संज्ञक होता है । जिसमें अन्य (समासोक्त पद से भिन्न-स्थानादि) प्रधान हो, वह 'बहुव्रीहि' संज्ञक होता है । जिसमें समस्त दोनों पद प्रधान हों, वह 'द्वन्द्व' संज्ञक है । तत्पुरुष का भेद कर्मधारय और कर्मधारय समास का भेद द्विगु-समास होता है । २—पद को उद्देश्य करके की जानेवाली विधि समर्थ का आश्रय करके रहती है । ३—'कडारा कर्मधारये' सूत्र से पहले तक 'समास' का अधिकार जाता है ।

सह सुपा २ । १ । ४ ॥ [1]सुप सुपा सह वा समस्यते । समासत्वात्प्राति पदिकत्वेन सुपो लुक् । पराथाभिधान **वृत्ति** । कृत्तद्धितसमासैकशेषसना द्यन्तधातुरूपा पञ्च वृत्तय । वृत्त्यर्थाऽवबोधक वाक्य **विग्रह** । स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र पूर्व भूत इति **लौकिक** । पूव अम् भूत सु **इत्यलौकिक** । भूतपूव । भतपूर्वे चरडिति निर्देशात् भूतशब्दस्य पूव निपात । [2]***इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च** । वागर्थां इव वागर्थाविव ।

॥ इति केवलसमास ॥



अथाव्ययीभावसमासः

अव्ययीभाव २ । १ । ५ ॥ अधिकारोऽय प्राक् तत्पुरुषात् ।

अव्यय विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययाऽसम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथाऽऽनुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्याऽन्तवचनेषु २ । १ । ६ ॥

विभक्त्यर्थादिषु वतमानमव्यय सुबन्तेन सह नित्य समस्यते सोऽव्ययीभाव । प्रायेणाऽविग्रहो नित्यसमास , प्रायेणाऽस्वपदविग्रहो वा । **विभक्तौ**— 'हरि ङि अधि' इति स्थिते—

परार्थेति—समस्यमानपदार्थापेक्षया भिन्नार्थाभिधानमित्यथ । यथा 'राजपुरुष ' इत्युक्ते राज्ञ पुरुषस्यव बोधो भवति । लोके प्रयोगार्ह **लौकिक** । लोके प्रयोगानह **अलौकिक** ।

भूतपूव—अत्र 'पूव भूत ' इति लौकिकविग्रहे, 'पूव अम् भूत सु इत्यलौकि विग्रहे, 'सह सुपा' इत्यनेन विभाषा समाससज्ञाया समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन 'सुपा धातु–' इति सुपो (विभक्त्यो) लुकि, भूतपूर्वे चरट इति निर्देशेन भूतशब्दस्य पूवनिपाते, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात्सौ तस्य रुत्वविसर्गौ 'भूतपूव ' इति ।

॥ इति केवल–समास ॥



१—सुबन्त का सुबन्त के साथ समास विकल्प से होता है । २—'इव' शब्द के साथ समास होता है, और विभक्ति का लोप भी नहीं होता है ।

॥ इति केवल–समास ॥



३—'तत्पुरुष ' सूत्र के पूर्व तक 'अव्ययीभाव' का अधिकार है । ४—विभक्ति-समीप-आदि अर्थों में विद्यमान अव्यय का सुबन्त के साथ नित्य समास होता है और वह (समास) अव्ययीभाव–संज्ञक होता है ।

प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १ । २ । ४३ ॥ [1]समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात् ।

उपसर्जनं पूर्वम् २ । २ । ३० ॥ [2]समासे उपसर्जनं प्राक्प्रयोज्यम् । इत्यधेः प्राक् प्रयोगः । सुपो लुक् । एकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञाया स्वाद्युत्पत्तिः । अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात्सुपो लुक् । अधिहरि ।

अव्ययीभावश्च २ । ४ । १८ ॥ [3]अयं नपुंसकं स्यात् ।

नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः २ । ४ । ८३ ॥ [4]अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक्, तस्य पञ्चमीं विना अमादेशश्च स्यात् । गाः पातीति गोपस्तस्मिन्नित्यधिगोपम् ।

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २ । ४ । ८४ ॥ [5]अदन्तादव्ययीभावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात् । अधिगोपम्, अधिगोपेन, अधिगोपे वा । कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम् । मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनम् । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् । हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् । निद्रा सम्प्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि । विष्णोः पश्चादनुविष्णु । योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि **यथार्थाः** । रूपस्य योग्यमनुरूपम् । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ।

प्रथमानिर्दिष्टमिति—समाससंज्ञाविधायकशास्त्रघटकप्रथमान्तपदजन्यबोधविषयोऽर्थः उपसर्जनसंज्ञः स्यादित्यर्थः । तथाहि—अधिहरि इत्यत्र समाससंज्ञाविधायकं शास्त्रम् अव्ययं विभक्ति इत्यादि, तद्घटकं प्रथमान्तपदम् अव्ययमिति, तज्जन्यबोधविषयः 'अधि' इति तस्योपसर्जनसंज्ञेति निष्कर्षः ।

हरौ इति अधिहरि—'हरि ङि अधि' इत्यलौकिकविग्रहे अव्ययं विभक्ति समीप–' इत्यव्ययीभावसमासे, 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इति 'अधि' इत्यस्योपसर्जनसंज्ञायां 'उपसर्जनं पूर्वम्' इत्यधेः पूर्वनिपाते, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वे सुपो धातु–' इत्यादिना विभक्तेर्लुकि, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकनिमित्तकस्वाद्युत्पत्तौ अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात् 'अव्ययादाप्सुपः' इति सुपो लुक्' अधिहरि इति ।

१–समास शास्त्र में प्रथमानिर्दिष्ट की उपसर्जन संज्ञा होती है । २–समास में उपसर्जन का पूर्व–निपात होता है । ३–अव्ययीभाव समास नपुंसक लिङ्ग में होता है । ४–अदन्त अव्ययीभाव से सुप का लुक (लोप) नहीं होता किन्तु पञ्चमी को छोड़कर उसको अमादेश भी हो जाता है । ५–अदन्त अव्ययीभाव से परे तृतीया और सप्तमी विभक्ति को अम्भाव विकल्प से होता है ।

अव्ययीभावे चाऽकाले ६ । ३ । ८१ ॥ [1]सहस्य स स्यादव्ययीभावे न तु काले । हरे सादृश्य सहरि । ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येत्यनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत् सचक्रम् । सदश सख्या ससखि । क्षत्राणा सम्पत्ति सक्षत्रम् । तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति । अग्निग्रन्थपयन्तमधीते साऽग्नि ।

नदीभिश्च २ । १ । २० ॥ [2]नदीभि सह सख्या समस्यते । [3]***समाहारे चायमिष्यते** । पञ्चगङ्गम् ।

तद्धिता ४ । १ । ७६ ॥ [4]आ पञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम् ।

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य ५ । ४ । १०७ ॥ [5]शरदादिभ्यष्टच् स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे । शरद समीपमुपशरदम् । प्रतिविपाशम् । [ग] [6]**जराया जरस च** । उपजरसमित्यादि ।

अनश्च ५ । ४ । १०८ ॥ [7]अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच ।

नस्तद्धिते ६ । ४ । १४४ ॥ [8]नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम् ।

नपुसकादन्यतरस्याम ५ । ४ । १०९ ॥ [9]अन्नन्त यत् क्लीब तदन्तादव्ययीभावाट्टज्वा स्यात् । उपचमम् । उपचम ।

झय ५ । ४ । १११ ॥ [10]झयन्तादव्ययीभावट्टज् वा स्यात् । उपसमिधम्–उपसमित् । **॥ इत्यव्ययीभाव समास ॥**

पञ्चगङ्गम्— पञ्चाना गङ्गानाम्' इति लौकिके पञ्चन् आम् गङ्गा आम्' इत्यलौकिके विग्रहे नदीभिश्चेति समासे, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वे, 'सुपो धातु–' इति सुपो लुकि, 'न लोप प्रातिपदिकान्तस्य' इति नकारलोपे, 'स नपुसकम्' इति नपुसकसज्ञायाम्, 'ह्रस्वो नपुसके प्रातिपदिकस्य' इति ह्रस्वे, तत प्रातिपदिकत्वेन सौ, सोरमि पूर्वरूपे च कृते 'पञ्चगङ्गम्' इति ।

१—अव्ययीभाव समास में सह को 'स' आदेश होता है, काल को छोडकर । २—नदी वाचक समर्थ सुबन्तों के साथ सख्या–वाचकों का समास होता है । ३—यह (नदीभिश्च) सूत्र समाहार में भी लगता है, ऐसा ही इष्ट है । ४—पञ्चमाध्याय की समाप्ति पर्यन्त 'तद्धिता ' इस सूत्र का अधिकार जाना है । ५—अव्ययीभाव समास में शरदादि–गण–पठित–शब्दों से समासान्त टच प्रत्यय होता है । ६—जरा शब्द को जरस् आदेश होता है । ७—अन्नन्त अव्ययीभाव से टच् होता है । ८—तद्धित प्रत्यय पर हो तो नान्त भसंज्ञक टि का लोप होता है । ९—अन्नन्त जो नपुँसक तदन्त अव्ययीभाव से टच प्रत्यय विकल्प से होता है । १०—झयन्त अव्ययीभाव से टच प्रत्यय विकल्प से होता है ।

॥ इत्यव्ययीभाव समास ॥

अथ तत्पुरुषसमासः

तत्पुरुषः २ । १ । २२ ॥ [1]अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः ।

द्विगुश्च २ । १ । २३ ॥ [2]द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात् ।

द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २ । १ । २४ ॥ [3]द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते, स च तत्पुरुषः । कृष्णं श्रितः—कृष्णश्रितः इत्यादि ।

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २ । १ । ३० ॥ [4]तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनाऽर्थेन च सह वा प्राग्वत् । शकुलया खण्डः शकुलाखण्डः । धान्येनाऽर्थो धान्यार्थः । तत्कृतेनेति किम् ? अक्ष्णा काणः ।

कर्तृकरणे कृता बहुलम् २ । १ । ३२ ॥ [5]कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् । हरिणा त्रातो हरित्रातः । नखैर्भिन्नो नखभिन्नः । **कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्** । नखनिर्भिन्नः ।

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः २ । १ । ३६ ॥ [6]चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना, अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् । यूपाय दारु यूपदारु । ॐ[7]**तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः** । तेनेह न—रन्धनाय स्थाली । ॐ[8]**अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्** । द्विजार्थः सूपः । द्विजार्था यवागूः । द्विजार्थं पयः । भूतबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् ।

तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभावेति—अयम्भावः—प्रकृतिः समवायिकारणं, विकृतिः कार्यम्, एवञ्च यत्र समवायिकारणकार्यभावस्तत्र समासः यथा 'घटाय मृत्तिका घटमृत्तिका' 'वस्त्राय तन्तवः वस्त्रतन्तवः' 'यूपाय दारु यूपदारु' इत्यादिषु समासः, न तु 'रन्धनाय स्थाली' इत्यादाविति बोध्यम् ।

१—'तत्पुरुष' का अधिकार 'शेषो बहुव्रीहिः' सूत्र से पूर्व तक जाता है । २—द्विगुसमास भी तत्पुरुष संज्ञक होता है अर्थात् तत्पुरुष का भेद ही द्विगु है । ३—द्वितीयान्त का श्रित–अतीत–आदि प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है और वह तत्पुरुष संज्ञक होता है । ४—तृतीयान्त का तृतीयान्तार्थकृत–गुणवचन के साथ तथा अर्थ शब्द के साथ विकल्प से समास होता है । ५—कर्ता या करण में जो तृतीया उसका कृदन्त के साथ बहुलता (विकल्प) से समास होता है । ६—चतुर्थ्यन्तार्थ के लिए जो है, तद्वाचक शब्द के साथ तथा अर्थ, बलि–आदिकों के साथ विकल्प से समास होता है । ७—तदर्थ से प्रकृति–विकृति भाव (स्वरूपान्तर प्राप्ति) ही इष्ट है । अत एव 'रन्धनाय स्थाली' में समास नहीं हुआ । कारण कि बटुली का रूपान्तर नहीं होता । ८—चतुर्थ्यन्त सुबन्त का अर्थ शब्द के साथ नित्यसमास और विशेष (प्रधान) का लिङ्ग भी कहना चाहिये ।

[1]**पञ्चमी भयेन** २ । १ । ३७ ॥ चोराद्भय चोरभयम् ।

[2]**स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** २ । १ । ३९ ॥

[3]**पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** ६ । ३ । २ ॥ अलुगुत्तरपदे । स्तोकान्मुक्त । अन्तिकादागत । अभ्याशादागत । दूरागत । कृच्छ्रादागत ।

षष्ठी २ । २ । ८ ॥ [4][षष्ठ्यन्त] सुबन्तेन प्राग्वत् । राजपुरुष ।

[5]**पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** २ । २ । १ ॥ [5]अवयविना सह पूर्वादय समस्यन्ते एकत्वसख्याविशिष्टश्चेदवयवी । षष्ठीसमासापवाद । पूर्वं कायस्य पूर्वकाय । अपरकाय । एकाधिकरणे किम् ? पूर्वश्छात्राणाम् ।

अर्धं नपुसकम् २ । २ । २ ॥ [6]समाशवाच्यर्धशब्दो नित्य क्लीबे, स प्राग्वत् । अर्ध पिप्पल्या अर्धपिप्पली ।

सप्तमी शौण्डै २ । १ । ४० ॥ [7]सप्तम्यन्त शौण्डादिभि प्राग्वत् । अक्षेषु शौण्ड अक्षशौण्ड इत्यादि । द्वितीया–तृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादि–विभक्तीना प्रयोगवशात्समासो ज्ञेय ।

[8]**दिक्सख्ये सज्ञायाम्** २ । १ । ५० ॥ सज्ञायामेवेति नियमार्थ सूत्रम् । पूर्वेषुकामशमी । सप्तर्षय । तेनेह न–उत्तरा वृक्षा । पञ्च ब्राह्मणा ।

विशेष्यलिङ्गतेति—परवल्लिङ्गस्य बाधकमिदम् । **अर्धपिप्पली**–अर्ध पिप्पल्या इति विग्रहे 'अर्ध नपुसकम्' इति समासे, अर्धस्योपसर्जनत्वेन पूर्वप्रयोगे सुपो धातुरिति सुपो लुकि, तत समासत्वेन 'सु' आदि विभक्तिकार्ये च कृते 'अर्धपिप्पली' इति । अत्र 'पिप्पली' शब्दे 'एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनम्' इति वचनेनानुपसर्जनत्वात् 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' इति ह्रस्वो न । **शौण्डादिभिरिति**—शौण्ड कितव–धूर्त–व्याड–प्रवीण–संवीत–अन्तर–अधि–पटु–पण्डित–कुशल–निपुण चपल सज्ञका शौण्डादय ।

१–पञ्चम्यन्त का भय–वाचक समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है । २–स्तोक–अन्तिक एवं दूरार्थक तथा कृच्छ्र–प्रकृतिक पञ्चम्यन्त का क्तान्त–प्रकृतिक के साथ समास होता है । ३–उत्तर पद पर हो तो स्तोक आदि शब्दों से पञ्चमी का लोप नहीं होता है । ४–षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक का सुबन्त समर्थ के साथ समास होता है । ५–पूर्वादि–शब्दों का अवयवी के साथ समास होता है, किन्तु यदि वह अवयवी एकत्वसंख्या–विशिष्ट (एकाधिकरण मे) हो तब । ६—नित्य नपुसक जो समांश 'बराबरी भाग' का वाचक अर्ध–शब्द उसका अवयवी के साथ समास होता है । ७—सप्तम्यन्त सुबन्त का शौण्डादिगणपठित–शब्दों के साथ समास होता है । ८—दिशावाचक तथा संख्या–वाचक शब्दों का समास संज्ञा अर्थ मे ही होता है ।

*तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २ । १ । ५१ ॥ [1]तद्धितार्थे विषये उत्तर पदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्सङ्ख्ये प्राग्वत् । पूर्वस्या शालाया भव पूर्वा शाला इति समासे जाते–[2]सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव ।

दिक्पूर्वपदादसंज्ञाया ञ ४ । २ । १०७ ॥ [3]अस्माद् भवाद्यर्थे ञ स्याद-संज्ञायाम् ।

तद्धितेष्वचामादे ७ । २ । ११७ ॥ [4]ञिति णिति च तद्धितेष्वचामा-देरचो वृद्धि स्यात् । यस्येति च । पौर्वशाल । पञ्च गावो धन यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ [5]द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ।

गोरतद्धितलुकि ६ । ४ । ९५ ॥ [6]गोऽन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समा-सान्तो, न तु तद्धितलुकि । पञ्चगवधन ।

पौर्वशाल — पूर्वस्या शालाया भव ' इति लौकिकविग्रहे, पूर्वा ङि शाला ङि इत्यलौकिके 'तद्धितार्थोत्तरपद– इति समासे, समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपा लुकि, सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव ' इति पूर्वपदस्य पुंवद्भावे 'पूर्वशाला इत्यस्मात् ङौ 'दिक्पूर्वपदादसंज्ञाया ञ ' इति ञप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, तद्धितान्तत्वेन प्रातिपदिकत्वात् सुप (ङे) लुकि 'तद्धितेष्वचामादे इत्याद्यचो वृद्धौ सु आदि विभक्तिकार्ये च 'पौर्वशाल ' इति ।

पञ्चगवधन —'पञ्च गावो धन यस्य' इति लौकिकविग्रहे 'पञ्चन् जस् गो जस् धन सु' इत्यलौकिकविग्रहे, पूर्वम् अन्यपदार्थप्रधानत्वात् 'अनेकमन्यपदार्थे' इति सूत्रेण बहुव्रीहिसंज्ञकसमास ततः 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इति तत्पुरुष समासे, प्रातिपदिकत्वात्सुपो धातुरिति सुपो लुकि, अन्तर्वर्तिविभक्तिमाश्रित्य पदत्वेन पञ्चन् इत्यस्य नलोपे 'पञ्च गो धन' इति स्थिते, गोशब्दात् गोरतद्धितलुकि' इति टच्यनुबन्धलोपे 'एचोऽयवायाव इत्यवादेशे, प्रातिपदिकत्वात्सौ, उकारस्येत्संज्ञालोपयो सस्य रुत्वे विसर्गे च कृते 'पञ्चगवधन ' इति ।

१—तद्धितार्थ का विषय हो, या उत्तर पद पर हो या समाहार वाच्य हो तो दिशा वाचक तथा संज्ञावाचक सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है। २—सर्वनाम को वृत्ति 'समास' मात्र मे पुंवद्भाव होता है। ३—संज्ञा से भिन्न अर्थ मे दिक्पूर्वपद–समास से भव–आदि अर्थ में 'ञ' प्रत्यय होता है। ४—तद्धितीय प्रत्ययों में ञित् या णित् पर हो तो अचों के आदि अच् को वृद्धि होती है। ५—उत्तरपद परे रहते द्वन्द्व और तत्पुरुष समास को नित्य समास होता है, 'ऐसा कहना चाहिये'। ६—गो–शब्दान्त–तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है किन्तु तद्धित का लोप 'पर में' न हुआ हो तब ।

तत्पुरुष समानाधिकरण कर्मधारय १। २। ४२॥

सङ्ख्यापूर्वो द्विगु २। १। ५२॥ [२]तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविध सङ्ख्या पूर्वो द्विगुसञ्ज स्यात्।

द्विगुरेकवचनम् २। ४। १॥ द्विग्वर्थ समाहार एकवत्स्यात्।

स नपुंसकम् २। ४। १७॥ [४]समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसक स्यात्। पञ्चाना गवा समाहार –पञ्चगवम्।

विशेषण विशेष्येण बहुलम् २। १। ५७॥ [५]भेदक समानाधिकरणेन भेद्येन बहुल प्राग्वत्। नीलमुत्पल नीलोत्पलम्। बहुलग्रहणात्क्वचिन्नित्यम्–कृष्णसर्प। क्वचिन्न–रामो जामदग्न्य।

उपमानानि सामान्यवचनै २। १। ५५॥ [६]घन इव श्यामो घनश्याम। [७]**ॐशाकपार्थिवादीना सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम**। शाकप्रिय पार्थिव शाकपार्थिव। देवपूजको ब्राह्मणो देवब्राह्मण।

नञ २। २। ६॥ [८]नञ् सुपा सह समस्यते।

नलोपो नञ ६। ३। ७३॥ [९]नञो नस्य लोप उत्तरपदे। न ब्राह्मण – अब्राह्मण।

विशेषण विशेष्येण इति––

भेद्य विशेष्यमित्याहुर्भेदक तु विशेषणम्।
प्रधान तु विशेष्य स्यादप्रधान विशेषणम्॥
पदार्थे स्वार्थनिरपेक्षादप्रधान विशेषणम्।
विशेष्य तु प्रधान स्यात्स्वार्थस्यैव समर्पणात्॥

बहुलमिति–क्वचित्प्रवृत्ति क्वचिदप्रवृत्ति क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधान बहुधा समीक्ष्य चतुर्विध बाहुलक वदन्ति॥

१—समानाधिकरण 'समानाधिकरण' तत्पुरुष समास की कर्मधारय संज्ञा होती है। २—'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र-प्रतिपादित त्रिविध जो तत्पुरुष समास वह यदि सङ्ख्यापूर्वक हो तो द्विगुसंज्ञक होता है। ३—द्विग्वर्थक समाहार एकवत् 'एक वचन' होता है। ४—समाहार मे द्विगु तथा द्वन्द्व नपुंसक लिङ्ग होते हैं। ५—भेदक='विशेषण' का समानाधिकरण भेद्य='विशेष्य' के साथ बहुलता 'विकल्प' से समास होता है। ६—उपमान-वाचक 'इवादि' शब्दों का सामान्य वचन के साथ समास होता है। ७—'शाकपार्थिव' आदि की सिद्धि के लिये उत्तर-पद का लोप कहना चाहिये 'होता है'। ८—नञ् का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है। ९—उत्तर पद पर हो तो नञ् के नकार का लोप होता है।

तस्मान्नुडचि ६ । ३ । ७४ ॥ [1]लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याऽजादेर्नुडागम स्यात् । अनश्व । नैकधेत्यादौ तु 'न' शब्देन सह सुप्सुपेति समास ।

कुगतिप्रादय २ । २ । १८ ॥ एते समर्थेन नित्य समस्यन्ते । कुत्सित पुरुष कुपुरुष ।

ऊर्यादिच्विडाचश्च १ । ४ । ६१ ॥ [3]ऊर्यादयश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसज्ञा स्यु । ऊरीकृत्य । शुक्लीकृत्य । पटपटाकृत्य । सुपुरुष । [4]**प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया** । प्रगत आचार्य —प्राचार्य । [5]***अत्यादय क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया** । अतिक्रान्तो मालामिति विग्रह—

एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते १ । २ । ४४ ॥ विग्रहे यन्नियतविभक्तिक तदुपसर्जनसज्ञ स्यान्न तु तस्य पूर्वनिपात ।

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८॥ [7]उपसर्जन यो गोशब्द , स्त्रीप्रत्ययान्तश्च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्व स्यात् । अतिमाल । [8]***अवादय क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया** । अवक्रुष्ट कोकिलया-अवकोकिल । [9]***पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या** ।

अनश्व—'न अश्व ' इति विग्रहे 'नञ्' इत्यनेन समासे 'न लोपो नञ ' इति नलोपे, 'अ अश्व' इति दशायां 'तस्मान्नुडचि–' इति नुटयनुबन्धलोप, तत प्रातिपदिकसज्ञायाम् विभक्तिकार्ये च कृते 'अनश्व ' इति ।

अतिमाल—अतिक्रान्त मालामिति विग्रहे 'अत्यादय क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इति समास, प्रतिपादिकत्वात्सुपा लुकि, 'एकविभक्तिचापूर्वनिपाते' इति सूत्रेणैव मालेत्यस्यापसर्जनत्वे, तथा प्राक्प्रयोगस्य निषेधे च कृते, 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' इति ह्रस्वे, अतिमालशब्दात्प्रातिपदिकत्वेन 'सु' आदि विभक्तिकार्ये तत्सिद्धि ।

१—लुप्त नकार (लोप हो गया है 'न' जिसका ऐसे) नञ् से उत्तर अजादि शब्द को नुट् का आगम होता है । २—कुत्सितार्थ प्रतिपादक-कु-शब्द तथा गति-सज्ञक शब्द एवं प्र-आदि उपसर्ग शब्दों का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है । ३—क्रिया के योग मे ऊर्यादि 'ऊरी-आदि' च्व्यन्त एव डाजन्त की गति संज्ञा होती है । ४-प्र-आदिक शब्दों का गति-आदि अर्थ मे प्रथमान्त प्रातिपादिक के साथ समास होता है । ५—अति-आदिक शब्द क्रान्त आदि अर्थ मे द्वितीयान्त के साथ समस्त होते हैं । ६-विग्रह मे जो नियत 'निश्चित एक' विभक्तिक है उसकी उपसर्जन सज्ञा होती है किन्तु उसका पूर्वनिपात 'पूर्व में प्रयोग' नहीं होता । ७-उपसर्जन जो गो शब्द तथा स्त्रीप्रत्यान्त तदन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होना है । ८-अव-आदिक उपसर्ग क्रुष्ट 'बोलने' आदि अर्थ में तृतीयान्त सुबन्त के साथ समस्त होते हैं । ९—ग्लान-आदि अर्थ में परि आदि उपसर्गो का चतुर्थ्यन्त सुबन्त के साथ समास होता है ।

परिग्लानोऽध्ययनाय—पर्यध्ययनः । [1]**निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ।** निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः ।

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३ । १ । ९२ ॥ सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत्कुम्भादि, तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात् ।

उपपदमतिङ् २ । २ । १९ ॥ [3]उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते । अतिङन्तश्चायं समासः । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः । अतिङ् किम् ? मा भवान् भूत् । माङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम् । [4]**गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः ।** व्याघ्री । अश्वक्रीती कच्छपीत्यादि ।

कुम्भकारः—कुम्भं करोतीति विग्रहे कर्मण्यण् इत्यणि 'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' इत्युपपदसंज्ञायां 'उपपदमतिङ्' इति समासे, प्रातिपदिकत्वेन सुपो धातुरिति सुपो लुकि, 'कुम्भ कृ अ' इति दशायां 'अचोऽञ्णिति' इति 'कृ' इत्यस्य वृद्धौ, रपरे, प्रातिपदिकसंज्ञायां विभक्तिकार्ये च कृते 'कुम्भकारः' इति । **व्याघ्री**—'व्याजिघ्रति' इति विग्रहे 'आतश्चोपसर्गे' इति कप्रत्यये 'आङ' उपसर्गस्य 'घ्र' शब्देन 'वि' उपसर्गस्य च 'आघ्र' शब्देन सह 'गतिकारक—' इति परिभाषासहकारेण सुबुत्पत्तेः प्राक् गतिसमासे, 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' इति ङीष्यनुबन्धलोपे, प्रातिपदिकसंज्ञायां 'सौ' हल्ङ्यादिना सोर्लोपे तत्सिद्धिः । अत्र सुबुत्पत्त्यनन्तरं समासे तु सुपः प्राक् टापि अदन्तत्वाभावान् ङीष् न स्यादिति बोध्यम् । **अश्वक्रीती**—'अश्वेन क्रीता' इति विग्रहे गतिकारकेति परिभाषासहकारेण सुबुत्पत्तेः प्राक् कर्तृकरणे कृता बहुलमिति समासे 'क्रीतात्करणपूर्वात्' इति ङीष्यनुबन्धलोपे, प्रातिपदिकत्वात्सुपो धातुरिति सुपो लुकि ततः प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ तस्य लोपे च 'अश्वक्रीती' इति, अत्रापि सुबुत्पत्त्यनन्तरं समासे टाप्यदन्तत्वाभावान् ङीष् न स्यात् । **कच्छपी**—'कच्छेन कच्छाभ्यां वा पिबति इति विग्रहे 'सुपि स्थः' इत्यत्र सुपीत्यस्य योगविभागेन 'क' प्रत्यये, उपपदमिति समासे, सुपो लुकि, जातिवाचकत्वात् 'जातेरस्त्री'

१—निर् आदि उपसर्ग, क्रान्त–आदि अर्थ में पञ्चम्यन्त सुबन्त के साथ समस्त होते हैं । २—सप्तम्यन्त 'कर्मणि' इत्यादि पद में वाच्यत्वेन स्थित जो कुम्भ–आदि तद्–वाचक पद उपपद–संज्ञक होता है । ३—उपपद सुबन्त का समर्थ के साथ नित्य समास होता है । यह समास तिङन्त से भिन्न के साथ प्रवृत्त होता है । ४—सुप् की उत्पत्ति के पूर्व ही गति–संज्ञकों, कारकों एवं उपपदों का कृदन्त के साथ समास होता है ।

तत्पुरुषाङ्गुले सङ्ख्याव्ययादे ५ । ४ । ८६ ॥ [१]सङ्ख्याव्ययादेरगुल्यन्तस्य समासान्तोऽच स्यात् । द्वे अगुली प्रमाणमस्य द्वयङ्गुलम् । निर्गतमगुलिभ्यो निरगुलम् ।

अह सर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रे ५ । ४ । ८७ ॥ [२]एभ्यो रात्रे रच् स्याच्चात्सङ्ख्याव्ययादे । अहग्रहण द्वन्द्वाथम् ।

रात्राह्नाहा पुंसि २ । ४ । २९ ॥ [३]एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव । अहश्च रात्रिश्च अहोरात्र । सवरात्र । सख्यातरात्र । [४]**॥सख्यापूर्व रात्र क्लीबम् ।** द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् ।

राजाह सखिभ्यष्टच ५ । ४ । ९१ ॥ [५]एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच स्यात् । परमराज ।

आन्महत समानाधिकरणजातीययो ६ । ३ । ३ । ४६ ॥ [६]महत आकारोऽन्तादेश स्यात्समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे । महाराज । **प्रकारवचने जातीयर् ।** महाप्रकारो महाजातीय ।

इति ङीष्यनुबन्धलोपे, प्रातिपदिकसंज्ञाया सौ' तस्य लोपे च तत्सिद्धि । अत्रापि परिभाषाविरहे स एव दोष ।

अहोरात्र —'अहश्च रात्रिश्च' इति विग्रहे 'चार्थे द्वन्द्व' इति समासे सुपोलुकि अह सर्वैकदेश–०' इति अच प्रत्यये, इत्संज्ञकचकारलोपे, 'यस्येति च' इत्यनेनेकारलोपे, 'अहन्' इति नस्य रुत्वे, 'हशि च' इत्युत्वे गुणे अहोरात्र इति स्थिते 'परवल्लिङ्ग—' इति सूत्र प्रबाध्य 'रात्राह्नाहा पुंसि' इति पुंस्त्वे, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धि ।

परमराज — परमश्चासौ राजा' इति विग्रहे, विशेषण विशेष्येण इति समासे, सुपो लुकि, 'राजाह सखिभ्यष्टच्' इति टच्यनुबन्धलोपे, नस्तद्धित इति टेर्लोपे, विभक्तिकार्ये 'परमराज ' इति ।

१—सख्या या अव्यय है आदि में जिसके ऐसे अंगुलि-शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त अच् प्रत्यय होता है । २—अह 'अहन्' आदि से परे जो रात्रि शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासा न अच् प्रत्यय होता है चकारात् सख्यादि तथा अव्ययादि पूर्वक रात्रि शब्द से भी होता है । ३—'कृत समासान्त' रात्र अह या अह है अन्त मे जिनके ऐसे द्वन्द्व तथा तत्पुरुष पुलिङ्ग ही होते हैं । 'यह परवल्लिङ्गम् द्वन्द्वतत्पुरुषयो ' का बाधक है । ४—सख्यापूर्वक रात्र-शब्द नपुंसकलिङ्ग होता है । ५—राजन् अहन् या सखि ये कोई हों अन्त में जिनके ऐसे तत्पुरुष से टच् प्रत्यय होता है । ६—समानाधिकरण उत्तर पद में या जातीयर् प्रत्यय पर मे हो तो महत् शब्द को आकार अन्तादेश होता है ।

[1]**द्व्यष्टन सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्यो** ६ । ३ । ४७ ॥ आत्स्यात् । द्वौ च दश च द्वादश । अष्टाविंशति ।

[2]**त्रेस्त्रय** ६ । ३ । ४८ ॥ त्रयोदश । त्रयोविंशति । त्रयस्त्रिंशत् ।

परवल्लिङ्ग द्वन्द्वतत्पुरुषयो २ । ३ । २६ ॥ [3]एतयो परपदस्येव लिङ्ग स्यात् । कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटौ । अर्धपिप्पली । [4]**द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य** । पञ्चसु कपालेषु संस्कृत – पञ्चकपाल पुरोडाश ।

प्राप्ताऽऽपन्ने च द्वितीयया २ । २ । ४ ॥ [5][प्राप्तापन्ने च द्वितीयया] समस्येते । अकारश्चानयोरन्तादेश । प्राप्तो जीविका प्राप्तजीविक । आपन्न जीविक । अल कुमार्यै—अलकुमारि । अत एव ज्ञापकात्समास —निष्कौशाम्बि ।

अर्धर्चा पुंसि च २ । ४ । ३१ ॥ [6]अर्धर्चादय शब्दा पुंसि क्लीबे च स्यु । अर्धर्च । अर्धर्चम् । एव ध्वज तीर्थ शरीर-मण्डप-यूप-देह-ऽङ्कुश पात्र-सूत्रादय । सामान्ये नपुंसकम् । मृदु पचति । प्रात कमनीयम् ।

॥ इति तत्पुरुषसमासप्रकरणम् ॥

अथ बहुव्रीहिसमास.

शेषो बहुव्रीहि २ । २ । २३ ॥ [7]अधिकारोऽय प्राग्द्वन्द्वात् ।

अनेकमन्यपदार्थे २ । २ । २४ ॥ [8]अनेक प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमान वा समस्यते स बहुव्रीहि ।

अर्धर्चम्—ऋचाऽर्धम् इति विग्रहे अर्ध नपुंसकम्' इत्येकदेशिसमासे, ऋक्पूरब्धू –' इति समासान्त— अ' प्रत्यये विभक्तिकार्ये कृते तस्य सिद्धि ।

१—सख्या पर हो तो अष्टन् शब्द को आत्व होता है, कि तु बहुव्रीहि या अशीति पर रहे तो नहीं होता है । २—'सख्या परे रहते' त्रि को त्रयस् आदेश होता है, 'कि तु बहुव्रीहि अशीति परे नहीं' । ३—द्वन्द्व एव तत्पुरुष समास का लिङ्ग 'द्वितीय' पद के समान होता है । ४—द्विगु-समास तथा प्राप्त आपन्न या अलम् पूर्वक एव गति-समास मे पर-पद का लिङ्ग नहीं होता । ५—प्राप्त एवं आपन्न शब्द का द्वितीयान्त के साथ समास होता है । ६—अर्धर्चादि-शब्द पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग होते हैं ।

॥ इति तत्पुरुषसमासप्रकरणम् ॥

७—बहुव्रीहि का अधिकार 'चार्थे द्वन्द्व' के पूर्वतक जाता है । ८—अन्य (अर्थात समस्त पद से भिन्न) पद के अर्थ में वर्तमान अनेक प्रथमान्तपदों का विकल्प से समास होता है और वह समास बहुव्रीहि-संज्ञक होता है ।

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २ । २ । ३५ ॥ [1]सप्तम्यन्त विशेषण च बहुव्रीहौ पूव स्यात् । अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहि ।

हलदन्तात्सप्तम्या सज्ञायाम ६ । ३ । ९ ॥ [2]हलन्ताददन्ताच्च सप्तम्या अलुक । कण्ठेकाल । प्राप्तमुदक य स प्राप्तोदको ग्राम । ऊढरथोऽनड्वान् । उपहृतपशू रुद्र । उद्धतौदना स्थाली । पीताम्बरो हरि । वीरपुरुषको ग्राम । [3]***प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोप** । प्रपतितपण प्रपण । [4]***नञोऽस्त्यर्थाना वाच्यो वा चोत्तरपदलोप** । अविद्यमानपुत्र –अपुत्र ।

स्त्रिया पुवद्भाषितपुस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ६ । ३ । ३४ ॥ [5]भाषितपुस्कात्–अनूङ्–ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहि । निपातनात्पञ्चम्या अलुक, षष्ठ्याश्च लुक । तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्त पुस्क तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुवाचकस्येव रूप स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्या प्रियादौ च परत । गोस्त्रियोरिति ह्रस्व । चित्रगु । रूपवद्भाय । अनूङ् किम् ? वामोरूभाय । पूरण्यान्तु—

'ऊढो रथो येन स '—**ऊढरथ** । उपहृत पशु यस्म स ' **उपहृतपशु** । 'उद्धतमोदन यस्या सा' **उदधृतौदना** । 'वीरा पुरुषा यस्मिन् स ' **वीरपुरुषक** । 'प्रकर्षेण पतितानि प्रपतितानि, 'प्रपतितानि पर्णानि यस्य स ' इति विग्रहे 'प्रादिभ्यो धातुजस्य' इति वार्तिकेन समासे, पतितशब्दस्य वैकल्पिके लोपे च कृते सुपो लुकि, ततो विभक्तिकार्ये च '**प्रपण** ' '**प्रपतितपण** इति रूपद्वयम् । 'न विद्यमानोऽविद्यमानाऽविद्यमान पुत्रो यस्य स ' इति विग्रहे नञोऽस्त्यर्थानाम्–' इति वार्तिकेन समासे उत्तरपदस्य लोपे च कृते, सुपो लु ततो विभक्तिकार्ये '**अविद्यमानपुत्र – अपुत्र** ' इति रूपद्वयम् । इदञ्च वार्तिकद्व वकल्पिकोत्तरपदलोपाथम् । भाषित पुमान् यस्मिन्नर्थे स भाषितपुस्क सोऽस्त्यस्य तद् **भाषितपुस्कम** । **चित्रगु** –चित्रा गावो ('चित्रा गौ ' वा) यस्य इति विग्रहे 'अनेकमन्यपदार्थे' इति समासे प्राति-

१—सप्तम्यन्त तथा विशेषण का बहुव्रीहि समास में पूर्व–प्रयोग होता है । २—हलन्त तथा अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् 'लोप' नहीं होता है । ३—प्रादि परे धातुज 'धातु से उत्पन्न' का अन्य पद के साथ समास होता है और उत्तरपद का लोप भी विकल्प से होता है । ४—नञ् से परे अस्ति 'विद्यमान' अर्थ वाचक शब्द का अन्य पद के साथ समास होना है और विकल्प से उत्तरपद का लोप भी होता है । ५—समानाधिकरण स्त्रीलिंग उत्तर पद में हो तो प्रवृत्ति–निमित्त के तुल्य होने पर जो भाषितपुस्क 'पहले पुंलिङ्ग हो' उससे

अप्पूरणीप्रमाण्यो ५।४।११६॥ [1]पूरणाथप्रत्ययात यत्स्त्रीलिग तदन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप्स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासा रात्रीणा ता —कल्याणीपञ्चमा रात्रय। स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाण। अप्रियादिषु किम्? कल्याणीप्रिय इत्यादि।

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णो स्वाङ्गात् षच् ५।४।११३॥ [2]स्वाङ्गवाचि सक्थ्यक्ष्यन्ताद्बहुव्रीहे षच् स्यात्। दीघसक्थ। जलजाक्षी। स्वाङ्गात्किम्? दीघसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टि। अक्ष्णोऽदशनादिति वक्ष्यमाणोऽच।

द्वित्रिभ्या ष मूध्न ५।४।११५॥ [3]आभ्या मूध्न ष स्याद् बहुव्रीहौ। द्विमूध। त्रिमूध।

अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्न ५।४।११७॥ [4]आभ्या लोम्नोऽप स्याद् बहुव्रीहौ। अन्तर्लोम।

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य ५।४।१३८॥ [5]हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोप स्याद्बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य—व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्य किम्? हस्तिपाद। कुसूलपाद।

सख्या सुपूवस्य ५।४।१४०॥ [6]पादस्य लोप स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्। सुपात्।

पदिकत्वात्सुपो लुकि, 'स्त्रिया पुवद्भाषितपुस्कादनूङ—' इत्यादिना चित्रेत्यस्य पुवद्भावे 'गोस्त्रियोरुपसजनस्य' इति 'गो निष्ठ—ओकारस्य ह्रस्वे प्रातिपदिक सज्ञाया स्वाद्युत्पत्तौ विभक्तिकार्ये—च कृते **'चित्रगु'** इति। एवमेव 'रूपवती भार्या यस्य स' **रूपवद्भाय**। अत्रापि पुवद्भावेन रूपवतीशब्दस्य ङीपो निवृत्ति स्तथा भार्याशब्दस्याकारस्य ह्रस्वोऽकार इति ज्ञेयम्। 'द्वौ पादौ यस्य स' **द्विपात्**।

परे ऊङ का अभाव जिसमे है ऐसे स्त्री—वाचक शब्द का 'पुंल्लिङ्ग' वाचक शब्द के तुल्य रूप होता है किन्तु पूरणी या प्रियादि पर मे रहे तो नहीं होता।

१—पूरणार्थ प्रत्ययान्त जो स्त्रीलिङ्ग तदन्त तथा प्रमाण्यन्त 'प्रमाणी हो अन्त में जिसके ऐसे बहुव्रीहि समास से अप प्रत्यय होता है। २—स्वाङ्ग—वाची सक्थि एवं अक्षि—शब्दान्त बहुव्रीहि—समास से षच् प्रत्यय होता है। ३—बहुव्रीहि समास में द्वि एवं त्रि शब्द—पूर्वक मूधन्—शब्दान्त से 'ष'—प्रत्यय होता है। ४—बहुव्रीहि में, अन्तर् या बहिर्—शब्द पूर्व में हो जिसके ऐसे लोमन् शब्द से अप् प्रत्यय होता है। ५—बहुव्रीहि में हस्ति आदि से भिन्न जो उपमान—वाचक शब्द उससे परे पाद—शब्द का लोप होता है। 'यह समासान्त' है अत दकारोत्तरवर्त्यकार का लोप होता है।' ६—बहुव्रीहि में संख्या या सु है पूर्व मे जिसके ऐसे पाद शब्द का समासान्त लोप होता है।

उद्विभ्यां काकुदस्य ५।४।१४८॥ [1]लोप स्यात् । उत्काकुत् । विकाकुत् ।

पूर्णाद्विभाषा ५ । ४ । १४९ ॥ [2]पूर्णकाकुत् । पूर्णकाकुद ।

सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयो ५ । ४ । १५० ॥ [3]सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृत्–मित्रम् । दुर्हृत्-अमित्र ।

[4]**उर प्रभृतिभ्य कप्** ५ । ४ । १५१ ॥ **सोऽपदादौ** ८ । ३ । ३८ ॥ [5]पाशकल्पककाम्येषु [परेषु] विसर्गस्य स ।

कस्कादिषु च ८ । ३ । ४८ ॥ [6]एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु स । इति स । व्यूढोरस्क ।

इण ष ८ । ३ । ३९ ॥ [7]इण उत्तरस्य विसर्गस्य ष स्यात्–पाश कल्पककाम्येषु परेषु । प्रियसर्पिष्क ।

निष्ठा २ । ३ । ३९ ॥ [8]निष्ठान्त बहुव्रीहौ पूर्व स्यात् । युक्तयोग ।

शेषाद्विभाषा ५ । ४ । १५४ ॥ [9]अनुक्तसमान्ताद् बहुव्रीहे कब् वा । महायशस्क । महायशा ।

॥ इति **बहुव्रीहिसमासप्रकरणम्** ॥

शोभनौ पादौ यस्य स ' सुपात ।

'उद्गत काकुद यस्य स ' **उत्काकुत्** । सुष्ठु शोभन हृदय यस्य स। इति **सुहृत्** । 'व्यूढमुरो यस्य स ' इति **व्यूढोरस्क** । अत्र 'अनेकमन्यपदार्थे इति समासे, प्राति पदिकत्वात्सुपो लुकि, 'उर प्रभृतिभ्य कप' इति कपि पकारलोपे, व्यूढ उरस क' इति, स्थिते, सकारस्य रुत्वे विसर्गे च कृते, 'कस्कादिषु च विसर्गस्य सत्वे, 'आद् गुण ' इति गुणे, प्रातिपदिकत्वेन सौ तस्य रुत्वे विसर्गे च 'व्यूढोरस्क इति । एव 'महद् यशो यस्य स ' **महायशस्क –महायशा** इति ।

॥ इति **बहुव्रीहिसमास** ॥

१—बहुव्रीहि में उत् या वि से परे काकुद शब्द का समासान्त लोप होता है । २—पूर्ण शब्द से पर काकुद शब्द का लोप विकल्प से होता है । ३—मित्र एव अमित्र अर्थ मे सु या दुर शब्द से परे हृदय शब्द को हृद् आदेश होता है । ४—उर प्रभृति गणपठित शब्दों से कप् प्रत्यय होता है । ५—पाश, कल्प, क या काम्य पर में हों तो विसर्जनीय को स होता है । ६—कस्कादि गणपठित शब्दघटक इण से परे विसर्ग को षत्व होना है, तथा इण् उत्तर से अन्य विसर्ग को स होता है । ७—इण् से परे विसर्ग को ष होता है, पाश कल्प क काम्य पर हो तब । ८—बहुव्रीहि में निष्ठान्त शब्द का पूर्व निपात होता है । ९—अनुक्त समासान्त बहुव्रीहि से कप् प्रत्यय होता है ।

॥ इति बहुव्रीहिसमास ॥

अथ द्वन्द्वसमासः

चार्थे द्वन्द्व २ । २ । २९ ॥ [1]अनेक सुबन्त चाऽर्थे वर्तमान वा समस्यते स द्वन्द्व । समुच्चयाऽन्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्था । तत्र ईश्वर गुरु च भजस्वेति परस्परनिरपेक्षस्याऽनेकस्यैकस्मिन्नन्वय **समुच्चय** । भिक्षामट गा चानयेत्यन्यतरस्याऽऽनुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽ**न्वाचय** । अनयोरसामर्थ्या त्समासो न । धवखदिरौ छिन्धीति मिलितानामन्वय **इतरेतरयोग** । संज्ञा परिभाषमिति समूह –**समाहार** ।

राजदन्तादिषु परम् २ । २ । ३१ ॥ [2]एषु पूर्वप्रयोगार्ह पर स्यात् । दन्ताना राजानो राजदन्ता । [3]***धर्मादिष्वनियम** । अथधर्मौ । धर्मार्थौ वित्यादि ।

द्वन्द्वे घि २ । २ । ३२ ॥ [4]द्वन्द्वे घिसज्ञ पूर्व स्यात् । हरिश्च हरश्च हरिहरौ ।

अजाद्यदन्तम् २ । २ । ३३ ॥ [5]द्वन्द्वे पूर्व स्यात् । ईशकृष्णौ ।

[6]**अल्पाच्तरम्** २ । २ । ३४ ॥ शिवकेशवौ ।

पिता मात्रा १ । २ । ७० ॥ [7]मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते । माता च पिता च पितरौ । मातापितरौ वा ।

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २ । ४ । २ ॥ [8]एषा द्वन्द्व एकवत् । पाणिपादम् । मार्दङ्गिकवैणविकम् । रथिकाऽश्वारोहम् ।

पितरौ = 'माता च पिता च इति विग्रहे 'पिता मात्रा' इति सूत्रेण विकल्पेन पितृशब्दस्यैकशेषे मातृशब्दस्य लोपे च कृते 'पितृ औ' इति स्थिते, "ऋतो ङि सर्वनामस्थाने" इति गुणे रपरे च '**पितरौ**' इति । लोपाभावे तु "मातापितरौ" इति ।

१—चार्थे 'च के अर्थ' में अर्थात् जैसे–रामश्च रामश्च रामश्च इत्यादि समुच्चयादि भेद में विद्यमान अनेक सुबन्तों का समास होता है 'अर्थात् वे समस्त होते हैं' और वह समास द्वन्द्व संज्ञक होता है । २—राजदन्तादि शब्दों में पूर्व प्रयोगार्ह 'पहले प्रयोग करने योग्य' पद का पर प्रयोग होता है । ३—धर्मादियों में कोई नियम नहीं है । ४—द्वन्द्व समास में घिसंज्ञक का पूर्वनिपात होता है । ५—द्वन्द्व समास में अजादि अदन्त का पूर्व निपात होता है । ६—द्वन्द्व समास में अल्पाच्तर=अत्यन्त अल्प अच् जिसमें हो उस का पूर्वनिपात होता है । ७—मातृ शब्द के साथ कहा गया पितृ शब्द विकल्प से शेष रहता है । ८—प्राणि, तूर्य, सेनाङ्गों का द्वन्द्व एकवत् होता है अर्थात् इनमें एकवचन होता है ।

द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे ५ । ४ । १०६ ॥ [1]चवर्गान्तादषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच् स्यात्समाहारे । वाक् च त्वक च वाक्त्वचम् । त्वक्स्रजम् । शमी दृषदम् । वाक्त्विषम् । छत्रोपानहम् । समाहारे किम् ? प्रावृटशरदौ ।

॥ इति द्वन्द्वसमासप्रकरणम ॥

अथ समासान्ताः

ऋक्पूरब्धू पथामानक्षे ५ । ४ । ७४ ॥ 'अ—अनक्षे' इति च्छेद । [2]ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयव स्यादक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न । अधर्च । विष्णुपुरम् । विमलाप सर । राजधुरा । **अक्षे तु**—अक्षधू । दृढधूरक्ष । सखिपथ । रम्यपथो देश ।

अक्ष्णोऽदर्शनात् ५ । ४ । ७६ ॥ अचक्षु पर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात्समासान्त । गवामक्षीव गवाक्ष ।

[4]**उपसर्गादध्वन ५ । ४ । ८५ ॥** प्रगतोऽध्वान प्राध्वो रथ ।

न पूजनात् ५ । ४ । ६९ ॥ [5]पूजनार्थात्परेभ्य समासान्ता न स्यु । सुराजा । अतिराजा ।

॥ इति समासान्ता ॥ ॐ इति समासप्रकरणम ॐ

शमी च दृषच्च अनयो समाहार **शमीदृषदम** । वाक च त्विट च अनयो समाहार **वाकत्विषम** । छत्रञ्च उपानहौ च एषा समाहार **छत्रोपानहम** । प्रावट् च शरच्च अनयोरितरेतरयोग **प्रावृट्शरदौ** ॥ इति द्वन्द्वसमास ॥

विष्णो पुरम् **विष्णुपुरम्** । विमला आपो यत्र तत् **विमलापम** । राज्ञो धू **राजधुरा** । अक्षे धू **अक्षधू** । दृढा धूर्यस्यासौ **दृढधू** । सख्यु पन्था **सखिपथ** । रम्य पन्था यत्रासौ **रम्यपथ** । अत्र 'अनेकमन्यपदार्थे इति समासे, सुपो लुकि, ऋक्पूरब्धू पथामानक्षे' इति 'अ' प्रत्यये, मत्वेन नस्तद्धिते' इति टेर्लोपे विभक्तिकार्ये च कृते 'रम्यपथ ' इति ।

१—समाहार द्वन्द्व से चवर्गान्त दान्त षान्त एवं हान्त से टच् प्रत्यय होता है ।

॥ इति द्वन्द्वप्रकरणम् ॥

२—ऋक् पू अप् या धू अन्त मे है जिसके ऐसा जो समास उसका अन्तावयव अ' प्रत्यय होता है किन्तु अक्ष अर्थ में जो धू, तदन्त से नहीं होता । ३—चक्षु नेत्र' से भिन्न पर्याय वाची जो अक्षि शब्द उससे समासान्त अच् प्रत्यय होता है । ४—उपसर्ग से परे जो अध्वन् शब्द उससे अच् प्रत्यय होता है । ५—पूजनार्थक शब्दों से परे समासान्त प्रत्यय नहीं होते हैं ॥ इति समासान्त ॥

अथ तद्धिताः

तत्रादौ साधारणप्रत्ययप्रकरणम

समर्थाना प्रथमाद्वा ४ । १ । ८२ ॥ [1]इद पदत्रयमधिक्रियते 'प्राग्दिश' इति यावत् ।

अश्वपत्यादिभ्यश्च ४ । १ । ८४ ॥ [2]एभ्योऽण् स्यात्प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । अश्वपतेरपत्यादि—आश्वपतम् । गाणपतम् ।

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्य ४ । १ । ८५ ॥ [3]दित्यादिभ्य पत्यु-त्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्य स्यात् । अणोऽपवाद । दितेरपत्य दैत्य । अदितेरादित्यस्य वा—

हलो यमा यमि लोप ८ । ४ । ६४ ॥ [4]हल परस्य यमो लोप स्याद्वा यमि । इति यलोप । आदित्य । प्राजापत्य । [5]**देवाद्यञञौ** । दैव्यम् । दैवम् । [6]ॐ **बहिषष्टिलोपो यञ्च** । [7]**ईकक्च** ।

केति च ७ । २ । ११८ ॥ [8]किति तद्धिते चाऽचामादेरचो वृद्धि स्यात् । वाहीक । [9]**गोरजादिप्रसङ्गे यत्** । गोरपत्यादि गव्यम् ।

इदमिति—सूत्रमधिक्रियते इति तु नोक्तम्, स्वार्थिकप्रकरणे 'वा मात्रस्य सम्ब धात् । **प्रागिति**– तेन दीव्यतिखनति–०' इति सूत्रस्थ-दीव्यतिरूपार्था याव तो ऽपत्यादयोऽर्थास्तेष्वर्थेषु इति भाव ।

आश्वपतम—अश्वपतेरपत्यम् अश्वपतिना निवतम्, अश्वपतेरिदम् इत्यादि लौकिकविग्रहे अश्वपत्यादिभ्यश्च इति सूत्रेण अण' प्रत्ययेऽनुब धलोपे, प्रातिपदिक त्वात् सुपो लुकि, आद्यचो वद्धौ, 'यस्येति च' इति इकारलोपे, तद्धिता तत्वात् प्रातिपदिकसज्ञाया 'सौ' तस्य 'अमि' 'आश्वपतम्' इति । गणपतेरपत्यादि अर्थे **गाणपतम** ।

१— समर्थाना–'प्रथम त्'–'वा'–इन तीनों पदों का अधिकार 'प्राग्दिशो विभक्ति' इस सूत्र से पूव तक जाता है । २—प्राग्दीव्यतीय अर्थों मे इन (अश्वपत्यादि गणपठित) शब्दों से अण् प्रत्यय होता है । ३—प्राग्दीव्यनीय अर्थों मे दिति, अदिति, आदित्य एवं पत्युत्तरपद से 'ण्य' प्रत्यय होता है । ४—यम् पर हो तो हल् से परे यम् का लोप होता है विकल्प से । ५—देव शब्द मे यञ् एवं अञ् प्रत्यय होते हैं । ६—बर्हिषस् शब्द की टि का लोप होता है और यञ प्रत्यय भी होता है । ७—बर्हिषस् शब्द से ईकक् प्रत्यय तथा उसकी टि का लोप भी होता है । ८—कित् तद्धित पर हो तो अचों के आदि अच् को वृद्धि होती है । ७—प्राग्दीव्यनीय अर्थों में अजादि के प्रसङ्ग में गो शब्द से यत् प्रत्यय होता है ।

[1]**उत्सादिभ्योऽञ् ४ । १ । ८६ ॥** औत्स ।

इत्यपत्यादिविकारान्तार्थसाधारणप्रत्ययप्रकरणम् ॥ १ ॥



अथ अपत्याधिकारप्रकरणम्

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४ । १ । ८७ ॥ [2]'धान्यानां भवने' इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः । स्त्रैण । पौंस्न ।

तस्यापत्यम् ४ । १ । ९२ ॥ [3]षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः ।

ओर्गुणः ६ । ४ । १४६ ॥ [4]उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते । उपगोरपत्यम्–औपगव । आश्वपत । दैत्य । औत्स । स्त्रैण । पौंस्न ।

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४ । १ । १६२ ॥ [5]अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् ।

एको गोत्रे ४ । १ । ९३ ॥ [6]गोत्रे एक एवाऽपत्यप्रत्ययः स्यात् । उपगोर्गोत्रापत्यमौपगव ।

गर्गादिभ्यो यञ् ४ । १ । १०५ ॥ [7]गोत्रापत्ये । गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्य । वात्स्य ।

औपगव —'उपगोरपत्यम्' इति विग्रहे 'तस्यापत्यम्' इत्यणि णकारस्य लोपे तद्धितान्तत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुकि, 'तद्धितेष्वचामादेः' इति वृद्धौ, 'ओर्गुणः' इति गुणे, 'एचोऽयवायावः' इत्यवादेशे, प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ तस्य रुत्वे विसर्गे च कृते 'औपगवः' इति ।

१—उत्सादि गणपठित शब्दों से अञ् प्रत्यय होता है ।

॥ इति साधारणप्रत्ययप्रकरणम् ॥

२—'धान्यानां भवने क्षेत्रे' सूत्र से पूर्व अर्थों में स्त्री एवं पुम् शब्द से क्रम से नञ् स्नञ् प्रत्यय होते हैं । ३–उक्त 'कहे गये', वक्ष्यमाण 'कहे जानेवाले' सभी प्रत्यय कृतसंधि 'की हुई संधि वाले' षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से अपत्य अर्थ में विकल्प से होते हैं । ४—तद्धित–प्रत्यय पर हो तो उवर्णान्त भसंज्ञक–अङ्ग के अन्त्य अल् को गुण होता है । ५—अपत्यत्वेन विवक्षित पौत्र आदि की गोत्र संज्ञा होती है । ६—गोत्र अर्थ में अपत्यसंज्ञक प्रत्यय एक ही होता है । ७—गोत्रापत्य अर्थ में गर्गादि गणपठित शब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से यञ् प्रत्यय होता है ।

यञञोश्च २ । ४ । ६४ ॥ [1]गोत्रे यद्यञन्तमञन्त च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्व, न तु स्त्रियाम् । गर्गा । वत्सा ।

जीवति तु वश्ये युवा ४ । १ । १६३ ॥ [2]वश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेयदपत्य चतुर्थादि तद्युवसज्ञमेव स्यात् ।

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम ४ । १ । ९४ ॥ [3]यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्यय स्यात्, स्त्रिया तु न युवसज्ञा ।

यञिञोश्च ४ । १ । १०१ ॥ [4]गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात्फक स्यात् ।

आयनेयीनीयियः फढखछघा प्रत्ययादीनाम् ७ । १ । २ ॥ [5]प्रत्ययादे फस्य—आयन्, ढस्य–एय, खस्य–ईन्, छस्य–ईय, घस्य–इय–एते स्यु । गर्गस्य युवापत्य गार्ग्यायण । दाक्षायण ।

अत इञ् ४ । १ । ९५ ॥ [6]अपत्येऽर्थे । दाक्षि ।

अपत्य पौत्रप्रभृति गोत्रम—जीवति तु वश्ये युवा—इदमत्र ध्येयम् । यद्यप्यपत्यशब्द आत्मजस्तनय सूनुरित्यादि कोशात् पुत्रपर्याय एव तथाप्यपत्य पौत्रप्रभृति शास्त्रात् न पतन्ति पितरोऽनेनेत्यर्थको यौगिकोऽपत्यशब्दो गृह्यते । तच्चापत्य त्रिविधम्–अनन्तरापत्यम्, गोत्रापत्यम् युवापत्यञ्चेति । तत्रान तरापत्य 'पुत्र' । एव मूलपुरुषतृतीयादे स तानस्य 'अपत्य पौत्रप्रभृति–' इत्यनेन गोत्रसज्ञा । गोत्रापत्यप्रत्ययविवक्षाया मूलपुरुषसन्ततिषु एकत्र बहुत्र वा गोत्रत्वविवक्षायाम् 'एको गोत्रे' इति नियमात् एक एवापत्यप्रत्यय । एवञ्च तृतीयापत्यस्य विवक्षाया गर्गस्यापत्यम् इति विग्रहे गर्गस्य गोत्रापत्यम् 'गार्ग्य' इत्येव स्यात् । **जीवति तु वश्ये इति**—यस्य सन्तानस्य पितृपितामहाद्यन्यतमोऽस्ति तस्य युवसज्ञा न तु गोत्रसज्ञा । एवञ्च अनन्तरापत्यप्रत्यये **'गार्गि'** । गोत्रापत्ये **'गार्ग्य'** । युवापत्ये **'गार्ग्यायण'** । अत इञ—अद त यत्प्रातिपदिक तस्मादिञ स्यादपत्येऽर्थे ।

१—गोत्र में जो यञन्त या अञन्त तदवयव यञ् एवम् अञ का लुक् 'लोप' होता है, यदि यञ् या अञ् प्रत्ययकृत बहुत्व हो तो, किन्तु स्त्रीलिङ्ग में नहीं । २–वंश में पिता आदि के जीवित रहने पर पौत्र आदि का जो अपत्य चतुर्थादि (प्रपौत्रादि) उसकी युव–सज्ञा हो होती है । ३—युवापत्य अर्थ मे गोत्र–प्रत्ययान्त से ही 'बाद में ही' प्रत्यय होता है, स्त्रीलिङ्ग में तो युव सज्ञा नहीं होती है । ४—गोत्र अर्थ मे जो यञ् या इञ् तदन्त से फक् प्रत्यय होता है । ५—प्रत्यय के आदिभूत फ के स्थान में आयन्, ढ को एय्, ख को ईन्, छ को ईय् और घ को इय् आदेश होते हैं । ६—अपत्य अर्थ में तदन्त शब्दप्रकृति षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से इञ् प्रत्यय होता है ।

[1]**बाह्वादिभ्यश्च ४ । १ । ९६ ॥** बाहवि । औडुलोमि । [2]**लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्य** । उडुलोमा । आकृतिगणोऽयम् ।

अनृष्यानन्तर्ये [3]**बिदादिभ्योऽञ् ४ । १ । १०४ ॥** एभ्योऽञ् गोत्रे, ये त्वत्राऽनृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे । बिदस्य गोत्र बैद , बैदौ ।

यञञोश्च २ । ४ । ६४ ॥ [4]गोत्रे यद्यञन्तमञन्तञ्च तदवयवयोरेतयोर्लुक स्यात्तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम् । बिदा । पुत्रस्यापत्य पौत्र । पौत्रौ । पौत्रा । एव दौहित्रादय ।

[5]**शिवादिभ्योऽण ४ । १ । ११४ ॥** अपत्ये । शैव । गाङ्ग ।

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ४ । १ । ११४ ॥ ऋषिभ्य –वाशिष्ठ । वैश्वामित्र । **अन्धकेभ्य** –श्वाफल्क । **वृष्णिभ्य** –वासुदेव । **कुरुभ्य** –नाकुल । साहदेव ।

मातुरुत्सख्यासम्भद्रपूर्वाया ४ । १ । ११५ ॥ [7]सख्यादिपूर्वस्य मातशब्दस्योदादेश स्यादण प्रत्ययश्च । द्वैमातुर । षाण्मातुर । सामातुर । भाद्रमातुर ।

बाहोरपत्यम् **बाहवि** । उडुलोम्नोऽपत्यम् **औडुलोमि** । बिदस्य गोत्रापत्य **बैद , बैदौ, बिदा** । बिदा इत्यत्र यञञोश्चेति अञो लुक । तेन वद्धयभाव । दुहितुरपत्य **दौहित्र** । शिवस्यापत्य **शैव** । गङ्गाया अपत्य **गाङ्ग** । वसिष्ठस्यापत्य **वासिष्ठ** । विश्वामित्रस्यापत्य **वैश्वामित्र** । वसुदेवस्यापत्य **वासुदेव** । एव 'नाकुल' इत्यादावपि विग्रह । **द्वैमातुर** –'द्वयोर्मात्रोरपत्यम्' इति विग्रहे अण प्रत्यये कृते मातुरुत्सख्यासम्भद्रपूर्वाया इत्यनेन मातृ-ऋकारस्योदादेशे रपरे 'तद्धितेष्वचामादे'

१– बाह्वादि गणपठित शब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से भी इञ प्रत्यय होता है । २––लोमन् शब्द से अपत्य अर्थ मे बहुत्व विवक्षित हो तो अकार प्रत्यय होता है (कहना चाहिये) । ३––बिदादिगणपठितशब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से गोत्र अर्थ मे अञ् प्रत्यय होता है किन्तु जो कि ऋषिभिन्न है उनसे अपत्य अर्थ में अञ् होता है । अन्यत्र ऋषिवाचक शब्दों से तो गोत्र अर्थ मे अञ् प्रत्यय होता है । ४– यदि यञन्त या अञन्त कृत बहुत्व हो तो गोत्र मे जो यञन्त या अञन्त तदवयव यञ् अञ् का लोप होता है किन्तु स्त्रीलिङ्ग मे नहीं । ५ –अपत्य अर्थ मे शिवादि–गणपठित शब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से अण् प्रत्यय होता है । ६––ऋषि अन्धक वृष्णि या कुरु वाचक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से अण प्रत्यय होता है अपत्य अर्थ मे । ७––संख्या, सम् एवं भद्र–पूर्व जो मातृ शब्द उसको उत् आदेश होता है तथा अण प्रत्यय होता है ।

स्त्रीभ्यो ढक् ४ । १ । १२० ॥ [1]स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् । वैनतेयः ।

[2]**कन्यायाः कनीन च ४ । १ । ११६ ॥** चादण् । कानीनो व्यासः कर्णश्च ।

[3]**राजश्वशुराद्यत् ४ । १ । १३७ ॥** [4]**ॐराज्ञो जातावेवेति वाच्यम् ।**

ये चाऽभावकर्मणोः ६ । ४ । १६८ ॥ [5]यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः । राजन्यः । जातावेवेति किम् ?

अन् ६ । ४ । १६७ ॥ [6]अन् प्रकृत्या स्यादणि परे । राजनः । श्वशुर्यः ।

[7]**क्षत्राद्घः ४ । १ । १३८ ॥** क्षत्रियः । जातावित्येव । क्षात्रिरन्यत्र ।

[8]**रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४ । १ । १४६ ॥**

ठस्येकः ७ । ३ । ५० ॥ [9]अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः स्यात् । रैवतिकः ।

जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ् ४ । १ । १६८ ॥ [10]जनपदक्षत्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये । पाञ्चालः । [11]**ॐक्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य**

इति वद्धौ द्वैमातुरः' इति । विनताया अपत्यं **वैनतेयः** । कन्याया अपत्यं **कानीनः** ।

राजन्यः— राज्ञोऽपत्यम्' इति विग्रहे 'राजश्वशुराद्यत्' इति यति तकारलोपे, भत्वात् 'नस्तद्धिते' इत्यनेन टेर्लोपे प्राप्ते 'ये चाभावकर्मणोः' इत्यनेन तन्निषेधे (प्रकृतिभावे), प्रातिपदिकत्वेन सु आदि विभक्तिकार्ये कृते तत्सिद्धिः । राज्ञोऽपत्यं दास्यादावुत्पन्नो **राजनः** । श्वशुरस्यापत्यं **श्वशुर्यः** ।

जनपदेति—जनपदो जनपदनामधेयश्शब्दो वाचको यस्य स जनपदशब्दः इति । तथा च जनपदवाची सन् यः क्षत्रियादिवाची शब्दस्तत्प्रकृतिकात् षष्ठ्यन्ताद

१—स्त्री-प्रत्ययान्त प्रकृतिक षष्ठ्यन्त सुबन्त समर्थसे अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है । २—कन्या शब्दको कनीन आदेश होता है चकार से अण् प्रत्यय भी होता है । ३— अपत्य अर्थ में राजन् एवं श्वशुर—शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से यत् प्रत्यय होता है । ४—राजन् शब्द से जाति (अर्थात् प्रकृति प्रत्यय—समुदाय से जाति=आकृतिलक्षणा जाति) वाच्य हो तभी यत् प्रत्यय होता है । ५—तद्धितीय यकारादि प्रत्यय पर रहे तो अन् प्रकृति से ही रहता है । अर्थात् अन् का लोप नहीं होता किन्तु भावकर्म को छोड़कर । ६—अण् प्रत्यय पर हो तो अन् प्रकृति से ही रहता है । ७—जाति वाच्य हो तो अपत्य अर्थ में क्षत्र शब्द से 'घ' प्रत्यय होता है । ८—रेवत्यादिगणपठित शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है । ९—अङ्ग से परे जो ठ उसको इक आदेश होता है । १०—जनपद वाची होता हुआ जो क्षत्रिय-वाची शब्द उससे अपत्य अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है । ११—जनपद वाची

राजन्यपत्यवत्। पञ्चालानां राजा पाञ्चालः। [1]✽पूरोरण् वक्तव्यः। पौरवः। [2]पाण्डोर्ड्यण्। पाण्ड्यः।

[3]कुरुनादिभ्यो ण्यः ४। १। १७२॥ कौरव्यः। नैषध्यः।

ते तद्राजाः ४। १। १७४॥ [4]अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः।

तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् २। ४। ६२॥ [5]बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक्, तदर्थकृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम्। इक्ष्वाकवः। पञ्चालाः—इत्यादि।

कम्बोजाल्लुक् ४। १। १७५॥ [6]अस्मात्तद्राजस्य लुक्। कम्बोजः। कम्बोजाः। [7]✽कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्। चोलः। शकः। केरलः। यवनः।

॥ इत्यपत्याधिकारप्रकरणम् ॥



अथ रक्ताद्यर्थकप्रकरणम्

[8]तेन रक्तं रागात् ४। २। १॥ अण् स्यात्। रज्यतेऽनेनेति रागः। कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्।

पत्यार्थेऽञ् स्यादित्यर्थः। पुरोरपत्यं पौरवः पौरवौ, पुरवः—इत्यादि। पाण्डोरपत्यं पाण्ड्यः। अत्रापि पाण्ड्यौ, पाण्डवः इत्यादि प्रयोगाः। कुरोरपत्यं कौरव्यः। निषधस्यापत्यं नैषध्यः। एवमग्रेऽपि। इदमत्र ध्येयम्—पञ्चालाङ्गवङ्गमगधकलिङ्गादयश्शब्दा देशवाचिनो राजवाचिनश्च। तत्र देशवाचित्वे बहुवचनान्ता राजवाचित्वे एकवचनान्ताः॥ इत्यपत्याधिकारप्रकरणम्॥

तेन रक्तं रागात्—रञ्जकद्रव्यवाचकात् तृतीयान्ताद् रक्तमित्यर्थेऽण् प्रत्ययो

जो क्षत्रिय-तुल्य शब्द उससे राजा अर्थ में अपत्य की तरह प्रत्यय होते हैं।

१—पुरु शब्द से अण् प्रत्यय होता है। २—पाण्डु शब्द से ड्यण् प्रत्यय होता है। ३—कुरु शब्द एवं नकारादि (नकार हो आदि में जिसके ऐसे) शब्द से ण्य प्रत्यय होता है। ४—पूर्वोक्त अञ् आदि प्रत्यय तद्राज-संज्ञक होते हैं। ५—यदि प्रत्ययकृत बहुत्व हो तो बहुत्व अर्थ में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर। ६—कम्बोज शब्द से विहित तद्राज-संज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है। ७—कम्बोजादि-गणपठित शब्दों से परे तद्राज-संज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है, ऐसा कहना चाहिये।

॥ इत्यपत्याधिकारप्रकरणम् ॥



८—राग वाचक शब्द प्रकृतिक तृतीयान्त समर्थक सुबन्त से 'रक्त' अर्थ से अण् प्रत्यय होता है।

[1]**नक्षत्रेण युक्तः कालः ४ । २ । ३ ॥** अण् स्यात् । [2]***तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राऽणि यलोप इति वाच्यम् ।** पुष्येण युक्तं पौषम्-अहः ।

लुबविशेषे ४ । २ । ४ ॥ [3]पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात्, षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्याऽवान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः ।

[4]**दृष्टं साम ४ । २ । ७ ॥** तेनेत्येव । वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम ।

[5]**वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४ । २ । ९ ॥** वामदेवेन दृष्टं साम-वामदेव्यम् ।

परिवृतो रथः ४ । २ । १० ॥ [6]अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । वस्त्रेण परिवृतो वास्त्रो रथः ।

[7]**तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ४ । २ । १४ ॥** शरावे उद्धृतः शारावः ओदनः ।

संस्कृतं भक्षाः ४ । २ । १६ ॥ [8]सप्तम्यन्तादण् स्यात्संस्कृतेऽर्थे यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः । भ्राष्ट्रेषु संस्कृता भ्राष्ट्रा यवाः ।

[9]**साऽस्य देवता ४ । २ । २४ ॥** इन्द्रो देवताऽस्येति ऐन्द्रं हविः । पाशुपतम् । बार्हस्पत्यम् ।

भवति इत्यर्थः । **नक्षत्रेणेति**—नक्षत्रवाचकात्तृतीयान्ताद्युक्त इत्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति युक्तश्चेत्कालः । **दृष्टं साम**—तृतीयान्ताद् दृष्टमित्यर्थेऽण् स्यात् दृष्टं प्रत्यक्षविषयीभूतं साम चेत् इत्यर्थः । **वामदेवादिति**—तृतीयान्ताद् वामदेवशब्दाद् दृष्टमित्यर्थे ड्यत् ड्यश्च प्रत्ययौ स्याताम् दृष्टं साम चेत् इत्यर्थः । **पाशुपतम्**—'पशुपतिः देवता अस्य' इति विग्रहे अश्वपत्यादिभ्यश्चेति अणि सुपो लुकि, भत्वादिकारलोपे वृद्धौ विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धिः । **बार्हस्पत्यम् ।** अत्र 'पत्युत्तरपदाण्ण्यः' इति ण्यो ज्ञेयः ।

१—नक्षत्र-वाचक-शब्द-प्रकृतिक तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से 'युक्त काल'-अर्थ में अण् प्रत्यय होता है । २—नक्षत्र-विहित अण् पर हो तो तिष्य एवं पुष्य के यकार का लोप होता है । ३—अविशेष अर्थ में=अर्थात् षष्टि (साठ) दण्डात्मक (२४ घण्टे के) काल के बीच के किसी विशेष (प्रधान) काल की प्रतीति न होती हो तो पूर्व सूत्र से विहित जो प्रत्यय उसका लोप होता है । ४—तृतीयान्त समर्थ से दृष्ट अर्थ में अण् प्रत्यय होता है वह दृष्ट यदि साम हो तब । ५—वामदेव-शब्दप्रकृतिक तृतीयान्त समर्थ से ड्यत् एवं ड्य प्रत्यय होते हैं । ६-तत्तत्-शब्दप्रकृतिक तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से परिवृत अर्थ में अण् प्रत्यय होता है । ७—अमत्र (पात्र, बर्तन) वाचक शब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से उद्धृत अर्थ में अण् प्रत्यय होता है । ८—तत्तत्-शब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से संस्कृत अर्थ में अण् प्रत्यय होता है, वह संस्कृत पदार्थ भक्ष्य=खाद्य हो तब । ९—तत्तत् शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य देवता' अर्थ में यथाविहित तत्तत् प्रत्यय होते हैं ।

[1]**शुक्राद्घन् ४। २। २६॥** शुक्रियम्।

[2]**सोमाट्ट्यण् ४। २। ३०॥** सौम्यम्।

[3]**वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४। २। ३१॥** वायव्यम्। ऋतव्यम्।

रीङ् ऋतः ७। ४। २७॥ [4]अकृद्यकारे असार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः। यस्येति च। पित्र्यम्। उषस्यम्।

[5]**पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ४। २। ३६॥** एते निपात्यन्ते। पितुर्भ्राता पितृव्यः। मातुर्भ्राता मातुलः। मातुः पिता मातामहः। पितुः पिता पितामहः।

[6]**तस्य समूहः ४। २। ३७॥** काकानां समूहः काकम्।

[7]**भिक्षादिभ्योऽण् ४। २। ३८॥** भिक्षाणां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। इह [8]'भस्याऽढे तद्धिते' इति पुंवद्भावे कृते—

इनण्यनपत्ये ६। ४। १६४॥ [9]अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात्। तेन 'नस्तद्धिते' इति टिलोपो न। युवतीनां समूहो यौवनम्।

शुक्राद्घन्–प्रथमान्तात् 'शुक्र' शब्दाद् देवतास्य इत्यर्थे घन् प्रत्ययः स्यात्।

सोमाट्ट्यण्—प्रथमान्तात्सोमशब्दात् देवतास्य इत्यर्थे टयण् प्रत्ययो भवति। **'वाय्वृतु'** इति। प्रथमान्तेभ्यो वाय्वृतुपित्रुषस् शब्देभ्यः देवतास्य इत्यर्थे यत्प्रत्ययः स्यात्। उषः कालाभिमानिनी देवता अस्य इति **उषस्यम्**। **तस्य समूहः**—षष्ठ्यन्तात्समूह इत्यर्थेऽण् स्यात्। **भिक्षादिभ्य इति**–षष्ठ्यन्तभिक्षादिभ्यः समूहेऽर्थेऽण् स्यात्। **'भस्याढे तद्धिते'** इति—ढभिन्ने तद्धिते परे भस्य पुंवदित्यर्थः। शत्रन्तयुवती शब्दस्य तु 'यौवतम्' इति भवति।

१—शुक्र–शब्द–प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य देवता' अर्थ मे घन् प्रत्यय होता है। २—सोम शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य देवता' अर्थ मे ट्यण् प्रत्यय होता है। ३—वायु ऋतु, पितृ या उषस् शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य देवता' अर्थ मे यत् प्रत्यय होता है। ४—कृद्भिन्न यकार या सार्वधातुक भिन्न यकार या च्वि प्रत्यय पर हो तो ऋदन्त अङ्ग को रीङ् आदेश होता है। ५–पितृव्य, मातुल, मातामह एवं पितामाह ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। ६—तत्तद् शब्द–प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से समूह अर्थ में यथाविहित अण आदि प्रत्यय होते हैं। ७—भिक्षादिगणपठित शब्द–प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से समूह अर्थ मे अण् प्रत्यय होता है। ८—ढ भिन्न तद्धित पर में हो तो भसंज्ञक प्रातिपदिक को पुंवद्भाव होता है। ९—अपत्य अर्थ से भिन्न अर्थ मे किया गया अण् पर हो तो इन् प्रकृति से ही रह जाता है, अर्थात् उसका लोप नहीं होता है।

[१]**ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४ । २ । ४३ ॥** [२]**'तलन्त स्त्रियाम्'** । ग्रामता । जनता । बन्धुता । [३]**❀गजसहायाभ्या चेति वक्तव्यम्** । गजता । सहायता । [४]**❀ अह्न ख क्रतौ** । अहीन ।

[५]**अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४ । २ । ४७ ॥**

इसुसुक्तान्तात्क ७ । ३ । ५१ ॥ [६]इसउसउकतात्परस्य ठस्य क । साक्तुकम् । हास्तिकम् । धेनुकम् ।

[७]**तदधीते तद्वेद ४ । २ । ५९ ॥**

न य्वाभ्या पदान्ताभ्या पूर्वौ तु ताभ्यामैच ७ । ३ । ३ ॥ [८]पदान्ताभ्या यकारवकाराभ्या परस्य न वृद्धि । किं तु ताभ्या पूर्वौ क्रमादैजावागमौ स्त । व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरण ।

[९]**क्रमादिभ्यो वुन् ४ । २ । ६१ ॥** क्रमक । पदक । शिक्षक । मीमासक ।

इति रक्ताद्यर्थकप्रकरणम ॥ ३ ॥

तदधीते तद्वेद—द्वितीयान्ताद् 'अधीते' इत्यर्थे उक्ता अणादयो वक्ष्यमाणाश्च त्यया वा स्यु इति । **वैयाकरण**—'व्याकरणमधीते वेद वा' इति विग्रहे 'तदधीते तद्वद' इति सूत्रेणाणि णकारस्येत्सज्ञालोपयो कृतयो प्रातिपदिकत्वात्सुपो लुकि भत्वाद् यस्येति चेत्यनेनाकारलोपे 'तद्धितेष्वचामादे' इत्याद्यचो वृद्धौ प्राप्तायां 'नय्वाभ्यां पदान्ताभ्या–' इति ऐजागमेऽनुबन्धलोपे, प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां सौ, तस्य रुत्वे विसर्गे च 'वैयाकरण' इति । **क्रमादिभ्य इति**—द्वितीयान्तक्रमादिभ्य 'अधीते' 'वेद' इत्यर्थे वुन् प्रत्यय स्यात् ।

॥ इति रक्ताद्यर्थकप्रकरणम् ॥

१—ग्राम, जन एवं बन्धु शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से समूह अर्थ में तल प्रत्यय होता है । २—तल् प्रत्ययान्त सुबन्तों का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में ही होता है । ३—गज एवं सहाय शब्द से भी तल प्रत्यय होता है (कहना चाहिये) । ४—क्रतु (यज्ञ) अर्थ में अहन् शब्द से 'ख' प्रत्यय होता है । ५—चेतन-भिन्नवाची हस्तिन् शब्द एवं धेनुशब्द-प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से ठक् प्रत्यय होता है । ६—इस् उस् उक् या त हो अन्त में जिसके उससे परे ठ (ठक) को क होता है । ७—तत्तत् शब्दप्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से अधीते एवं वेद अर्थ में अणादिक प्रत्यय होते हैं । ८—पदान्त यकार या वकार से परे वृद्धि नहीं होती, किन्तु यकार वकार के पूर्व को क्रम से ऐ, औ आदेश होते हैं । ९—क्रमादिगणपठितशब्दप्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से अधीते एवं वेद अर्थों में वुन् प्रत्यय होता है ॥ इति रक्ताद्यर्थका ॥

अथ चातुरर्थिकप्रकरणम्

[1]**तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४ । २ । ६७ ॥** उदुम्बरा सन्त्यस्मिन्देशे औदुम्बरो देश ।

[2]**तेन निवृत्तम ४ । २ । ६८ ॥** कुशाम्बेन निवृत्ता नगरी कौशाम्बी ।

[3]**तस्य निवास ४ । २ । ६९ ॥** शिबीना निवासो देश शैब ।

[4]**अदूरभवश्च ४ । २ । ७० ॥** विदिशाया अदूरभव नगर वैदिशम् ।

जनपदे लुप् ४ । २ । ८१ ॥ [5]जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप ।

लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने १ । २ । ५१ ॥ [6]लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्त । पञ्चालाना निवासो जनपद पञ्चाला । कुरव । अङ्गा । वङ्गा । कलिङ्गा ।

[7]**वरणादिभ्यश्च ४ । २ । ८२ ॥** अजनपदाथ आरम्भ । वरणानामदूरभव नगर वरणा ।

[8]**कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ४ । २ । ८७ ॥**

झय ८ । २ । १० ॥ [9]झयन्तान्मतोमस्य व । कुमुद्वान् । नडवान् ।

तदस्मिन्नस्ति, तेन निवृत्तम् तस्य निवास, अदूरभवश्चेति सूत्रचतुष्टयमनुवर्त्याह—'**चातुरर्थिकस्य**' इति ।

प्रत्ययलोपे कृते य शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायीति न्यायेन प्रकृतेरेव निवासरूपार्थाभिधानात्तदनुरोधेन पुंस्त्वैकवचने प्राप्तेऽतिदेशोऽयम् '**लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने**' इति । अत्र युक्तशब्द प्रकृतिवाची, व्यक्तिशब्दो लिङ्गवाची, अत उच्यते प्रकृतिवल्लिङ्गवचने इति ।

१–प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्मिन् अस्ति' अर्थ मे यथाविहित अणादि प्रत्यय होते हैं, किन्तु यदि तन्नामा (प्रथमान्त सुबन्तनामा) देश हो तो तब । २—तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से 'निवृत्तम्' अर्थ में यथा–विहित (अणादि) प्रत्यय होते हैं । ३–षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से 'निवास' अर्थ मे यथाविहित (अणादि) प्रत्यय होते हैं । ४—षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से 'अदूरभव' अर्थ मे अणादि प्रत्यय होते है । ५—जनपद (देश या जनसमूह) वाच्य हो तो चातुरर्थिक–प्रत्यय का लुप् (लोप) हो जाता है । ६—लुप हो जाने पर प्रकृति की तरह लिङ्ग तथा वचन होते हैं । ७—वरणादिगण पठित प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होता है । ८—कुमुद नड, वेतस शब्दों के तत्तद् शब्द प्रकृतिक सुबन्त से ड्मतुप् प्रत्यय होता है । ९—झयन्त से परे मतुप् के मकार को वकार आदेश होता है ।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य ८ । २ । ९ ॥ [1]मवर्णाऽवर्णान्तान्म-वर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोमस्य व । वेतस्वान् ।

[2]**नडशादाड्ड्वलच्** ४ । २ । ८८ ॥ नड्वल । शाद्वल ।

[3]**शिखाया वलच्** ४ । २ । ८९ ॥ शिखावल ।

॥ इति चातुरर्थिकप्रकरणम् ॥ ४ ॥

अथ शैषिकप्रकरणम्

शेषे ४ । २ । ९२ ॥ [4]अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थ शेषस्तत्राऽणादय स्यु । चक्षुषा गृह्यते चाक्षुष रूपम् । श्रावण शब्द । औपनिषद पुरुष । दृषदि पिष्टा दाषदा सक्तव । चतुर्भिरुह्यते चातुर शकटम् । चतुदश्या दृश्यते चातुदश रक्ष । 'तस्य विकार' इत्यत प्राक शेषाधिकार ।

[5]**राष्ट्राऽवारपाराद्धखौ** ४ । २ । ९३ ॥ आभ्या क्रमाद्धखौ स्त शेषे । राष्ट्रे जातादि राष्ट्रिय । अवारपारीण । ※[6]**अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्** । अवारीण । पारीण । पारावारीण । इह प्रकृति विशेषाद्धादयष्टचुलन्ता प्रत्यया उच्यन्ते तेषा जातादयोऽर्थविशेषा समथ विभक्तयश्च वक्ष्यन्ते ।

मादुपधायाश्चेति–'मश्च अश्च अनयो समाहारो 'म', तस्मात् 'मात्' इति । **वेतसा** सन्त्यत्रेति **वेतस्वान्** । नडा सन्त्यत्रेति **नडवल** । शादा सन्त्यत्रेति **शाद्वल** । शिखा अस्त्यस्मिन् देशे **शिखावल** ॥ **इति चातुर्र्थिकप्रकरणम** ॥

ननु अनिर्दिष्टार्था प्रत्यया स्वार्थे भवन्ति' इति नियमस्तथाच 'राष्ट्रावारपाराद्' इत्यादिसूत्रेऽर्थानिर्देशादिमे घादय प्रत्यया स्वार्थे एव भवेयुरिति शङ्कायामुच्यते— **इह प्रकृतिविशेषादिति**—इह = शैषिके । **प्रकृतिविशेषात**=राष्ट्रादिशब्दात् इत्यादि ।

१—मकार या अवण है अन्त मे जिसके एवं मकार या अवर्ण है उपधा मे जिसके उससे परे मतुप् के मकार को वकार आदेश होता है यवादिगण को छोडकर । २—नड एवं शाद शब्दप्रकृतिक समथ सुबन्त से चातुरर्थिक अर्थ में 'ड्वलच्' प्रत्यय होता है । ३–शिखाशब्द-प्रकृतिक समथ सुबन्त से वलच' प्रत्यय होता है ।

॥ इति चातुरर्थिकप्रकरणम् ॥

४—अपत्य आदि चतुरर्थ्यन्त से भिन्न अर्थ को शेष कहते हैं । उस (शेष) अर्थ मे अण् आदिक प्रत्यय होते हैं । ५—राष्ट्र एवं अवारपार शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्तों से जातादि अथ मे क्रम से घ एव ख प्रत्यय होते हैं । ६—अवार तथा पार शब्द से विगृहीत (अलग २) तथा विपरीत (पारावार) शब्द से भी ख प्रत्यय होता है ।

[1]**ग्रामाद्यखञौ** ४ । २ । १४ ॥ ग्राम्य । ग्रामीण ।

[2]**नद्यादिभ्यो ढक्** ४ । २ । ९७ ॥ नादेयम् । माहेयम् । वाराणसेयम् ।

[3]**दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक** ४ । २ । ९८ ॥ दाक्षिणात्य । पाश्चात्त्य । पौरस्त्य ।

[4]**द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्** ४ । २ । १०१ ॥ दिव्यम् । प्राच्यम् । अपाच्यम् । उदीच्यम् । प्रतीच्यम् ।

[5]**अव्ययात्त्यप** ४ । २ । १०४ ॥ ॐ**अमेहक्वतसित्रेभ्य एव** । अमात्य । इहत्य । क्वत्य । ततस्त्य । ॐ**त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्** । नित्य ।

वृद्धियस्याचामादिस्तद् वृद्धम् १ । १ । ७३ ॥ [6]यस्य समुदायस्याऽचा मध्ये आदिवृद्धिस्तद् वृद्धसज्ञ स्यात् ।

[7]**त्यदादीनि च** १ । १ । ७४ ॥ वृद्धसज्ञानि स्यु ।

[8]**वृद्धाच्छ** ४ । २ । ११४ ॥ शालीय । मालीय । तदीय । ॐ**वा नामधेयस्य वृद्धसज्ञा वक्तव्या** । देवदत्तीय । दैवदत्त ।

[9]**गहादिभ्यश्च** ४ । २ । १३८ ॥ गहीय ।

[10]**युष्मदस्मदोरन्यतरस्या खञ च** ४ । ३ । १ ॥ चाच्छ । पक्षेऽण । युवयोर्युष्माक वाऽय—युष्मदीय । अस्मदीय ।

दक्षिणस्यामदूरे भवा दक्षिणा तत्र भवो **दाक्षिणात्य** । पश्चाद्भव **पाश्चात्य** । पुरो भव **पौरस्त्य** । शालीय –'शालाया भव ' इति विग्रहे 'वृद्धियस्याचामादिस्तद्वृद्धम् इति 'शाला' इत्यस्य वृद्धसज्ञाया 'वृद्धाच्छ ' इत्यनेन 'छ' प्रत्यये, सुपो लुकि, आयनेयीत्यादिना छ' इत्यस्य ईयादेशे, भत्वेनाकारस्य लोपे प्रातिपदिकसज्ञाया सौ तस्य रुत्वे विसर्गे च 'शालीय ' इति ।

१—ग्राम-शब्द प्रकृतिक समथ सुबन्त से जातादि अर्थ में य एव खञ् प्रत्यय होते हैं । २—नद्यादिगणपठितशब्दप्रकृतिक समथ सुबन्त से जातादि अथ में ढक प्रत्यय होता है । ३—दक्षिणा पश्चात् एव पुरस्-प्रकृतिक समथ से जातादि अर्थ मे त्यक् प्रत्यय होता है । ४—द्यु (दिव) प्राक् (प्राच्‌) अवाक् (अवाच्) उदक् (उदच्) एव प्रतीच-शब्द प्रकृति समथ सुबन्त मे जातादि अथ मे यत् प्रत्यय होता है । ५—अव्यय से त्यप् प्रत्यय होता है । ६—जिस समुदाय मे अचों के मध्य मे आदि वृद्धि (आ ऐ या औ) हो वह वृद्ध-संज्ञक होता है । ७—त्यदादि भी वृद्ध-सज्ञक होते है । ८—वृद्धसज्ञक समथ सुबन्त से छ प्रत्यय होता है । ९—गहादिगणपठित शब्दप्रकृतिक समथ सुबन्त से भी छ प्रत्यय होता है । १०—युष्मद् या अस्मद्-शब्द प्रकृतिक समथ सुबन्त से खञ प्रत्यय विकल्प से होता है, चकारात् छ प्रत्यय होता है, पक्ष मे अण् प्रत्यय होता है ।

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४ । ३ । २ ॥ [1]युष्मदस्मदो’तावादेशौ स्त खञ्यणि च । यौष्माकीण । आस्माकीन । यौष्माक । आस्माक ।

तवकममकावेकवचने ४ । ३ । ३ ॥ [2]एकाथवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्त खञि अणि च । तावकीन । तावक । मामकीन । मामक । छे तु—

प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७ । २ । ९८ ॥ मपयन्तयोरेतयोरेकाथवाचिनोस्त्वमौ स्त प्रत्यये उत्तरपदे च परत । त्वदीय । मदीय । त्वत्पुत्र । मत्पुत्र ।

[4]**मध्यान्म ४ । ३ । ८ ॥** मध्यम ।

कालाट्ठञ ४ । ३ । ११ ॥ [5]कालवाचिभ्यष्ठञ स्यात् । कालिकम् । सावत्सरिकम् । [6]**अव्ययाना भमात्रे टिलोप** । सायम्प्रातिक । पौन पुनिक ।

[7]**प्रावृष एण्य ४ । ३ । १७ ॥** प्रावृषेण्य ।

सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट च ४ । ३ । २३ ॥ [8]सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च । सायन्तनम् । प्राह्णे-प्रगे अनयोरेदन्तत्व निपात्यते । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषातनम् ।

तावकीन —तव अयमिति विग्रहे ‘युष्मदस्मदोरन्यतरस्या खञ्च’ इति खञि, अनुबन्धलोपे आयनेयीति खस्येनादेशे ‘तवकममकावेकवचने’ इति तवकादेशे आदि वृद्धौ भत्वेन यस्येति चेत्यनेन ककारोत्तरवर्त्यकारस्य लोपे प्रातिपदिकत्वेन सौ तस्य रुत्वे विसर्गे च ‘तावकीन’ इति । अणि तु ‘तावक’ इति । खञ्चेत्यनेन चकारा च्छे कृते तस्येयादेशे, प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति सूत्रेण ‘युष्म’ इत्यस्य ‘त्व आदेशे ‘त्वदीय इति ।

१—खञ् या अण् प्रत्यय पर हो तो युष्मद्–अस्मद् शब्द को (क्रम से) युष्माक, अस्माक होते हैं । २—खञ् या अण् प्रत्यय पर रहे तो एकाथवाची युष्मद्–अस्मद् को (क्रम से) तवक, ममक आदेश होते हैं । ३—प्रत्यय या उत्तरपद पर हो तो एकाथवाची युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त (युष्म अस्म) को क्रम से त्व एवं म आदेश होते हैं । ४—मध्य शब्द से जातादि अर्थ मे ‘म’ प्रत्यय होता है । ५—कालवाचक शब्दो से जातादि अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है । ६—अव्ययसंज्ञक शब्दों की ‘टि’ का लोप भसंज्ञामात्र मे ही होता है । ७—प्रावृष्शब्दप्रकृतिक समर्थ सुबन्त से एण्य प्रत्यय होता है । ८—सायं, चिर प्राह्णे या प्रगे—इन चारों से एवं कालवाची अव्यय से भी ट्यु तथा ट्युल् प्रत्यय होते हैं, एवं उनको तुट् का आगम भी होता है ।

तत्र जात ४ । ३ । २५ ॥ [1]सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्यु । स्रुघ्ने जात स्रौघ्न । उत्से जात औत्स । राष्ट्रे जातो राष्ट्रिय । अवारपारे जात अवारपारीण इत्यादि ।

[2]**प्रावृषष्ठप ४ । ३ । २६ ॥** एण्यापवाद प्रावृषिक ।

[3]**प्रायभव ४ । ३ । ३९ ॥** तत्रेत्येव । स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति स्रौघ्न ।

[4]**सभूते ४ । ३ । ४१ ॥** स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्न ।

[5]**कोशाड्ढञ ४ । ३ । ४२ ॥** कौशेय वस्त्रम् ।

[6]**तत्र भव ४ । ३ । ५३ ॥** स्रुघ्ने भव सौघ्न । औत्स । राष्ट्रिय ।

[7]**दिगादिभ्यो यत् ४ । ३ । ५४ ॥** दिश्यम् । वग्यम् ।

[8]**शरीरावयवाच्च ४ । ३ । ५५ ॥** दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । [9]**अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** । अध्यात्मनि भवम् आध्यात्मिकम् ।

अनुशतिकादीना च ७ । ३ । २० ॥ [10]एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिकम् । आकृतिगणोऽयम् ।

औत्स –अत्र उत्सादिभ्योऽञ्' इति अणप्रत्यय । **राष्ट्रिय** –इत्यत्र राष्ट्रावारपार–' इति घप्रत्यय । **तत्रेत्येव**–सप्तम्यन्तसमर्थात् प्रायभव इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च प्रत्यया भवन्ति इत्यथ । **तत्र भव** –अत्र इत्यर्थे सप्तम्यन्तसमर्थादणादयो भवन्ति । **शरीरावयवाच्चेत्यत्र** चकारात् 'दिगादिभ्यो यत्' इत्यतो यत्–इत्याकृष्यते ।

१—सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से 'जात' अर्थ में अणादि एवं घादि प्रत्यय होते है । २—प्रावृष्–शब्दप्रकृतिक समर्थ सुबन्त से ठप् प्रत्यय होता है । ३—तत्तत्प्रातिपदिक सप्तम्य न समर्थ सुब त से प्रायभाव अथ में (यथासम्भव) अणादि एवं घादि प्रत्यय होते हैं । ४—सप्तम्य तसयर्थसुबन्त से सम्भूत (होने) अर्थ में अणादि एवं घादि प्रत्यय होते हैं । ५—कोश–शब्दप्रकृतिक समथ सुबन्त से सम्भूत अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है । ६—तत्तत्–शब्दप्रकृतिक सप्तम्य त समर्थ सुब त से 'भव' अर्थ में अणादि एव घादि प्रत्यय होते हैं । ७—दिगादिगणपठित शब्द प्रकृतिक समर्थ सुब त से प्रायभव–अर्थ मे यत् प्रत्यय होता है । ८—शरीरावयववाची शब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से भी भव–अर्थ में यत् प्रत्यय होता है । ९—अध्यात्मादि गण पठित समर्थ सुबन्त से भव–अथ में ठञ् प्रत्यय होता है । १०—ञित्, णित् या कित्–तद्धित पर हो तो अनुशतिकादिगण पठित शब्दों को उभय पदवृद्धि (दोनों पदों की वृद्धि) होती है ।

[1]**जिह्वामूलाङ्गुलेश्छ** ४ । ३ । ६२ ॥ जिह्वामूलीयम् । अङगुलीयम् ।

[2]**वर्गान्ताच्च** ४ । ३ । ६३ ॥ कवर्गीयम् ।

[3]**तत आगत** ४ । ३ । ७४ ॥ स्रुघ्नादागत स्रौघ्न ।

[4]**ठगायस्थानेभ्य** ४ । ३ । ७५ ॥ शुल्कशालाया आगत शौल्कशालिक ।

[5]**विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ** ४।३।७७ ॥ औपाध्यायक । पैतामहक ।

[6]**हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्या रूप्य** ४ । ३ । ८१ ॥ समादागत समरूप्यम् । विषमरूप्यम् । पक्षे–गहादित्वाच्छ । समीयम् । विषमीयम् । देवदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् ।

[7]**मयट् च** ४ । ३ । ८२ ॥ सममयम् । देवदत्तमयम् ।

[8]**प्रभवति** ४ । ३ । ८३ ॥ हिमवत प्रभवति हैमवती गङ्गा ।

[9]**तद् गच्छति पथिदूतयो** ४ । ३ । ८५ ॥ स्रुघ्ने गच्छति स्रौघ्न पन्था दूतो वा ।

[10]**अभिनिष्क्रामति द्वारम्** ४ । ३ । ८६ ॥ स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्न कान्यकुब्जद्वारम् ।

ठगायस्थानेभ्य–आय स्वामिग्राह्यो भाग स यस्मिन्नुत्पद्यते तदायस्थानम्, तद्वाचकात्पञ्चम्यन्तादागतेऽर्थे ठक स्यात् इत्यथ । **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ**—विद्याकृतो योनिकृत सम्बन्धो येषां तद्वाचकादागतेऽर्थे वुञ स्यात् इति । **प्रभवति**–प्रभव प्रथमप्रकाशस्तत्कर्तरि प्रभवति इत्यर्थे पञ्चम्यन्तसमर्थादणादयो घादयश्च स्यु । **तद्गच्छति**—द्वितीयान्ताद् गच्छतीत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्यु , यो गच्छति स चेत्पन्था दूतो वा । **अभि इति**—द्वितीयान्तात् 'अभिनिष्क्रामति' इत्यर्थेऽणादय

१—जिह्वामूल तथा अङ्गुलि–शब्द–प्रकृतिकसमर्थ सुबन्त से भव–अर्थ में छ प्रत्यय होता है । २—वर्गान्तशब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से भी भव–अर्थ में छ प्रत्यय होता है । ३–तत्तत्शब्दप्रकृतिकपञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त से आगत अर्थ में अणादि एव घादि प्रत्यय होते है । ४—आय (आमदनी) स्थानवाचक शब्दप्रकृतिकसमर्थ सुबन्त से आगत–अर्थ मे ठक् प्रत्यय होता है । ५—विद्यासम्बन्धवाचक तथा योनिसम्बन्धवाचक–शब्दप्रकृतिक पञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त से आगत अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है । ६—हेतुवाची एवं मनुष्यवाची शब्द प्रकृतिकपञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त से आगत–अर्थ में रूप्य प्रत्यय होता है । ७—पूर्व (४।३।८१) सूत्रोक्त अर्थ में मयट् प्रत्यय भी होता है । ८—पञ्चम्यन्तसमर्थ सुबन्त से 'प्रभवति' अर्थ में अणादि तथा घादि प्रत्यय होते हैं । ९—द्वितीयान्तसमर्थ सुबन्त से 'गच्छति' अर्थ में अणादि तथा घादि प्रत्यय होते हैं, किन्तु वह (जानेवाला) यदि पन्था (मार्ग, रास्ता) या दूत हो तब । १०—यदि द्वार वाच्य हो तो द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से 'अभिनिष्क्रामति' अर्थ में

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४ । ३ । ८७ ॥ [1]शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ शारीरकीय ।

[2]**सोऽस्य निवास ४ । ३ । ८९ ॥** स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्न ।

[3]**तेन प्रोक्तम ४ । ३ । १०१ ॥** पाणिनिना प्रोक्त पाणिनीयम् ।

[4]**तस्येदम ४ । ३ । १२० ॥** उपगोरिदम् औपगवम ।

इति शैषिका ॥ ५ ॥



अथ विकारार्थप्रकरणम्

[5]**तस्य विकार ४ । ३ । १३४ ॥** [6]*** अश्मनो विकारो टिलोपो वक्तव्य** । अश्मनो विकार आश्म । भास्मन । मार्त्तिक ।

[7]**अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्य ४ । ३ । १३५ ॥** चाद्विकारे । मयूरस्याऽवयवो विकारो वा मायूर । मौव काण्ड भस्म वा । पैप्पलम् ।

[8]**मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयो ४ । ३ । १४३ ॥** प्रकृतिमात्रान्मयड वा स्यात् विकारावयवयो । अश्ममयम् । आश्मनम् । अभक्ष्येत्यादि किम् ? मौद्ग सूप । कार्पासम् आच्छादनम् ।

स्यु यन्निष्क्रामति तद् द्वारञ्चत् इति । **अधिकृत्य**—इति । **द्वितीयान्तात् अधिकृत्य कृते ग्र थे'** इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च भवन्ति । **तेन प्रोक्तम**—तृतीयान्तात्प्रोक्तमित्यर्थेऽणादय स्यु । **पाणिनीयम**—अत्र 'वृद्धाच्छ' इति छ ।

॥ इति शैषिका ॥



अणादि तथा घादि प्रत्यय होते हैं ।

१—द्वितीया तसमर्थ सुबन्त से 'अधिकृत्य कृत' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं, किन्तु जो किया गया हो वह यदि ग्र थ हो तब । २—प्रथमान्त सुबन्त समर्थ से 'अस्य निवास' अर्थ मे अणादि प्रत्यय होते हैं । ३—तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से 'प्रोक्त' अथ में अणादि प्रत्यय होते हैं । ४—षष्ठ्यन्त समथ सुबन्त से 'इदम्' अथ मे अणादि प्रत्यय होते हैं ।

॥ इतिशैषिकप्रकरणम् ॥



५—षष्ठ्य त सुबन्त से 'विकार' अर्थ मे अणादि प्रत्यय होते हैं । ६—विकार अर्थ में अश्मन् शब्द की टि का लोप होता है । ७—प्राणिवाचक तथा औषधिवाचक शब्द प्रकृतिक षष्ठ्य त समथ सुब त स अवयव एव (चकारात) विकार अथ मे अणादि प्रत्यय होते हैं । ८—भक्ष्य और आच्छादन अर्थ को छोड़कर विकार एवं अवयव अथ में षष्ठ्यन्त समर्थ सुब त से मयट् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

[1]**नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४ । ३ । १४४ ॥** आम्रमयम् । शरमयम् ।

[2]**गोश्च पुरीषे ४ । ३ । १४५ ॥** गो पुरीषं गोमयम् ।

[3]**गोपयसोर्यत् ४ । ३ । १६० ॥** गव्यम् । पयस्यम् ।

❀ इति विकारार्थकाः ❀ (इति प्राग्दीव्यतीयाः) ॥ ६ ॥



अथ ठगधिकारप्रकरणम्

प्राग्वहतेष्ठक् ४ । ४ । १ ॥ [4]तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते ।

[5]**तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ४ । ४ । २ ॥** अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितो वा आक्षिकः ।

[6]**संस्कृतम् ४ । ४ । ३ ॥** दध्ना संस्कृतं दाधिकम् । मारीचिकम् ।

[7]**तरति ४ । ४ । ५ ॥** तेनेत्येव । उडुपेन तरति औडुपिकः ।

चरति ४ । ४ । ८ ॥ [8]तृतीयान्ताद् गच्छति-भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात् । हस्तिना चरति हास्तिकः । दध्ना चरति दाधिकः ।

[9]**संसृष्टे ४ । ४ । २२ ॥** दध्ना संसृष्टं दाधिकम् ।

तेन दीव्यतीति—तृतीयान्तसमर्थात् दीव्यति खनति जयति जितम् इत्येतेष्वर्थेषु ठक् स्यात् । संस्कृतम्-तृतीयान्तसमर्थात् संस्कृतमित्यर्थे ठक् स्यात् । **मारीचिकम्** मरीचैः संस्कृतमित्यर्थे 'संस्कृतम्' इत्यनेन ठकि ककारलोपे ठस्येकादेशेऽनुबन्धलोपे भत्वादलोपे किति चेत्यनेनाद्यचो वृद्धौ प्रातिपदिकत्वात्सौ विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धिः । संसृष्टे-तृतीयान्तसमर्थात् संसृष्टमित्यर्थे ठक् ।

१—विकार तथा अवयव अर्थ में वृद्ध-संज्ञक तथा शरादिगण पठित शब्दप्रकृतिक समर्थ सुबन्त से नित्य ही मयट् प्रत्यय होता है । २—गो-शब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से पुरीष (मल) अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है । ३—गो शब्द तथा पयस्-शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से विकार अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

॥ इति प्राग्दीव्यतीयाः ॥



४—'तद्वहतिरथयुग-प्रासङ्गम्' सूत्र से पूर्व तक इस सूत्र का अधिकार जाता है । ५—तृतीयान्तसमर्थ सुबन्त से दीव्यति, खनति, जयति तथा जितम् इन चारों अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है । ६—तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से 'संस्कृत' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है । ७—तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से 'तरति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है । ८—तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से गच्छति तथा भक्षयति अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है । ९—तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से संसृष्ट (मिश्रित, मिलाया हुआ) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

[1]**उञ्छति** ४ । ४ । ३२ ॥ बदराण्युञ्छति बादरिक ।

[2]**रक्षति** ४ । ४ ३३ ॥ समाज रक्षति सामाजिक ।

[3]**शब्ददर्दुर करोति** ४ । ४ । ३४ ॥ शब्द करोति शाब्दिक । दर्दुर करोति दार्दुरिक ।

[4]**धर्म चरति** ४ । ४ । ४१ ॥ धार्मिक । ॐ[5]**अधर्माच्चेति वक्तव्यम् । अधार्मिक ।**

[6]**शिल्पम्** ४ । ४ । ५५ ॥ मृदङ्गवादन शिल्पमस्य मार्दङ्गिक ।

[7]**प्रहरणम्** ४ । ४ । ५७ ॥ तदस्येत्येव । असि प्रहरणमस्य आसिक । धानुष्क ।

[8]**शीलम्** ४ । ४ । ६१ ॥ अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिक ।

[9]**निकटे वसति** ४ । ४ । ७३ ॥ नैकटिको भिक्षुक ।

॥ इति ठगधिकार ॥ ७ ॥



उञ्छति—अत्र तत्प्रत्यनुपूर्वादित्यतस्तत्पदमनुवर्तते । तेन द्वितीयान्तसमर्थात उञ्छति' इत्यर्थे ठक स्यात इत्यर्थ । **रक्षति**—द्वितीयान्तसमर्थाद् रक्षति' इत्यर्थे ठक । शब्ददर्दुरशब्दाद् द्वितीयान्तसमर्थात करोति इत्यर्थे ठक । **धर्म चरति**—द्वितीयान्तसमर्थाद् धर्मशब्दाच्चरति 'अनुतिष्ठति इत्यर्थे ठक स्यात । **शिल्पम्**—अत्र तदस्य पण्यमित्यतस्तदस्येत्यस्य सम्बन्धो ज्ञेय । तेन—प्रथमान्तसमर्थात् शिल्पमित्यर्थे ठक । एव प्रहरण–शिल्पयोरपि । **निकटे वसति**—अत्र तत्र नियुक्त इत्यतस्तत्रेत्यधिक्रियते, तेन—सप्तम्यन्तसमर्थान्निकटशब्दाद् वसतीत्यर्थे ठक स्यात् ।

॥ इति ठगधिकार ॥

१—द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से उञ्छति' अर्थ मे ठक प्रत्यय होता है। २—द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से 'रक्षति' अर्थ में ठक प्रत्यय होता है। ३—शब्द और दुर्दर-शब्दप्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से करोति' अर्थ मे ठक् प्रत्यय होता है। ४-धर्मप्रकृतिक द्वितीयान्त से चरति' अर्थ मे ठक् प्रत्यय होता है। ५—अधर्म प्रकृतिक द्वितीयान्त से चरति' अर्थ मे ठक् होता है। ६—प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से अस्य शिल्पम्' अर्थ मे ठक् प्रत्यय होता है। ७—प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से अस्य प्रहरणम्' अर्थ मे ठक प्रत्यय होता है। ८—प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'शीलमस्य' अर्थ मे ठक प्रत्यय होता है। ९—निकटशब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से 'वसति' अर्थ मे ठक प्रत्यय होता है।

॥ इति ठगधिकार ॥



अथ प्राग्घितीयप्रकरणम्

प्राग्घिताद्यत् ४ । ४ । ७५ ॥ [1]तस्मै हितमित्यत प्राग यदधिक्रियते ।

[2]**तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ४ । ४ । ७६ ॥** रथ वहति रथ्य । युग्य । प्रासङग्य ।

धुरो यड्ढकौ ४ । ४ । ७७ ॥ हलि चेति दीर्घे प्राप्ते—

[4]**न भकुर्छुराम् ८ । २ । ७९ ॥** भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया इको दीर्घो न स्यात् । धुर्य । धौरेय ।

[5]**नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्याऽऽनाम्यसमसमितसमितेषु ४ । ४ । ९१ ॥** नावा ताय नाव्य = जलम् । वयसा तुल्यो वयस्य । धर्मेण प्राप्य धर्म्यम् । विषेण वध्यो विष्य । मूलेन आनाम्य मूल्यम् । मूलेन समो मूल्य । सीतया समित सीत्य क्षेत्रम् । तुलया समितं तुल्यम् ।

[6]**तत्र साधु ४ । ४ । ९८ ॥** अग्रे साधु अग्रय । सामसु साधु सामन्य । ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभाव । कर्मण्य । शरण्य ।

[7]**सभाया य ४ । ४ । १०५ ॥** सभ्य । *इति यतोऽवधि ।

॥ इति प्राग्घितीया ॥

तद्वहतीति—द्वितीयान्तसमर्थेभ्यो रथयुगप्रासङ्गशब्देभ्यो वहति' इत्यर्थे यत् स्यात् । **युग्य**—युग वहतीति विग्रहे द्वितीयान्तयुगशब्दाद्यकि तद्वहतिरथयुगेति सूत्रेण यत् प्रत्यये तकारलोपे, प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुकि मत्वाद्यचि भमिति गकारो त्तरवत्यकारस्य लोपे प्रातिपदिकसज्ञाया विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धि । धुर वहति इति धुर्य । **नौवय इति**—नावादिभ्योऽष्टभ्यस्तार्यादिष्वर्थेषु यत् । **तत्र साधु**—सप्तम्यन्तसमर्थात् 'साधु' इत्यर्थे यत् । कर्मणि साधु 'कर्मण्य' इत्यादि । **सभाया य**—सप्तम्यन्तसमर्थात् सभाशब्दात्साधु इत्यर्थे य स्यात् ॥ इति प्राग्घितीया ॥

१—'तस्मै हितम्' सूत्र से पूर्वतक यत्' प्रत्यय का अधिकार होता है । २—रथ युग, या प्रासङ्ग-शब्दप्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से 'वहति' अर्थ मे यत् प्रत्यय होता है । ३—धुर्-शब्दप्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से वहति' अर्थ में यत् एवं ढक् प्रत्यय होता है । ४—भसंज्ञक को तथा कुर या छुर की उपधाभूत इक् को दीर्घ नहीं होता है । ५—नौ, वयस् आदि (सूत्रोक्त) तत्तत्-शब्दप्रकृतिक तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से तार्य्य, तुल्य-आदि (सूत्रोक्त) अर्थों में यत् प्रत्यय होता है । ६—सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से 'साधु' (कुशल चतुर) अर्थ मे यत् प्रत्यय होता है । ७—सभा शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से साधु अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ इति प्राग्घितीयप्रकरणम् ॥

अथ छयतोरधिकारप्रकरणम्

[1]**प्राक् क्रीताच्छ** ५ । १ । १ ।। तेन क्रीतमित्यत प्राक् छोऽधिक्रियते ।

[2]**उगवादिभ्यो यत्** ५ । १ । २ ।। प्राक क्रीतादित्येव । उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्यात् । छस्यापवाद । शङ्कवे हित शङ्कव्य दारु । गव्यम् ।

[3] **नाभि नभं च** । नभ्योऽञ्जनम् ।

[4]**तस्मै हितम** ५ । १ । ५ ।। वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक ।

[5]**शरीरावयवाद्यत्** ५ । १ । ६ ।। दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । नस्यम् ।

[6]**आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्ख** ५ । १ । ९ ।।

आत्माध्वानौ खे ६ । ४ । १६९ ।। [7]एतौ खे प्रकृत्या स्त । आत्मने हितम् आत्मनीनम् । विश्वजनीनम् । मातभोगीण ।

।। **इति छयतो पूर्णोऽवधि (इति प्राक्क्रीतीय)** ।। १ ।।

अथ ठञधिकारप्रकरणम्

[8]**प्राग्वतेष्ठञ्** ५ । १ । १८ ।। [8]तेन तुल्यमिति वतिं वक्ष्यति तत प्राक ठञधिक्रियते ।

शङ्कव्यम—शङ्कवे हितमिति विग्रहे 'उगवादिभ्यो यत्' इति यति, तकारलोपे भसंज्ञाया 'ओर्गुण' इति गुणे, वान्तो यि-इति वान्तादेशे, प्रातिपदिकसंज्ञायां विभक्ति कार्ये च कृते 'शङ्कव्यम्' इति ।

तस्मै हितम—चतुर्थ्यन्तसमर्थात् 'हितम्' इत्यर्थे छ (उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च तु यत्) इति । **शरीरावयवेति**—चतुर्थ्यन्तसमर्थात् शरीरवयवात् 'हितम्' इत्यर्थे यत् प्रत्यय । **दन्तेभ्यो हितम् दन्त्यम** इत्यादि । **आत्मनेति**—चतुर्थीसमर्थात् आत्मन् विश्वजनभोगोत्तरपदात् 'हितम्' इत्यर्थे ख स्यात् ।। **इति छयतोरधिकारप्रकरणम** ।।

१— तेन क्रीतम्' सूत्र से पूर्व तक छ प्रत्यय का अधिकार है । २—तेन क्रीतम् से पूर्व उवर्णान्त या गवादिगणपठित जो शब्द, तत्प्रकृतिक चतुर्थ्यन्त समर्थ सुबन्त से 'हित' अथ में यत् प्रत्यय होता है । ३—नाभि शब्द को नभ आदेश भी होता है । ४—चतुर्थ्यन्त समर्थ सुबन्त से हित अथ में छ प्रत्यय होता है । ५—शरीरावयववाचक शब्दप्रकृतिक समथ सुबन्तसे हित अर्थ में य प्रत्यय होना है । ६—आत्मन्, विश्वजन या भोग शब्द उत्तरपद हो जिसका ऐसे प्रातिपदिक प्रकृतिक चतुर्थ्यन्त समर्थ सुबन्त से हित अर्थ में ख प्रत्यय होता है । ७–ख प्रत्यय पर हो तो आत्मन् तथा अध्वन् शब्द प्रकृति से ही रहते हैं (अर्थात् टि का लोप आदि नहीं होता) ।। इति छयतोरधिकारप्रकरणम् ।।

८—'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वति' सूत्र से पूर्व तक ठञ् प्रत्यय का अधिकार है ।

[1]**तेन क्रीतम ५ । १ । ३७ ॥** सप्तत्या क्रीत साप्ततिकम् । प्रास्थिकम् ।

[2]**सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ५ । १ । ४१ ॥** [3]**तस्येश्वर ५ । १ । ४२ ॥** सवभूमिपृथिवीभ्यामणञौ स्त । ॐ[4]**अनुशतिकादीना च ।** सवभूमेरीश्वर सावभौम । पार्थिव ।

[5]**पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ५ । १ । ५९ ॥** एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते ।

[6]**तदर्हति ५ । १ । ६३ ॥** लब्धु योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्ठञादय स्यु । श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिक ।

[7]**दण्डादिभ्यो यत् ५ । १ । ६६ ॥** एभ्यो यत्स्यात् । दण्ड्य । अर्घ्य । वध्य ।

[8]**तेन निर्वृत्तम ५ । १ । ७९ ॥** अह्ना निवृत्तम् आह्निकम् ।

॥ इति ठञोऽवधि (इति प्राग्वतीया) ॥ १० ॥

तेन क्रीतम—तृतीयान्तसमर्थात् 'क्रीतम्' इत्यर्थे ठञ स्यात् । प्रस्थेन प्रस्थ परिमाणेन धान्येन क्रीत **प्रास्थिकम ।** **सवभूमि** तथा **तस्येश्वर**—इति सूत्रयोरथ—षष्ठयन्ताभ्या सवभूमिपृथिवीशब्दाभ्यां 'ईश्वर इत्यर्थेऽणञौ स्त । **पङ्क्ति** शब्दोऽनेकाथ , छन्दोभेदक्रमसन्निवेशे दशसख्यायाञ्चेत्यादि । अत्र पञ्चन् शब्दस्य टिलोप , तिप्रत्यय चो कुरिति कुत्वम् । द्वौ दश तौ परिमाणमस्येति विग्रहे **विंशति** , अत्र प्रकृतेर्विनादेशश्शतिप्रत्ययोऽपदत्वञ्च निपात्यते । नस्यानुस्वार । एव मग्रेऽपि । इदमत्र ध्येयम् (विंशत्याद्या सदकत्वे) विंशत्याद्या सख्याया सख्येये चकवचनान्ता । विंशतिर्गाव गवा विंशतिरित्यादि । **दण्डादिभ्यो यत्**—द्वितीयान्तसम र्थेभ्यो दण्डादिभ्यो 'अर्हति' इत्यर्थे यत् । आह्निकमित्यत्राल्लोपोऽन इत्यकारलोप ।

॥ इति ठञधिकारप्रकरणम् ॥

१—तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से क्रीत अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है । २—सर्वभूमि तथा पृथिवीशब्दप्रकृतिक षष्ठ यन्त समर्थ सुबन्त से अण् , अञ् प्रत्यय होते हैं । ३—षष्ठयन्त—समर्थ सुबन्त से ईश्वर अर्थ में अण् , अञ् प्रत्यय होते हैं । ४—अनुशतिकादिगणपठित शब्दों को उभयपदवृद्धि होती है । ५—पंक्ति, विंशति आदि (सूत्रोक्त) शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । ६—द्वितीया त समथ सुब त से 'लब्धुं योग्यो भवति' इस अर्थ में ठञ् आदि प्रत्यय होते हैं । ७—दण्डादि-गणपठित शब्दप्रकृतिक समर्थ सुबन्त से यत् प्रत्यय होता है । ८—कालवाचकतृतीया त समथ सुबन्त से निवृत्त 'सिद्ध, तैयार' अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।

॥ इति ठञधिकार ॥

अथ त्वतलाधिकारप्रकरणम्

[1]**तेन तुल्य क्रिया चेद्वति ५ । १ । ११५ ॥** ब्राह्मणेन तुल्य ब्राह्मणवदधीते । क्रिया चेदिति किम् ? गुणतुल्ये मा भूत् । पुत्रेण तुल्य स्थूल ।

[2]**तत्र तस्येव ५ । १ । ११६ ॥** मथुरायामिव मथुरावत स्रुघ्ने प्राकार । चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य गाव ।

[3]**तस्य भावस्त्वतलौ ५ । १ । ११९ ॥** प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भाव । गोर्भावो गोत्वम्, गोता । [4]**त्वान्त क्लीबम् ।**

[5]**आ च त्वात् ५ । १ । १२० ॥** 'ब्रह्मणस्त्व' इत्यत प्राक् त्वतलावधिक्रियेते । अपवादै सह समावेशाथमिदम् । चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशाथ । स्त्रिया भाव स्त्रैणम् । स्त्रीत्वम् । स्त्रीता । पौस्नम् । पुस्त्वम् । पुस्ता ।

[6]**पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५ । १ । १२२ ॥** वा वचनमणादिसमावेशाथम् ।

[7]**र ऋतो हलादेलघो ६ । ४ । १६१ ॥** हलादेलघोऋकारस्य र स्यादिष्ठेमेयस्सु परत । [8]***पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम् ।**

[9]**टे ६ । ४ । १५५ ॥** भस्य टेर्लोप स्यादिष्ठेमेयस्सु । पृथोर्भाव प्रथिमा ।

अपवादै सहेत्यादि—अयम्भाव । भावाथप्रत्ययप्रकरणेऽग्रे इमनिजादय प्रत्यया विधीयन्ते ते च त्वतलोर्बाधका न भवेयुरित्यधिकारसूत्रम् । 'स्त्रीपुसाभ्याम्–' इति सूत्रविहिताभ्या नञस्नञभ्या सह त्वतलो प्रयोगसमावेशाथश्चकार । **स्त्रैणम्**—स्त्रियो भाव इति विग्रहे तस्य **भावस्त्वतलौ इति** प्राप्तौ त्वतलौ प्रबाध्य स्त्रीपुसाभ्या नञ्स्नञौ– इति नञि ञकारलोपे, आदिवृद्धौ, प्रातिपदिकसज्ञाया विभक्तिकार्ये च कृते 'स्त्रैणम्' इति । **प्रथिमा**—पृथोर्भाव इति विग्रहे पृथु अस इत्यस्मात्

१—तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से 'तुल्य' अथ मैं वति प्रत्यय होता है किन्तु जिससे तुल्य हो वह यदि क्रिया हो तब । २—सप्तम्यन्त या षष्ठ्यन्त समथ सुबन्त से इव अथ मे वति प्रत्यय होता है । ३—षष्ठ्य त समथ सुब त से भाव अथ मे त्व तथा तल प्रत्यय होते हैं । ४—त्व प्रत्यया त नपुसकलिङ्ग होता है (तथा तल प्रत्यया त स्त्री लिङ्ग होता है) । —ब्रह्मणस्त्व ' सूत्र के पूव तक त्व–तल् प्रत्यय का अधिकार जाता है । ६—पृथ्वादिगण पठित षष्ठ्य त समथ सुबन्त से भाव अर्थ मे इमनिच प्रत्यय विकल्प से होता है । ७—इष्ठन् इमनिच् या ईयसुन् प्रत्यय पर हो तो हलादि लघु ऋकार को र भाव होता है । ८—पृथु मृदु भृश कृश दृढ परिवृढ–शब्दों के ही लघु ऋकार को र–भाव होता है । —इष्ठन्, इमनिच ईयसुन् प्रत्यय पर हो तो भसंज्ञक टि का लोप होता है ।

[1]**इगन्ताच्च लघुपूर्वात्** ५ । १ । १३१ ॥ इगन्ताल्लघुपूर्वात् प्रातिपदिकाद्भावेऽण् प्रत्यय । पाथवम् । म्रदिमा । मादवम् ।

[2]**वर्णदृढादिभ्य ष्यञ च** ५ । १ । १२३ ॥ चादिमनिच । शौक्लयम । शुक्लिमा । दार्ढ्यम । द्रढिमा ।

[3]**गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च** ५ । १ । १२४ ॥ चाद्भावे । जडस्य भाव कर्म वा जाड्यम । मूढस्य भाव कर्म वा मौढ्यम । ब्राह्मण्यम । आकृतिगणोऽयम् ।

[4]**सख्युय** ५ । १ । ११६ ॥ सख्युर्भाव कर्म वा सख्यम् ।

[5]**कपिज्ञात्योर्ढक** ५ । १ । १२७ ॥ कापेयम । ज्ञातेयम ।

[6]**पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** ५ । १ । १२८ ॥ सैनापत्यम पौरोहित्यम ।

॥ इति त्वतलोरधिकार ॥ ११ ॥

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वेति विकल्पेनेमनिच्प्रत्यये, प्रातिपदिकत्वाद् विभक्तेलुकि, र ऋतो हलादेलघोरिति ऋकारस्य रकारादेशे, टेरिति टेर्लोपे, प्रातिपदिकसंज्ञाया विभक्तिकार्ये च कृते 'प्रथिमा' इति । पक्षे 'इगन्ताच्च लघुपूर्वाद्' इत्यञ प्रत्यये आदिवद्धौ यथाप्राप्तकार्ये च '**पाथवम**' इति । त्वप्रत्यये 'पृथुत्वम्' इति । तल प्रत्यये 'पृथुता' इति । **वर्णदृढादिभ्य इति**–षष्ठ्यन्तसमर्थेभ्यो वर्णवाचिभ्यो दृढादिभ्यश्च '**भाव**' इत्यर्थे ष्यञ प्रत्यय, चादिमनिच्च स्यात् । **सख्युय** –षष्ठ्यन्तात्सखिशब्दाद् भाव कर्मणोरथयोढक स्यात् ।

पत्यन्तेति—षष्ठ्यन्तेभ्य पत्यन्तशब्देभ्य पुरोहितादिशब्देभ्यश्च भावकर्मणोरथयोढक स्यात् । **सैनापत्यम**–सेनापतेर्भाव कर्म वेति विग्रहे सेनापति अस इत्यस्मात् 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक' इति यकि ककारलोपे, प्रातिपदिकत्वात्सुपो लुकि भसंज्ञाया यस्येति चेति तकारोत्तरवर्त्यकारस्य लोपे, कित्वादाद्यचो वद्धौ प्रातिपदिक संज्ञाया सुबुत्पत्तौ, विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धि ॥ **इति त्वतलोरधिकार** ॥

१—लघु हो पूर्व मे जिसके ऐसे इगन्त प्रातिपदिक से भाव-अर्थ में अण् प्रत्यय होता है । २–वर्णवाचक तथा दृढादिगणपठित शब्द–प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से ष्यञ् प्रत्यय होता है चकारात् इमनिच प्रत्यय भी होता है । ३–गुणवाचक शब्द तथा ब्राह्मणादिगणपठित शब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से कर्म तथा भाव अर्थ में भी ष्यञ प्रत्यय होता है । ४–सखिशब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से कर्म एव भाव अर्थ में य प्रत्यय होता है । ५—कपि तथा ज्ञाति शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से भाव तथा कर्म अर्थ में ढक प्रत्यय होता है । ६—पति शब्द हो अन्त में जिसके ऐसे शब्द तथा पुरोहितादि गणपठित शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से भाव तथा कर्म अर्थ मे यक् प्रत्यय होता है ॥ इति त्वतलोरधिकार ॥

अथ भवनाद्यर्थकप्रकरणम्

[1]**धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** ५ । २ । १ ॥ भवत्यस्मिन्निति भवनम् । मुद्गानां क्षेत्रं मौद्गीनम् ।

[2]**व्रीहिशाल्योर्ढक्** ५ । २ । २ ॥ व्रैहेयम् । शालेयम् ।

[3]**हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्** ५ । २ । २३ ॥ ह्योगोदोहशब्दस्य हियङ्गुरादेशो विकारार्थे खञ्च निपात्यते । दुह्यते इति दोहः क्षीरम् । ह्योगोदोहस्य विकारः हैयङ्गवीनं नवनीतम् ।

[4]**तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** ५ । २ । ३६ ॥ तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं नभः । पण्डितः । आकृतिगणोऽयम् ।

[5]**प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** ५ । २ । ३७ ॥ तदस्येत्यनुवर्त्तते । ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम् । ऊरुदघ्नम् । ऊरुमात्रम् ।

[6]**यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** ५ । २ । ३९ ॥ यत्परिमाणमस्य यावान् । तावान् । एतावान् ।

[7]**किमिदम्भ्यां वो घः** ५ । २ । ४० ॥ आभ्यां वतुप् स्याद्वकारस्य घश्च ।

धान्यानामिति—षष्ठ्यन्ताद् धान्यवाचिशब्दाद् 'भवनम्-क्षेत्रम्' इत्यर्थे खञ् स्यात् । **व्रीहि०**—षष्ठ्यन्तसमर्थव्रीहिशालिशब्दाभ्यां भवनम्-क्षेत्रम् इत्यर्थे ढक् स्यात् । **तदस्य सञ्जातमिति**—प्रथमान्तेभ्यः सञ्जातोपाधिकेभ्यः तारकादिशब्देभ्योऽस्येत्यर्थे 'इतच्' स्यात् । सदसद्विवेकिनी बुद्धिः पण्डा । पण्डा सञ्जाताऽस्येति **पण्डितः** । एवं लज्जितः, पुष्पितः, तृषितः, पुलकितः, फलितः—इत्यादि । **प्रमाणे इति**—प्रमाणे वर्तमानात्प्रथमान्तादस्तीति निर्दिष्टे प्रमेयेऽर्थे द्वयसज्-दघ्नञ् मात्रच् प्रत्ययाः स्युः ।

१—धान्यवाचक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से 'भवन क्षेत्र' होने योग्य खेत' अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है । २—व्रीहि तथा शालि शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से 'भवन क्षेत्र' अर्थ मे ढक् प्रत्यय होता है । ३—संज्ञा मे 'हैयङ्गवीन' शब्द साधु होता है अर्थात् ह्योगोदोह शब्द को 'हियङ्गु' आदेश होता है और विकार अर्थ मे खञ् प्रत्यय भी होता है । ख को ईन हो जाता है और ञित्वात् आदि अच् को वृद्धि हो जाती है । इस प्रकार 'हैयंगवीनम्' रूप की सिद्धि होती है । ४—तारकादिगणपठित शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य सञ्जातम्' अर्थ मे इतच् प्रत्यय होता है । ५—प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य प्रमाणम्' अर्थ मे द्वयसच् दघ्नञ् मात्रच् प्रत्यय होते हैं । ६—यत् तत् या एतत् शब्दप्रकृतिक समर्थ सुबन्त से 'अस्य परिमाणम्' अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है । ७—किम् और इदम् शब्द मे वतुप प्रत्यय होता है और व को घ होता है ।

[1]**इदकिमोरीशकी ६ । ३ । ९० ॥** दगदशवतुषु इदम ईश किम की स्यात् । इयान् । कियान् । [ईदक, ईदश । कीदृक, कीदृश —आदि]।

[2]**सख्याया अवयवे तयप् ५ । २ । ४२ ॥** पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम् ।

[3]**द्वित्रिभ्या तयस्याऽयज्वा ५।२।४३ ॥** द्वयम् । द्वितयम् । त्रयम् । त्रितयम् ।

[4]**उभादुदात्तो नित्यम् ५ । २ । ४४ ॥** उभशब्दात्तयपोऽयच स्यात्म चोदात्त । उभयम् ।

[5]**तस्य पूरणे डट् ५ ।२ । ४८ ॥** एकादशाना पूरण एकादश ।

नान्तासख्यादेमट् ५ । २ । ४९ ॥ [6]डटो मडागम । पञ्चाना पूरण पञ्चम । नान्तात्किम् ?

[7]**ति विंशतेर्डिति ६ । ४ । १४२ ॥** विशतेभस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे। विश । असख्यादे किम् ? एकादश ।

आद्यौ द्वौ 'ऊर्ध्वमाने', अन्तिम परिच्छेदकमात्रे इति विशेष । **इयान्-**इदम्परिमाण मस्येति विग्रहे किमिदम्भ्यामिति वतुपि, वस्य घत्वे च कृते आयनेयीति घस्येयादेशे, प्रातिपदिकत्वेन सौ, उगिदचामिति नुमागमेऽनुबन्धलोपे, इद किमोरिति ईशादेशे, शलोपे, भत्वेन यस्येति चेतीकारलोपे, उपधादीर्घे, तकारस्य सयोगान्तलोपे इयान् सु इति स्थिते, हल्ङयादिना सोर्लोपे इयान्' इति । **सख्याया** इति । अवयवे वतमाना-त्सख्यावाचकात्प्रथमान्तात्त्वयविरूनेऽर्थे तयप । **तस्य पूरणे डट-**सख्येयार्थवाचि सख्यावाचकात प्रथमान्तात्पूरणेऽर्थे डट स्यात । **विंश —** विंशते पूरण ' इति विग्रहे 'तस्य पूरणे' इति डटि, ति विंशते –' इति लोपविधानसामर्थ्येन तिमात्रस्य लोपे विंश अ' इति स्थिते 'असिद्धवदत्राभात' इति तिलोपस्यासिद्धत्वाद् यस्येति चेति लोपाप्रवत्तौ, अतो गुणे इत्यकारयो पररूपे, प्रातिपदिकत्वेन सु आदि विभक्तिकार्ये कृते '**विंश** ' इति ।

१—दृग् , दृश, या वतु पर हो तो इदम् को 'इश्' तथा किम् को की' आदेश होता है । २—सख्यावाचक शब्दप्रकृतिक प्रथमा त समथ सुबन्त से 'अवयवा अस्य' इस अर्थ मे तयप् प्रत्यय होता है । ३—द्वि या त्रि शब्द से विहित जो तयप् प्रत्यय उसको विकल्प से अयच् आदेश होता है । ४—उभयशब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समथ सुब त से विहित तयप् को अयच् आदेश होता है, और वह उदात्त सज्ञक होता है । ५—षष्ठय त समथ सुब त से पूरण अर्थ मे डट् प्रत्यय होता है । ६—जिसके आदि पूर्व' मे कोइ अन्य' संख्या नहीं हो एसे नकारान्त संख्यावाची शब्द से परे जो डट उसका मट का आगम होता है । ७—डित परे रहते भसंज्ञक विंशति शब्द के ति का लोप होता है ।

[1]षटकतिकतिपयचतुरां थुक् ५ । २ । ५१ ॥ एषां थुगागमः स्याड्डटि । षण्णां पूरणः षष्ठः । कतिथः । कतिपयशब्दस्याऽसङ्ख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डट् । कतिपयथः । चतुर्थः ।

[2]द्वेस्तीयः ५ । २ । ५४ ॥ डटोऽपवादः । द्वयोः पूरणो द्वितीयः ।

[3]त्रेः सम्प्रसारणं च ५ । २ । ५५ ॥ तृतीयः ।

[4]श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते ५ । २ । ८४ ॥ श्रोत्रियः । वेत्यनुवृत्तेः—छान्दसः ।

[5]पूर्वादिनिः ५ । २ । ८६ ॥ पूर्वं कृतमनेन पूर्वी ।

[6]सपूर्वाच्च ५ । २ । ८७ ॥ कृतपूर्वी ।

[7]इष्टादिभ्यश्च ५ । २ । ८८ ॥ इष्टमनेन इष्टी । अधीती ।

॥ इति भवनाद्यर्थकाः ॥ ११ ॥

अथ मत्वर्थीयप्रकरणम्

[8]तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५ । २ । ९४ ॥ गावोऽस्याऽस्मिन्वा सन्ति गोमान् ।

कतिपयेति—अयम्भावः—षट्कतिपयेति डटस्थुगागमः क्रियते । तथा डट् च सङ्ख्यावाचकशब्दादेव भवति । कतिपयशब्दस्तु न सङ्ख्यावाचक इति कुतः प्रवृत्तिरित्यत आह-कतिपयेत्यादि । एवञ्च ज्ञापकादेव डटि तस्य थुगागमे च कृते 'कतिपयथः' इति ।

कृतपूर्वी—अविवक्षितकर्मकात्कृधातोर्भावे क्तः प्रत्यये पूर्वं कृतमनेनेति विग्रहे, सह सुपेति समासात्तः सपूर्वाच्चेतीनिप्रत्यये, यथाप्राप्तकार्ये च कृते तत्सिद्धिः । एवं कथितपूर्वी श्रुतपूर्वी इत्यादयः ।

तदस्यास्त्यस्मिन्निति—सत्ताक्रियाकर्तृभूतात्प्रथमान्तात्समर्थाद् 'अस्यास्मिन्वा' इत्यर्थे मतुप् स्यात् ।

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने ।
सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥

१—षट्, कति, कतिपय और चतुर् शब्द को थुक् का आगम होता है डट् परे हो तो । २—द्वि-शब्द-प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है । ३—त्रि-शब्द-प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है और त्रि को सम्प्रसारण भी होता है । ४—'छन्दोऽधीते' वेद पढ़ता है' अर्थ में 'श्रोत्रिय' निपातन होता है । ५—पूर्व शब्द प्रकृतिक द्वितीयान्त क्रियाविशेषण से 'इनि' प्रत्यय होता है । ६—सपूर्व, पूर्व में कोई शब्द हो ऐसा' जो पूर्व शब्द उससे भी इनि प्रत्यय होता है । ७-इष्टादि-शब्दप्रकृतिक समर्थ सुबन्त से 'इनि' प्रत्यय होता है ॥ इति भवनाद्यर्थकाः ॥

८—प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्यास्ति' तथा 'अस्मिन्नस्ति' अर्थ में मतुप् प्रत्यय होता है ।

[1]**तसौ मत्वर्थे १ । ४ । १९ ॥** तान्तसान्तौ भसञ्ज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे। गरुत्मान्। वसो सम्प्रसारणम्। विदुष्मान्। ॐ[2]**गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः**। शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्ल पट। कृष्ण।

[3]**प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५ । २ । ९६ ॥** चूडाल। चूडावान्। प्राणिस्थात्किम्? शिखावान् दीप। प्राण्यङ्गादेव। नेह–मेधावान्।

[4]**लोमादिपामादिपिच्छादिभ्य शनेलचः ५ । २ । १०० ॥** लोमादिभ्य शः। लोमश। लोमवान्। रोमश। रोमवान्। पामादिभ्यो **न**। पामन। [5]**अङ्गात्कल्याणे**। अङ्गना। [6]**लक्ष्म्या अच्च**। लक्ष्मण। पिच्छादिभ्य **इलच्**। पिच्छिल। पिच्छवान्। उरसिल। उरस्वान्।

[7]**दन्त उन्नत उरच् ५ । २ । १०६ ॥** उन्नता दन्ता सन्त्यस्य दन्तुर।

[8]**केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५ । २ । १०९ ॥** केशव। केशी। केशिक। केशवान्। [9]**अन्येभ्योऽपि दृश्यते**। मणिव। [10]**अणसो लोपश्च**। अणव।

[11]**अत इनिठनौ ५ । २ । ११५ ॥ दण्डी। दण्डिक।**

[12]**व्रीह्यादिभ्यश्च ५ । २ । ११६ ॥** व्रीही। व्रीहिक।

प्राणिस्थेति—सत्ताक्रियाकर्मभूतादाकारान्तात्प्राण्यङ्गवाचकाल्लज्वा स्यात्। **लक्ष्मण**—लक्ष्मीशब्दस्याकारादेशो 'न' प्रत्ययश्च। मत्वर्थे लक्ष्मीवान्। **दन्त उन्नत उरच्**—उन्नतोपाधिकात्प्रथमान्ताद्दन्तशब्दात्मतुबर्थे उरच् स्यात्। **अणसो**—अण शब्दाद् 'व' प्रत्ययः सस्य लोपश्च मत्वर्थे। अर्णांसि जलानि सन्त्यस्मिन्नित्यणव।

१—मत्वर्थ प्रत्यय पर हो तो तान्त सान्त की भसंज्ञा होती है। २—गुणवाचक शब्द से विहित मतुप् प्रत्यय का लुक् 'लोप' हो जाता है। ३—प्राणिस्थ आकारान्त शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त से अस्यास्ति' अर्थ में लच् प्रत्यय विकल्प से होता है। ४–लोमादिगणपठित शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'श' प्रत्यय तथा पामादि से 'न' प्रत्यय एवं पिच्छादि से इलच प्रत्यय होते हैं। ५—अङ्ग शब्द से कल्याण अर्थ में 'न' प्रत्यय होता है। ६—लक्ष्मी शब्द को अकार अन्तादेश तथा चकारात् 'न' प्रत्यय भी होता है। ७—दन्त शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से उन्नत अर्थ मे उरच् प्रत्यय होता है। ८—केशशब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से व' प्रत्यय विकल्प से होता है। ९—अन्य शब्दों से भी 'व' प्रत्यय होता है। १०—अणस् शब्द से 'व' प्रत्यय होता है और अन्त्य अल् का लोप भी होता है। ११—अदन्त शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से इनि तथा ठन् प्रत्यय होता है। १२—व्रीह्यादि गणपठित शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से इनि और ठन् प्रत्यय होता है।

[1]अस्मायामेधास्रजो विनि ५ । २ । १२१ ॥ यशस्वी । यशस्वान् । मायावी । मेधावी । स्रग्वी ।

[2]वाचो ग्मिनि ५ । २ । १२४ ॥ वाग्मी ।

[3]अर्शआदिभ्योऽच् ५ । २ । १२७ ॥ अर्शांस्यस्य विद्यन्ते अर्शस । आकृतिगणोऽयम् ।

[4]अहंशुभमोर्युस् ५ । २ । १४० ॥ अहंयु अहङ्कारवान् । शुभंयुस्तु शुभान्वित । ॥ इति मत्वर्थीया ॥ १२ ॥

अथ प्राग्दिशीयप्रकरणम्

[5]प्राग्दिशो विभक्ति ५ । ३ । १ ॥ 'दिक्शब्देभ्य' इत्यत प्राग्वक्ष्यमाणा प्रत्यया विभक्तिसञ्ज्ञा स्यु ।

[6]किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्य ५ । ३ । २ ॥ किम सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते ।

[7]पञ्चम्यास्तसिल् ५।३।७ ॥ पञ्चम्यन्तेभ्य किमादिभ्यस्तसिल्वा स्यात् ।

[8]कु तिहो ७ । २ । १०४ ॥ किम कु स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परत । कुत । कस्मात् ।

वाच इति—वाचो ग्मिनि स्यान्मत्वर्थे । इकारो नकाररक्षार्थ । चकारस्य कुत्वे जश्त्वे च कृते "वाग्मी" इति । एतस्य सर्वप्रयोगे द्वयोगकारयो श्रवण भवतीति । द्वित्वे कृते तु त्रयाणामिति विशेष (अत्र मतभेदश्च वर्तते विस्तरभयान्न प्रकाश्यते) । कुतः—कस्मादिति विग्रहे 'किम् ङसि' इति दशायां 'पञ्चम्यास्तसिल' इति तसिलप्रत्यये, तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो धातुरिति सुपो लुकि, 'कु तिहो' इति किम कुभावे कृते, स्वरादौ पाठेन तसिलन्तस्याव्ययत्वेन तद्धितान्ता दागतस्य सुपो लुकि, कुस सकारस्य रुत्वादिकार्ये कृते कुत ' इति ।

१—असन्त-शब्द तथा माया मे । एव स्रज-शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'विनि' प्रत्यय होता है । २—वाच्-शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'ग्मिनि' प्रत्यय होता है । ३—अर्शस्-आदि गणपठित शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से अच् प्रत्यय होता है । ४ –अहं तथा शुभ-शब्दों से युस् प्रत्यय होता है ॥ इति मत्वर्थीया ॥

५—'दिक्शब्देभ्य ' सूत्र से पूर्व आगे कहे जानेवाले प्रत्यय विभक्तिसञ्ज्ञक होते हैं । ६—'किंसर्वनाम–' इस सूत्र का अधिकार 'दिक्शब्देभ्य ' से पूर्व तक जाता है । ७—द्व्यादिभिन्न किं, सर्वनाम, बहुशब्द प्रकृतिक पञ्चम्यन्त से तसिल् प्रत्यय विकल्प से होता है । ८–तादि या हादि विभक्तिसञ्ज्ञक प्रत्यय पर हो तो किम् शब्द को 'कु' आदेश होता है ।

[1]**इदम इश्** ५ । ३ । ३ ॥ प्राग्दिशीये परे । इत ।

[2]**अन** ५ । ३ । ५ ॥ एतद प्राग्दिशीये । अनेकाल्त्वात्सर्वादेश । अत । अमुत । यत । तत । बहुत । द्व्यादेस्तु द्वाभ्याम् ।

[3]**पर्यभिभ्यां च** ५ । ३ । ९ ॥ आभ्या तसिल स्यात् । परित । सर्वत इत्यर्थ । अभित । उभयत इत्यर्थ ।

[4]**सप्तम्यास्त्रल** ५ । ३ । १० ॥ कुत्र । यत्र । तत्र । बहुत्र ।

[5]**इदमो ह** ५ । ३ । ११ ॥ त्रलोऽपवाद । इह ।

[6]**किमोऽत्** ५ । ३ । १२ ॥ वा ग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात्किमोऽद्वा स्यात् । पक्षे त्रल ।

[7]**क्वाऽति** ७ । २ । १०५ ॥ किम क्वादेश स्यादति । क्व । कुत्र ।

[8]**इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते** ५ । ३ । १४ ॥ पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते । दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव । स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । त भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । एव दीर्घायु । देवाना प्रिय । आयुष्मान् ।

सर्वैकान्यकियत्तद काले दा ५ । ३ । १५ ॥ सप्तम्यन्तेभ्य कालार्थेभ्य स्वार्थे दा स्यात् ।

'अस्मात इति इत । **अन्**–एतद स्थाने अन् इत्यादेश प्राग्दिशीये परे । **अत**–अत्र अनो नस्य नलोप प्रातिपदिकान्तस्येति लोप । **सप्तम्यास्त्रल**–सप्तम्यन्तेभ्य किमादिभ्यस्त्रल प्रत्यय स्यात्स्वार्थे । कस्मिन्निति **कुत्र** । एव यस्मिन्, तस्मिन्, बहुषु इति क्रमेणतेषु विग्रह । **इह**–अस्मिन् देशे इति विग्रहे इदमो ह इति ह–प्रत्यये इदम इशादेशे रूपम् । **क्व** कुत्रत्युभयत्रापि कस्मिन्निति विग्रह ।

१—प्राग्दिशीय विभक्ति पर हो तो इदम् शब्द को इश् आदेश होता है। २–प्राग्दिशीय विभक्ति पर हो तो एतत्–शब्द को 'अन्' आदेश होता है। ३—परि तथा अभि शब्द से तसिल् प्रत्यय होता है। ४—द्व्यादिभिन्न किं, सर्वनाम, बहु शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त से त्रल् प्रत्यय होता है। ५—इदम्–शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ से 'ह' प्रत्यय होता है। ६—किम्–शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त सुबन्त से 'अत्' प्रत्यय विकल्प से होता है। ७—अत् पर हो तो किम् शब्द को 'क्व' आदेश होता है। ८—पञ्चमी एवं सप्तमी से भिन्न विभक्ति अन्त में हो जिसके उससे (प्रथमान्त द्वितीयान्त से) भी तसिल्–आदि प्रत्यय होते (देखे जाते) हैं। ०—सर्व एक, अन्य, किं, यत्, तत्–शब्द प्रकृतिक कालार्थक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से स्वार्थ में 'दा' प्रत्यय होता है।

[1]**सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५ । ३ । ६ ॥** दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् । सर्वस्मिन् काले सदा । सर्वदा । एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । काले किम् ? सर्वत्र देशे ।

[2]**इदमो र्हिल् ५ । ३ । १६ ॥** 'सप्तम्यन्तात् काले' इत्येव ।

[3]**एतेतौ रथोः ५ । ३ । ४ ॥** इदम्शब्दस्य एत इत इत्यादेशौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे । अस्मिन् काले एतर्हि । काले किम् ? इह देशे ।

[4]**अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ५ । ३ । २१ ॥** कर्हि । कदा । यर्हि । यदा । तर्हि । तदा ।

[5]**एतदः ५ । ३ । ५ ॥** 'एत' 'इत' एतौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये । एतस्मिन् काले एतर्हि ।

[6]**प्रकारवचने थाल् ५ । ३ । २३ ॥** प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात् स्वार्थे । तेन प्रकारेण तथा । यथा ।

[7]**इदमस्थमुः ५ । ३ । २४ ॥** थालोऽपवादः । [8]**एतदोऽपि वाच्यः ॥** अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम् ।

[9]**किमश्च ५ । ३ । २५ ॥** केन प्रकारेण कथम् ।

॥ इति प्राग्दिशीया ॥ १४ ॥

कदा— कस्मिन् काले इति विग्रहे सर्वैकान्य–० इति दाप्रत्यये प्राग्दिशा–० इति विभक्ति–सज्ञाया किमः क इति कादेशे रूपम् । **एतर्हि**— अस्मिन् काले इति विग्रहे 'इदमोर्हिल्' इति र्हिल्प्रत्यये लकारस्येत्वे लोपे च कृते सुपो लुकि 'एतेतौ रथोः' इति इद–शब्दस्य एत आदेशे 'एतर्हि' इति । **अनद्यतन इति**— अतीताया रात्रेः पश्चार्द्धेनागामिन्याः पूर्वार्धेन च सहितो दिवसोऽद्यतनकालस्तद्भिन्ने र्हिल् प्रत्ययः **॥ इति प्राग्दिशीया ॥**

१—दादि (दकारादि) प्राग्दिशीय प्रत्यय पर हो तो सर्व–शब्द को 'स' आदेश होता है । २—इदम्–शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त से काल–अर्थ मे र्हिल प्रत्यय होता है । ३—रेफादि थकारादि प्राग्दिशीय विभक्ति पर हो तो इदम्–शब्द को एत इत आदेश होते हैं । ४—अनद्यतन अर्थ मे किमादि से 'र्हिल्' प्रत्यय विकल्प से होता है । ५—रेफादि या थकारादि प्राग्दिशीय विभक्ति पर हो तो एतद्–शब्द को एत, इत आदेश होते हैं । ६—प्रकारवृत्ति किमादिशब्द–प्रकृतिक सुबन्त से स्वार्थ मे 'थाल्' प्रत्यय होता है । ७—इदम् शब्द से स्वार्थ मे 'थमु' प्रत्यय होता है । ८—एतद्–शब्द से भी 'थमु' प्रत्यय स्वार्थ में होता है । ९—कि[illegible]ब्द से भी स्वार्थ में 'थमु' प्रत्यय होता है ॥ इति प्राग्दिशीया ॥

अथ प्रागिवीयप्रकरणम्

[1]**अतिशायने तमबिष्ठनौ ५ । ३ । ५५ ॥** अतिशयविशिष्टाऽर्थवृत्ते स्वार्थे एतौ स्त । अयमेषामतिशयेन आढ्य —आढ्यतम । लघुतम । लघिष्ठ ।

तिङश्च ५ । ३ । ५६ ॥ [2]तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् ।

तरप्तमपौ घ १ । १ । २२ ॥ [3]एतौ घसञ्ज्ञौ स्त ।

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ५ । ४ । ११ ॥ [4]किम एदन्तात्तिङो ऽव्ययाच्च यो घस्तन्तादाम् स्यान्नतु द्रव्यप्रकर्षे । किन्तमाम् । प्राह्णेतमाम् । पचतितमाम् । उच्चैस्तमाम् । द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरु ।

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५ । ३ । ५७ ॥ [5]द्वयोरेकस्याऽतिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्त । पूवयोरपवाद । अयमनयोरतिशयेन लघुलघुतर । लघीयान् । उदीच्या प्राच्येभ्य पटुतरा । पटीयास ।

प्रशस्यस्य श्र ५ । ३ । ६० ॥ [6]अस्य श्रादेश स्यादजाद्यो परत ।

प्रकृत्यैकाच् ६।४।१६३ ॥ [7]इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात् । श्रेष्ठ । श्रेयान् ।

अतिशयेति—बहुषु तुल्यरूपप्रकर्षासम्भवाद्यत्र सर्वापेक्षया प्रकर्षस्तदभिधायकस्तमबादि । 'तरप्' विधायकसूत्रे द्वयोरिति श्रवणाद् बहूनां मध्ये एकस्मिन् प्रकर्षविवक्षायां तमबिष्ठनौ भवत इत्यथ । यथा–'अयमप्याढ्य', अयमेषामाढ्य' इत्यर्थे आढ्यतम । **किन्तमाम्**—अयमेषामतिशयेन किमिति विग्रहे किं शब्दादतिशायने तमबिष्ठनाविति तमपि 'तरप्तमपौ घ' इति तस्य घसञ्ज्ञाया 'किमेतत्तिङ व्यय–०' इति 'आमुप्रत्यये', तस्मिन्परे मकारोत्तराकारस्य 'यस्येति च इति लोपे आमोरनुबन्धलोपे स्वरादित्वादव्ययसञ्ज्ञाया विभक्तेर्लुकि 'किन्तमाम्' इति । **प्राह्णेतमाम्**—अत्र घकालेति सप्तम्या अलुग्बोध्य । **लघीयान्**—अयमेषामतिशयेन लघु — इति विग्रहे 'द्विवचनविभज्योप–०' इति ईयसुन्यनुबन्धलोपे, सुपो लुकि, प्रातिपदि-

---

१—अतिशय (अत्यन्त) विशिष्टार्थवृत्ति शब्दप्रकृतिक सुबन्त से तमप् तथा इष्ठन् प्रत्यय होता है । २—अतिशय–अर्थ द्योत्य हो तो तिङन्त से भी तमप् प्रत्यय होता है । ३—तरप् तथा तमप –प्रत्यय घ–संज्ञक होते हैं । ४—किम्–शब्द से, एदन्त से 'तिङन्त से या अव्यय से विहित जो 'घ', तदन्त से 'आम्' प्रत्यय होता है किन्तु द्रव्यप्रकर्ष (द्रव्य की उन्नति या आधिक्य) को छोड़कर । ५—दो (व्यक्तियों वा पदार्थों) में से एक का अतिशय द्योत्य होने पर तथा विभक्तव्य उपपद रहने पर सुबन्त एव तिङन्त से तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होता है । ६—अजादि (इष्ठन् या ईयसुन्) प्रत्यय पर हो तो प्रशस्य शब्द को 'श्र' आदेश होता है । ७—इष्ठादि प्रत्यय पर हो तो एकाच प्रकृति से ही रहता है ।

ज्य च ५ । ३ । ६१ ॥ [1]प्रशस्यस्य ज्यादेश स्यादिष्ठेयसो । ज्येष्ठ ।

[2]**ज्यादादीयस ६ । ४ । १६० ॥** आदे परस्य । ज्यायान् ।

बहोर्लोपो भू च बहो ६ । ३ । १५८ ॥ [3]बहो परयोरिमेयसोर्लोप स्याद्बहोश्च भूरादेश । भूमा । भूयान् ।

इष्ठस्य यिट च ६ । ४ । १५९ ॥ [4]बहो परस्य इष्ठस्य लोप स्यादिडागमश्च । भूयिष्ठ ।

विन्मतोर्लुक् ५ । ३ । ६५ ॥ [5]विनो मतुपश्च लुक स्यादिष्ठेयसो । अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठ । स्रजीयान् । अतिशयेन त्वग्वान् त्वचिष्ठ । त्वचीयान् ।

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर ५ । ३ । ६७ ॥ [6]ईशदूनो विद्वान् विद्वत्कल्प । विद्वद्देश्य । विद्वद्देशीय । पचतिकल्पम् ।

कत्वेन सौ, 'उगिदचाम्' इति नुमागमेऽनुबन्धलोपे 'लघु ईयस्' इति स्थिते, 'टे' इति घकारोत्तरवत्युकारस्य लोपे, 'अत्वसन्त–०' इति नकारस्योपधादीर्घे, सोर्लोपे, सकारस्य च सयोगान्तलोपे सिद्ध रूपम् । **श्रेष्ठ** —'अतिशयेन प्रशस्य' इति विग्रहे अतिशायने तमबिष्ठनाविति इष्ठन्यनुबन्धलोपे 'प्रशस्यस्य श्र' इति श्रादेशे टेरिति टेर्लोपे प्राप्ते प्रकृत्यैकाजिति प्रकृतिभावे, गुणे प्रातिपदिकसज्ञाया सौ, तस्य रुत्वे विसर्गे च 'श्रेष्ठ' इति । **ज्येति**—ज्यशब्दात्परस्येयस प्रात स्यात । **ज्यायान**—द्वयोमध्ये प्रशस्यो ज्यायान् । अत्र प्रशस्यशब्दात् 'द्विवचनविभज्योपपदे–' इति ईयसुन्यनुबन्धलोपे, 'ज्य च' इति प्रशस्यस्य ज्यादेशे, 'ज्यादादीयस' इत्यादेरीकारस्यादादेशे, अक सवर्णे दीर्घे 'ज्यायत्' इति जाते, प्रातिपदिकसज्ञाया सौ 'उगिदचाम्' इति नुम्ययुबन्धलोपे उपधादीर्घे, हल्ङ्यादिना सोर्लोपे, सस्य सयोगान्तलोपे 'ज्यायान्' इति । **भूयिष्ठ** —'अतिशयेन बहु' इति विग्रहे 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इत्यनेनेष्ठन्यनुबन्धलोपे, 'इष्ठस्य यिट' इत्यनेनेष्ठनेकारलोपे यिटि च कृते, यिटो टकारलोपे, 'बहोर्लोपो भू च बहो' इति 'भू' आदेशे, तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सौ, तस्य रुत्वे विसर्गे च 'भूयिष्ठ' इति । **ईषदसमाप्तौ**—

१– इष्ठ या ईयसुन् प्रत्यय पर हो तो प्रशस्य को 'ज्य' आदेश भी होता है । २—ज्य से परे ईयसुन प्रत्यय को आकार आदेश होता है । (आदे परस्य) से आदि के ही स्थान मे होता है । ३—बहु शब्द स परे इमनिच् तथा ईयसुन प्रत्ययों का लोप होता है और बहु शब्द को भू' आदेश भी हो जाता है । ४–बहु-शब्द से परे इष्ठन् का लोप, भू–आदेश तथा इष्ठन् को यिट् का आगम भी होना है । ५–इष्ठन् या ईयसुन् पर हो तो विन् तथा मतुप् प्रत्यय का लोप होता है । ६–ईषदसमाप्ति-अर्थ में कल्पप् देश्य तथा देशीयर प्रत्यय होते हैं ।

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ५ । ३ । ६८ ॥ [1]ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद्बहुज्वा स्यात्स च प्रागेव न तु परत । ईषदून पटु बहुपटु । पटुकल्प । सुप किम् ? यजतिकल्पम् ।

प्रागिवात्क ५ । ३ । ७० ॥ [2]इवे प्रतिकृतावित्यत प्राक्काधिकार ।

[3]**अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक टे** ५ । ३ । ७१ ॥ काऽपवाद । तिङश्चेत्यनुवर्तते ।

[4]**अज्ञाते** ५ । ३ । ७३ ॥ कस्यायमश्व अश्वक । उच्चकै । नीचकै । सर्वकै । ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टे प्रागकच् । युष्मकाभि । ओकारेत्यादिकिम् ? युवकयो । त्वयका ।

[5]**कुत्सिते** ५ । ७ । ७४ ॥ कुत्सितोऽश्व —अश्वक ।

[6]**किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच** ५ । ३ । ९२ ॥ अनयो कतरो वैष्णव । यतर । ततर ।

[7]**वा बहूना जातिपरिप्रश्ने डतमच्** ५ । ३ । ९३ ॥ जातिपरिप्रश्ने इति प्रत्याख्यातमाकर । बहूना मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज्वा स्यात् । कतमो भवना कठ । यतम । ततम । वाग्रहणमकजथम् । यक । सक ।

॥ इति प्रागिवीया ॥ ५ ॥

अथ स्वार्थिकप्रकरणम्

[8]**इवे प्रतिकृतौ** ५ । ३ । ९६ ॥ कन्स्यात् । अश्व इव प्रतिकृति

ईषन्समाप्तिविशिष्टेऽर्थे वर्तमानात्सुब न्तात्तिङन्ताच्चैते प्रत्यया स्यु ।

अज्ञाते —अज्ञातत्वविशिष्टेऽर्थे वर्तमानात्सुबन्तात्कप्रत्यय स्यात् । **किंयदित्यादि**—द्वयोरेकस्य निर्धारणे गम्ये निर्धार्यमाणवाचिभ्य किमादिभ्या डतरच प्रत्यय स्यात् ।

॥ इति प्रागिवीया ॥

इवे प्रतिकृतौ—इवार्थे सदृशे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् स्यात् ।

१—ईषन्समाप्ति विशिष्ट अर्थ मे सुब त मे बहुच प्रत्यय विकल्प से होता है और वह प्रकृति से पूर्व ही होता है किन्तु पर नहीं । २–'इवे प्रतिकृतौ' सूत्र से पूर्व तक क-प्रत्यय का अधिकार है । ३–अव्यय तथा सर्वनाम संज्ञक शब्दों को टि से पूर्व अकच्' प्रत्यय होता है । ४–अज्ञात (अनजान) अर्थ मे क-प्रत्यय होता है । ५–कुत्सित 'निन्दित' अर्थ में क-प्रत्यय होता है । ६–दो में से किसी एक का निर्धारण निश्चय' करने अर्थ में किं, यत्, तत्-शब्दों से 'डतरच्' प्रत्यय होता है । ७–बहुतों के बीच मे एकका निर्धारण करने में किं, यत्, तत्, शब्दों से डतमच्' प्रत्यय होता है ।

॥ इति प्रागिवीया ॥

८—प्रथमान्त से इव अर्थ में कन् प्रत्यय होता है, वह इव 'सदृश' यदि प्रतिकृति

अश्वक । [1]सर्वप्रातिपदिकेभ्य स्वार्थे कन् । अश्वक ।

[2]**तत्प्रकृतवचने मयट् ५ । ४ । २१ ॥** प्राचुर्येण प्रस्तुत प्रकृत तस्य वचन प्रतिपादनम्, भावे अधिकरणे वा ल्युट। आद्ये—प्रकृतम् अन्नम् अन्नमयम् । अपूपमयम् । द्वितीये तु—अन्नमयो यज्ञ । अपूपमय पर्व ।

प्रज्ञादिभ्यश्च ५ । ४ । ३८ ॥ अण स्यात् । प्रज्ञ एव प्राज्ञ । प्राज्ञी स्त्री । दैवत । बान्धव ।

[4]**बह्वल्पार्थाच्छस कारकादन्यतरस्याम ५ । ४ । ४२ ॥** बहूनि ददाति बहुश । अल्पश । [5]**आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम ॥** आदौ—आदित । मध्यत । अन्तत । पृष्ठत । पार्श्वत । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरत । वर्णत ।

कृभ्वस्तियोगे सपद्यकर्तरि च्वि ५ । ४ । ५० ॥

अभूततद्भाव इति वक्तव्यम ॥ [6]विकारात्मता प्राप्नुवत्या प्रकृतौ वर्तमानाद्विकारशब्दात्स्वार्थे च्विर्वा स्यात्करोत्यादिभिर्योगे ।

[7]**अस्य च्वौ ७ । ४ । ३२ ॥** अवर्णस्य ईत्स्यात् च्वौ । च्वेर्लोपे च्व्यन्त-त्वादव्ययत्वम् । अकृष्ण कृष्ण सपद्यमान करोति कृष्णीकरोति । ब्रह्मी भवति । गङ्गीस्यात् । [8]**अव्ययस्य च्वावीत्व नेति वाच्यम् ॥** दोषाभूत मह । दिवाभूता रात्रि ।

विभाषा साति कार्त्स्न्ये ५।४।५२॥ [9]च्विविषये सातिर्वा स्यात्साकल्ये ।

'**तत्प्रकृतवचने**- इति । (अस्य सूत्रस्य।र्थद्वयम्)—प्रचुरस्य वचने बाधन सति प्रथमान्तात्समर्थात् मयट स्यात् । प्राचुर्येण प्रस्तुतान्नादिवचनात्प्रथमान्तात्समर्थादधिकरणे मयट । **बह्वल्पेत्यादि**—बह्वर्थादल्पार्थाच्च कारकाभिधायिनश्शब्दात्स्वार्थे शस स्यात् । '**कृभ्वस्ति**- इति । यस्य यो भावी न भूत स तद्भाव चेत्सम्पद्यते तस्मिन्नभूततद्भावे वर्तमानात् सम्पत्तिक्रियाकर्तृभूतात्प्रातिपदिकात्कृभ्वस्तीना योगे च्वि स्यात् ।

(प्रतिबिम्ब पूर्णसमान) हो तब । १—प्रातिपदिक मात्र से स्वार्थ मे 'कन्' प्रत्यय होता है । २—प्रथमान्त से प्रकृतवचन मे मयट प्रत्यय होता है । ३—प्रज्ञादिगणपठितशब्द-प्रकृतिक प्रथमान्त से स्वार्थ मे अण प्रत्यय होता है । ४—बह्वर्थक तथा अल्पार्थक कारक से शस् प्रत्यय विकल्प से होता है । ५—आद्यादिगण-पठित शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त से तसि प्रत्यय होता है । ६—विकारात्मत्व 'विकारस्वरूप' को प्राप्त होनेवाली प्रकृति से विद्यमान जो विकारवाची शब्द उससे स्वार्थ मे 'च्वि' प्रत्यय विकल्प से होता है कृ भू अस्ति के योग मे । ७—च्वि-प्रत्यय पर हो तो अवर्ण को ईकार आदेश होता है । ८—च्वि-प्रत्यय पर हो तो अव्यय-सम्बन्धी अवर्ण का ईत्व नहीं होता है । ९—कार्त्स्न्य 'सम्पूर्ण' अर्थ द्योत्य हो तो च्वि के विषय मे विकल्प से 'साति' प्रत्यय होता है ।

[1]**सात्पदाद्योः ८। ३। १११ ॥** सस्य षत्वं न स्यात्। कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यते—अग्निसाद्भवति। दधि सिञ्चति।

च्वौ च ७। ४। २६ ॥ [2]च्वौ च परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात्। अग्नीभवति।

[3]**अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् ५। ४। ५७ ॥** द्व्यजेव अवरं=न्यूनं, न तु ततो न्यूनम्। अनेकाजिति यावत्। तादृशमर्धं यस्य तस्मात् डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे। [4]**॥ डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् ॥** इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम्। **नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्।** [5]डाच्परं यदाम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोः पररूपं स्यात्। इति तकारपकारयोः पकारः। पटपटाकरोति। अव्यक्तानुकरणात् किम्? ईषत्करोति। द्व्यजवरार्धात्किम्? श्रत्करोति। अवरेति किम्? खरटखरटाकरोति। अनितौ किम्? पटिति करोति।

॥ इति स्वार्थिकाः ॥ १६ ॥ इति तद्धिताः ॥

अथ स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्

स्त्रियाम् ४। १। ३ ॥ [6]अधिकारोऽयं समर्थानामिति यावत्।

अजाद्यतष्टाप् ४। १। ३ ॥ [7]अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत्स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप्स्यात्। अजा। एडका। अश्वा। चटका। मूषिका। बाला।

पटपटाकरोति—डाचि विवक्षिते द्वे बहुलमिति वार्तिकेन डाचः प्रागेव 'पटत्' शब्दस्य द्वित्वे 'पटत्पटत्' इति स्थिते, 'अव्यक्तानुकरण–' इति डाचि, अनुबन्धलोपे, परस्य पटत्–शब्दस्य 'तस्य परमाम्रेडितम्' इत्याम्रेडितसंज्ञायां 'नित्यमाम्रेडिते डाचि' इति वार्तिकेन पूर्वं 'पटत्' इत्यस्य तकारस्य पर–(द्वितीय)–'पटत्' इत्येतस्य पकारस्य पररूपे, परत्र टिलोपे कृते 'पटपटाकरोति' इति।

॥ इति तद्धिताः ॥

१—पद के आदि सकार को तथा सातिप्रत्यय के सकार को षत्व नहीं होता है। २—च्वि प्रत्यय पर हो तो पूर्व को दीर्घ होता है। ३—अव्यक्त 'अस्पष्ट' अनुकरण द्व्यजवरार्ध (दो अच् से कम नहीं है अर्ध मे जिसके ऐसे) शब्द से डाच् प्रत्यय होता है—कृ, भू, अस्ति के योग में, किन्तु इति शब्द पर न हो तब। ४—डाच–प्रत्यय की विवक्षा मे बहुलता से द्वित्व होता है। ५—डाच से परे जो आम्रेडित उसके परे रहते पूर्व–पर के वर्ण को पररूप होता है॥ इति तद्धिताः॥

६—'समर्थानां प्रथमाद्वा' सूत्र तक 'स्त्रियाम्' सूत्र का अधिकार है। ७—अजादिगण (अज–शब्द है आदि मे जिसके ऐसे अजादि गण) का तथा अकारान्त का वाच्य जो स्त्रीत्व, वह द्योत्य हो तो टाप्–प्रत्यय होता है।

वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता । मेधा । गङ्गा । सर्वा-इत्यादि ।

उगितश्च ४ । १ । ६ ॥ [1]उगिदन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रिया ङीप्स्यात् । भवती । भवन्ती । पचन्ती ।

टिड्ढाणञ्द्वयसजदघ्नञमात्रचतयपठकठञकञक्वरप ४ । १ । १५ ॥ [2]अनुपसजन यट्टिदादि तदन्त यददन्त प्रातिपदिक तत स्त्रिया ङीप्स्यात् । कुरुचरी । नदट–नदी । देवट देवी । सौपर्णेयी । ऐन्द्री । औत्सी । ऊरुद्वयसी । ऊरुदघ्नी । ऊरुमात्री । पञ्चतयी । आक्षिकी । प्रास्थिकी । लवणिकी । इत्वरी । **नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसख्यानम्** । [3]स्त्रैणी । पौंस्नी । शाक्तिकी । याष्टिकी । आढ्यङ्करणी । तरुणी । तलुनी ।

यञश्च ४ । १ । १६ ॥ [4]यञन्तात् स्त्रिया ङीप्स्यात् । अकारलोपे कृते–

हलस्तद्धितस्य ६ । ४ । १५० ॥ [5]हल परस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोप ईति परे । गार्गी ।

प्राचा ष्फ तद्धित ४ । १ । १७ ॥ [6]यञन्तात् ष्फो वा स्यात्स च तद्धित ।

पचन्ती—'पचत्' शब्दात् 'उगितश्च' इति ङीप्यनुबन्धलोपे 'शप्श्यनोर्नित्यम्' इति नुमागमेऽनुबन्धलोपे, स्वादेरुत्पत्तौ विभक्तिकार्ये च पचन्ती' इति । कुरुचरी, नदी, देवी–एषु, 'चरेष्ट' इति टप्रत्ययो ज्ञेय । सौपर्णेयी—इत्यादिषु क्रमेण 'स्त्रीभ्यो ढक , सास्य देवता', 'उत्सादिभ्योऽञ', 'प्रमाणे द्वयसज्–०, 'सख्याया अवयवे तयप', 'तेन दीव्यति–०', 'लवणाट्ठञ' 'त्यदादिषु दृशो–०', 'इणनश–०' इति सूत्रैस्तत्प्रयोगेषु तत्तत्प्रत्यया बोध्या ।

गार्गी–गार्ग्य–शब्दात् 'यञश्च' इति ङीप्यनुबन्धलोपे, भसज्ञाया 'यस्येति च' इत्यनेनाकारलोपे, 'हलस्तद्धितस्य' इति यलोपे विभक्तिकार्ये च कृते गार्गी इति ।

१—उगित् हो अन्त में जिसके ऐसे प्रातिपदिक से ङीप् होता है, स्त्रीत्व द्योत्य हो तब । २—अनुपसर्जन जो टिदादि (टित्–ढ–अण–अञ–द्वयसच दघ्नच्–मात्रच–तयप्–ठक्–ठञ्–कञ–क्वरप्) एतदन्त जो अद त प्रातिपदिक उससे ङीप प्रत्यय होता है स्त्रीत्व द्योत्य हो तब । ३– स्त्रीत्व द्योत्य हो तो नञ्, स्नञ्, ईकक एवं ख्युन्–प्रत्ययान्त प्रातिपदिक एवं तरुण तलुन प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होता है । ४–स्त्रीत्व द्योत्य हो तो यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ङीप प्रत्यय होता है । ५–ईत्–ईकार पर हो तो हल् से परे तद्धित–उपधाभूत–यकार का लोप होता है । ६—यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ष्फ प्रत्यय विकल्प से होता है और उसकी तद्धित सज्ञा होती है ।

षिद्गौरादिभ्यश्च ४ । १ । ४१ ॥ [1]षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीष् स्यात् । गार्ग्यायणी । गौरी । अनडुही । अनड्वाही । आकृतिगणोऽयम् ।

वयसि प्रथमे ४ । १ । २० ॥ [2]प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात्स्त्रियां ङीप् स्यात् । कुमारी ।

द्विगोः ४ । १ । २१ ॥ [3]अदन्ताद्द्विगोर्ङीप् स्यात् । त्रिलोकी । अजादित्वात्त्रिफला । त्र्यनीका सेना ।

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ४ । १ । ३९ ॥ [4]वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात्प्रातिपदिकाद्वा ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च । एनी, एता । रोहिणी, रोहिता ।

वोतो गुणवचनात् ४ । १ । ४४ ॥ [5]उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीष् स्यात् । मृद्वी, मृदुः ।

बह्वादिभ्यश्च ४ । १ । ४५ ॥ [6]एभ्यो वा ङीष् स्यात् । बह्वी । बहुः । [7]**कृदिकारादक्तिनः** । रात्रिः । रात्री । [8]**सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके** । शकटी । शकटिः ।

[9]**पुंयोगादाख्यायाम् ४ । १ । ४८ ॥** या पुमाख्या पुंयोगात्स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् । गोपस्य स्त्री गोपी । [10]***पालकान्तान्न** ।

वयसि प्रथमेति— कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि ।
कैशोरमापञ्चदशाद् यौवनं तु ततः परम् ॥

गोपी— 'गोपस्य स्त्री' इति विग्रहः । अत्र 'पुंयोगादाख्यायाम्' इति ङीष्यनुबन्धलोपे, 'यस्येति च' इति यकारोत्तरवर्त्यकारलोपे विभक्तिकार्ये च कृते 'गोपी' इति ।

१—स्त्रीत्व द्योत्य हो तो षित्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक एवं गौरादिगणपठित शब्द प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होता है । २—स्त्रीत्व द्योत्य हो तो प्रथम वयोवाची अदन्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होता है । ३—द्विगुसमास सम्बन्धी अदन्त प्रातिपदिक से ङीप् होता है । ४—वर्णवाची जो अनुदात्तान्त तोपध तदन्त जो अनुपसर्जन प्रातिपदिक उससे ङीप् प्रत्यय विकल्प से होता है तथा तकार को नकार आदेश भी होता है । ५—गुणवाची उदन्त प्रातिपदिक से ङीष् विकल्प से होता है । ६—बह्वादिगणपठित प्रातिपदिक से ङीष् विकल्प से होता है । ७—क्तिन् अवयव से भिन्न जो कृत् का इकार तदन्त प्रातिपदिक से ङीष् विकल्प से होता है । ८—किसी आचार्य का मत है कि क्तिन्नर्थ प्रत्ययावयव से भिन्न इकारान्त प्रातिपदिकमात्र से ङीष् प्रत्यय विकल्प से होता है । ९—जो पुम्=पुरुष' वाचक शब्द पुंयोग से स्त्रीलिंग में विद्यमान हो उससे ङीष् प्रत्यय होता है । १०—पालक-शब्द हो अन्त में जिसके ऐसे शब्द से ङीष् नहीं होता है ।

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुप ७ । ३ । ४४ ॥ [1]प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्याऽकारस्येकार स्यादापि, स आप् सुप परो न चेत् । गोपालिका । अश्वपालिका । सर्विका । कारिका । अत किम् ? नौका । प्रत्ययस्थात्किम् ? शक्नोतीति शका । असुप किम् ? बहुपरिव्राजका नगरी [2]**%सूर्याद्देवताया चाब्वाच्य** । सूयस्य स्त्री देवता सूर्या । देवताया किम् ? [3]**%सूर्याऽगस्त्ययोश्छे च ङ्या च** । यलोप । सूरी । कुन्ती । मानुषीयम् ।

[4]**इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ४ । १ । ४९ ॥** एषामानुगागम स्यात् ङीष् च । इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी । वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी । [5]**%हिमारण्ययोर्महत्त्वे** । महद्धिम हिमानी । महदरण्यम्—अरण्यानी । [6]**%यवाद्दोषे** । दुष्टो यवो यवानी । [7]**%यवनाल्लिप्याम** । यवनाना लिपियवनानी । [8]**%मातुलोपाध्याययोरानुग्वा** । मातुलानी । मातुली । उपाध्यायानी । उपाध्यायी ।

सर्विका—सर्वशब्दात् अजाद्यतष्टाप' इति टाप्यनुबन्धलोपे, प्रत्ययस्थात्–' इति वकारात्तरवर्त्यकारस्येकारे अक सवर्णे दीर्घे विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धि ।

मातुलानी— मातुलस्य स्त्री' इति विग्रह । अत्र 'इन्द्रवरुणभव–०' इति ङीष्यनुबन्धलोप 'मातुलोपाध्याययो ' इति वैकल्पिकेनानुगागमेऽनुबन्धलोपे विभक्तिकार्ये च कृते 'मातुलानी' इति । आनुगभावे–'मातुली इति । **उपाध्याया**–'उपेत्य अधीयतेऽस्मादित्युपाध्यायस्तस्य स्त्री' इति विग्रह । अत्र 'इङश्च' इत्यपादाने घञ । या तु स्वयमध्यापिका तत्र 'अपादाने स्त्रियामुपसङ्ख्यान तदन्ताच्च वा ङीष' इति घञन्ताद् वैकल्पिकङीष्विधानेन उपाध्यायी उपाध्याया इति रूपद्वयम् ।

उपाध्यायस्य लक्षणम । मनु —

एकदेश तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुन ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्याय स उच्यते ॥

१—प्रत्यय के ककार से पूर्व जो अकार उसको इकार आदेश होता है आप परे रहते, किन्तु यदि वह सुप् आप परे न हो तब । २—देवता अर्थ मे वर्तमान सूर्य शब्द मे चाप् प्रत्यय होता है । ३—छ या ङी प्रत्यय पर हो तो सूर्य एव अगस्त्य शब्द के यकार का लोप होता है । ४—इन्द्र, वरुण भव, शर्व रुद्र, मृड हिम, अरण्य यव यवन, मातुल एवं आचार्य शब्दों से आनुक् का आगम होता है और ङीष् प्रत्यय भी होता है । ५—हिम तथा अरण्य शब्द मे महत्त्व अर्थ में ङीष् तथा आनुक होते हैं । ६—यव शब्द से दोष अर्थ मे ङीष् तथा आनुक होते हैं । ७-यवन शब्द से लिपि अर्थ मे ङीष् और आनुक् का आगम होता है । ८-मातुल एवं उपाध्याय-शब्द से ङीष् होता है और आनुक् आगम विकल्प से होता है ।

[1]**ॐ आचार्यादणत्वं च** । आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी । ॐ[2]**अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे** । अर्याणी, अर्या । क्षत्रियाणी, क्षत्रिया ।

[3]**क्रीतात्करणपूर्वात्** ४ । १ । ५० ॥ क्रीतान्तादन्तात्करणादे स्त्रियां ङीष् स्यात् । वस्त्रक्रीती । क्वचिन्न । धनक्रीता ।

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४ । १ । ५४ ॥ [4]असंयोगोपधमुपसर्जन यत्स्वाङ्ग तदन्तादन्तान्ङीष् वा स्यात् । केशानतिक्रान्ता अतिकेशा । चन्द्र मुखी, चन्द्रमुखा । असंयोगोपधात्किम् ? सुगुल्फा । उपसर्जनात्किम् ? सुशिखा ।

न क्रोडादिबह्वचः ४ । १ । ५६ ॥ [5]क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष् । कल्याणक्रोडा । आकृतिगणोऽयम् । सुजघना ।

नखमुखात्संज्ञायाम् ४ । १ । ५८ ॥ [6]न ङीष् ।

पूर्वपदात्संज्ञायामगः ८ । ४ । ३ ॥ [7]पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य ण स्यात्संज्ञाया न तु गकारव्यवधाने । शूर्पणखा । गौरमुखा । संज्ञायां किम् ? ताम्रमुखी कन्या ।

आचार्यलक्षणम्—आचिनोति हि शास्त्रार्थानाचारे स्थापयत्यपि ।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन चोच्यते ॥

या तु स्वयमध्यापिका सा 'आचार्या' इत्येक रूपम् ।

अतिकेशी—'केशानतिक्रान्ता या सा' इति विग्रहः । अत्र 'स्वाङ्गाच्चोप सर्जनात्' इति ङीष्यनुबन्धलोपे, मत्वादल्लोपे विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धिः ।

स्वाङ्गलक्षणम्—अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम् ।
अतत्स्थं तत्र दृष्टं च तेन चेत्तत्तथा युतम् ॥

चन्द्रमुखी—'चन्द्र इव मुखं यस्याः सा' इति विग्रहः ।

१—आचार्य शब्द से ङीष् एवं आनुक होता है और णत्व का अभाव भी होता है । २—अर्य एवं क्षत्रिय शब्द से स्वार्थ में ङीष् तथा आनुक् विकल्प से होते हैं । ३—स्त्रीत्व बोध्य हो तो, क्रीत-शब्द है अन्त में एवं करण कारक है आदि में जिसके ऐसे अदन्त प्राति पदिक से ङीष् होता है । ४—संयोगोपध से भिन्न उपसर्जन जो स्वांग-वाची शब्द तदन्त जो अदन्त-प्रातिपदिक उससे ङीष् विकल्प से होता है । ५—क्रोडादिगणपठित एवं बह्वच् स्वांगवाची प्रातिपदिक से ङीष् नहीं होता है । ६—संज्ञा में नख या मुख-शब्दान्त प्रातिपदिक से ङीष् नहीं होता है । ७—संज्ञा में, पूर्वपद में स्थित निमित्त (रेफ, षकार) से परे नकार को णत्व नहीं होता ।

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४ । १ । ६३ ॥ [1]जातिवाचि यन्न च स्त्रिया नियतमयोपध तत स्त्रिया ङीष् स्यात् । तटी । वृषली । कठी । बह्वृची । जाते किम् ? मुण्डा । अस्त्रीविषयात्किम् ? बलाका । अयोपधात्किम् ? क्षत्रिया । [2]***योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेध** । हयी । गवयी । मुकयी । हलस्तद्धितस्येति यलोप । मनुषी । [3]***मत्स्यस्य ङ्याम्** । यलोप । मत्सी ।

[4]**इतो मनुष्यजाते ४ । १ । ३५ ॥** ङीष । दाक्षी ।

ऊङुत ४ । १ । ६६ ॥ [5]ऊदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिन स्त्रियामूङ् स्यात् । कुरू । अयोपधात्किम् ? अध्वयुर्ब्राह्मणी ।

[6]**पङ्गोश्च ४ । १ । ६८ ॥** पङ्गू । [7]***श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च** । श्वश्रू ।

ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४ । १ । ६९ ॥ [8]उपमानवाचि पूर्वपदमूरूत्तरपद यत्प्रातिपदिक तस्मादूङ् स्यात् । करभोरू ।

मनुषी—मनुष्यशब्दात् 'जातेरस्त्री–' इति ङीष्यनुबन्धलोपे, भत्वादल्लोपे, 'हलस्तद्धितस्य' इति यलोपे विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धि । **मत्सी**–मत्स्य–शब्दात् 'जातेरस्त्री–' इति ङीष्यनुबन्धलोपे–भत्वादल्लोपे, 'सूर्यतिष्य–' इति यलोपे विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धि । **दाक्षी**–दाक्षिशब्दात् 'इतो मनुष्यजाते' इति ङीष्यनुबन्धलोपे, भत्वात् 'यस्येति च इति दाक्षेरिकारलोपे विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धि ।

श्वश्रू—श्वशुर शब्दात् 'ऊङुत' इति ऊङयनुबन्धलोपे, 'श्वशुरस्योकाराकार लोपश्च' इति शकारोत्तरवत्युकारलोपे, रकारोत्तरवत्यकारस्य च लोपे विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धि ।

१—नित्य स्त्रीलिङ्ग से भिन्न तथा यकारोपध से भिन्न जातिवाचक शब्द से ङीष् होता है । २—योपध (यकारोपध) के प्रतिषेध में 'हय, गवय, मुकय, मनुष्य, मत्स्य'–इन शब्दों का प्रतिषेध नहीं होता है (अर्थात् इन योपधों से भी ङीष् होता है)। ३—ङी पर हो तो मत्स्य–शब्दावयव–यकार का लोप होता है । ४—मनुष्यजातिवाचक इदन्त से ङीष् होता है । ५–यकारोपध से भिन्न मनुष्यजाति वाचक उदन्त प्रातिपदिक से ऊङ् होता है स्त्रीत्व योत्य हो तब । ६–पङ्गु शब्द से भी ऊङ होता है । ७–श्वशुर–शब्द से ऊङ होता है तथा उकार एवं अकार का लोप भी होता है। ८—उपमान–वाचक शब्द पूर्वपद में तथा ऊरू–शब्द उत्तर पद में है ऐसे प्रातिपदिक से ऊङ् होता है ।

[1]**सहितशफलक्षणवामादेश्च ४ । १ । ७० ॥** अनौपम्यार्थं सूत्रम् । सहितोरू । शफारू । लक्षणोरू । वामोरू ।

शाङगरवाद्यञो ङीन् ४ । १ । ७३ ॥ [2]शाङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात् । शाङ्गरवी । बैदी । ब्राह्मणी । [3]**नृनरयोर्वृद्धिश्च** । नारी ।

यूनस्तिः ४ । १ । ७७ ॥ [4]युवन्शब्दात्स्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात् । युवतिः ।

*** इति स्त्रीप्रत्ययाः ***

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका ।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥ १ ॥

॥ इति श्रीवरदराजाचार्यकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥



नारी—नरशब्दात् 'शाङ्गरवाद्यञो–०' इति ङीन्यनुबन्धलोपे 'नृनरयोर्वृद्धिश्च' इति वृद्धौ (आरि) विभक्तिकार्ये च कृते 'नारी' इति ।

युवतिः—'युवन्' शब्दात् 'यूनस्तिः' इति तिः प्रत्यये, स्वादिष्वसर्वनामस्थाने इति पदत्वे, नलोपे, विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धिः । 'युवती' इति दीर्घेकारस्य तु यौति—मिश्रीकरोत्यात्मानं पत्या सह इति विग्रहे युधातोर्लटि शत्रादेशेन 'उगितश्च' इति ङीपि कृते सिद्धिः ॥ **इति स्त्रीप्रत्ययाः** ॥

इति श्रीगोरखपुरमण्डलान्तर्गत–घुआँटीकर–ग्रामनिवासि पं० राजकुमार मिश्रात्मज–पं० गोमतीप्रसाद मिश्र व्याकरणपोष्टाचार्य–न्याय–साहित्य शास्त्रि सम्पादिता शिवाख्या संस्कृत हिन्दी टीका समाप्ता ।

*** अनया श्रीसाम्बसदाशिवः प्रीयताम् ***



१—'सहित, शफ, लक्षण या वाम शब्द आदि में हो एवं ऊरू–शब्द उत्तर पद में हो तो ऐसे प्रातिपदिक से ऊङ् होता है । २–शाङ्गर्रवादिगणपठित जो जातिवाचक प्रातिपदिक उससे ङीन् होता है । [३]—नृ एवं नर प्रातिपदिक से ङीन् एवं वृद्धि होते हैं । ४—स्त्रीत्व द्योत्य हो तो युवन् शब्द से ति–प्रत्यय होता है ॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः ॥

॥ इति श्रीगोमतीप्रसादशास्त्रिकृता हिन्दी टीका ॥



परिशिष्टम्

(१)

व्याकरणे विशेषोपयोगीनि लक्षणानि

(१) अथ किमिद व्याकरणम् ?

व्याक्रियन्ते = व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेन इति व्याकरणम्। शब्दो की सिद्धि जिसके द्वारा की जाय, उसे व्याकरण शास्त्र अथवा शब्दानुशासन की सज्ञा दी गई है। शब्दसाधुत्वप्रतिपादक शास्त्र व्याकरण है।

(२) सूत्रस्य स्वरूपम्

अल्पाक्षरमसन्दिग्ध सारवद्विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्य च सूत्र सूत्रविदो विदुः॥ यथा "अदेङ् गुण"।

कम अक्षरो मे सन्देहरहित, सारभूत, सवत प्रभावी, निर्दोष एव अनवरुद्ध रचना को सूत्र कहा जाता है। जसे "अदेङ गुण" सूत्र सक्षेप में गुण सज्ञा के स्वरूप का बोधक है, जो बहुत ही कम अक्षरो मे हैं तथा स्पष्टार्थ प्रतिपादक भी है।

(३) सूत्रस्य भेदा

सज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षडविध सूत्रलक्षणम्॥

सूत्र के छह भेद हैं—(१) सज्ञा (२) परिभाषा (३) विधि (४) नियम (५) अतिदेश और (६) अधिकार।

(१) **सज्ञा सज्ञिप्रत्यायक सूत्र—सज्ञासूत्रम**। यथा—"वृद्धिरादच" इति। सज्ञा और सज्ञी को बतलाने वाला सूत्र सज्ञासूत्र कहलाता है। जसे—"वृद्धिरादैच"। इसमे वृद्धिपदबोध्य आ, ऐ, औ का परिज्ञान होता है। (२) **अनियमे नियमकारिणी परिभाषा**। यथा—"तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूवस्य"। नियम रहित स्थलो पर व्यवस्था करना परिभाषा सूत्र का काय है। जैसे "तस्मिन्निति
18 निर्दिष्टे पूवस्य"। इस सूत्र से सप्तमी विभक्ति द्वारा विधीयमान काय का

अव्यवहित पूव मे होना जाना जाता है। (३) **आदेशादिविधायक सूत्रम—विधिसूत्रम**। यथा—'इको यणचि। आदेशादि का विधान करन वाले सूत्रो को विधि सूत्र कहा जाता हैं। जसे इका यणचि' द्वारा इक' के स्थान पर यण' आदेश का विधान किया जाता है। (४) **प्राप्तस्य विधेर्नियामक सूत्र नियम सूत्रम**। यथा "कृत्तद्धितसमासाश्च'। प्राप्तविधि के विषय मे नियम करना नियम सूत्र का काय है। जैसे "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से कृदन्त तद्धितान्त तथा समस्त शब्दो की प्रातिपदिक सज्ञा होती है। समास सज्ञक 'राजन्+अस्, पुरुष+सु आदि मे तो अथवत् सूत्र से ही प्रातिपदिक सज्ञा हा जाती अत समास ग्रहण व्यथ होकर यहा नियम करता है कि जिस शब्दसमूह मे पूवभाग पद रहे उसकी यदि प्रातिपदिक सज्ञा हो तो समास मे ही हा। इस नियम से 'वाक्य' आदि की प्रातिपदिक सज्ञा नही होती। (५) '**अतस्मिन तद्धर्मापादक सूत्रम**" अतिदेशसूत्रम्। यथा "लोटा लडवत्"। अतिदेश शास्त्र वास्तव मे आरोपबोधक है। वस्तुसत्ता न होने पर भी उसके धम का आरोप होने पर अतिदेश कहा जाता है। जैसे लोक मे गुरु के न हाने पर गुरुपुत्र मे गुरु के समान आदर (सम्मान) आदि की भावना होना। वसे ही व्याकरणशास्त्र मे 'लोट' लकार को 'लङ्' के समान मानना। जिसके फलस्वरूप 'वस' 'मस' आदि मे सकार का लोप हो जाता है। (६) "**उत्तरोत्तरसूत्रेषु स्वघटकपद समथकम सूत्रम**"—अधिकारसूत्रम्। यथा "कारके"। आगे आने वाले सूत्रो मे अपना प्रभाव रखने वाला सूत्र अधिकारसूत्र कहलाता है। जसे 'कारके' की अनुवृत्ति कर्मादि मे होने के कारण '**कर्म**' '**कर्ता**' '**करण**' आदि कारक कहलाते है।

वार्तिक-लक्षणम्—

"उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवतते।
त ग्रन्थ वार्तिक प्राहुर्वार्तिकज्ञा विचक्षणा ॥"

यथा—'यण प्रतिषेधो वाच्य'।

उक्त, अनुक्त तथा दुरुक्त का विचार जहाँ किया जाय, उस ग्रन्थ को '**वार्तिक**' कहा जाता है। जैसे 'यण प्रतिषेधो वाच्य' (वा०)। 'सुध य उपास्य' मे यकार का सयोगान्त लोप प्राप्त था किन्तु इस वार्तिक के द्वारा उसका निषेध कर दिया गया।

भाष्यलक्षणम्—

"सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वर्णैं सूत्रानुसारिभि ।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्य भाष्यविदो विदु ॥"

—यथा महाभाष्यादयो ग्रन्था ।

सूत्रो के मूल पदानुसार सूत्रो की व्याख्या करते हुए ग्रन्थकार के द्वारा अपने विचारो को भी जिस ग्रन्थ मे व्यक्त किया जाता है, उस ग्रन्थ को भाष्य कहते है । जसे व्याकरण महाभाष्य मे पाणिनि के सूत्रक्रमानुसार व्याख्या के साथ ही पतञ्जलि ने अपने विचारो को भी व्यक्त किया है ।

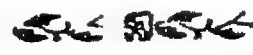
व्याख्यानलक्षणम्—

"पदच्छेद पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना ।
आक्षेपश्च समाधान व्याख्यान षड्विध मतम ॥"

यथा काशिकादयो ग्रन्था ।

व्याख्यान मे छह बातों की अपेक्षा होती हैं । ये बाते हैं—(१) पदो का पृथक्करण (२) पदो के अर्थों का कथन, (३) समासयुक्त शब्दो का विग्रह, (४) वाक्यो की योजना, (५) आक्षेप एवम् उनका (६) समाधान । जसे पाणिनि की अष्टाध्यायी का व्याख्यान 'काशिका' ग्रन्थ है । उसमे यही रीति अपनाई गई है । उदाहरणाथ वृद्धिरादच सूत्र की व्याख्या मे पदच्छेद–वद्धि, आदैच । **पदार्थोक्ति**—वद्धि = सज्ञा, आत् दीघ आकार, ऐच = ऐ औ । **विग्रह**—आत् च ऐच च = आदैच । **वाक्ययोजना**—आदैच – आ, ऐ औ वद्धि = वद्धिसज्ञक होते हैं । **आक्षेप**—सवत्र यह नियम है कि उद्देश्य-कथन के बाद विधेय का कथन होता है । यहाँ पहले विधेय का कथन कसे ? **समाधान**—'वृद्धि पद मङ्गलाथक होने के कारण विधेय-पद का पूव प्रयोग किया गया है ।

(२) लघुकौमुदीस्थ-सूत्रसूची



(३)

लघुकौमुदीस्थ-धातुसूची

भ्वादिगणस्था धातव

परस्मपदिन —भू सत्तायाम् (पृ० ९९) अत सातत्यगमने (१०८), षिध गत्याम् (१०६), चिती सज्ञाने (११०), शुच शोके (११०), गद व्यक्तायां वाचि (१११), पद अव्यक्त शब्दे (११२) टुनदि समृद्धौ (११३) अच पूजायाम् (११४) व्रज गतौ (११४) कटे वर्षावरणयो (११४) गुपू रक्षणे (११५) क्षि क्षये (११६), तप सन्तापे (१२१), क्रमु पादविक्षेपे (१२१), पा पाने (१२१), ग्लै हर्षक्षये (१२३), ह्वृ कौटिल्ये (१२३), श्रु श्रवणे (१२४), गम्लृ गतौ (१२६)। **आत्मनेपदिन** —एध वृद्धौ (१२७) कमु कान्तौ (१३०) अय गतौ (१३१) द्युत दीप्तौ (१३२) श्विता वर्णे (१३३), ञिमिदा स्नेहने (१३३) ञिष्विदा स्नेहनमोचनयो (१३३) ञिक्ष्विदा च (१३३), **रुच** दीप्तौ अभिप्रीतौ च (१३३) घुट परिवर्तने (१३३) शुभ दीप्तौ (१३३) क्षुभ सञ्चलने (१३३) णभ तुभ हिंसायाम् (१३३), स्रंसु भ्रंसु, ध्वंसु अवस्रंसने (१३३) ध्वंसु गतौ च (१३३) स्रम्भु विश्वासे (१३३), वृतु वर्तने (१३३), दद दाने (१३३), त्रपूष् लज्जायाम् (१३३), **उभयपदिन** —श्रिञ सेवायाम् (१३४) भृञ भरणे (१३४), हृञ हरणे (१३४) धञ् धारणे (१३५) णीञ प्रापणे (१३५), डुपचष् पाके (१३५), भज सेवायाम् (१३५) यज देवपूजा सङ्गतिकरणदानेषु (१३५) वह प्रापणे (१३६)।

अदादिगणस्था धातव

परस्मैपदिन —अद भक्षणे (१३७) हन हिंसागत्यो (१३८) यु मिश्रणामिश्रणयो (१३९), या प्रापणे (१४०) वा गतिग धनयो (१४०), भा दीप्तौ (१४०), ष्णा शौचे (१४०), श्रा पाके (१४०), द्रा कुत्सायां गतौ

(१४०), प्सा भक्षणे (१४०), रा दाने (१४०), पा रक्षणे (१४०), स्था प्रकथने (१४०), विद ज्ञाने (१४०), अस भुवि (१४२), इण गतौ (१४३)। आत्मनेपदिन —शीङ स्वप्ने (१४४), इङ् अध्ययने (१४४)। उभयपदिन —दुह प्रपूरणे (१४६), दिह उपचये (१४७), लिह आस्वादने (१४७), ब्रूञ व्यक्ताया वाचि (१४७), ऊर्णुञ आच्छादने (१४८)।

जुहोत्यादिगणस्था धातव

परस्मैपदिन —हु दानादनयो (१४९), ञिभी भये (१५०) ह्री लज्जायाम् (१५१), पॄ पालन-पूरणयो (१५१), ओहाक त्यागे (१५२)। आत्मनेपदिन —माङ माने शब्दे च (१५३), ओहाङ गतौ (१५३)। उभयपदिन —डुभृञ धारणपोषणयो (१५३), डुदाञ् दाने (१५४), डुधाञ धारणपोषणयो (१५४), णिजिर शौचपोषणयो (१५५)।

दिवादिगणस्था धातव

परस्मैपदिन —दिवु क्रीडादिषु (१५५), षिवु तन्तुसन्ताने (१५५), नृती गात्रविक्षेपे (१५५), त्रसी उद्वेगे (१५६), शो तनूकरणे (१५६), छो छेदने (१५६) षोऽन्तकर्मणि (१५६), दो अवखण्डने (१५६), व्यध ताडने (१५६), पुष पुष्टौ (१५६), शुष शोषणे (१५६) णश अदर्शने (१५६)। आत्मनेपदिन —षूङ् प्राणिप्रसवे (१५७), दूङ परितापे (१५७), दीङ क्षये (१५७), डीङ् विहायसा गतौ (१५७), पीङ पाने (१५७), माङ माने (१५७), जनी प्रादुर्भावे (१५७), दीपी दीप्तौ (१५८), पद गतौ (१५८), विद सत्तायाम् (१५८), बुध अवगमने (१५९), युध सम्प्रहारे (१५९), सृज विसर्गे (१५९)। उभयपदिन —मृष तितिक्षायाम् (१५९), णह बन्धने (१५९)।

स्वादिगणस्था धातव

उभयपदिन —षुञ् अभिषवे (१६०), चिञ चयने (१६०), स्तृञ आच्छादने (१६०), धूञ कम्पने (१६०)।

तुदादिगणस्था धातव

उभयपदिन —तुद व्यथने (१६१), णुद प्रेरणे (१६१), भ्रस्ज पाके (१६२), कृष विलेखने (१६२), मिल सङ्गमे (१६३) मुच्लृ मोचने (१६३) लुप्लृ छेदने (१६३), विद्लृ लाभे (१६३), षिच क्षरणे (१६३),

लिप उपदेहे (१६४)। **परस्मैपदिन**—कृती छेदने (१६४), खिद परिघाते (१६४), पिश अवयवे (१६४), ओव्रश्चू छेदने (१६४), व्यच व्याजीकरणे (१६४) उछि उञ्छे (१६४), ऋच्छ गत्यादिषु (१६५), उज्झ उत्सर्गे (१६५), लुभ विमोहने (१६५), तृप तृम्फ तृप्तौ (१६५), मृड पृड सुखने (१६५), शुन गतौ (१६५), इषु इच्छायाम् (१६५), कुट कौटिल्ये (१६५), पुट सश्लेषणे (१६५), स्फुट विकसने (१६५) स्फुर स्फुल सचलने (१६५), णू स्तवने (१६५) टुमस्जो शुद्धौ (१६५), रुजो भङ्गे (१६५) भुजो कौटिल्ये (१६५) विश प्रवेशने (१६५) मृश आमशने (१६५) षद्ल विशरणगत्यवसादनेषु (१६६) शद्ल शातने (१६६), कॄ विक्षेपे (१६६) गॄ निगरणे १६६), प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् (१६६)। आत्मनेपदिन —मृङ प्राणत्यागे (१६६) पृङ व्यायामे (१६६), जुषी प्रीतिसेवनया (१६६), ओविजी भयचलनयो (१६६)।

रुधादिगणपठिता धातव

उभयपदिन—रुधिर आवरणे (१६७), भिदिर विदारणे (१६७), छिदिर द्वधीकरणे (१६७), युजिर योगे (१६७) रिचिर विरेचने, विचिर् पृथग्भावे (१६७) क्षुदिर सम्पेषणे (१६७) उच्छृदिर दीप्तिदेवनयो (१६७) उतृदिर हिंसानादरयो (१६७)। **परस्मैपदिन**—कृती वेष्टने (१६७) तृह हिसि हिंसायाम् (१६८), उन्दी क्लेदने (१६८) अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु (१६८) तञ्चू सकोचने (१६८), ओविजी भयचलनयो (१६८) शिषल विशेषणे (१६८) पिषल सचणने (१६९), भञ्जो आमर्दने (१६९) भुज पालनाभ्यवहारयो (१६९) **आत्मनेपदिन**—ञिइन्धी दीप्तौ (१६९), विद विचारणे (१६९)।

तनादिस्था धातव

उभयपदिन—तनु विस्तारे (१६९) षणु दाने (१७०), क्षणु हिंसायाम् १७० क्षिणु च (१७०), तृणु अदने (१७०), डुकृञ करणे (१७०) वनु याचने (१७१) मनु अवबोधने (१७१)।

क्र्यादिस्था धातव

उभयपदिन—डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये (१७१), प्रीञ तर्पणे (१७१), श्रीञ पाके (१७१), मीञ हिंसायाम् (१७१), षिञ् बन्धने (१७२) स्कुञ आप्ल

वने (१७२)। **परस्मैपदिन**—स्तम्भु स्तुम्भु, स्कम्भु रोधने (१७२)। उभय-**पदिन**—युञ् बन्धने (१७२), क्नूञ् शब्दे (१७२), द्रूञ् हिंसायाम् (१७२) दॄ विदारणे (१७२), पूञ् पवने (१७२), लूञ् छेदने (१७३), स्तॄञ् आच्छादने (१७३) कॄञ् हिंसायाम् (१७३), वॄञ् वरणे (१७), धञ् कम्पने (१७३), ग्रह उपादाने (१७३)। **परस्मैपदिन**—कुष निष्कर्षे (१७३), अश भोजने (१७३), मुष स्तेये (१७३), ज्ञा अवबोधने (१७३)। **आत्मनेपदी**—वृङ् संभक्तौ (१७३)।

चुरादिस्था धातवः

उभयपदिन—चुर स्तेये (१७४), कथ वाक्यप्रबन्धे (१७४), गण संख्याने (१७५)।

कण्ड्वादिस्थो धातु

उभयपदी—कण्डूञ् गात्रविघर्षणे (१८४)।



वार्तिकादीना सूची

ऋलवणयोर्मिथ सावण्य वाच्यम् (पृ० ८)। यण प्रतिषेधो वाच्य (१२)। अध्वपरिमाणे च (१३)। अक्षादूहिन्यामुपसख्यानम् (१६)। ऋते च तृतीया-समासे (१६)। प्रवत्सतरकम्बलवसनाणदशानामृणे (१७)। शकन्ध्वादिषु पररूप वाच्यम् (१७)। न समासे (२१)। अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् (२३)। प्रत्यये भाषाया नित्यम् (२३)। छत्वममीति वाच्यम् (२४)। यवलपरे यवला वा (२५)। चयो द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् (२६)। सपुकाना सो वक्तव्य (२७)। तीयस्य ङित्सु वा (४१)। पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च (४२)। निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति। एकदेशविकृतमनन्यवत् (४२) (६४)। प्रथमलिङ्गग्रहण च (४६)। गतिकारकेतरपूवपदस्य यण नेष्यते (५१)। नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूवविप्रतिषेधेन (५२)। दन्करपुन पूवस्य भुवो यण वक्तव्य (५३)। ऋवर्णान्तस्य णत्व वाच्यम् (५३)। औड श्या प्रतिषेधो वाच्य (६०)। एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्य (६१)। वद्धचौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूवविप्रतिषेधेन (६२)। नानथकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे (६६)। डावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्य (७०)। परौ व्रजे ष पदान्ते (७७)। समानवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्या (८२)। एते वान्नावादय आदेशा अन्वादेशे वा वक्तव्या (८२)। अस्य सम्बुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्य (८६)। अन्वादेशे नपुसके वा एनद् वक्तव्य (६४)। उपसगविभक्ति-स्वरप्रतिरूपकाश्च (६७)। दुर षत्वणत्वयो रुपसगत्वप्रतिषेधो वक्तव्य (१०५) अन्त शब्दस्याऽङ्किविधिणत्वेषूपसगत्व वाच्यम् (१०५)। सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्य (१०६)। कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि (११६)। कमेश्च्लेश्चङ वाच्य (१३१)। उभयत आश्रयणे नान्तादिवत् (१४३)। ऊर्णोतेराम् नेति वाच्यम् (१४८)। इर इत्सज्ञा वाच्या (१५५)। वुग्युटावुवङ्यणो सिद्धौ वक्तव्यौ (१५७)। स्थाघ्वोरित्वे दीङ प्रतिषेध (१५७)। स्पृशमृशकृषतृपदृपा च्ले सिज्वा वाच्य (१६३)। शे तृम्फादीना नुम् वाच्य (१६५)। मस्जेरन्त्यात् पूर्वो नुम् वाच्य (१६५)।

अभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात्पूर्व इति वक्तव्यम् (१६६)। सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब् वा वक्तव्यः (१८२)। तत्करोति तदाचष्टे (१८३)। प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च (१८३)। केलिमर उपसंख्यानम् (१६३)। मूलविभुजादिभ्यः कः (१६६)। कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् (२०४)। घञर्थे कविधानम् (२०६)। ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद् वाच्यः (२०७)। सम्पदादिभ्यः क्विप् (२०७)। क्तिन्नपीष्यते (२०७)। अथनिबन्धनेयं संज्ञा (२१२)। इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च (२१६)। जराया जरस् च (२१८)। समाहारे चायमिष्यते (२१८)। कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् (२१६)। अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् (२१६)। तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः (२१६)। सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः (२२१)। द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् (२२१)। शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम् (२२२)। प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया (२२३)। अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया (२२३)। अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया (२२३)। पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या (२२३)। निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या (२२४)। गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः (२२५)। संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् (२२५)। द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः (२२६)। प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (२२७)। नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (२२७)। धर्मादिष्वनियमः (२३०)। बहिषष्टिलोपो यञ् च (२३२)। ईकक् च (२३२)। राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् (२३६)। क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत् (२३७)। पूरोरण् वक्तव्यः (२३७)। पाण्डोड्यण (२३७)। कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् (२३७)। तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वक्तव्यम् (२३८)। गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम् (२४०)। अह्नः खः क्रतौ (२४०)। अवारपाराद् विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् (२४२)। अमेहक्वतसित्रेभ्य एव (२४३)। त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम् (२४३)। वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या (२४३)। अव्ययानां भमात्रे टिलोपः (२४४)। अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः (२४७)। अधमर्च्चेति वक्तव्यम् (२४६)। नाभि नभं च (२५१)। अनुशतिकादीनां च (२५२)। पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम् (२५३)। गुणवचनेभ्यो मतुबो लुगिष्टः (२५८)। अङ्गात् कल्याणे (२५८)। लक्ष्म्या अच्च (२५८)। पिच्छादिभ्य इलच् (२५८)। अन्येभ्योऽपि दृश्यते (२५८)।

अणसो लोपश्च (२५८)। एतदोऽपि वाच्य (२६१)। सवप्रातिपदिकेभ्य स्वार्थे कन् (२६५)। आद्यादिभ्यस्तसेरुपसख्यानम् (२६५)। अभूततद्भाव इति वाच्यम् (२६५)। अव्ययस्य च्वावीत्व नेति वाच्यम् (२६५)। डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् (२६६)। नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम् (२६६)। नजस्नञीककरयुस्तरुणतलुनानामुपसख्यानम् (२६७)। कृदिकारादक्तिन (२६८)। सवतोऽक्तिन्नर्थादित्येके (२६८)। पालका तान्न (२६८)। सूर्याद् देवताया चाब वाच्य (२६९)। सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्या च (२६९)। हिमारण्ययो महत्त्वे (२६९)। यवाद्दोषे (२६९)। यवनाल्लिप्याम् (२६९)। मातु लोपाध्याययारानुग वा (२६९)। आचायादणत्व च (२७०)। अयक्षत्रि याभ्या वा (२७०)। योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेध (२७१)। मत्स्यस्य ङ्याम् (२७१)। श्वशुरस्याकाराकारलोपश्च (२७१)। नृनरयोवृद्धिश्च (२७२)।



समासचक्रम्

षोढा[1] समास सक्षेपादष्टाविशतिधा पुन ।
नित्यानित्यत्वयोगेन लुगलुक्त्वेन च द्विधा ॥ १ ॥
तत्राष्टधा तत्पुरुष सप्तधा कमधारय ।
सप्तधा च बहुव्रीहिर्द्विगुराभाषितो द्विधा ॥ २ ॥
द्वन्द्वोऽपि द्विविधो ज्ञेयोऽव्ययीभावो द्विधा मत ।
तेषा पुन समासाना प्राधान्य स्याच्चतुर्विधम् ॥ ३ ॥
चकारबहुलो द्वन्द्व स चाऽसौ कमधारय ।
यस्य येषा बहुव्रीहि शेषस्तत्पुरुष स्मृत ॥ ४ ॥
कर्तृकमक्रियायुक्त प्रयोग स्यात्सकमक ।
अकमक कमशून्य, कमद्वन्द्वो[2] द्विकमक ॥ ५ ॥

अथ प्रयोगविधि

प्रयोगा पञ्च विधा । सकमकोऽकमक कमणि भावे द्विकमकश्चेति भेदात् । सकमकप्रयोगो यथा—कृष्णो भक्तान् रक्षति । अकमकप्रयोगो यथा—कृष्णस्तिष्ठति । कमणि प्रयोगो यथा—विष्णुना[3] प्रपञ्च क्रियते । भावे प्रयोगो यथा—कृष्णेन[4] स्थीयते । द्विकमकप्रयोगो यथा—धरामन्न दुदोह ।

इति प्रयोगविधि ।

अथ समासविधि

समासा षड्विधा । तत्पुरुष कमधारयो बहुव्रीहिर्द्विगुद्वन्द्वोऽव्ययी-

---

(१) संक्षेपात्समास षोढा = षट्विध । वैशद्येन अष्टाविशतिप्रकारक । तस्य भेदा अग्रे स्फुटीभविष्यन्ति । (२) प्रधानाप्रधानभेदेन कर्मद्वययुक्त कर्मद्वन्द्व इत्युच्यते । अजा ग्रामं नयतीत्यादिर्द्विकमक इत्यथ । (३) विष्णुना प्रपञ्च क्रियते इत्यत्र प्रपञ्चे कर्मणि प्रत्यय, अत प्रथमा विभक्ति । कर्तुर्विष्णोरनुक्तत्वात्तत्र 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इति तृतीया विभक्ति । (४) स्थाधातु अकमक । ततो भावे प्रत्यये कर्तु कृष्णस्य अनुक्तत्वाद् हेतो कर्तृकरणयो स्तृतीयेति सूत्रेण तृतीया विभक्ति । (५) धराया अपादानत्वाविवक्षायाम् 'अकथित च' इति सूत्रेण कर्मसंज्ञाया 'कमणि द्वितीया' इति सूत्रेण द्वितीया विभक्ति । अप्रधानं कम धरा ।

भावश्चेति भेदात् । तल्लक्षणानि तु—[1] पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभाव । [2] उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष । [3] उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्व । [4] अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहि । द्विगुकर्मधारयौ तत्पुरुषभेदौ ।

समासार्थावबोधक वाक्य विग्रह इति । तत्राष्टधा तत्पुरुषक्रम । प्रथमातत्पुरुषो द्वितीयातत्पुरुषस्तृतीयातत्पुरुषश्चतुर्थीतत्पुरुष पञ्चमीतत्पुरुष षष्ठीतत्पुरुष सप्तमीतत्पुरुषो नञ्तत्पुरुषश्चेति ।

तत्र प्रथमातत्पुरुषो यथा—अर्ध पिप्पल्या [5] अर्धपिप्पली । पूर्व कायस्येति [6] पूर्वकाय । द्वितीयातत्पुरुषो यथा—कृष्ण श्रित [7] कृष्णश्रित । ग्राम गतो ग्रामगत । कान्तारमतीत कान्तारातीत । तृतीयातत्पुरुषो यथा—शङ्कुलया[8] खण्ड शङ्कुलाखण्ड । धान्येनार्थो धान्यार्थ । मासेन पूर्वो मासपूर्व । चतुर्थीतत्पुरुषो यथा—यूपाय दारु यूपदारु[10] । कुण्डलाय हिरण्यम् कुण्डलहिरण्यम् । गुरवे दक्षिणा गुरुदक्षिणा । पञ्चमीतत्पुरुषो यथा—अर्थात् अपेत [11] अर्थापेत । सिंहात् भय [12] सिंहभयम् । वृश्चिकात् भी [13] वृश्चिकभी । षष्ठीतत्पुरुषो यथा—कृष्णस्य भक्त [14] कृष्णभक्त । आम्रस्य फल आम्रफलम् । राज्ञ पुरुषो राजपुरुष । सप्तमी तत्पुरुषो

---

(१) पूर्वपदार्थ प्रधानो यस्मिन् स अव्ययीभाव समास । अधिहर्यादौ पूर्वपदार्थ = अधिकरणत्व प्रधानम् । (२) उत्तरपदार्थ प्रधानं प्रमुख यस्मिन् स तत्पुरुष समास । राजपुरुष इत्यादौ पुरुषपदस्य प्राधान्यम् । (३) उभयपदार्थ प्रधान यस्मिन् स द्वन्द्व समास । मातापितरावित्यादौ मातापित्रो उभयो प्राधान्यम् । (४) अन्यपदार्थ प्रधान यस्मिन् स बहुव्रीहि समास । चन्द्रशेखर इत्यादावन्यपदार्थस्य प्राधान्यम् । (५) अत्र 'अर्ध नपुसकम्' इति सूत्रेण समास । 'परवल्लिङ्ग द्वन्द्वतत्पुरुषयो' इति सूत्रेण परपदस्य = पिप्पलीपदस्य लिङ्गता = स्त्रीलिङ्गता । (६) अत्र पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' इति सूत्रेण समासो भवति । (७) कृष्णश्रित ग्रामगत कान्तारातीत इत्यादौ द्वितीयाश्रितातीत पतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नै इति सूत्रेण समासो भवति । (८) शङ्कुलाखण्ड धान्यार्थ इत्यादौ 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' इति सूत्रेण समासो ज्ञेय । (९) अत्र 'पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णै " इति सूत्रेण समास । (१०) यूपदारु कुण्डलहिरण्यम्, गुरुदक्षिणा इत्यादौ 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै' इति सूत्रेण समास । (११) अत्र 'अपेतापोढमुक्तपतितापन्नत्रस्तैरल्पश' इति सूत्रेण समास । (१२) 'पञ्चमी भयेन' इति सूत्रेण समास । (१३) अत्र 'भयभीतभीतिभीभिरुपसंख्यानम्' वार्तिकाश्रयात् समासविधि । (१४) कृष्णभक्त आम्रफलम्, राजपुरुष इत्यादौ 'षष्ठी' इति सूत्रेण प्रसिद्ध समास ।

यथा—अक्षेषु शौण्ड [1]अक्षशौण्ड । कमणि कुशल कर्मकुशल । विद्याया निपुण विद्यानिपुण । नञ्तत्पुरुषो यथा—न ब्राह्मण अब्राह्मण । न वृषभ अवृषभ । पापाभाव अपापम् । धमविरुद्धोऽधम । इति तत्पुरुष ।

अथ कमधारय

स च विशेषणपूवपदो विशेष्यपूवपदो विशेषणोभयपद उपमानपूवपद उपमानोत्तरपद सम्भावनापूवपदोऽवधारणापूवपदश्चेति भेदात्सप्तविध । तत्र विशेषणपूवपद कमधारयो यथा—कृष्णश्चासौ सपश्च कृष्णसप । कृष्णौ च तौ सर्पौ च कृष्णसर्पौ । कृष्णाश्च ते सर्पाश्च कृष्णसर्पा । रक्ता चासौ लता च रक्तलता । रक्ते च ते लते च रक्तलते । रक्ताश्च ता लताश्च रक्तलता । नील च तत् उत्पल च नीलोत्पलम् । नीले च ते उत्पले च नीलोत्पले । नीलानि च तानि उत्पलानि च नीलोत्पलानि । १ । विशेष्य-पूर्वपद कर्मधारयो यथा—वैयाकरणश्चाऽसौ खसूचिश्च वैयाकरणखसूचि [2] । गोपालश्चासौ बालश्च गोपालबाल । २ । विशेषणोभयपद कर्मधारयो यथा—शीत च तत् उष्ण च शीतोष्णम् । ३ । उपमानपूवपद कमधारयो यथा—मेघ इव श्यामो मेघश्याम [3] । कम्बुवत् ग्रीवा कम्बुग्रीवा । चन्द्रवत् मुख चन्द्रमुखम् । ४ । उपमानोत्तरपद कमधारयो यथा—पुरुष व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्र [4] । नर सिह इव नरसिह । ५ । सम्भावनापूर्वपद कर्म-धारयो यथा—गुण इति बुद्धि गुणबुद्धि । ६ । अवधारणापूवपद कम-धारयो यथा—विद्यैव धन विद्याधनम् । अविद्यैव शृङ्खला अविद्या-शृङ्खला । ७ । मध्यमपदलोपी समासो यथा—शाकप्रिय पार्थिव शाक पार्थिव [5] । देवपूजको ब्राह्मण देवब्राह्मण । इति कमधारय ।

अथ बहुव्रीहि

स च द्विपदो, बहुपद, सहपूर्वपद, सख्योत्तरपद, सख्योभयपदो, व्यतिहारलक्षणो, दिगन्तराललक्षणश्चेति भेदात्सप्तविध ।

---

(१) अक्षशौण्ड, कर्मकुशल, विद्यानिपुण इत्यादौ 'सप्तमी शौण्डै' इस सप्तमीतत्पुरुष समास । (२) अत्र 'कुत्सितानि कुत्सनै' इति सूत्रेण समासविधि । (३) मेघश्याम इत्यादौ 'उपमानानि सामान्यवचनै' इति सूत्रेण उपमानपूर्वपद कर्मधारयो ज्ञेय । (४) उभयत्र 'उपमितं व्याघ्रादिभि सामान्याप्रयोगे' इति सूत्रेण समासो भवति । (५) 'शाक-पार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसख्यानम्' इति वार्तिकबलेन समास ।

तत्र द्विपदबहुव्रीहिर्यथा—[1]चित्रा गावो यस्य स चित्रगु गोप । प्राप्तम् उदक य स प्राप्तोदको ग्राम । भुक्तम् ओदन येन स भुक्तौदनो राजा। निर्जित कामो येन स निर्जितकाम शिव । विभक्त धन यैस्ते विभक्तधना बन्धव । दत्त सूपो यस्मै स दत्तसूपो ब्राह्मण । उद्धृत धन यस्मात्तत् उद्धृतधन कुण्डम् । चक्र पाणौ यस्य स चक्रपाणि हरि । करे स्थित धन यस्य स करस्थितधनो वणिक । पुष्पिता द्रुमा यस्मिन् स पुष्पितद्रुम आराम । बहवो यज्वानो यस्या सा बहुयज्वा शाला । पुष्पिता द्रुमा यस्मिन् तत् पुष्पितद्रुम वनम् । खरस्य मुखमिव मुख यस्य स खर-मुखस्तुरग । उष्ट्रस्य मुखमिव मुख यस्य स उष्ट्रमुख तक्ष । उच्चैर्घटो यस्या सा उच्चैर्घटा नारी । अङ्गगात्रोदरस्तनकण्ठोष्ठदन्तमुखाक्षिकेशा स्त्रिया बहुव्रीहौ ईबन्ता भवन्ति । ते च यथा—सुन्दरम् अङ्ग यस्या सा सुन्दराङ्गी । शोभन गात्र यस्या सा सुगात्री । कृशम् उदर यस्या सा कृशोदरी । चारू स्तनौ यस्या सा चारुस्तनी । इन्दीवरे इव अक्षिणी यस्या सा इन्दीवराक्षी । कम्बुरिव कण्ठो यस्या सा कम्बुकण्ठी । कुटिला केशा यस्या सा कुटिलकेशी । इतरेषाम् अङ्गादिवाचकानाम् स्त्रीत्वेऽपि आबन्तत्वमेव । चारुदेहा, विस्ततालका, आवृतकुचा, कुन्ददशनेत्यादि । उरुपृथुलघुबहुपटुऋजुस्वादुचारुमृदुशब्दाना स्त्रीलिङ्गविशेषणत्वे ईबन्तत्व मपि । यथा—मृद्वी शाटी, लघ्वी भाषेत्यादि । इति द्विपदबहुव्रीहि ।

बहुपदो यथा—अधिक उन्नत असो यस्य स अधिकोन्नतास ।

सहपूर्वपदो यथा—सह कृष्णेन वर्तत इति सकृष्ण[2] । सह पुत्रेणेति सपुत्र । रामेण सह वर्तत इति सराम ।

सख्योत्तरपदो यथा—दशाना समीपे ये सन्ति ते उपदशा[3] ।

सख्योभयपदो यथा—द्वौ वा त्रयो वा द्वित्रा ।

व्यतिहारलक्षणो यथा—केशेषु केशेषु गहीत्वा इदम् युद्धम् प्रवृत्तम्

---

(१) बहुव्रीहिसमासोदाहारणेषु सर्वत्र 'अनेकमन्यपदार्थे' इति सूत्रेण समासो ज्ञेय । (२) सहशब्दयोगे 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति सूत्रेण समासो भवति । (३) उपदशा, द्वित्रा —इत्युभयत्र 'सख्ययाऽव्ययामन्नादूराधिकसख्या संख्येये' इति सूत्रेण समासविधिर्ज्ञेय । दशाना समीपे ये सन्ति ते उपदशा । नव एकादश वेत्यथ ।

इति केशाकेशि[1] युद्धम्। दण्डैदण्डै कृत्वा इदम् युद्धम् प्रवृत्तम् इति दण्डादण्डि।

दिगन्तराललक्षणो यथा—दक्षिणस्या पूवस्याश्च दिशो यदन्तरालम् सा दक्षिणपूर्वा[2]। इति बहुव्रीहि ।

अथ द्विगु

द्विगुसमासो द्विविध —एकवद्भावी, अनेकवद्भावी चेति। एकवद्भावी द्विगुयथा—त्रयाणा शृङ्गाणा समाहारस्त्रिशृङ्गम्[3]। पञ्चाना फलाना समाहार पञ्चफली। अनेकवद्भावी द्विगुयथा—सप्त च ते ऋषयश्च सप्तषय ।

अथ द्वन्द्व

द्वन्द्वो हि द्विविध —इतरेतरयोगसमाहारभेदात्। इतरेतरयोगद्वन्द्वो यथा—प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च[4] प्लक्षन्यग्रोधौ। रामश्च कृष्णश्च रामकृष्णौ। समाहारद्वन्द्वो यथा—हरिश्च हरश्च गुरुश्च एषा समाहार हरिहरगुरु। प्राणितूर्यसेनाङ्गाना द्वन्द्वैकवद्भाव। प्राण्यङ्गे यथा—पाणी च पादो च मुख च पाणिपादमुखम्[5]। तूर्याङ्गे यथा—मार्दङ्गिकश्च वैणविकश्च मार्दङ्गिकवैणविकम्। शङ्खश्च पटहश्च शङ्खपटहम्। सेनाङ्गे यथा—राजन्याश्च रथाश्च अश्वाश्च राजन्यरथाश्वम्। इति द्वन्द्व ।

अथाऽव्ययीभाव

स यथा—तट तट प्रत्यनुतटम्[6]। गिरि गिरि प्रत्यनुगिरि। क्रममनतिक्रम्य वतत इति यथाक्रमम्[7]। वेलायामित्यधिवेलम्[8]। कुम्भस्य समीपे

---

(१) केशाकेशि, दण्डादण्डि—इत्युभयत्र 'तत्र तेनेदमिति सरूपे' इति सूत्रेण समासो भवति। केशेषु केशेषु गृहीत्वेद युद्ध प्रवृत्त केशाकेशि। दण्डैदण्डैश्च प्रहृत्येद युद्धं दण्डादण्डि। (२) अत्र 'दिङ्नामान्यन्तराले' इति समास। (३) त्रिशृङ्गम्, पञ्चफली इत्युभयत्र 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इति सूत्रेण समासविधिर्भवति। (४) प्लक्षन्यग्रोधौ इत्यादौ 'चार्थे द्वन्द्व' इति सूत्रेण समासो बोध्य। (५) 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' इति एकवद्भाव। (६) 'अव्ययं विभक्ति' त्यादिना वीप्सायां समास। (७) यथाशब्दस्य पदार्थानतिवृत्तौ अव्ययीभाव। (८) विभक्तौ अव्ययीभाव।

वतत इत्युपकुम्भम्[1] । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्[2] । हिमस्य अत्यय अतिहिमम् ।[3] अव्ययीभावस्याव्ययत्वात्त्रिषु लिङ्गेषु समान रूपम् ।

इति षट समासा निर्णीता ।



अथ अलुक्समासो लुक्समासश्च ।

लुक्समासो यथा—तनुरेव लता तनुलता । कृष्णा एव मेघा कृष्णमेघा । अलुक्समासो यथा—वने चरतीति [4]वनेचर । पङ्के रोहतीति पङ्केरुहम् ।

मत्वर्थीयो यथा—बुद्धिरस्यास्तीति बुद्धिमान् । धनमस्यास्तीति धनवान् । धीरस्य भावो धीरता । जनाना समूहो जनता । घटस्य भावो घटत्वम् ।

वृक्षशाखा तत्पुरुष श्वेताश्व कमधारय ।
रक्तवस्त्रो बहुव्रीहिद्वन्द्वश्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १ ॥
यल्लिङ्ग यद्वचन या च विभक्तिर्विशेष्यस्य ।
तल्लिङ्ग तद्वचन सैव विभक्तिर्विशेषणस्यापि ॥ २ ॥
सदृश त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥ ३ ॥
आदौ कतृपद वाच्य द्वितीयादिपद तत ।
क्त्वातुमुँल्ल्यप् च मध्ये कुर्यादन्ते क्रियापदम् ॥ ४ ॥

अथ कारकप्रकरणम्

[5]कर्ता [6]कम च [7]करण [8]सम्प्रदान तथैव च ।
[9]अपादानाधिकरणमित्याहु [10] कारकाणि षट् ॥ १ ॥
निर्देशे [11]प्रथमा प्रोक्ता सैव चामन्त्रणेष्वपि[12] ।
[13] द्वितीया कमणि प्रोक्ता [14]तृतीया कतृकरणयो ॥ २ ॥

---

(१) सामीप्येऽव्ययीभाव । (२) अभावेऽव्ययीभाव । (३) अत्ययेऽव्ययीभाव । (४) 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति सप्तम्या अलुक् । (५) 'स्वतन्त्र कर्ता' । (६) 'कतुरीप्सिततम कम । (७) 'साधकतम करणम्' । (८) 'कमणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' । (९) 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' । (१०) 'आधारोऽधिकरणम् । (११) 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्र प्रथमा' । (१२) 'सम्बोधने च' । (१३) 'कमणि द्वितीया' । (१४) 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' ।

[1]ज्ञानज्ञाप्येऽङ्गविकारे[2] हेतावपि[3] च [4]इष्यते।
तादर्थ्ये[5] सम्प्रदाने[6] च चतुर्थी स्याच्च सवदा ॥ ३ ॥
हेत्वपादानयो[7] पञ्चमी षष्ठी[8] तु कतृकमसम्बन्धे।
[9]अधिकरणनिमित्तसत्त्वे सप्तमी स्यात् विषयेऽपि ॥ ४ ॥
[10]यदा कतरि प्रथमा स्यात् कर्मणि द्वितीया तदा।
[11]यदा कर्तरि तृतीया स्यात् कमणि प्रथमा तदा ॥ ५ ॥
विशेषण पुरस्कृत्य विशेष्य तदनन्तरम्।
कर्तृकमक्रियायुक्तमेतदन्वयलक्षणम् ॥ ६ ॥

[12]प्रथमान्तस्तृतीयान्त कर्ता। [13]द्वितीयान्त [14]षष्ठ्यन्त कम। तृतीयान्त करणम। चतुर्थ्यन्त सम्प्रदानम्। पञ्चम्यन्तमपादानम्। षष्ठ्यर्थ सम्बन्ध। सप्तम्यन्तमधिकरणम्।

इति कारकाणि ॥



इति समासचक्र समाप्तम्

---

(१) 'इत्थम्भूतलक्षणे' तृतीया। (२) येनाङ्गविकार इति सूत्रेण तृतीया। (३) 'हेतौ' इति सूत्रेण हेत्वर्थे तृतीया। (४) इष्यत इति पूर्वेण सब ध। (५) 'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' इति वार्तिकेन तादर्थ्ये चतुर्थी ज्ञेया। (६) 'चतुर्थी सम्प्रदाने'। (७) 'विभाषा गुणहेतावस्त्रियाम्' इत्यनेन हेतौ, अपादाने पञ्चमी' इत्यनेन अपादाने पञ्चमी विभक्तिर्भवति। (८) 'कर्तृकर्मणो कृति' इत्यनेन कर्तरि कर्मणि च षष्ठी। 'षष्ठी शेषे' इत्यनेन सम्बन्धे षष्ठी। (९) 'सप्तम्यधिकरणे च' इत्यधिकरणे सप्तमी। 'निमित्तात्कर्मयोगे' इत्यनेन निमित्ते सप्तमी। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इत्यनेन सत्त्वे सप्तमी भवति। (१०) देवदत्त पुस्तकं पठति इत्यत्र कतरि प्रत्यये कतुर्देवदत्तस्य उक्तत्वात् तत्र प्रथमा, कर्मणि पुस्तकं द्वितीया भवति। (११) 'देवदत्तेन पुस्तकं पठ्यते इत्यत्र' कमणि यक् प्रत्यये सति कर्मण पुस्तकस्य उक्तत्वे तत्र प्रथमा कर्तुरनुक्तत्वात्। कर्तरि देवदत्ते च तृतीया। (१२) अत्र विशेष उक्ते कर्तरि प्रथमा। यथा 'देवदत्त' पुस्तकं पठति। अनुक्ते कर्तरि तृतीयाषष्ठ्यौ भवत। यथा 'रामेण बाणेन हतो बाली' इत्यत्र कर्तरि तृतीया। कवे कृतिरित्यत्र कर्तरि षष्ठी। (१३) 'कमणि द्वितीया' इति सूत्रबलात् अनुक्ते कमणि द्वितीया भवति। (१४) 'कर्तृकर्मणो कृति'-इति नियमात् इयं कारक षष्ठी-अत कर्मत्वम्। यथा-जगत कर्ता कृष्ण। शेषं स्पष्टम्।

(६)
गणपाठः

पृष्ठसख्या

१६ **(वा०) शकन्ध्वादिषु पररूप वाच्यम्**—शक धु कक धु कुल्टा सीम त सीमान्त मनीषा हलीषा लाङ्गलीषा पतञ्जलि सारङ्ग (पशुपक्षिणो) साराङ्ग मातण्ड (आकृतिगणोऽयम्)।

२० **चादयोऽसत्त्वे** १।४।५७—च वा ह अह एव एवम् नूनम् शश्वत् युगपत् भूयस् सूपत् कूपत् कुवित् नेत् चेत् चण कच्चित् यत्र तत्र नह हन्त माकिम् माकीम् माकिर् नकिम् नकीम् नकिर् आकीम् माङ नञ् तावत् यावत् त्वा त्वै द्वै वै रै (रे) श्रौषट् वौषट् स्वाहा स्वधा ओम् तथा तथाहि खलु किल अथ सुष्ठु स्म अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ आदह उञ् उकञ् वेलायाम् मात्रायाम् यथा यत् तत् किम् पुरा वधा (वध्वा) धिक हाहा हेहै (हहे) पाट प्याट आहो उताहो हो अहो नो (नौ) अथो ननु म ये मिथ्या असि ब्रूहि तु नु इति इव वत् वात् वन बत [सम् वशम् शिकम् सिकम्] सनुक छवट (छम्बट्) शङ्के शुकम् खम् सनात सनुतर नहिकम् सत्यम् ऋतम् अद्धा इद्धा नोचेत् नहि नातु कथम् कुत कुत्र अव अनु हा हे (है) आहोस्वित् शम् कम् खम् दिष्ट्या पशु नट सह (? नुषट्) आनुपक अङ्ग फट ताजक भाजक अये अरे वाट (चाटु) कुम् खुम् घुम् अम् म म न् मीम् सिम् मि वै । (उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाता) आकृतिगणोऽयम् । २० **प्रादय** १।४।५८—प्र परा अप सम् अनु अव निस निर् दुस् दुर वि आङ् नि अधि अपि अति सु उद् अभि प्रति परि उप । इति प्रादय ।

३८ **सर्वादीनि सर्वनामानि** १।१।२७—तत्रैव सवनामानि द्रष्टव्यानि ।

४९ **न षट्स्वस्रादिभ्य** ४।१।१०—सूत्रे स्वस्रादीना निर्देश द्रष्टव्य ।

६६ **स्वरादिनिपातमव्ययम्** १।१।३७—स्वर् अन्तर प्रातर अन्तोदात्ता । पुनर सनुतर उच्चैस नीचैस् शनैस ऋधक ऋते युगपत् आरात् (अन्तिकात्) पृथक् । आद्युदात्ता । ह्यस् श्वस् दिवा रात्रौ सायम् चिरम् मनाक ईषत् (शश्वत्) जोषम् तूष्णाम् बहिस् [अधस] अवस् समया निकषा स्वयम् मृषा नक्तम् नञ् हेतौ [हेहै] इद्धा अद्धा सामि । अन्तोदात्ता । वत् [५।१।११५] ब्राह्मणवत् क्षत्रियवत् सना सनत् सनात् उपधा तिरस । अद्युदात्ता । अन्तरा । अन्तोदात्त । अन्तरेण (मक्) ज्योक् [योक् नक्] कम शम् सना सहसा [श्रद्धा] अलम् स्वधा वषट् विना नाना स्वस्ति अन्यत् अस्ति उपाशु क्षमा विहायसा दोषा मुधा दिष्ट्या वृथा मिथ्या । क्त्वातोसुन्कसुन । कृन्मकारस ध्यक्षरान्तोऽव्ययाभावश्च । पुरा मिथो मिथस् प्रायस् मुहुस् प्रवाहुकम् प्रवाहिका आर्यहलम् अभीक्ष्णम् साकम् साधम् [सत्रम् समम्] नमस् हिरुक । तसिलादयस्तद्धिता—एधाच्पयन्ता [५।३।७–४६] शस्तसी कृत्व सुच सुच आस्थालौ । च्व्यर्थाश्च । [अथ] अम् आम् प्रताम् प्रतान् प्रशान् । आकृति गणोऽयम् । तेना येऽपि । तथाहि माङ् श्रम् कामम् [प्रकामम्] भूयस् परम् साक्षात् साचि (सावि) सत्यम् मक्षु सवत् अवश्यम् सपदि प्रादुस् आविस अनिशम् नित्यम् नित्यदा सदा अजस्रम् सततम् उषा ओम् भूर् भुवर् झटिति तरसा सुष्ठु कु अञ्जसा अमिथु (अमिथु)

विथक् भाजक अ वक् चिराय चिरम् चिररात्राय चिरस्य चिरेण चिरात् अस्तम् आनुषक् अनुषक् अनुषट् अम्नस् (अम्भस्) अम्नर् (अम्भर्) स्थाने वरम् दुष्ठु बलात् शु अर्वाक् शुदि वदि इत्यादि । तसिलादय प्राक्पाशप (६।३।३६) शस्प्रभृतय प्राक्समासा तेभ्य [५।४।४३-६८] मा त कृत्वोथ । तसिवती । नानाञाविति ॥ इति स्वरादि ॥

१८० क्षुभ्नादिषु च ८।४।३९—क्षुभ्ना नृगमन नन्दिन न- न नगर । एतान्युत्तर पदानि सज्ञाथा प्रयोजयति । हरिन दी हरिन दन गिरिनगरम् । नृतिर्यङि प्रयोजयति । नरीनृत्यते । नतन गहन न दन निवश निवास अग्नि अनूप । एता युत्तरपदानि प्रयाजयन्ति । परिनतनम परिगहनम् परिन दनम् शरनिवेश शरनिवास शराग्नि दभानूप । आचार्या दणत्व च । आचार्यभोगीन । आकृतिगणाऽयम् । पाठा तरम् । क्षुभ्ना तृप्नु नृनमन नरनगर न-दन । यङ्नृती । गिरिनदी गृहगमन निवेश निवास अग्नि अनूप आचार्यभोगीन चतुर्हायन । इरिकादीनि वनोत्तरपदानि सज्ञायाम् । इरिका तिमिर समीर कुबेर हरि कर्मार । इति क्षुभ्नादि ।

१८४ कण्ड्वादिभ्यो यक् ३।१।२७—कण्डूञ् म तु हृणीङ् वल्गु असु [मनस्] महीङ लोट् लेट इरस् इरज् इरञ् दुवस् दुषस् वेट् मेधा कुषुभ (नमस) मगध त नस् पम्पस् (पपस्) सुख दु ख [भिक्ष चरण चरम अवर] सपर अरर (अरर) भिषज भिष्णज् [अपर आर] इषुध वरण चुरण तुरण भुरण गद्गद एला कला खेला [वेला शेला] लिट् लोट [लता लेख] रेखा द्रवस् तिरस् अगद उरस् तरण (तरिण) पयस् सम्भूयस् सम्बर । आकृतिगणाऽयम् । इति कण्ड्वादि ।

१९५ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४—नन्दिवाशिमदिदृषिसाधिवर्धिशोभिरोचिभ्यो ण्य तभ्य सज्ञायाम् । नन्दन वाशन मदन दूषण साधन वर्धन शाभन रोचन । सहितपिदम सज्ञायाम् । सहन तपन दमन जल्पन रमण दपण सक्रन्दन सङ्कषण सहर्षण जनादन यवन मधुसूदन विभीषण लवण चित्तविनाशन कुलदमन । [शत्रुदमन] इति न द्यादि ॥ ग्राही उत्साही उद्दासी उद्भासी स्थायी म त्री सम्मर्दी । रक्ष श्रुवपशां नौ । निरक्षी निश्रावी निवापी निशायी । याचृव्याहृसंव्याहृव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम् । अयाची अव्याहारी असव्याहारी अव्राजी अवादी अवासी । अचामचित्तकर्तृकाणाम् । अकारी अहारी अविनायी [विशायी विषायी] विशयी विषयी देशे । विशयी विषयी देश । अभिभावी भूते । अपराधी उपरोधी परिभवी परिभावी । इति ग्रह्यादि ॥ पच वच वप वद चल पत नदट भषट् प्लवट् चरट् गरट् तरट् चोरट् गाहट् सरट् देवट् (दाषट्) जर (रज) मर (मद) क्षम (क्षप) सेव मेष कोप (कोष) मेध नर्त व्रण दश सर्प [दम्भ दप] जारभार श्वपच । पचादिराकृतिगणोऽयम् ।

१९६ (वा०) कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसख्यानम् ३।२।५—मूलविभुज नखमुच काकगुह कुमुद महीध्र कुध्र गिध्र । आकृतिगणोऽयम् । इति मूलविभुजादय । **२०७ (वा०) सम्पदादिभ्य क्विप्**—सम्पद् विपद् आपद् प्रतिपद् परिषद् । एते सम्पदादय ।

२१८ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य ५।४।१०७—शरद् विपाश अनस मनस् उपानह् अनडुह् दिव् हिमवत् हिरुक् विद् सद् दिश दृश् विश् चतुर् त्यद् तद् यद् कियत् एदद् (जराया जरस्) (प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्ण) पथिन् । इति शरदादि ।

२२० सप्तमी शौण्ड २।१।४०—शौण्ड धूर्त कितव याड प्रवीण सवीत अ तर अधि पट्ठ पण्डित कुशल चपल निपुण । इति शौण्डादि ।

२२२ (वा०) शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानम्—शाकपार्थिव कुतुपसौश्रुत अजा तौल्वलि । आकृतिगणोऽयम् । कृतापकृत मुक्तविमुक्त पीतविपीत गतप्रत्यागत यातानुयात क्रया क्रयिका पुटापुटिका फलाफलिका मानो मानिका । इति शाकपार्थिवादय ।

२२३ ऊर्यादिच्विडाचश्च १।४।६१—ऊरी उररी त नी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकला शसकला ध्वसकला भ्रमकला गुलूगुधा सजूष फल फली विक्ली आक्ली आलोष्टी केवाली केवासी म्वासी पयाली सेवाली पर्याली शेवाली वर्षाली अत्यूमशा वश्मसा मसमसा मस्मसा श्रौषट वौषट स्वाहा स्वधा पांपी प्रादुम श्रत् आपिस एते ऊर्यादय ।

२२८ अर्धर्चा पुंस च २।४।३१—अर्धर्च गोमय कषाय कार्षापण कुपत कुमप (कुणप) कपाट शङ्ख गृथ यूथ वज कब ध पद्म गृह सरक कस दिवस यूष अ धकार दण्ड कमण्डलु मण्ट सूत द्वीप द्यूत चक्र धर्म कमन् मादक शतमान यान नख नखर चरण पुच्छ दाडिम हिम रजत सक्तु पिधान सार पात्र घृत सै धव औषध आटक चषक द्रोण खलान पात्रीव षष्टिक वारबाण (वारवारण) प्रोथ कपित्थ [शुष्क] शाल शाल शुक्ल (शुल्क) शाग कवच रेणु [ऋण] कपट शीकर मुसल सुवण वर्ण पूव चमस क्षीर कर्ष आकाश अष्टापद मङ्गल निधन निर्यास जम्भ वृत्त पुस्त बुस्त क्ष्वेडित शृङ्ग निगड [खल] मूलक मधु मूल स्थूल शराव नाल वप्र विमान मुख प्रग्रीव शूल वज्र कटक कण्टक [कपट] शिखर कल्क (वल्कल) नटमस्तक (नाटमस्तक) वलय कुसुम तृण पङ्क कुण्डल किरीट [कुमुद] अर्बुद अङ्कुश तिमिर आश्रय भूषण इक्कस (इष्वास) मुकुल वस त तटाक (तडाग) पिटक विटङ्क विटङ्क पिण्याक माष कोश फलक दिन दैवत पिनाक समर स्थाणु अनीक उप वास शाक कर्पास [विशाल] चषाल (चखाल) खण्ड दर विटप [रण बल मक] मृणाल हस्त आर्द्र हल [सूत्र] ताण्डव गाण्डीव मण्डप पटह सौध योध पार्श्व शरीर फल [छल] पुर (पुरा) रा ट्र अम्बर बिम्ब कुट्टिम मण्डल (कुक्कुर) कुडप ककुद खण्डल तोमर तोरण मञ्चक पञ्चक पुङ्ख म य [बाल] छाल वल्मीक वर्ष वस्त्र वसु देह उद्यान उद्योग स्नेह स्तेन [स्तन स्वर] सङ्गम निष्क क्षेम शूक क्षत्र पवित्र [यौवन कलह] मालक (पालक) मूषिक [मण्डल वल्कल] कुज (कुञ्ज) विहार लोहित विषाण भवन अरण्य पुलिन दृढ आसन ऐरावत शूर्प तीर्थ लोमन (लोमश) तमाल लोह दण्डक शपथ प्रतिसर दारु धनुर्भ् मान वर्चस्क कूर्च तण्डक मठ सहस्र ओदन प्रवाल शकट अपराह्ण नीड शकल तण्डुल । इत्यर्धर्चादि ।

२२७ स्त्रिया पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ६।३।३४—प्रिया मनोज्ञा कल्याणी सुभगा दुर्भगा भक्ति सचिवा स्वसा (स्वा) का ता (क्षान्ता) समा चपला दुहिता वामा अबला तनया । इति प्रियादि ॥

२२८ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य ५।४।१३८—हस्तिन् कुद्दाल अश्व कशिक कुरुत कटोलक गण्डोल गण्डालक कण्डोल कण्डोलक अज कपोत जाल गण्ड महिला दासी गणिका कुसूल । इति हस्त्यादि ॥

२२९ उर प्रभृतिभ्य कप् ५।४।१५१—उरस् सर्पिस् उपानह् पुमान् अनड्वान् पय नौ लक्ष्मी दधि मधु शाली शालि अर्थान्नञ । इत्युर प्रभृतय ॥

२२९ **कस्कादिषु च ८।३।४८**—कस्क कौतस्कुत भ्रातुष्पुत्र शुनस्कर्ण सद्यस्काल सद्यस्क्री साद्यस्क कांस्कान् सर्पिष्कुण्डिका धनुष्कपालम् बर्हिष्पलम् (बर्हिष्पलम्) यजुष्पात्रम् अयस्कान्त तमस्काण्ड अयस्काण्ड मेदस्पिण्ड भास्कर अहस्कर । इति कस्कादिराकृतिगण ॥

२३० **राजदन्तादिषु परम् २।२।३१**—राजदन्त अग्रेवणम् लिप्तवासितम् नग्नमुषितम् सिक्तसम्मृष्टम् मृष्टलुञ्चितम् अवक्लिन्नपक्वम् अर्पितोप्तम् । उप्तगाढम् उलूखलमुसलम् तण्डुल-किण्वम् दृषदुपलम् आरड्वायनि । आरग्वायन धकी । चित्ररथबाह्लीकम् । अव न्त्यश्मकम् शूद्रार्यम् स्नातकराजानौ विष्वक्सेनार्जुनौ अक्षिभ्रुवम् दारगवम् शब्दार्थौ धर्मार्थौ कामार्थौ अर्थशब्दौ अर्थधर्मौ अर्थकामौ वैकारिमतम् गाजवाजम् । गोजवाजम् । गोपालिधानपूलासम् । गोपालधानीपूलासम् । पूलासकारण्डम् । पूलासककुरण्डम् । स्थूलासम् । स्थूलपूलासम् । उशीरबीजम् [जिज्ञास्थि] सिञ्जास्थम् । निज्ञाश्वत्थम् । चित्रास्वाती । चित्रस्वाती । भार्यापती दम्पती जम्पती जायापती पुत्रपती पुत्रपशू केशश्मश्रू शिरोबिजु । शिरोबीजम् । शिरोजानु सर्पिमधुनी मधुसर्पिषी (आद्य तौ) अन्तादी गुणवृद्धी वृद्धिगुणौ । इति राजदन्तादय ॥

२३२ **अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४**—अश्वपति ज्ञानपति स्थनपति यज्ञपति बन्धुपति शतपति धनपति गणपति राष्ट्रपति कुलपति गृहपति पशुपति धान्यपति धर्मपति धन्वपति सभापति प्राणपति क्षेत्रपति इत्यश्वपत्यादि । २३३ **उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६**—उत्स उदपान विकिर विनद महानद महानस् महाप्राण तरुण तलुन वष्कयास धेनु पृथ्वी पङ्क्ति जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जनपद भरत उशीनर ग्रीष्म पीलुकुण पृषदश भल्लकीय रथन्तर मध्यंदिन बृहत् महत् सत्वत् कुरु पाञ्चाल इन्द्रावसाना उष्णीह ककुभ् सुवर्ण देव ग्रीष्मादछन्दसि । इत्युत्सादि । २३३ **गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५**—गर्ग, वत्स । वाजासे । सङ्कृति अज व्याघ्रपात् विदभृत प्राचीनयोग (अगस्ति) पुलस्ति चमस रेभ अग्निवेश शङ्ख शट शक एक धूम अवट मनस धनञ्जय वृक्ष विश्वावसु जरमाण लोहित संशित बभ्रु वल्गु मण्डु गण्डु शङ्कु लिगु गुहलु मन्तु मङ्क्षु अलिगु जिगीषु मनु तन्तु इत्यादि । २३४ **बाह्वादिभ्यश्च ४।१।९६**—बाहु उपबाहु उपवाकु निवाकु शिवाकु वटाकु उपनिन्दु [उपबिन्दु] वृषली वृकला चूडा बलाका मूषिका कुषला भगला (छगला) ध्रुवका [धुवका] सुमित्रा दुर्मित्रा पुष्करसद् अनुहरत् देवशर्मन् अग्निशर्मन् [भद्रशर्मन्] सुशर्मन् कुनामन् (सुनामन्) पञ्चन् सप्तन् अष्टन् । अमितौजस सलोपश्च । सुधावत् उदञ्चु शिरस् माष शराविन् मरीचि क्षेमवृद्धिन् शृङ्खलतोदिन् खरनादिन् नगरमर्दिन् प्राकारमर्दिन् लोमन् अजीगर्त कृष्ण युधिष्ठिर अर्जुन साम्ब गद प्रद्युम्न राम (उदङ्क) उदक सञ्ज्ञायाम् । सम्भूयोम्भसो सलोपश्च । आकृतिगणोऽयम् । तेन सात्वकि जाङ्घि ऐन्दशर्मि आजवेनवि इत्यादि । इति बाह्वादय ॥ २३५ **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४।१।१०४**—बिद उर्व कश्यप कुशिक भरद्वाज उपमन्यु किलात कंदर्प विश्वानर ऋष्टिषेण ऋतभाग हर्यश्व प्रियक आपस्तम्ब कूचवार शरद्वत् शुनक धेनु गोपवन इत्यादि । २३५ **शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२**—शिव प्रौष्ठ प्रोष्ठिक चण्ड जम्भ भूरि दण्ड कुठार ककुभ (ककुभा) अनभिम्लान लोहित सुख सन्धि मुनि ककुत्थ कहोड कोहड कहूय कहय रोध कपिञ्जल (खञ्जन) वतण्ड तृण कर्ण क्षीरहृद जलहृद परिल (पविक) पिष्ट हैहय (पार्षिका) गोपिका कपिलिका जटिलिका इत्यादि । २३६ **रेवत्यादिभ्यष्ठक्**

४।१।१४६—रेवती अश्वपाली मणिपाली द्वारपाली वृकपाली वृकग्राह कर्णग्राह चामरग्राह। इति रेवत्यादि । २३७ (वा०) कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् ४।१।१७५—गणपाठ तत्रैव द्रष्टव्य । २३६ भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८—भिक्षा गर्भिणा क्षेत्र करीष अङ्गार चर्मिन् धर्मिन् सहस्र युवति पदाति पद्धति अथर्वन् दक्षिणाभूत विषय श्रोत्र इति भिक्षादि । २४० क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१—क्रमक पदक शिक्षक मीमांसक। इति क्रमादि । २४१ वरणादिभ्यश्च ४।२।८२—वरणा शृङ्गी शल्मलि शुण्डि शुयाण्टी ताम्रपर्णी पोदा अलिङ्ग्यायनी जाल्पदा जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयिनी गया मथुरा तक्षशिला उरसा गोमती वलभी। इति वरणादि । २४२ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य ८।२।८—यव दल्मि ऊर्मि भूमि कृमि कुञ्चा वशा द्राक्षा ध्राक्षा ध्रजि (व्रजि) ध्वजि निजि सिजि सञ्जि हरित् ककुद् मरुत् गरुत् इक्षुद्रु मधु। आकृतिगणोऽयं यवादि । २४३ नद्यादिभ्यो ढक ४।२।६७–नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी वनकौशाम्बी काशपरी काशफरी खादिरी पूवनगरी पाठा माया शाल्वा दार्वा सेतकी (वडवाया वृषे) इति नद्यादि । २४३ गहादिभ्यश्च ४।२।१३८—गह अ तस्थ सम विषम (मध्यमध्य दिनचरणे) उत्तम अग वग पूर्वपक्ष अपरपक्ष अधमशाख समानग्राम एकवृक्ष एकपलाश अवस्यन्दन कामप्रस्थ सौमित्रि व्याडि इत्यादि। आकृतिगणोऽयम्। इति गहादि । २४५ दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४—दिश् वर्ग पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अ तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् देश आदि अन्त मुख जघन मेघ यूथ (उदकात्संज्ञायाम्) न्याय वश वेश काल आकाश इति दिगादि । २४५। अध्यात्मादिभ्यश्च (वा०) ४।३।६०—अध्यात्म अधिदैव अधिभूत इहलोक परलोक। इत्यध्यात्मादि । आकृतिगण ।। २४५ अनुशतिकादीना च ७।३।२०—अनुशतिक अङ्गार वेणु असिहत्य वध्योग पुष्करसत् कुरुकत उदकशुद्ध इहलोक सर्वपुरुष प्रयोग परस्त्री। राजपुरुषात्ष्यञि। सूत्रनड आकृतिगणोऽयम्। तेन अनुहोड अनुसंवरण इत्यादयोऽ येऽपि। इत्यनुशतिकादि । २४८ नित्य वृद्ध शरादिभ्य ४।३।१४४—शर दर्भ मृद् (मृत्) कुटी तृण सोम बल्वज। इति शरादि ॥ २५१ उगवादिभ्यो यत् ५।१।२—गो हविस् अक्षर विष विष बर्हिष् अष्टका स्खदा युग मेधा स्रुच् (नाभि नभ च) (शुन सम्प्रसारण वा च दीर्घत्व तत्सन्नियोगेन चान्तोदात्तत्वम्) (ऊधसोऽनङ् च) कूप खद दर त्य असुर अध्वन् क्षर वेद। इति गवादि । २५२ दण्डादिभ्यो यत्। ५।१।६६—दण्ड मुसल मधुपर्क कशा अथ मेघ मेधा सुवण उदक वध युग गुहा भाग इभ भङ्ग इति दण्डादि । २५३ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१।१२२—पृथु मृदु महत् पटु तनु लघु बहु साधु आशु उरु बहुल खण्ड दण्ड चण्ड अकिंचन बाल वत्स होड पाक मन्द स्वादु ह्रस्व दीर्घ प्रिय वृष ऋजु क्षिप्र क्षुद्र अणु। इति पृथ्वादि । २५४ वर्णदृढादिभ्य ष्यञ्च ५।१।१२३—दृढ वृढ परिवृढ भृश कृश वक्र शुक्र चुक्र आम्र कृष्ट लवण ताम्र शीत उष्ण जड बधिर पण्डित मधुर मूर्ख मूक स्थिर 'वेर्यातलात मतिमन शारदानाम्' 'समो मतिमनसो' जवन। इति दृढादि । २५४ गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च ५।१।१२४—ब्राह्मण वाडव माणव 'अर्हतो नुम् च' चोर धूत आराधय विराधय अपराधय उपराधय एकभाव द्विभाव त्रिभाव अन्यभाव इत्यादि। २५४ पत्यन्त पुरोहितादिभ्यो यक् ५।१।१२८—पुरोहित राजासे ग्रामिक पिण्डिक सुहित बालमन्द (बालमन्द) खण्डिक दण्डिक वर्मिक कर्मिक धर्मिक शितिक सूतिक मूलिक तिलक अञ्जलिक

(अन्तलिक) रूपिक ऋषिक पुत्रिक अविक छत्रिक पर्षिक पथिक चर्मिक प्रतिक सारथि आस्थिक सूचिक सरक्ष सूचक (सरक्षसूचक) नास्ति । अजानिक श क्वर नागर चूडिक । इति पुरोहितादि । **२५५ तदस्य मञ्जात तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६**—तारका पुष्प कणक मञ्जरी ऋजीष क्षण सूत्र मूत्र निष्क्रमण पुरीष उच्चार प्रचार विचार कुड्मल कण्डक मुसल मुकुल कुसुम कुतूहल स्तबक किसलय पल्लव खण्ड वेग निद्रा बुभुक्षा इत्यादि । **२५७ इष्टादिभ्यश्च ५।२।८८**—इष्ट पूर्त उपासादित निगदित परिगदित परिगदित परिवादित निकथित निषादित निपठित सकलित परिकलित सरक्षित अर्चित गणित अवकीर्ण आयुक्त गृहीत आम्नात श्रुत अधीत इत्यादि । **२५८ लोमादिपामादिपिच्छादिभ्य शनेलच ५।२।१००**—लोमन् रोमन् बभ्रु अरि गिरि कर्क कपि मुनि तरु इति लोमादि । **अथ पामादि**—पामन् वामन् वेमन् श्लेष्मन् कद्रवलि सामन् ऊष्मन् कृमि । (अङ्गात्कल्याणे) (शाकीपलालादद्रूणां ह्रस्वत्व च) (विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतस धे) (लक्ष्म्या अच्च) इति पामादि । **अथ पिच्छादि**–(पिच्छा उरस् ध्रुवक ध्रुवक जटा कालाक्षेपे) रण उदक पङ्क प्रज्ञा इति पिच्छादि । **२५८ व्रीह्यादिभ्यश्च ५।२।११६**—व्रीहि माया शाला माला मेखला केशा अष्टका पताका चमन् कमन् वमन् दंष्ट्रा सज्ञा वडवा कुमारी नौ वीणा बलाका यवखद नौ इति व्रीह्यादि । **२५६ अर्शआदिभ्योऽच् ५।२।१२७**—अशस् उरस् तु द चतुर कलित जटा घटा घाटा घट कदम अम्ल लवण (स्वाङ्गाद्धीनात्) (वणात्) अश आदिराकृतिगण । **२३५ प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८**—प्रज्ञ वणिज उशिज उष्णिज प्रत्यक्ष विद्वस् विदन् षाडन् विद्या मनस् (श्रोत्र शरीरे) जुह्वत्कृष्णमृग । चिकीषत चोर शत्रु योध चक्षुस् वसु एनस मरुत् क्रुञ्च सत्वत दशाह वयस् असुर रक्षस् पिशाच अशनि कापापणम् देवता ब धु इति प्रज्ञादि । **(वा०) आद्यादिभ्यस्तसेरुपसख्यानम्**—अयमेव सवविभक्तिस्तसि । आदित मध्यत अ तत पाश्वत पृष्ठत । आकृतिगणोऽयम् । स्वरण स्वरत ।

२६६ अजाद्यतष्टाप् ४।१।४—अज एडक अश्व चटक मूषक बाल वत्स होड पाक म द विलात पूर्वापहाण उत्तरापहाण क्रुञ्चा उष्णिहा देवविशा ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमेति पुयो गेऽपि कोकिलाजातौ, दंष्ट्रा । एतेऽजादय । **२६८ षिद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१**—गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय गवय मुकय ऋष्य (पूट तूण) द्रुण हरिण कोकण (काकण) पटरउणक (आमल) आमलक कुवल बिम्ब बदर फर्कर (कर्कर) तर्कार शकार पुष्कर शिखण्ड सलद शष्कण्ड सनन्द सुषम सुषव अकलन्द गडुल षाण्डश आढक आनन्द आश्वत्थ इति गौरादि **२६८ बह्वादिभ्यश्च ४।१।४२**—बहु पद्धति अञ्च अङ्कति अहति शकटि शक्ति शस्त्रे, शारि वारि यराति राधि इत्यादि, आकृतिगणोऽयम् । **२७० न क्रोडादिबह्वच ४।१।५६**—क्रोड नख खुर गोखा उखा शिखा वाल शफ शुक्र आकृतिगणोऽयम्, तेन भाग तल घोण नाल भुज गुद कर इति क्रोडादि । **२७२ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४।१।७३**—शाङ्गरव कापटव गौग्गुलव ब्राह्मण वेद गौतम कामण्डलेय ब्राह्मणकृतेय आनिचेय आनिधेय आशोकेय वात्स्यायन मौञ्जायन कैकस काप्य काव्य शैव्य एहि आश्मरथ्य औदपान अराल चण्डाल वतण्ड भोगवत् गौरिमत् नृनरयोर्वृद्धिश्च । इति शाङ्गरवादि ।

इति गणपाठ समाप्त ।

